श्री वीतरागाय नमः

श्री विनयविजय जी उपाध्याय विरचित

लोकप्रकाश

भाग - ३

क्षेत्र लोक (उत्तरार्द्ध)
सर्ग - २१ से २७ तक

हिन्दी भाषानुवादक

प० पू० आचार्य देव श्रीमद् विजय पद्म चन्द्र सूरीश्वर जी म० सा०

❊

प्रकाशक

श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ

श्री आत्मानंद जैन बालाश्रम भवन, हस्तिनापुर (मेरठ) उ०प्र०

दूरभाष - 01233-280132

श्री शान्तिनाथाय नमः

श्री आत्मवल्लभ-ललित-पूर्णानंद-प्रकाश चन्द्र सूरीवराय नमः

सुगृहीत नामधेय श्री विनय विजय गणिवर्य विरचित

लोक प्रकाश

भाग -३

सर्ग २१ से २७

-: हिन्दी भाषानुवाद कर्ता :-

परम पूज्य, भारत दिवाकर , युगवीर जैनाचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ
सूरीश्वर जी महाराज के पट्टधर, मरूधर देशोद्धारक आचार्य
भगवंत श्रीमद् विजय ललित सूरीश्वर जी महाराज
के पट्टधर, महान तपस्वी, आचार्य देव श्रीमद्
विजय पूर्णानंद सूरीश्वर जी महाराज सा०
के पट्टधर, अनेक तीर्थोद्धारक
महान तपस्वी उत्तर प्रदेशोद्धारक
आचार्य भगवंत
श्रीमद् विजय प्रकाश चन्द्र सूरीश्वर जी महाराज सा० के
शिष्य रत्न
आचार्य देव श्रीमद् विजय पद्म चन्द्र सूरीश्वर जी महाराज सा०

*

- प्रकाशक-

श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ

बालाश्रम भवन, हस्तिनापुर
जिला मेरठ (उ० प्र०) पिन - 250404
फोन : 01233-280132

❑ ग्रन्थ का नाम :
लोक प्रकाश भाग -३

❑ मूलग्रन्थकार :
उपाध्याय श्री विनय जी गणिवर्य

❑ आवृत्ति :
प्रथम

❑ हिन्दी भाषानुवाद कर्त्ता :
आचार्य पद्म चन्द्र सूरी

❑ प्रकाशक :
श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ

❑ प्रकाशन तिथि :
६ फरवरी 2003
बसंत पंचमी संवत् २०६०

❑ मूल्य :
रु० १००/=

❑ मुद्रक :
प्रिन्टोनिक्स
वैस्टर्न कचहरी रोड
मेरठ - 250 001
फोन : 642302, 667315

❑ प्राप्ति स्थान :
श्री आत्मानंद जैन बालाश्रम भवन
हस्तिनापुर - 250404 (मेरठ) उ०प्र०

❑ **सेठ कस्तूर चन्द, अमी चन्द**
३६, खान बिल्डिंग, नवाब टैंक ब्रिज
मझगांव, मुम्बई - १०

❑ **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
रतन पोल हाथी खाना
अहमदाबाद (गुजरात)

❑ **सोमचन्द्र डी० शाह**
तलाटी रोड, पालीताणा

❑ **श्री अहिच्छत्रा पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मन्दिर**
रामनगर किला (बरेली) उ० प्र०

सादर-समर्पण

पूज्य दादा गुरुदेव के
चरण-कमलों में

प० पू० आचार्य श्रीमद् विजय ललित सूरीश्वर जी

जिनका जीवन सूर्य समान तेजस्वी था, मन चन्द्र समान सौम्य था, आचार
स्वर्ण समान निर्मल था, विचार सागर समान गंभीर था, वाणी
आध्यात्म युक्त थी, संयम साधना में वज्र समान कठोर
जन-जन के प्राण, पंजाब केसरी, युगवीर, युगदृष्टा,
विश्व वंदनीय, सूरी सम्राट, पंजाब देशोद्धारक
आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय वल्लभ सूरी०
जी म० सा० के चरण-कमलों में
सादर समर्पित

चरण रेणु
आ० श्रीमद् विजय पद्म चन्द्र सूरी

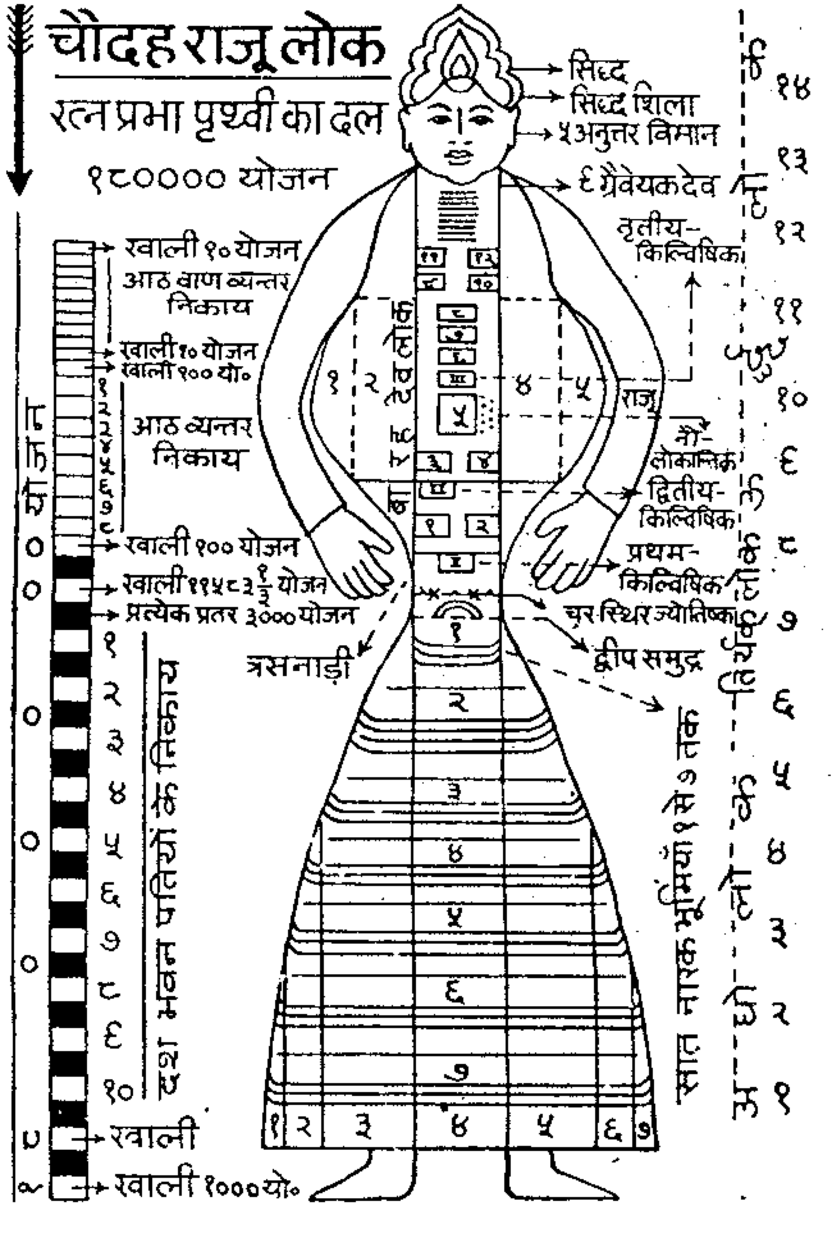
चौदह राजू लोक
रत्न प्रभा पृथ्वी का दल
१८०००० योजन
खाली १० योजन
आठ वाण व्यन्तर निकाय
खाली १० योजन
खाली १०० यो०
आठ व्यन्तर निकाय
खाली १०० योजन
खाली ११५८३ $\frac{1}{3}$ योजन
प्रत्येक प्रतर ३००० योजन
दश भवन पतियों के निकाय
खाली
खाली १००० यो०
त्रसनाड़ी
सिद्ध
सिद्ध शिला
५ अनुत्तर विमान
९ ग्रैवेयक देव
तृतीय-किल्विषिक
राजू
नौ-लोकान्तिक
द्वितीय-किल्विषिक
प्रथम-किल्विषिक
चर स्थिर ज्योतिष्क
द्वीप समुद्र
सात नारक भूमियां १ से ७ तक
ऊर्ध्व लोक
तिर्यक लोक
अधो लोक के

प्रकाशकीय

सत् साहित्य का सृजन उसका संकलन एवं प्रकाशन जीवन विकास का उच्चतम सोपान है इस श्रेष्ठतम लक्ष्य को पुरस्सर कर हमारे संस्थान निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन द्वारा श्रुत यज्ञ में एक और पुष्पांजलि समर्पित है स्वनाम धन्य महोपाध्याय श्री विनय विजय जी महाराज ने अनेक ग्रन्थों में श्रेष्ठ, द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से युक्त चार विभागों वाले श्री लोक प्रकाश नाम के ग्रन्थ की रचना की है ।

ग्रन्थ शिरोमणि लोक प्रकाश में जैन दर्शन के प्राय: सभी विषयों का सुन्दर अंश समन्वित है । वर्तमान में जो संस्करण प्रकाशित हुए है, उनमें विवेच्य विषय द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव को पांच भागों में समाहित किया गया है। इस महानतम ग्रन्थ के प्रणयन में उपाध्याय श्री विनय विजय जी गणि वर्य ने समग्र लोक-अलोक व्यवस्था, उसमें विराजित जीव-अजीव के ज्ञान का कैसा वर्णन किया है? यह तो इस महान ग्रन्थ के पठन-पाठन एवं श्रवण से ही जाना जा सकता है। लगभग ११ हजार श्लोक प्रमाण इस महाकाय ग्रन्थ में द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव में जो-जो विषय आये है, उनके सम्बंध में पूर्ववर्ती आचार्यो, जैन दर्शन के ग्रन्थों के, जो भी मतान्तर आये हैं, सभी को स्थान दिया गया है। यही कारण है कि अपने कथन की पुष्टि में ग्रन्थकार ने लगभग १४०० साक्षी पाठों एवं ७०० अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों के अंश प्रस्तुत किये है । अनेक आगमों के प्रकरण ग्रन्थों, प्रकीर्णक ग्रन्थों के पाठों की साक्षी रूप "द्रव्य लोक प्रकाश" में ४०२, 'क्षेत्र लोक प्रकाश' में ५०७, 'काल लोक प्रकाश' में ३७६ तथा 'भाव लोक प्रकाश' में २३ साक्षी पाठ प्रस्तुत किये है।

अभी तक जैन दर्शन के दिग्दर्शक इस ग्रन्थ राज के, संस्कृत और गुजराती भाषा में अनुवादित संस्करण ही देखने में आये हैं । तीसरा भाग 'क्षेत्र लोक प्रकाश' (उत्तरार्द्ध), सर्ग (२१-२७) लगभग श्लोक प्रमाण ३००० का सरल हिन्दी भाषानुवाद प्रकाशित करते हुए अत्यन्त हर्ष की अनुभूति हो रही है। परम पूज्य आचार्य "आत्म-वल्लभ-ललित-पूर्णानंद" की शिष्य परम्परा एवं पट्ट परम्परागत अनेक तीर्थोद्धारक, आचार्य भगवंत **श्रीमद् विजय प्रकाश चन्द्र सूरीश्वर जी महाराज स०** के शिष्य रत्न, शास्त्रों के सदव्याख्याता

आचार्य प्रवर **श्रीमद् विजय पद्म चन्द्र सूरीश्वर जी महाराज सा०** द्वारा हिन्दी भाषा में किया गया भाषानुवाद आपके हाथों में है । सम्पूर्ण ग्रन्थ पाँच भागों में प्रकाशित हो चुका है । जिज्ञासु पाठक वर्य अनुकूलता अनुसार वाचन कर श्रेयस्कर पथ के पथिक बने ।

सर्व प्रथम परम उपकारी आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय पद्म चन्द्र सूरीश्वर जी म० सा० के चरण कमलों में वंदन करता हूँ कि उन्होने इस ग्रन्थ का सरल हिन्दी भाषानुवाद करके परम उपकार किया है। ग्रन्थ प्रकाशन में बाल मुनि श्री युग चन्द्र विजय जी म० सा० ने तथा सभी ने प्रूफ संशोधन एवं हस्तलिपि लेखन जैसे दुरूह कार्य का उत्तरदायित्व वहन करते हुए उपकार किया है । श्री नगीन चन्द जैन (नगीन प्रकाशन, मेरठ) तथा सुभाष जैन (प्रिन्टोनिक्स) वैस्टर्न कचहरी रोड, मेरठ वालों का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपने आवश्यक मुद्रण कार्यों को स्थगित रखते हुए इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य को वरीयता प्रदान की । 'ज्ञानावरणीय' क्षेत्र में अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग करते हुए जिन दानवीर श्रेष्ठि श्रीमन्तों ने 'श्रुतयज्ञ' में सहयोग प्रदान किया है उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अन्त में उन सभी ज्ञात-अज्ञात महानुभावों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होनें तन, मन, धन, एवं भाव मात्र से भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में किंचित मात्र सहयोग प्रदान किया है ।

ग्रन्थ प्रकाशन में जो भी मति दोष अथवा दृष्टि दोष के कारण त्रुटि रह गई है, वह हमारे प्रमादवश है । सुविज्ञ पाठक वृन्द भूल सुधार कर, चिन्तन एवं मनन पूर्वक पढ़ें। यही शुभ अभिलाषा है ।

प्रो० जे०पी० सिंह जैन

एम०ए०, एल एल एम

मंत्री

निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशन संघ

ग्रन्थकार - संक्षिप्त परिचय एवं कृतित्व

इस अपूर्व, अद्वितीय, महान ग्रन्थ के रचयिता स्वनाम धन्य उपाध्याय श्री विनय विजय गणिवर्य म० सा० का नाम जैन दर्शन साहित्य में बडी श्रद्धा के साथ स्मरणकिया जाता है। इन्होने ऐसे-ऐसे अमूल्य ग्रन्थ सर्वजन सुखाय-सर्वजन हिताय प्रदान किये कि किसी भी आध्यात्म मर्मज्ञ अथवा मुमुक्षु व्यक्ति का हृदय अपार श्रद्धा से भर जाता है। ग्रन्थ रूप अमूल्य निधि के प्रणेता का नाम जैन साहित्याकाश में प्रखर सूर्य की भाँति सदैव देदीप्य मान रहेगा। परम वंदनीय, महान उपकारो इन महात्मा का जन्मस्थान, जन्म समय, दीक्षा काल आदि क्या है ? इस सम्बंधमें सर्वथा शुद्ध एवं प्रामाणिक साक्ष्यों का अभाव हृदय को पीड़ा कारक है। लोक प्रकाश ग्रन्थ के प्रत्येक सर्गके अन्तिम श्लोक में ग्रन्थकार ने स्वयं -

विश्ववाश्चर्यद कीर्ति-कीर्तिविजय श्री वाचकेन्द्रातिष्,
द्राज श्री तनयोऽतनिष्ट विनयः श्री तेजपालात्मजः।
काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्व प्रदीपोपमे,
सर्गो निर्गलितार्थ सार्थ सुभगो पूर्ण सुखेनादिमः॥

अर्थात:- विश्व को आश्चर्य चकित कर देने वाली कीर्ति है जिनकी, उन "कीर्ति विजय"जी उपाध्याय के शिष्य और "राज श्री"माता तथा "श्री तेज पाल"जी के पुत्र, विनय वंत; विनय विजय नाम वाले (मैने) निश्चित ही जगत के तत्व को प्रदर्शित कराने में दीपक समान इस "लोक प्रकाश" की रचना की जिसका --(यह अमुक सर्ग समाप्त हुआ)। इस तरह से सर्गान्त में ग्रन्थ कार ने अपने उपकारी, पूज्य गुरू देव तथा संसारी माता-पिता के प्रति भाव भक्ति पूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित की है।

इससे इतना तो निर्विवाद सिद्ध हो जाता हे कि इनकी माता का नाम 'राज श्री', पिता का नाम 'श्री तेजपाल' तथा गुरू महाराज का नाम 'श्री कीर्ति विजय जी' वाचकेन्द्र था। श्री कीर्ति विजय जी म० सा० अकबर बादशाह के प्रति बोधक, जगद् गुरू विरुद से सम्मानित आचार्य देव "श्री मद् हीर विजय जी" के शिष्य थे। इस तथ्य की पुष्टि के प्रमाण में लोक प्रकाश काव्य की समाप्ति पर ग्रन्थकार द्वारा सर्ग ३७ के श्लोक संख्या ३२-३३ में उल्लेख किया गया है।

श्री हीरविजय सूरीश्वर शिष्यौ सौदरावभूतां द्वौ ।
श्री सोमविजय वाचक- वाचक वर कीर्ति विजयाख्यौ ॥३२॥

तत्र कीर्ति विजयस्य किं स्तुमः, सुप्रभावममृतद्युतेरिव ।
यत्करातिशयतोऽजनिष्टमत्प्रस्तरादपि सुधारसौऽसकौ ॥३३॥

इस प्रशस्ति के अनुसार आचार्य देव श्री मद् 'हीर विजय' जी म० सा० के दो

शिष्य "'श्री सोम विजय' जी म० सा० तथा उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी गणि वर्य इन्हीं वाचक वर्य 'श्री कीर्ति विजय' जी महाराज साहब के शिष्य थे। सन् १६०५ में जामनगर से प्रकाशित पं० हीरालाल, हंसराज की गुजराती भाषा में अनुवादित 'लोक प्रकाश' की एक प्रति में ग्रन्थकार की पाट परम्परा को दर्शाने वाला एक मानचित्र (नक्शा) देखने को मिला। अविकल रूप से उसे यहाँ अंकित करना आवश्यक है -

ग्रन्थकार की पाट परम्परा

श्री हीर विजय सूरी (अकबर बादशाह के प्रतिबोधक)

वाचक श्री कल्याण विजय जी — वाचकवर श्री कीर्ति विजय जी

श्री लाभ विजय जी — उपाध्याय श्री विनय विजय (ग्रन्थ कर्त्ता)

श्री नय विजय जी — श्री जीत विजय जी

श्री पदम विजय जी — श्री यशोविजय जी

उपर्युक्त मानचित्र को देखने से ज्ञात होता है कि आचार्य प्रवर 'श्री हीर विजय सूरी' के शिष्य श्री कल्याण विजय जी तथा श्री कीर्ति विजय जी थे। हमारे ग्रन्थ कर्त्ता 'श्री विनय विजय' जी म०सा० उपाध्याय 'श्री यशोविजय' जी के समकालीन ठहरते हैं। ये दोनों ही साधु वर्य एक समुदाय में दीक्षित थे। इनमें परस्पर बहुत ही प्रेममय व्यवहार था। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि किसी प्रसंग पर १२०० श्लोक प्रमाण ग्रन्थ को उपाध्याय 'श्री कीर्ति विजय' जी म०सा० तथा उपाध्याय 'श्री यशोविजय' जी म० सा० ने एक रात्रि में क्रमश: ५०० तथा ६०० श्लोक को कंठस्थ करके अगले दिन अविकल रूप में लिपिबद्ध कर दिया था। इससे इन मुनि द्वय की अलौकिक प्रतिभा एवं स्मरण शक्ति का सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है।

उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी म० सा० जैनागमों के प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होने अनेकों बार शास्त्रार्थ में अन्य दर्शनाचार्यो का मत खंडन कर जिन वाणी रूप में स्थापन किया था। अनेकश: ऐसे दृष्टान्तों का उल्लेख मिलता है कि इन्होने अन्य मतावलंबियों को जिन मत में दृढ़ किया है। इतने विद्वान होते हुए भी इनमें विनय भाव अत्यधिक था। यथानाम तथा गुण के आधार पर 'श्री विजय विजय' जी गणिमहाराज पूर्ण रूपेण खरे उतरते हैं। इनकी विनय भक्ति और उदारता का दृष्टान्त है कि किसी समय पर खंभात में

चार्तुमासिक-**प्रवास** काल में उपाश्रय में इनका व्याख्यान चल रहा था। उसी समय एक **बृद्ध ब्राह्मण** इनकी धर्म सभा में प्रवेश करता है धर्म सभा पूर्ण रूपेण यौवन पर है। व्याख्यान कर्त्ता एवं श्रोता गण श्रावक वर्य दत्त चित्त आध्ययात्म रस का मनोयोग से रसपान कर रहे हैं। वृद्ध ब्राह्मण के सभा कक्ष में प्रवेश पर जैसे ही 'गणिवर्य' श्री 'विनय विजय' जी महाराज साहब ने व्यास पीठ से उतर कर आगे बढ़कर उन वृद्ध ब्राह्मण का स्वागत किया, उनका हाथ पकड कर आगे लाये तो सब सभासद श्रावक आश्चर्य चकित रह गये। विचार करते हैं कि ये पूज्य गणि जी महाराज 'श्री विजय विजय' श्री म० सा० हैं, जिन्होंके नाम का डंका सारे खंभात में बज रहा है। जिनका सर्वत्र जयघोष हो रहा है। वे इस वृद्ध ब्राह्मण के इस तरह से भक्ति भाव प्रदर्शित कर रहे हैं। श्रावकों ने उपाध्याय जी महाराज से पूछा कि हे गुरू वर्य ! ये महाशय कौन हैं ? उपाध्याय 'श्री विजय विजय' जी म० सा० ने फ़रमाया कि, हे भाग्य शालियें! ये हमारे काशी के विद्या दाता गुरु हैं। इनकी ही परम कृपा और परिश्रम से मैं आज इस स्थान पर पहुँचा हूँ। इनका मुझ पर बहुत बडा उपकार है। मुनि महाराज का इतना कहना मात्र ही था कि श्रद्धावान श्रावकों ने बिना किसी प्रेरणा व कहने के कुछ ही क्षणों में गुरु दक्षिणा के रुप ७००००, सत्तर हजार रुपये की भेंट आगन्तुक पंडित जी के समक्ष रख दी। कितनी श्रद्धा थी, कितनी भक्ति थी उपाध्याय श्री जी के मन में अपने उपकारी के प्रति। आज ऐसा उदाहरण शायद ही सश्रम खोजने पर भी न मिले।

उपकारी गुरुदेव रचित अनेकों ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं। विस्तार भय से सब का पूर्ण विवेचन संभव नहीं है, फिर भी संक्षेप में इसका परिचय प्रस्तुत करना आवश्यक सा जान पड़ता है। उनमें से कुछ का किंचित् मात्र परिचय निम्नवत् है।

(१) **हेम प्रक्रिया :-** आगम ग्रन्थों के ज्ञानार्थ सर्व प्रथम व्याकरण का ज्ञान परमावश्यक है। कलि काल सर्वज्ञ श्री हेम चन्द्र सूरीश्वर जी म० सा० ने जैन व्याकरण को आठ अध्यायों में दस हजार श्लोक (लघुवृत्ति) प्रमाण से पूरा किया तथा अठारह हजार श्लोक प्रमाण से वृहद् वृत्ति की रचना की थी। उपाध्याय श्री जी ने उस पर चौरासी हजार श्लोक प्रमाण, धातु पारायण, उणादि गण, धातु पारायण, न्यास ढुंढिका टीका आदि प्रस्तुत की। उपाध्याय जी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से इस व्याकरण शास्त्र को सरल सुगम और सरस बनाने में भारी पुरुषार्थ किया है। इन्होने इस पर लघु प्रक्रिया रची। क्रमबार संज्ञा-संधि-षड्लिङ -तद्धित और धातुओं में शब्द रचना की विधि बताई। सम्पूर्ण व्याकरण शस्त्र को अति सुबोध और सुगमता से सुग्राह्य और बाल सुलभ बनाने की दृष्टि से पूज्य श्री जी ने अपनी विशिष्ट कलाओं से युक्त २५०० श्लोक प्रमाण इस ग्रन्थ को संवत् १७९० में पूर्ण

किया । इसके पश्चात इसकी स्वोपज्ञ टीका रची । अपनी विद्वता प्रतिभा को प्रकाशित करते हुए ३४००० श्लोक प्रमाण यह टीका अत्यन्त सरस एवं सरल संस्कृत भाषा मे रची । इस ग्रन्थ को सं० १७३६ में रतलाम में विजय दशमी के दिन पूर्ण किया गया ।

(२) **नयकर्णिका** :- 'नय' का ज्ञान तो अथाह सागर है । अपने जिन शासन में हर एक विषय में 'नय' दी है । विषय की जटिलता को देखते हुए उपाध्याय जी ने बाल जीवों के ज्ञानार्थ अत्यन्त सरल भाषा में ज्ञान कराने हेतु इसकी रचना की है । इसमें सिर्फ २३ गाथाओं के द्वारा 'नय' विषय में प्रवेश हेतु प्रवेशिका रुप में प्रस्तुत किया है । यह लघुकाय पुस्तक 'नय' के अभ्यासी के लिये अत्यंन्त उपयोगी है ।

(३) **इन्दुदूत** :- (काव्यमाला) यह एक सरस काव्य मय कृति है । पुरातन समय में संवत्सरी प्रतिक्रमण के पूर्ण होने पर एक संघ दूसरे संघ के प्रति क्षमापणा पत्र लिखता था । शिष्य- गुरु के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित कर क्षमा याचना करता था। कभी-कभी तो यह ५० हाथ से १०० हाथ तक के लम्बे कागज पर लिखे जाते थे। इसके दोनों ओर हाशिये बना कर मन्दिरों, मूर्तियों, सरोवरों, नदियों कुओ, नर्तकियों आदि के विभिन्न रगों वाले चित्रों से सजाया जाता था । उस ही भाव - भंगिमा से प्रेरणा प्राप्त कर उपाध्याय श्री जी ने काव्य कला के विभिन्न रस, छन्द, अंलकार, भाव भंगिमा रुप चित्रों से युक्त एक काव्यमय पत्र जोधपुर से सूरत विराज मान गच्छाधिपति आचार्य भगंवत श्री मद् विजय प्रभ सूरीश्वर जी म० सा० की सेवा में लिखा । इस काव्य मय पत्र में चन्द्रमा को दूत बना कर जोध पुर से सूरत तक के सभी तीर्थों, जिन मन्दिरों, नगरों एवं शासन प्रभावक सुश्रावकों का चित्रण (वर्णन) करते हुए लिखा गया यह पत्र अत्यन्त प्रभावोत्पादक था। अत्यन्त मनोरम एवं अद्‌भुत रुप से रचित मात्र १३१ श्लोको का यह काव्य अत्यन्त प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ । इसका रचना काल सं० १७१८ वि० है ।

(४) **शान्त सुधारस** :- यह ग्रन्थ रत्न भी काव्य मय है । इसका विवेच्य विषय 'अनित्य' आदि १२ भावना तथा मैत्र्यादि चार भावना हैं । इसमें सरल संस्कृत भाषा में ३५७ श्लोकों से रचा गया है । समस्त संस्कृत साहित्य में, जैन ग्रन्थों में अनेकों प्रकार की राग-रागनियों युक्त शायद ही कोई दूसरा ग्रन्थ उस काल में रहा होगा। उपाध्याय जी महाराज केवल कवि हदय ही नहींअपितु अनुभव सिद्ध कवि थे । उस समय मुगलों का अधिपत्य चतुर्दिग प्रसरित होने से हिन्द् प्राय असहाय अवस्था का अनुभव करते थे । कदाचित मुगलों से हैरान, परेशान हिन्दु अधिकतर प्रसंगों पर कषायों से ग्रसित रहे होंगें । ऐसे प्रसंग पर संघ की अपनी आत्मा को

जागृत रखने के उद्देश्य से इस कृति को रचा गया होगा । जो भी इस ग्रन्थ का पठन-वाचन करेगा तो इसके अलौकिक, अध्यात्म परक शान्त सुधा रस का आस्वादन करेगा । प्रायकर इसका प्रत्येक श्लोक अलग-अलग राग शैली पर आधारित है । इसका रचना काल संवत् १७२३ तथा स्थान गांधार नगर कहा गया है ।

(५) **षट्त्रिंशत् जल्प संग्रह :** - परम पूज्य श्री भाव विजय जी म० सा० ने सं० १६६६ में संस्कृत भाषा में पद्यमय काव्य ग्रन्थ 'षट्त्रिंशत्' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। हमारे पूज्य प्रवर उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी म० सा० ने संक्षिप्त रुप से इसे संस्कृत में ही गद्य स्वरुप प्रदान किया है ।

(६) **अर्हन्नमस्कार स्तोत्र :** - इस स्तोत्र में परमात्मा की स्तुतिया है । वर्तमान समय में इस ग्रन्थ का अभाव है । इसकी मूल प्रति उदयपुर भंडार में सुरक्षित बताई गई है।

(७) **जिन सहस्त्र नाम स्तोत्र :** - विद्वत्ता से भरी, भक्ति भाव पूर्ण इस कृति में संस्कृत भाषा में रचित १४६ उपजाति छन्दों का सृजन है । कहा जाता है कि इसकी रचना संवत् 1731 के गांधार नगर के चार्तुमासिक प्रवास काल में की गई थी । इस ग्रन्थ की विशेषता है कि प्रत्येक श्लोक में सात बार भगवंतों को नमस्कार किया गया है। सब मिला कर १००१ बार नमस्कार करने में आया है।

(८) **आनंदलेख :** - यह लेख भी संस्कृत भाषा में रचित है । २५१ श्लोकों से युक्त इस ग्रन्थ की रचना १६६६ वि० संवत् कहा गया है । पूर्ण पांडित्य पूर्ण संस्कृत के इस ग्रन्थ का भी बहुत आदर है ।

उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी म०सा० ने गुजराती भाषा में भी साहित्य सृजन किया है । इनके अनेक ग्रन्थ गुजराती भाषा में लिखित है, जिनका उल्लेख करना भी आवश्यक है ।

(९) **सूर्य पुर चैत्य परिपाटी :** - गुजराती की प्रथम रचना 'सूर्यपुर चैत्य परिपाटी' का रचना काल विक्रमी संवत् १६८९ हैं । इस ग्रन्थ में सूर्य पुर (सूरत) नगर के चैत्यो (जिन मन्दिरों) की परिपाटी का वर्णन है । उस में सूरत में स्थित ११ जिनालयों का उल्लेख मिलता है । जिन मन्दिरों के मूलनायक श्री जिनेश्वर भगवंत की स्तुति रुप १४ कडियों में ग्रन्थ-कार ने तीर्थमाला की रचना की है।

(१०) **विजय देव सूरी लेख :-** इसमें परम पूज्य, अकबर बादशाह के प्रति बोधक, आचार्य देव श्रीमद् विजय हीर सूरीश्वर जी म० सा० के पट्टालंकार आचार्य

प्रवर श्रीमद् विजय देव सूरीश्वर जी म०सा० की भक्ति रुप सज्झाय की रचना की गई है।

(११) **उपमिति भव प्रपंचा :-** श्री सिद्धर्षि गणि कृत अन्यन्त वैराग्यपूर्ण महा ग्रन्थ उपमिति भव प्रपंच कथा (संक्षेप) करके गुजराती भाषा में स्तवन रुप में प्रस्तुत किया है। वि० सं० १७१६ में रचित यह स्तवन रुपकृति भगवान धर्म नाथ प्रभु की भाव भक्ति से ओत-प्रोत है। प्रथम तो सम्पूर्ण भव चक्र को उपमिति प्रमाण में वर्णन किया है, और बाद में श्री धर्मनाथ जिनेश्वर प्रभु की विनती की है।

धर्म नाथ अवधारिये सेवक की अरदास ।
दया कीजिये-दीजिये, मुक्ति महोदय वास ॥

(१२) **पट्टावली सज्झाय :-** इस ग्रन्थ का रचना काल वि० सं० १७१८ है। इस कृति में श्री सुधर्मा स्वामी से लेकर पट्टपरम्परा अनुसार उपकारी गुरु 'श्री कीर्ति विजय जी उपाध्याय के समय तक के पूज्य गुरु भगवंतों की विशिष्टताओं को ७२ गाथाओं को स्तवन रुप लिखा गया है। इसमें पूज्य गुरु देव की पदवी प्रसंग को बहुत ही प्रभवोत्पादक रुप से प्रस्तुत किया गया है।

(१३) **पाँच समवाय (कारण) स्तवन :-** इस ग्रन्थ में ६ ढ़ाल में ५८ गाथाओं से निबद्ध रूप स्तवन में 'कालमतवादी', 'स्वभाव मतवादी', 'भावी समभाववादी', 'कर्मवादी' और 'उद्यम वादियों' के मंतव्य को बड़े ही मनोयोग और विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है। पिछली छठीं ढ़ाल में सभी वादों कोश्री जिनेश्वर प्रभु के चरणों में आते दिखाया है।

ए पाँचे समुदाय मल्या विण, कोई काम न सीझो ।
अंगुलियोगे करणी परे, जे बूझे ते रीझे ॥

इस रीति से पाँचों समवाय को समझाने व समझाने के लिये उपयोगी इस स्तवन को गुजराती भाषा में लिपिबद्ध किया गया है।

(१४) **चौबीसी स्तवन:-** चौबीसों भगवतों के प्रत्येक स्तवन में ३-४ या ५ गाथायें है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में कुल १३० गाथायें है। इसमें चरम तीर्थकर प्रभु महावीर स्वामी का स्तवन बहुत ही लोक प्रिय है। इसकी अन्तिम कड़ी मे-

वाचक शेखर कीर्तिविजय गुरू, पामी तास पसाय ।
धर्मतणे रसे जिन चोवीशना, विनय विजय गुणगाय ॥

सिद्धारथना रे नंदन विनवुं--------

पूज्य नेमिनाथ प्रभु के तीन स्तवन हैं। इसमें कुल २६ स्तवन है। किसी-किसी स्तवन में तो भाव पक्ष बहुत ही प्रबल है।

(१५) **वीशी स्तवनः**- यह विहरमान बीस तीर्थंकर परमात्माओं का स्तवन है। इसमें हर एक स्तवन की पाँच-पाँच गाथा है। चार स्तवनों की छः छः गाथा है। कुल मिलाकर ११५ गाथाओं का संयोजन किया है। अन्तिम में प्रशस्ति रूप से 'कलश' लिखा है।

श्री कीर्ति विजय उवझायणो ए, विनय वदे कर जोड़ ।

श्री जिनना गुणगावतां ए, लहीए मंगल कोड ॥

इस प्रकार से मध्यम प्रकार की इस कृति द्वारा बीस विहरमान परमात्मों के शरीर, आयुष्य आदि का वर्णन भी किया गया है।

(१६) **पुण्य प्रकाश अथवा आराधनानुस्तवनः**- आचार्य श्री 'सोम सूरि' रचित 'आराधना सूत्र' नाम के पयन्ना के आधार पर ८ ढ़ाल और ८७ गाथाओं का यह स्तवन वि०सं० १७२६ में रांदेर के चातुर्मास के प्रवासकाल में रचा गया था। गुजराती भाषा में रचित यह लघु कृति अत्यन्त मर्मस्पर्शी और सुन्दर है। पूर्ण मनोयोग पूर्वक इसके पठन-पाठन-वाचन या श्रवण करने से व्यक्ति आत्म विभोर हो जाता है। अत्यन्त भावातिरेक उत्पन्न होने से आँखोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। ताप-शोक-पीड़ा-विषाद-दुखः अथवा अन्तिम अवस्था जैसे प्रसंगों पर यदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं हृदय तलस्पर्शी शबदावली का प्रयोग करके गाया जाय, पढ़ा जाय या समझाया जाय तो यह निश्चय ही मन पर वैराग्य भाव की अमिट छाप छोड़ती है। इसमें दस प्रकार की आराधना बताई गई है। जैसे -

(१) अतिचार की आलोचना	(२) सर्वदेशीय व्रत ग्रहण
(३) सब जीवों के साथ क्षमापण	(४) १८ पापों को वोसिरावा
(५) चारों शरण को स्वीकारना	(६) पापों की निंदा
(७) शुभ कार्यों की अनुमोदना	(८) शुभभावना
(९) अनशन-पच्चखाण	(१०) नमस्कार महामंत्र स्मरण

इस तरह प्रतिदिन नियम पूर्वक, भाव सहित पढ़ने-वाचने-बोलने-सुनने-सुनाने से आत्मा निर्मल होती है।

(१७) **विनय विलासः**- उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी रचित गुजराती भाषा की यह छोटी सी कृति मानों अपने उपकारी गुरूदेव उपाध्याय 'श्री कीर्ति विजय' जी म० सा० के चरण कमलों में अर्पित भाव सुमन है। यह लघु रचना ३६ पदों में निबद्ध है।

'श्री कीर्ति विजय' उवज्झाय केरो, लहेऐ पुण्य पसाय ।
सासता जिन थुणी एणी परे, 'विनय विजय' उवज्झा ॥

आत्मार्थी महापुरूषों के द्वारा शान्त समय में अपने चेतन मन को प्राय: कर इस शैली में ही ध्वनि रूप से सम्बोधित किया जाता है । संभवत: कथन वैदग्ध्य (वाणिविलास) की शैली विशेष में रचना होने के कारण इस कृति को 'विनय विलास' नाम दिया है । मात्र ३७ पदों की इस लघु रचना का प्रणयन काल संवत् १७३० के निकट रहा होगा ।

(१८) **भगवती सूत्र की सज्झाय:-** उपाध्याय श्री जी के संवत् १७३१ के रांदेर के चातुर्मास के प्रवास काल में इस ग्रन्थ की रचना की गई थी। इक्कीस गाथाओं वाली इस सज्झाय में भगवती सूत्र की विशेषताये तथा भगवती सूत्र की विशेषतायें तथा भगवती सूत्र के वाचन के लाभ आदि बाताये गये है। इस सज्झाय की प्रशस्ति इस प्रकार है।

संवत् सत्तर एकत्रीस में रे, रहा रांदेर चौमास ।
संघे सूत्र ए सांभल्यु रे, अणि मन उंल्लास ॥
कीर्ति विजय उवज्झायनोरे, सेवक करे सज्झाय ।
एणि परे भगवती सूत्र नेरे, विनय विजय उवज्झाय रे ----

(१९) **आयं बिलनी सज्झाय :-** आयंबिल तप में क्या है? इस तप की महिमा क्या है? यह सब कुछ बताने वाली इस सज्झाय में ११ गाथा है। इसकी अन्तिम गाथा इस तरह है-

आम्बील तप उत्कृष्टों कहयो, विघन-विदारण कारण कहया ।
वाचऊ कीर्ति विजय सुपसाय, भाखे विनय विजय उवज्झाय ॥

(२०) **श्री आदि जिन विनती:-** यह स्तवन गाथा दादा आदीश्वर भगवान के समक्ष श्री सिद्धाचल ऊपर बोलने लायक है। इस ६७ गाथाओं के स्तवन में भगवान से विनय की गई है, उन्हें प्रसन्न किया गया है, उन्हें मनाया गया है, उन्हें रिझाया गया है, उल्हाना भी दिया गया है और अन्त में उन्हीं की शरण में स्वीकार की गई। इस प्रार्थना में ऐसा शब्द-विन्यास है कि पढ़ने और सुनने वाले के हृदय रूपी वीणा के तार झंकृत हो उठते हैं ।

(२१) **षड़ावश्यक प्रतिक्रमण स्तवन:-** में छ: आवश्यक ऊपर एक-एक ढ़ाल है। इस प्रकार छ: ढ़ाल का स्तवन है। इसमें कुल ४२ गाथा हैं। इसमें अंतिम प्रशस्ति इस प्रकार से है।

तप गच्छनायक मुक्ति दायक श्री विजय देव सूरीश्वरो ।
तस पट्टदीपक मोहजिपक, श्री विजय प्रभसूरी गणधरो ॥
श्री कीर्ति विजय उवज्झाय सेवक, विनय विजय वाचक कहे ।
षडावश्यक न आराधे तेह शिव संपद लहे ॥

(२२) **चैत्य वन्दनः**- श्री सीमन्धर स्वामी की 'श्री सीमन्धर वीत राग' इस चैत्य वन्दन की तीन गाथायें है।

(२३) **उपधान स्तवनः**- इस स्तवन में दो ढ़ाल और कलश को मिलाकर कुल २४ गाथा है। उपधान कराने का क्या कारण है? और विशेष माला पहराने संम्बंधी खूब विवेचना की है। इसकी पिछली ढ़ाल 'भाई हये माला पहिरावो' यह बहुत ही प्रसिद्ध है।

(२४) **श्रीपाल राजानो रासः**- उपाध्याय 'श्री विनय विजय जी' महाराज साहब की यह संस्कृत में रचित अद्भुत कृति है। भावनाओं की सजावट, संस्कृत का गेय काव्य और शान्त सुधा रस का मुख्य स्थान है। वर्ष में दो बार चैत्र तथा अश्विन मास में नव पद की आराधना करते समय ओली में सुदि सप्तमी से सुदि पंदरमी तक विद्वानों द्वारा नौ दिन तक प्रत्येक गाँव-नगर के सभा व कुटंब के समक्ष वाँचा जाता है। 'श्री पाल रास' का प्रारंम्भ संवत् १७३८ के रांदेर के चातुर्मास में श्री संघ की विनती पर किया गया था। इसके प्रथम खंड़ की पाँचवी ढ़ाल की रचना करते-करते २० वी गाथा के लिखने तक जैन शासन के महान प्रभावक इस ग्रन्थ के रचियता परम पूज्य उपाध्याय श्री विनय विजय जी गणि का देवलोक गमन हो गया था। इसके अधूरे कार्य को पूरा करने के लिये उपाध्याय श्री के सहअध्यायी उपाध्याय श्री यशो विजय जी म०सा० ने आगे आकर कार्य को संभाल लिया। कुल चार खंड़ युक्त १२५० गाथा वाले महाकाव्य को पूरा किया। इस प्रकार ७४८ गाथा में पूज्य विनय विजय कृत तथा शेष ५०२ गाथाये पूज्य यशोविजय कृत है ।

(२५) **श्री कल्प सूत्र की सुबोधिका टीकाः**- श्री उपाध्याय जी कृत कल्प सूत्र की सुबोधिका टीका भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ६०० श्लोक प्रमाण ग्रन्थ पयुर्षण पर्व के दिनों में तप गच्छ समुदायों में बड़े ही सम्मान, श्रद्धा व उल्लास के साथ सर्वत्र वाँचने के काम आता है।

(२६) **लोक प्रकाशः**- 'लोक प्रकाश' जैन दर्शन का एक अद्भुत एवं विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें विवेच्य विषय द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव को ३७ सर्गों के रूप में लगभग १८००० श्लोकों में आबद्ध किया गया है। इसमें जैन दर्शन के सभी

पहलुओं का सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। लगभग १४०० साक्षी पाठ एव ७०० अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों के उद्धरणों से ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ़ जाती है। विषय महान है, ग्रन्थ भी महान है और उद्देश्य भी महान है। ग्रन्थ आपके हाथों में है। सुधार कर पढ़ेगें तो निश्चय कल्याण होगा ग्रन्थ की रचना काल तिथि सर्ग ३७ की प्रशस्ति श्लोक ३६ के अनुसार निम्नवत् है।

वसुरवाश्वेन्दु(१७०८) प्रमिते वर्षे जीर्ण दुर्ग पुरे ।
राधोऽज्वल पंचम्या ग्रन्थः पूर्णोऽयमजनिष्ट ॥ सर्ग ३७ श्लोक ३६ ॥

इस प्रकार संवत्१७०८ वैशाख सुदि ५ (ईस्वी सन् १६५२) के दिन जीर्ण पुरे (जूनागढ़) में यह महान ग्रन्थ पूर्ण किया गया।

जैन जगत के पूज्य, महान शासन प्रभावक, आध्यात्म ज्ञानी, महान लेखक एवं पर उपकारी उपाध्याय श्री विनय विजय जी महाराज साहब संवत् १७३८ में रांदोर नगर के चार्तुमासिक प्रवास काल में काल धर्म को अपनाकर गोलोक वासी बने। उपाध्याय श्री जी के जीवन चरित्र के सम्बंध में कोई प्रामाणिक ग्रन्थ मिलता नहीं। कुछ छुट-पुट घटनायें- लोक कथन या उनके द्वारा लिखे गये 'लोक प्रकाश' 'नयकर्णिका' 'शान्त सुधारस' आदि के बिखरे हुए सन्दर्भो को जोड़ कर ही कुछ समझने व जानने का प्रयत्न किया गया है।

मुनियुग चन्द्र विजय

मूल तथा टीका व्याख्या में आधार भूत आगम पाठों की नामवली

क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या	क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
१	प्राचीन गाथा	२१	२४		स्थानक-२		
२	वृहत् क्षेत्र समास वृति	२१	६३	२७	जीवाभिगम सूत्र	२३	१६
३	प्रवचन	२१	६३	२८	स्थानांग वृति	२३	१९
४	समवायांग सूत्र की टीका	२१	६३	२९	स्थानांग सूत्र	२३	२४
५	स्थानांग वृति	२१	६३	३०	स्थानांग वृति	२३	२४
६	प्रवचन सारोद्धार	२१	६७		(अभय देव सूरि कृत)		
७	जीवाभिगम सूत्र वृति	२१	७७	३१	द्वीप सागर प्रज्ञप्ति संग्रहणी	२३	२४
८	क्षेत्र समास वृति	२१	९१	३२	क्षेत्र समास सूत्र	२३	२६
९	वृहत् क्षेत्र समास वृति	२१	९१	३३	भगवती सूत्र	२३	२८
१०	जीवाभिगम वृति	२१	९१	३४	वृहत् क्षेत्र समास वृति	२३	३५
११	क्षेत्र समास वृति	२१	९२	३५	वृहत् क्षेत्र समास वृति	२३	४२
१२.	जीवाभिगम वृति	२१	९२	३६	जीवाभिगम सूत्र	२३	४१
१३	जीवाभिगम सूत्र	२१	१०१	३७	प्राचीन गाथा	२३	२००
१४	जीवाभिगम सूत्र	२१	१२३	३८	जीवाभिगम सूत्र:	२३	२००
१५	भगवती सूत्र	२१	१२३		चुतर्थ प्रतिपत्ति		
१६	भगवती सूत्र की वृति	२१	१२३	३९	प्रवचन सरोद्धार वृति	२३	२२६
१७	जीवाभिगम सूत्र	२१	१९४	४०	प्रवचन सारोद्धार सूत्र	२३	२४१
१८	सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र	२१	२५५	४१	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	२३	२४१
१९	विशेषण वति	२१	२६०	४२	समवायांग सूत्र	२३	२४१
२०	सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र	२१	२६०	४३	राज प्रशनीय उपांग वृति	२३	३०८
२१	जीवाभिगम सूत्र	२१	२७२	४४	जीवाभिगम सूत्र	२४	४
२२	प्राचीन गाथा	२२	७५	४५	जीवाभिगम सूत्र	२४	७
२३	प्राचीन गाथा	२३	७६	४६	चन्द्र-प्रज्ञप्ति	२४	७
२४	क्षेत्र समास वृति	२३	१७३	४७	प्राचीन गाथा	२४	८
२५	क्षेत्र वृहत क्षेत्र समास वृति	२३	१७२	४८	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	२४	१३
२६	स्थानांग सूत्र वृति	२३	२०७	४९	जीवाभिगम वृति	२४	१३

क्र० सं०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
५०	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृति	२४	१३
५१	मूल संग्रहणी	२४	१९
५२	क्षेत्र समास	२४	२०
५३	मूल संग्रहणी टीका (हरिभद्र सूरी कृत)	२४	२१
५४	चन्द्र प्रज्ञप्ति	२४	२१
५५	सूर्य प्रज्ञप्ति	२४	२१
५६	जीवाभिगम सूत्र	२४	२१
५७	सूर्य प्रज्ञप्ति की गाथा	२४	२२
५८	संग्रहणी की गाथा	२४	२३
५९	ज्योतिष्करडंक	२४	२५
६०	ज्योतिष्करडंक	२४	२६
६१	चन्द्र प्रज्ञप्ति	२४	२८
६२	चन्द्र प्रज्ञप्ति	२४	२९
६३	जीवाभिगम सूत्र	२४	३०-३१
६४	चन्द्र प्रज्ञप्ति	२४	३२
६५	जीवाभिगम वृति	२४	३३
६६	संग्रहणी लघु वृति	२४	३३
६७	प्राचीन गाथा	२४	६०
६८	प्राचीन गाथा	२४	६१
६९	प्राचीन गाथा	२४	६२
७०	प्राचीन गाथा	२४	६३
७१	प्राचीन गाथा	२४	६४
७२	पूर्व संग्रहणी टीका	२४	७८
७३	प्राचीन गाथा	२४	७८
७४	प्राचीन गाथा	२४	७८
७५	प्राचीन गाथा	२४	७९
७६	प्राचीन गाथा	२४	८०
७७	योग शास्त्र चतुर्थ प्रकाश वृति	२४	८०
७८	परिशिष्ट पर्व (हेम चन्द्र सूरि कृत)	२४	८०
७९	जीवाभिगम सूत्र	२४	९९
८०	प्राचीन गाथा	२४	११२
८१	स्थानांग वृति	२४	१३८
८२	द्वीप सागर प्रज्ञप्ति संग्रहणी	२४	१३८
८३	प्राचीन गाथा	२४	१३८
८४	जीवाभिगम सूत्र वृति	२४	१५५
८५	प्रवचन सारोद्धार वृति	२४	१५५
८६	नंदीश्वर स्त्रोत	२४	१५५
८७	स्थानांग सूत्र	२४	१५५
८८	नंदीश्वर स्तवन, नंदीश्वर कल्प	२४	१६५
८९	स्थानांग सूत्र	२४	१६५
९०	जीवाभिगम सूत्र	२४	१६५
९१	जीवाभिगम सूत्र	२४	१७८
९३	स्थानांग सूत्र	२४	१८१
९४	जीवाभिगम वृति	२४	१८२
९५	प्रवचन सारोद्धार वृति	२४	१८३
९६	स्थानांग सूत्र वृति	२४	१८३
९७	स्थानांग सूत्र वृति	२४	१८७
९८	स्थानांग सूत्र वृति	२४	१८८
९९	प्राचीन गाथा	२४	१९५
१००	जीवाभिगम सूत्र वृति	२४	२०२
१०१	जीवाभिगम सूत्र आदर्श	२४	२०२
१०२	स्थानांग सूत्र	२४	२०७
१०३	स्थानांग सूत्र वृति	२४	२०७
१०४	जीवाभिगम सूत्र वृति	२४	२१०
१०५	स्थानांग सूत्र	२४	२२०
१०६	आवश्यक चूर्णि	२४	२३१

क्र० सं०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या	क्र० सं०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
१०७	जीवाभिगम सूत्र	२४	२४३	१३३	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृति	२५	१६
१०८	नंदीश्वर कल्प	२४	२४५	१३४	गन्ध हस्ति	२५	२३
१०६	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	२४	२५०	१३५	गन्ध हस्ति टीका	२५	२३
११०	नंदीश्वर कल्प (जिन प्रभ सूरि कृत)	२४	२८०	१३६	संग्रहणी टीका	२५	२३
				१३७	योग शास्त्र प्रकाश चतुर्थ	२५	१५
१११	नंदीश्वर स्तोत्र	२४	२८७	१३८	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृति	२५	२६
११२	योग शास्त्र वृति	२४	२६७	१३६	विशेषणवती	२५	३६
११३	स्थानांग वृति स्थानक-३	२४	३०३	१४०	प्रज्ञापना सूत्र	२५	३६
११४	भगवती सूत्र वृतिः शतक ४ उद्देश	२४	३०४	१४१	जीवाभिगम वृति	२५	३६
				१४२	तत्वार्थ भाष्य	२५	५१
११५	द्वीप सागर प्रज्ञप्ति संग्रहणी	२४	३१७	१४३	प्राचीन गाथा	२५	५२
११६	भगवती सूत्र शतक ३ उद्देशों ८ वृति	२४	३१८	१४४	योग शास्त्र प्रकाश चतुर्थ	२५	५२
				१४५	तत्वार्थ भाष्य	२५	६०
११७	जीवाभिगम सूत्र वृति	२४	३२३	१४६	संग्रहणी सूत्र	२५	१११
११८	जीवाभिगम सूत्र चूर्णि	२४	३२३	१४७	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	२५	१११
११६	संग्रहणी लघु वृति	२४	३२३	१४८	जीवाभिगम सूत्र	२५	१२५
१२०	संग्रहणी	२४	३२३	१४६	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	२५	१२५
१२१	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृति	२४	३२३	१५०	संग्रहणी	२५	१२५
१२२	जीव समास वृति	२४	३२३	१५१	जीवाभिगम सूत्र	२५	१३७
१२३	अनुयोग द्वार चूर्णि	२४	३२३	१५२	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	२५	१३७
१२४	अनुयोग द्वार सूत्र	२४	३२३	१५३	तत्वार्थ भाष्य	२५	१४२
१२५	जम्बूद्वीप समास वृति	२४	३२३	१५४	जीवाभिगम वृति	२५	१४३
१२६	स्थानांग सूत्र	२४	३२७	१५५	प्रज्ञापना सूत्र	२५	१४३
१२७	छटवां अंग (ज्ञाता धर्म कथा)	२४	३३२	१५६	जीवाभिगम सूत्र	२५	१५६
				१५७	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र	२५	१५६
१२८	मल्लि अध्ययन वृति	२४	३३२	१५८	जीवाभिगम चूर्णि	२५	१५७
१२६	आवश्यक वृति	२४	३३२	१५६	प्राचीन गाथा	२५	१६३
१३०	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृति	२४	३३२	१६०	जीवाभिगम सूत्र	२५	२०४
१३१	संग्रहणी वृति	२५	१५	१६१	पंच वस्तुमा	२५	२०८
१३२	संग्रहणी गाथा	२५	१६	१६२	जीवाभिगम वृति	२५	२११

क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
१६३	प्राचीन गाथा	२६	३५
१६४	प्राचीन गाथा	२६	३९
१६५	श्राद्धविधि वृति (रत्नशेखर सूरि)	२६	७५
१६६	संग्रहणी वृति-तीन गाथा	२६	७८, ७९, ८०
१६७	भगवती सूत्र शतक-३ उद्देश १	२६	९२
१६८	तत्वार्थ भाष्य	२६	९२
१६९	जीवाभिगम सूत्र	२६	१००
१७०	राज प्रश्नीय	२६	१०८
१७१	जीवाभिगम सूत्र	२६	१५१
१७२	राजप्रश्नीय टीका	२६	२१२
१७३	विचार सप्तति (महेन्द्र सूरी)	२६	२१५, २१६
१७४	विचार सप्तति का अवचूरी	२६	२१७
१७५	राजप्रश्नीय वृति	२६	२९०
१७६	जीवाभिगम सूत्र	२६	२९३
१७७	राजप्रश्नीय सूत्र	२६	३९२
१७८	औपपातिक सूत्र	२६	४००
१७९	संग्रहणी	२६	४००
१८०	प्रज्ञापना सूत्र	२६	४०२
१८१	शाश्वत	२६	४०३
१८२	देशी शास्त्र	२६	४०३
१८३	औपपातिक सूत्र	२६	४०३
१८४	भगवती सूत्र शतक-४ उद्देश-४	२६	४०४
१८५	प्रज्ञापना सूत्र	२६	४२५
१८६	भगवती सूत्र	२६	४३५
१८७	प्रज्ञापना सूत्र	२६	४४२
१८८	प्राचीन गाथा	२६	४५९
१८९	स्थानांग सूत्र	२६	४६९
१९०	प्राचीन गाथा	२६	४७६
१९१	उपदेश माला कर्णिका	२६	४७६
१९२	भगवती सूत्र वृति शतक-६ उद्देश-८	२६	५०८
१९३	तत्वार्थ वृति	२६	५०८
१९४	पंच संग्रह	२६	५०८
१९५	पंच संग्रह टीका (मलय गिरिकृत)	२६	५०८
१९६	भगवती सूत्र शतक-१० उद्देश-३	२६	५१३
१९७	संग्रहणी वृति	२६	५२२
१९८	प्राचीन गाथा	२६	५२४
१९९	प्राचीन गाथा	२६	५२८
२००	संग्रहणी वृति	२६	५४१
२०१	भगवती सूत्र शतक -१८ उद्देश-३	२६	५८६
२०२	भगवती सूत्र शतक-६ उद्देश-१०	२६	५८८
२०३	तत्वार्थ टीका चतुर्थ अध्याय	२६	५८८
२०४	भगवती सूत्र शतक-१६ उद्देश-२	२६	५९३
२०५	स्थानांग सूत्र	२६	५९६
२०६	प्राचीन गाथा	२६	५९९
२०७	भगवती सूत्र शतक-५ उद्देश-४	२६	६०२
२०८	भगवती वृति शतक-५ उद्देश-४	२६	६०२
२०९	भगवती सूत्र शतक-१४ उद्देश-३	२६	६१२

क्र० सं०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या	क्र० सं०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
२१०	भगवती सूत्र शतक-१४ उद्देश-२	२६	६१५	२३१	प्राचीन गाथा	२६	८८७
				२३२	जन प्रवाह सूत्र	२६	८८८
२११	स्थानांग सूत्र	२६	६१८	२३३	प्राचीन गाथा	२६	८९०
२१२	समवायांग सूत्र	२६	६१८	२३४	स्थानांग सूत्र स्थानक ८वां	२६	९१४
२१३	भगवती सूत्र	२६	६१८	२३५	प्राचीन गाथा (बृहत्संग्रहणी)	२६	९२७
२१४	भगवती सूत्र शतक-१८ उद्देश-२	२६	६४४	२३६	भगवती सूत्र शतक-३ उद्देश-२	२६	९३९
२१५	स्थानांग सूत्र	२६	६५४				
२१६	मृगापुत्री अध्ययन (उत्तराध्ययन)	२६	६६१	२३७	भगवती सूत्र शतक-३ उद्देश-१	२६	९४९
२१७	उत्तराध्ययन अवचूर्णि	२६	६६१	२३८	भगवती सूत्र शतक-३ उद्देश-१	२६	९५५
२१८	कल्प सूत्र वृति	२६	६६७				
२१९	भगवती सूत्र	२६	६८८	२३९	जीवाभिगम सूत्र	२७	१३३
२२०	भगवती सूत्र शतक-१६ उद्देश-२	२६	६९९	२४०	संग्रहणी वृति	२७	१३३
				२४१	भगवती सूत्र शतक-६ उद्देश-५	२७	१८१
२२१	कल्प सूत्र वृति	२६	७००				
२२२	भगवती सूत्र शतक-१४ उद्देश-२	२६	७०५	२४२	भगवती सूत्र वृति	२७	१८४
				२४३	भगवती सूत्र	२७	२११
२२३	भगवती सूत्र	२६	७०७	२४४	भगवती सूत्र शतक-१४ उद्देश-८		२४२
२२४	भगवती सूत्र शतक-१८ उद्देश-७	२६	७३१				
				२४५	स्थानांग वृति स्थानक-नवम्		२४४
२२५	भगवती सूत्र	२६	७३३	२४६	श्रेणिक चरित्र		२४४
२२६	देवेन्द्र स्तवन	२६	७३४	२४७	प्रवचन सारोद्धार		२४४
२२७	भगवती सूत्र शतक-१० उद्देश-५	२६	७४७	२४८	तत्वार्थ टीका		२४४
				२४९	लब्धि स्त्रोत		२४४
२२८	भगवती सूत्र शतक-१४ उद्देश-६	२६	७५६	२५०	वृद्धवाद		२८५
				२५१	भगवती सूत्र शतक-९ उद्देश-३३		३२०
२२९	प्राचीन गाथा	२६	८१७	२५२	महानिशीथ सूत्र द्वितीय अध्ययन		३२५
२३०	भगवती सूत्र शतक-१६ उद्देश-२	२६	८३७	२५३	भगवती सूत्र शतक-१६ उद्देश-५		३४९
				२५४	मूल संग्रहणी टीका		४३३

क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या	क्र० स०	नाम आगम	सर्ग संख्या	श्लोक संख्या
	(हरिभद्र सूरि)			२६८	भगवती सूत्र शतक-१४ उद्देश-७	२७	६३८
२५५	प्रज्ञापना सूत्र		४३३	२६९	प्रज्ञापना सूत्र पद-२३	२७	६४०
२५६	लघु संग्रहणी वृति		४३३	२७०	प्रज्ञापना वृति	२७	६४०
२५७	संग्रहणी वृति		४४२	२७१	प्राचीन गाथा-वृद्धवाद	२७	५४२
२५८	स्थानांग सूत्र पंचम स्थानक		५२५	२७२	जीवाभिगम् वृति	२७	६४३
२५९	स्थानांग वृति		५२५	२७३	योग शास्त्र वृति	२७	६४३
२६०	प्रज्ञापना सूत्र	२७	५२५	२७४	तत्वार्थ भाष्य	२७	६४३
२६१	जीवाभिगम सूत्र	२७	५२५	२७५	तत्वार्थ भाष्य टीका	२७	६४३
२६२	जीवाभिगम सूत्र	२७	५५८	२७६	कर्म ग्रन्थ (पंचम) वृति	२७	६४३
२६३	तत्वार्थ वृति	२७	५६१	२७७	तत्वार्थ वृति	२७	६४८
२६४	विशषावश्यक भाष्य	२७	६२०	२७८	विशेषावश्य भाष्य	२७	६५१
२६५	प्रज्ञापना सूत्र	२७	६२१	२७९	भगवती सूत्र वृति	२७	६६२
२६६	समवांयाग सूत्र	२७	६२१				
२६७	भगवती सूत्र	२७	६३६				

अनुक्रमणिका

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
	इक्कीसवां सर्ग		२३	कलशों के तीन विभाग, महाकलशें में परस्पर अन्तर	६९
१	लवण समुद्र का वर्णन	१-३	२४	लघु पाताल कलशों का स्थान	७४
२	विस्तार	३	२५	उन लघु पाताल कलशों में क्या है?	७७
३	परिधि का प्रमाण	४	२६	लघु पाताल कलशों की श्रेणी, उनका क्षेत्र	८३
४	मध्य परिधि किस तरह होती हैं	७	२७	महापाताल कलशों से शेष बचे लघु कलशें की संख्या	९०
५	गौर्तीथ कौन कहलाता है	९	२८	लघु पाताल कलशों का प्रमाण- तीन विभाग आदि	९३
६	गौर्तीथ का प्रमाण	१०	२९	भरती-ओर किस रीति से होती है	१०२
७	गहराई के विषय में	१३	३०	शिखाओं का वर्णन	१०७
८	गौर्तीथ की मध्य में गहराई	१७	३१	लवण समुद्र का रूपक	११०
९	पानी की गहराई जानने का तरीका	२०	३२	बेलन्धर देव तथा पर्वतों का वर्णन	११९
१०	समुद्र के मध्य में पानी की कुल गहराई	२९	३३	कौन से द्वीप तरफ की बेला में कौन से देव है	११९
११	पानी की जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट गहराई	३३	३४	बेला अटकवानु कारण	१२२
१२	कोटी का स्वरूप	३६	३५	पूर्व आदि चारों दिशाओं के बेलन्धर देवों के यर्थाथ नाम	१२४
१३	समुद्र का प्रतरात्मक गणित	३९	३६	उन चारों पर्वत पर कितने देव है	१३२
१४	समुद्र का घन गणित	४२	३७	चारों देवों के वैभव का वर्णन	१३३
१५	घन गणित विषय में शंका समाधान	४५	३८	चार अनुबेलन्धर पर्वतों तथा देवों के नाम	१३७
१६	समुद्र के चार द्वार	५२	३९	आठों पर्वत किस तरह बने	१४२
१७	चार द्वारों का परस्पर अन्तर	५८	४०	आठों पर्वतों का प्रमाण	१४३
१८	पाताल कलशों का स्वरूप	६०			
१९	उनकी स्थापना	६१			
२०	चार महाकलशों के नाम	६३			
२१	अधिष्ठायक देवों का आयुष्य तथा नाम	६४			
२२	महाकलशों का प्रमाण	६५			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
४१	बेलन्धर पर्वत के इच्छित स्थान पर विष्कंभ जानने की रीति	१४७
४२	विष्कंभ का दृष्टान्त	१५१
४३	पर्वतों की परिधि	१५७
४४	पर्वतों का मूल भाग से परस्पर अन्तर और उसकी घटना	१६०
४५	अन्तरा पास में पानी की वृद्धि	१६६
४६	वृद्धि जानने की रीति	१७२
४७	पर्वत के पास पृथ्वी की गहराई	१७८
४८	पानी से पर्वत की ऊँचाई के विषय में	१८४
४९	गौतम द्वीप का वर्णन समुद्र में स्थान तथा मान	१९५
५०	द्वीप के अन्त भाग में पानी की वृद्धि कितनी?	१९९
५१	जम्बूद्वीप की तरफ के द्वीप का वर्णन	२०७
५२	मध्य भाग के भवनों का वर्णन	२१२
५३	भवन में स्थित मणिपीठिका के विषय में	२१४
५४	सुस्थित देवों का परिवार	२१६
५५	जम्बू द्वीप तरफ के चार सूर्य द्वीपों का वर्णन	२२३
५६	जम्बूद्वीप तरफ के चार चन्द्र द्वीपों का वर्णन	२२५
५७	घातकी खंड तरफ के चार सूर्य द्वीपों का वर्णन	२२७
५८	घातकी खंड तरफ के चार चन्द्र द्वीपों का वर्णन	२३०
५९	सूर्य-चन्द्र के प्रासाद-आयुष्य आदि	२३५
६०	लवर्ण समुद्र में क्या-क्या है ?	२४०
६१	सूर्य-चन्द्र के संचरण क्षेत्र	२४३
६२	समुद्र के शिला से ज्योतिष्क के विमानों के व्याघात और शंका समाधान	२५६
६३	लवण समुद्र में कितने सूर्य-चन्द्र नक्षत्र है	२६१
६४	एक चन्द्रमा का परिवार	२६६
६५	लवण कालोदधि-स्वयंभूरमण समुद्र के मत्स्यों का देहमान	२६८
६६	मत्स्यों की कुल कोटि	२७०
६७	लवण समुद्र का रूपक	२७३
६८	सर्ग समाप्ति	२८२
	बाईसवां सर्ग	
६९	**घातकी खंड द्वीप वर्णन**	२
७०	घातकी नाम कैसे	२
७१	द्वीप का विष्कंभ	३
७२	द्वीप की आद्य-मध्य-चरम परिधि	४
७३	द्वीप के चार द्वारों के परस्पर अन्तर	१०
७४	बीच में ईषुकार पर्वत उसका मान	११
७५	क्षेत्र व्यवस्था	१८
७६	वर्षधर पर्वत की लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई	२३
७७	सब पर्वतों के रोके गये क्षेत्र	३२
७८	चौदह क्षेत्रों का मुख्य विस्तार किस तरह	३४
७९	क्षेत्रों के अंश	३८
८०	क्षेत्रों के मध्य-अन्त्य विस्तार	४३
८१	पर्वतों के अंश	४८
८२	आरों के आन्तरा रूप में क्षेत्र	५२
८३	एक योजन के कितने अंश	५६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
८४	भरत-क्षेत्र का विस्तार	५७	१०४	सरोवर से निकलती नदियों के विषय में	१२१
८५	वैताढ्य पर्वत आदि जम्बू द्वीप के समान	६३	१०५	सीता-सीतोदा नदियों के विषय में	१२५
८६	हिमवान पर्वत का मान	६८	१०६	उत्तर दिशा के क्षेत्र पर्वतों के विषय में	१२६
८७	पर्वत पर के सरोवर के मान	६६	१०७	उत्तर दिशा की कौन नदी किस समुद्र से मिलती है	१३३
८८	सरोवर-कुंड वगैरा जम्बूद्वीप समान	७१	१०८	रूक्मी पर्वत का सरोवर-नदियों के विषय में	१३७
८९	गंगा आदि चार नदियों-कुंड़ों-द्वीप का मान	७७	१०९	रम्यक क्षेत्र	१३९
९०	सुवर्ण कूला आदि चार नदियों-कुंड़ों-द्वीपों का मान	८०	११०	नीलवंत पर्वत की सरोवर तथा नदियों के विषय में	१४०
९१	नारिकान्ता आदि चार नदियों-कुंड़ों-द्वीपों का मान	८३	१११	महाविदेह क्षेत्र के स्थान	१४४
९२	शीतादि दो नादियों-कुंड़ों-द्वीपों का मान	८६	११२	महाविदेह क्षेत्र के मुख्य-मध्य-अन्त्य विस्तार	१४५
९३	चौदह महानदियों की गहराई के विषय में	८८	११३	महाविदेह के चार विभाग	१४९
९४	नदियों की गहराई तथा विस्तार	९१	११४	विजय तथा एक विजय का विस्तार	१५६
९५	नदियाँ किस समुद्र में मिलती है	९३	११५	वक्षस्कार पर्वत के विष्कंभ	१६०
९६	समुद्र से किस तरह मिलती है	९४	११६	नदियों की लम्बाई-चौड़ाई	१६३
९७	हैमवंत क्षेत्र का स्थान-मान	१००	११७	बनमुखों की चौड़ाई	१६९
९८	मध्य के वृत्य वैताढ्य के विषय में	१०४	११८	बनमुखों की जघन्य-उत्कृष्ट चौड़ाई	१७०
९९	हिमवान पर्वत का मान	१०६	११९	पश्चिम दिशा के दो गज दंत गिरी की लम्बाई	१७४
१००	पर्वत पर के सरोवर का मान	१०८	१२०	पूर्व दिशा के दो गज दन्त गिरी की लम्बाई	१७६
१०१	सरोवर से निकलती नदियों के विषय में	१०९	१२१	गंज दंत पर्वतों की चौड़ाई	१८२
१०२	हरिवर्ष क्षेत्र का स्थान मान	११३	१२२	कुरूक्षेत्र के घनु पृष्ठ का मान	१८४
१०३	निषध पर्वत तथा उसके सरोवर का मान	११८	१२३	कुरूक्षेत्र की जया का मान	१८६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
१२४	कुरूक्षेत्र का विस्तार	१८८
१२५	यमक गिरी-पाँच सरोवर तथा कंचन गिरि के विषय में	१९०
१२६	कंचन गिरि का परस्पर अन्तर	१९५
१२७	पर्वतों का आंतरा	१९९
१२८	घातकी शल्मली वृक्षों तथा उनके देवों के विषय में	२०२
१२९	**घातकी खंड़ के मेरू पर्वत का वर्णन**	२०९
१३०	पृथ्वी से ऊँचाई तथा गहराई	२०९
१३१	भूमि के अन्दर तथा ऊपर विस्तार	२१०
१३२	ऊपर से नीचे उतरते इच्छित स्थान जानने की रीति	२११
१३३	नीचे से ऊपर जाते इच्छित स्थान के विस्तार जानने की रीति	२१४
१३४	उसमें भद्रशाल बन कैसे है	२२०
१३५	भद्रशाल वन की लम्बाई-चौड़ाई	२२१
१३६	नंदन वन का स्थान-मान	२२७
१३७	नंदन बन के पास मेरू पर्वत बाहरी विस्तार	२२९
१३८	सौमनस बन का स्थान-मान	२३२
१३९	सौमनस बन के पास में मेरू पर्वत का बाह्य विष्कंभ	२३४
१४०	पांड़क वन का स्थान -मान	२३८
१४१	शिखर ऊपर चूँलिका के विषय में	२४२
१४२	विचरते जिनेश्वरों के नाम तथा उनकी विजयों के नाम	२४६
१४३	घातकी खंड़ के दो मेरू पर्वत का रूपक	२४९
१४४	घातकी खंड़ में क्या-क्या है ?	२५३
१४५	घातकी खंड़ के कूटों के विषय में	२५८
१४६	वृषभ कूट-भूकूट के विषय में	२६५
१४७	सरोवर-नदियाँ और कुंड़ कितने है	२६८
१४८	जघन्य-उत्कृष्ट से तीर्थंकर-चक्रवर्ती कितने है	२७७
१४९	निधान के विषय में	२७८
१५०	सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि की संख्या	२८०
१५१	**कालोदधि समुद्र का वर्णन**	२८३
१५२	समुद्र के अधिष्ठायक देव तथा उसके पानी के विषय में	२८३
१५३	विस्तार और गहराई	२८४
१५४	समुद्र में क्या-क्या नहीं है	२८५
१५५	बाह्य परिधि	२८६
१५६	चारों द्वारों का परस्पर अन्तर	२८७
१५७	ग्रह-नक्षत्र आदि की संख्या	२९१
१५८	सर्ग समाप्ति	२९३
	तेईसवां सर्ग	
१५९	**पुष्कर द्वीप का वर्णन**	२
१६०	नाम की सार्थकता और विस्तार	२
१६१	**मानुषोत्तर पर्वत का वर्णन**	४
१६२	पर्वत की ऊँचाई	५
१६३	पृथ्वी के अन्दर तथा ऊपर तीन विस्तार	६
१६४	आकार कैसा है	९
१६५	पर्वत का मूल-मध्य-अन्त्य विस्तार-ऊँचाई	१३
१६६	पर्वत पर कहाँ, कौन रहता है	१६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
१६७	पर्वत की शोभा	१७
१६८	विदिशाओं के कूटों तथा अधिष्ठित दैवों के नाम	२१
१६९	कूट पर जिनालय के विषय में (भगवती आदि ग्रन्थों का मत)	२६
१७०	पर्वत से लेकर द्वीप के दो विभाग के विषय में	३३
१७१	पर्वत की परिधियाँ	३६
१७२	पर्वत तथा पुष्कराद्ध तक दो भाग	४३
१७३	ईषुकार पर्वत से पुष्कराद्ध पर्वत तक दो भाग	४८
१७४	ईषुकार पर्वत की लम्बाई	५०
१७५	पुष्कराद्ध में रहने वाले अद्‌भुत कुंड़ का स्थान	५२
१७६	कुडं का मान	५५
१७७	वर्षधर पर्वत का क्षेत्र	५६
१७८	पुष्कराद्ध में पर्वतों से घिरी हुई भूमि	५९
१७९	पुष्कराद्ध के भरत क्षेत्र के तीन विस्तार	६३
१८०	भरत क्षेत्र के दीर्घ वैताढ्य तथा ऋषभ कूट के विषय में	६६
१८१	हिमवान पर्वत की लम्बाई-चौड़ाई	६९
१८२	पर्वत पर पद्‌म सरोवर की लम्बाई-चौड़ाई	७१
१८३	सरोवर में से निकलती गंगा-सिन्धु नदियों की गहराई व विस्तार	७२
१८४	कुंड़-द्वीप जिह्विका के बारे में	७८
१८५	रोहितांशा नदी का विवरण	८१
१८६	रोहितांशा नदी के कुंड-द्वीप-जिह्विका के विषय में	८४
१८७	हैमवत क्षेत्र के स्थान के तीन विस्तार	८७
१८८	नदियों में कौन पर्वत से कितनी दूर बहती है	९३
१८९	महाहिमवान पर्वतों तथा सरोवरों का विस्तार	९५
१९०	महापद्‌म सरोवर से निकलती नदियों के विषय में	९८
१९१	हरि सलिला आदि आठ नदियों का विस्तार	१०२
१९२	आठों नदियों के कुंड़-द्वीप-जिह्विका के विषय में	१०५
१९३	हरि वर्ष क्षेत्र का स्थान-विस्तार	१०७
१९४	निषिध पर्वत के तिंगिच्छ सरोवर का स्थान-मान	११२
१९५	तिंगिच्छि सरोवर में से निकलती चार नदियों के विषय में	११५
१९६	चारों नदियों का विस्तार तथा गहराई	१२०
१९७	चारों नदियों के कुड़-द्वीप-जिह्विका के विषय में	१२१
१९८	शिखरी पर्वत पर पुंड़रीक सरोवर तथा उसकी नदियाँ	१२६
१९९	हैरयेवन्त क्षेत्र-रूक्मि पर्वत के विषय में	१२८
२००	रम्यक क्षेत्र नीलवंत पर्वत	१३०
२०१	किस समुद्र में कौन नदी मिलती है	१३२
२०२	महाविदेह क्षेत्र का स्थान	१३४
२०३	महाविदेह क्षेत्र के तीन विस्तार	१३५

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२०४	विजय वक्षस्कार तथा नदियों का विस्तार	१३९
२०५	विदेह के वन मुखें का विस्तार	१४२
२०६	मेरू सहित भद्रशाल वनों का विस्तार	१४६
२०७	पुष्करार्द्ध का विस्तार आठ लाख किस तरह हुआ	१४८
२०८	इष्ट क्षेत्र आदि का विस्तार जानने के विषय में	१५२
२०९	गजदंत पर्वतों की लम्बाई	१५५
२१०	गजदंत पर्वतों की चौड़ाई	१६०
२११	कुरू क्षेत्र का विस्तार	१६१
२१२	कुरू क्षेत्र की जीवा	१६३
२१३	कुरू क्षेत्र का धनु पृष्ठ	१६५
२१४	यमक पर्वत तथा पाँच सरोवरों का मान	१६७
२१५	कुरू क्षेत्र के महा वृक्षों का तथा अधिष्ठित दैवों का नाम	१७४
२१६	भद्रशाल वन की लम्बाई	१७८
२१७	पुष्करार्द्ध में विचरते विरहमानों तथा विजयों के नाम	१८४
२१८	पुष्करार्द्ध के सूर्य-चन्द्र-ग्रह आदि की संख्या	१८७
२१९	मनुष्य क्षेत्र के ४५ लाख किस तरह से	१९०
२२०	मनुष्य क्षेत्र की बाहर मनुष्यों का जन्म-मरण के विषय में	१९३
२२१	मनुष्य क्षेत्र के बाहर क्या-क्या नहीं है	१९८
२२२	अढ़ाई द्वीप के बाहर मनुष्यों का मरण का संभव	२०१
२२३	मनुष्य क्षेत्र का वर्णन मनुष्यों के १०१ स्थान	२०५
२२४	पर्वत कितने? कहाँ-कहा?	२०९
२२५	कूटों की सर्व संख्या तथा १० महावृक्ष	२१२
२२६	सरोवर तथा कुंड कितने है	२१९
२२७	नदियाँ कितनी है? मतान्तर सहित	२२२
२२८	जघन्य-उत्कृष्ट तीर्थंकर आदि कितने इस विषय में	२२९
२२९	बीस बिहरमान जिनों के विषय में मतान्तर	२३५
२३०	केवली तथा साधु भगवंतों की संख्या	२३८
२३१	बीस विहरमान जिनों के नाम	२३२
२३२	चकवर्ती, वासुदेव, बलदेवों की संख्या	२४०
२३३	इस विषय में कितने ही आगमों का मत	२४१
२३४	रत्नों-निधियों के विषय में कितना योग्य है	२४२
२३५	चक्रवर्तियों के जीवता योग्य भूमि	२४६
२३६	मनुष्य क्षेत्र में देव-विद्याधर की श्रेणियाँ	२४७
२३७	चन्द्र सूर्य की श्रेणि	२४९
२३८	ग्रह नक्षत्रों की पक्तियाँ	२५३
२३९	तारों की संख्या	२५७

शाश्वत-चैत्य, प्रतिमाओं का वर्णन

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२४०	पाँच मेरू पर्वत के चैत्य	२५९

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२४१	शाश्वत चैत्यों के छः स्थान	२६२
२४२	तीन तथा चार सम्बंधी प्रतिमायें	२६६
२४३	चार द्वार वाले चैत्य कहाँ-कहाँ है	२६७
२४४	व्यन्तर-भवनपति-ज्योतिष चैत्यों की प्रतिमा कितनी है ?	२६९
२४५	वैमानिक देवों के चैत्य की प्रतिमायें	२७३
२४६	बाकी के पर्वतों के चैत्यों की प्रतिमायें	२७४
२४७	दिग्गजो कूटों-कुरूक्षेत्रों की प्रतिमाये	२७७
२४८	मेरू पर्वत के चैत्यों की प्रतिमायें	२७४
२४९	जम्बू आदि वृक्षें के चैत्यों की प्रतिमायें	२७९
२५०	कुंड़ों के चैत्य तथा जिन बिम्ब	२८३
२५१	सरोवरों के चैत्यों की प्रतिमायें	२८८
२५२	मनुष्य क्षेत्र के सब चैत्यों तथा जिन बिम्बों की संख्या	२८९
२५३	अढ़ाई द्वीप के बाहर चैत्यों तथा जिन बिम्बों के विषय में	२९१
२५४	तिरछा लोक के चैत्यों की संख्या	२९३
२५५	तिरछा लोक के जिन बिम्बों की संख्या	२९४
२५६	अधोलोक के चैत्यों-जिन बिम्बों की संख्या	२९६
२५७	ऊर्ध्व लोक के चैत्यों, जिन बिम्बों की संख्या	२९९
२५८	तीन लोक के चैत्यों-बिम्बों की संख्या	३०३
२५९	सर्व प्रतिमाओं का प्रमाण	३०६
२६०	वैमानिक तथा अढ़ाई द्वीप के बाहर के जिनालयों का प्रमाण	३०९
२६१	कुरू क्षेत्र मेरू आदि पर्वतों तथा असुर कुमारों का प्रमाण	३११
२६२	नाग कुमार तथा व्यन्तरों के चैत्यों का प्रमाण	३१४
२६३	चूलिकाओं, यमक आदि पर्वत, सरोवर, कूट, वृक्ष, कुंड़ चैत्यादि प्रमाण	३१७
२६४	सर्ग समाप्ति	३२१

चौबीसवां सर्ग

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२६५	अढ़ाई द्वीप के बाहर स्थित ज्योतिषि	२
२६६	सूर्यचन्द्र किन नक्षत्रों से युक्त है	३
२६७	सूर्य-चन्द्र का दो प्रकार का अन्तर	६
२६८	सूर्य-चन्द्र के प्रकाश क्षेत्र	१०
२६९	प्रकाश क्षेत्रों की लम्बाई-चौड़ाई	१२
२७०	पुष्कर द्वीप में कितने सूर्य-चन्द्र है	१४
२७१	कालोदधि से आगे सूर्य-चन्द्र की संख्या जानने का करण	१६
२७२	पुष्कर द्वीप के नक्षत्र-ग्रह आदि की संख्या	२३
२७३	ज्योतिष करंड़क की रीति सूर्य, चन्द्र आदि संख्या जानने का करण	२५
२७४	चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि से सूर्य-चन्द्र का अन्तर	२९

मनुष्य क्षेत्र के बाहर चन्द्र-सूर्य की पंक्तियों में मतान्तर

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२७५	दिग्म्बरों के कर्म प्रकृति ग्रन्थ अनुसार गोलाकार क्षेत्र की चौड़ाई, परिधि	३६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
२७६	चन्द्र-सूर्य के बीच का अन्तर	४०
२७७	हर एक पंक्ति में चन्द्र-सूर्य की वृद्धि	४४
२७८	दो पंक्तियों के अन्तर की परिधि	४६
२७९	दूसरी पंक्ति की परिधि किस तरह से	५०
२८०	तीसरी पंक्ति की परिधि	५४
२८१	अगली पंक्तियों में चन्द्र-सूर्य की वृद्धि	५७
२८२	इस अर्थ का प्रतिपादन करने वाली पूर्व आचार्यों की गाथायें	६०
२८३	दूसरे मत प्रमाण से चन्द्र-सूर्य की संख्या	६५
२८४	प्रत्येक पंक्ति में कितने चन्द्र-सूर्य की वृद्धि	६८
२८५	चन्द्र-सूर्य का अन्तर	७२
२८६	उनका अंको द्वारा मान	७४
२८७	योग शास्त्र तथा परिशिष्ट पर्व के आधार पर मतान्तर	८०
२८८	पुष्करोद समुद्र के पानी के विषय में	८२
२८९	समुद्र के देवताओं के नाम	८३
२९०	समुद्र का विस्तार	८५
२९१	वारूणीवर द्वीप तथा उसके देव के सम्बंध में	८६
२९२	समुद्र के देव तथा विस्तार	९१
२९३	क्षीरोद समुद्र के पानी के विषय में	९६
२९४	समुद्र के देव	१००
२९५	समुद्र की धवलता व शोभा	१०१
२९६	समुद्र का विस्तार	१०८
२९७	घृतवर द्वीप तथा उसके देव	१०९
२९८	द्वीप का विस्तार	१११
२९९	घृतोद, समुद्र का पानी तथा उसके देव	११२
३००	समुद्र का विस्तार	११४
३०१	क्षोदवर द्वीप के देव	११५
३०२	द्वीप का विस्तार	११७
३०३	क्षोदोद समुद्र के पानी के विषय में	११८
३०४	समुद्र का विष्कंभ	१२३
३०५	**नंदीश्वर द्वीप का वर्णन**	१२५
३०६	द्वीप के देव	१२८
३०७	द्वीप का विष्कंभ,	१३०
३०८	मध्य में चार अंजनगिरी, उनके नाम	१३१
३०९	**अंजन गिरि का स्वरूप**	१३४
३१०	इस पर्वत का पृथ्वी के अन्दर तथा ऊपर विस्तार	१३५
३११	ठाणांग सूत्र आदि के आधार पर विष्कंभ का मतान्तर	१३८
३१२	दश हजार योजन विष्कंभ के मत में प्रत्येक योजन में क्षय-वृद्धि	१३९
३१३	नौ हजार चार सौ योजन विष्कंभ के मत में प्रत्येक योजन में क्षय-वृद्धि	१४७
३१४	पर्वतों की भूमि तथा शिखर की परिधि	१५२
३१५	पर्वतों के चारों तरफ बावड़ियों का प्रमाण	१५४
३१६	बावड़ियों की गहराई में मतान्तर	१५५

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
३१७	बावड़ियों की शोभा	१५६
३१८	बावड़ियों की देवांगनाओं के साथ में शोभा	१५६
३१६	चार अंजन गिरियों की सोलह बावड़ियों के नाम	१६२
३२०	स्थानांग सूत्र से अभिप्राय रूप में बावड़ियों के नाम	१६६
३२१	बावड़ियों की चारों दिशा में वन की दूरी तथा उनके नाम	१६६
३२२	वनों का विस्तार	१७१
३२३	वनों की शोभा का वर्णन	१७२
३२४	**दधिमुख पर्वत का वर्णन**	१७५
३२५	स्थान	१७५
३२६	नाम की सार्थकता	१७६
३२७	पर्वतों का आकार-विस्तार	१७७
३२८	ऊँचाई तथा पृथ्वी में गहराई	१७८
३२६	रतिकर पर्वतों का स्थान	१८२
३३०	द्वीप के ५२ जिनालय किस तरह से है?	१८५
३३१	जिन प्रासादों का प्रमाण	१८६
३३२	मन्दिरों की मनोहरता	१६०
३३३	अंजन पर्वत ऊपर जिनायतन	१६५
३३४	जिनायतन के चार द्वार तथा देवों के नाम	१६७
३३५	जिनायतनों की ऊँचाई आदि	१६८
३३६	मुख मंड़प तथा प्रेक्षा मंड़प का मान	२०२
३३७	अक्षपाटक की मणि पीठिका का मान व प्रमाण	२०३
३३८	प्रेक्षा मंड़प की मणि पीठिका का मन व प्रमाण	२०८
३३६	चैत्य स्तूप तथा उसकी मणि पीठिका का मान	२०६
३४०	पीठिका के चैत्य वृक्ष का वर्णन	२१३
३४१	वृक्ष की अगली पीठिका तथा उसके ध्वज का मान	२१५
३४२	ध्वज के पश्चात नंदा बावड़ी का वर्णन	२१७ २१७
३४३	नंदा बावड़ी के चार उद्यानों के नाम	२१६
३४४	प्रासाद में क्या-क्या है	२२२
३४५	मन्दिर की पीठिका तथा देवच्छन्द का मान	२२४
३४६	उसमें १२४ जिन प्रतिमाओं के विषय में	२२६
३४७	सेवक प्रतिमाओं के विषय में	२२६
३४८	पूजकों का वर्णन	२३५
३४६	देवता यहाँ भक्ति महोत्सव कैसे करते है	२४२
३५०	कौन देव किस पर्वत पर महोत्सव करते है	२४५
३५१	देव-देवियों के नृत्य के विषय में	२५१
३५२	कुमार नंदी सेन का प्रसंग	२५६
३५३	चार रतिकर पर्वत	२६१
३५४	पर्वतों का आकार-विस्तार-परिधि आदि	२६२
३५५	पर्वतों की चार दिशा में राजधानियाँ	२६४
३५६	अग्नि कोण के रतिकर पर्वत की चार राजधानी तथा देवियों के नाम	२६५

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
३५७	नैऋत्य-रतिकर की चार राजधानी तथा देवियों के नाम	२६८	३७५	शंख द्वीप के त्रियप्रत्यावार	३२१
३५८	इन आठ राजधानियों में कितनी इन्द्राणियाँ है	२७०	३७६	द्वीपों का त्रिप्रत्यावार विषय में मतान्तर	३२४
३५९	ईशान रतिकर की चार राजधानियाँ तथा देवियों के नाम	२७१	३७७	रूचक द्वीप का रूचक पर्वत	३२५
३६०	वायव्य रतिकर राजधानी, देवी नाम, आठ राजधानी में कितनी इन्द्राणी	२७४-२७६	३७८	रूचक द्वीप का विस्तार	३२६
			३७९	कुंड़लाकृति पर्वतों केनाम	३२८
			३८०	द्वीप के ३६ कूट तथा दिक् कुमारियाँ	३२९
			३८१	रूचक द्वीप के त्रिप्रत्यावार	३३४
३६१	इन्द्राणियों की राजधानी के विषय में मतान्तर	२७७	३८२	देव द्वीप के आदि वे स्वयं भूरमण समुद्र	३३६
३६२	नंदीश्वर कल्प प्रमाण से इन्द्राणियों की राजधानी के विषय में	२८०	३८३	स्वयंभूरमण समुद्र की उपमायें	३४०
			३८४	सर्ग समाप्ति	३४३
३६३	नंदीश्वर द्वीप के सर्व जिन चैत्य	२८७		**पच्चीसवां सर्ग**	
३६४	नंदीश्वर द्वीप की आराधना	२८८	३८५	ज्योतिष् चक्र की शुरूआत व समापन	२
३६५	नंदीश्वरोद समुद्र के देव-विस्तार आदि	२९१	३८६	मेरू से कितनी दूर है	४
३६६	अरूण द्वीप का विस्तार-देव आदि	२९४	३८७	पिछला ज्योतिष् चक्र कहाँ है	५
			३८८	ज्योतिष् चक्र का सब विस्तार	६
३६७	अरूणोद समुद्र का विस्तार-देव आदि	२९७	३८९	तारा आदि सम भूतल से कितनी दूर है	१०
३६८	अरूणवर द्वीप समुद्र	३०१	३९०	चन्द्रमा से नक्षत्र आदि कितनी दूर है	१५
३६९	स्थानांग सूत्र के प्रमाण से ग्यारहवां कुंड़ल द्वीप	३०४	३९१	ज्योतिष चक्रों के विषय में मतान्तर	१९
३७०	कुंड़ल गिरि पर्वत का प्रमाण	३०६			
३७१	पर्वत पर चार जिनालय	३०८	३९२	अभिजित् व मूल नक्षत्र के विषय में	२४
३७२	कुंड़ल पर्वत के आठ सोम प्रभ आदि अभ्यन्तर पर्वत	३१०	३९३	ज्योतिष चक्र तथा नक्षत्र पटल का विस्तार	२८
३७३	आठ पर्वतों की ३२ राजधानियों के नाम तथा वे कौन है	३१३	३९४	ज्योतिष विमानों का आकार	३२
३७४	कुंड़ल द्वीप के त्रिप्रत्यावार	३१९	३९५	आकार के विषय में शंका	३३

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
३९६	शंका का समाधान	३७
३९७	सूर्य-चन्द्र के विमानों का प्रमाण	४०
३९८	उत्सेधागुंल प्रमाण से चन्द्र, सूर्य के विमानों का प्रमाण	४३
३९९	ग्रह-नक्षत्रों का प्रमाणगुंल से विस्तार	४७
४००	तारों का प्रमाणागुंल से विस्तार	४९
४०१	नरक्षेत्र के बाहर के विमानों का प्रमाण	५२
४०२	ज्योतिषि विमानों के अभियोगिक देवों के विषय में	५३
४०३	चन्द्र के विमानों को वहन करते पूर्व दिशा के देव कैसे और कितने है	६१
४०४	दक्षिण दिशा के देवों के विषय में	६६
४०५	पश्चिम दिशा के देवों के विषय में	७२
४०६	उत्तर दिशा के देवों के विषय में	७७
४०७	चन्द्र-सूर्य के विमानों को कितने देव वहन करते है	८६
४०८	ग्रह-नक्षत्र-तारों के विमानों को कितने देव वहन करते है	८८
४०९	ज्योतिषि विमानों की गति	९१
४१०	जम्बूद्वीप से ताराओं का अन्तर कितने प्रकार का है	९६
४११	निर्व्याघात अन्तर	९९
४१२	जघन्य व्याघात अन्तर कितनी व कैसी रीति से?	१००
४१३	उत्कृष्ट व्याघात अन्तर कितनी व कैसी रीति से?	१०५
४१४	तारों के विमानों का वर्णन	११२
४१५	चन्द्र-सूर्य के देवों का परिवार	११८
४१६	तीन पर्षदा के देवों का आयुष्य	१२१
४१७	तीन पर्षदा की देवियों का आयुष्य	१२४
४१८	तीन सभाओं के नाम	१२६
४१९	तीन पर्षदा की विशेषता के विषय में शंका तथा समाधान	१२७
४२०	दूसरी रीति से तीन सभाओं का वर्णन	१३१
४२१	सूर्य-चन्द्र-इन्द्र के च्यवन काल के पश्चात् विशेषता	१३५
४२२	पाँचों ज्योतिषि देवों की विशेषता	१३८
४२३	ज्योतिषियों के चिह्न	१४०
४२४	चिह्नों के विषय में मतान्तर	१४३
४२५	ज्योतिषि देवों के वर्ण	१४४
४२६	ज्योतिषि देवों की ऋद्धि के विषय में	१४५
४२७	चन्द्र की रानियों के नाम, पूर्वभव तथा आयुष्य	१४७
४२८	चन्द्रमा की देवियाँ कितनी है	१५३
४२९	विकुर्वणा के विषय में मतान्तर	१५६
४३०	सूर्य की पटरानियों के नाम	१५९
४३१	सूर्य-चन्द्र का दिव्य भोग विलास	१६०
४३२	जिनेश्वर देव की अस्थि तथा माणवक स्थल के विषय में	१६३ १६३
४३३	ग्रह-नक्षत्र आदि की अग्र महिषियों के नाम	१६६
४३४	चन्द्र-सूर्य देवों की स्थिति	१६८
४३५	चन्द्र-सूर्य के विमानों की देवियों की स्थिति	१७४
४३६	ग्रहों के विमानों के देव तथा देवियों की स्थिति	१७७

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
४३७	नक्षत्रों के विमानों के देव-देवियों की स्थिति	१७६
४३८	तारों के विमानों के देव-देवियों की स्थिति	१८१
४३९	ज्योतिषि विमानों में अल्प-बहुत्वता	१८३
४४०	ज्योतिषियों की अनुकूलता व प्रतिकूलता	१८४
४४१	मुहुर्त जीवा का प्रयोजन विषय में शंका	१८६
४४२	विपाक कलना के हेतु	१९०
४४३	पाँच हेतु के विषय में शाता-अशातना विपाक	१९४
४४४	जन्मादि के समय ज्योतिषियों चार के शुभाशुभ फल	१९९
४४५	ज्योतिष शास्त्र की आवश्यकता	२०५
४४६	इस विषय में आगमों का अभिप्राय	२१०
४४७	नरक्षेत्र के बाहर ज्योतिषीयों के विषय में	२१४
४४८	सर्ग समाप्ति	२१६
	छब्बीसवां सर्ग	
	ऊर्ध्व लोक का निरूपण	
४४९	शंखेश्वर भगवान की स्तुति	१
४५०	ऊर्ध्व लोक का प्रारंभ	३
४५१	ऊर्ध्व लोक का प्रमाण	४
४५२	सौधर्म-ईशान लोक का वर्णन	५
४५३	आकार	५
४५४	स्थान, मान	७
४५५	प्रतर कितने है?	९
४५६	इन्द्रक विमान	१२
४५७	इन्द्रक विमानों के नाम	१३
४५८	सनत्कुमार आदि में कितने प्रतर	१५
४५९	उर्ध्व लोक के कितने प्रतर है	१८
४६०	ऊर्ध्व लोक के विमान	१९
४६१	किस समुद्र पर कितने विमान है	२२
४६२	विमानों के परस्पर अन्तर के विषय में	२८
४६३	विमानों का आकार	३१
४६४	वृतादि विमानों के कैसे	३४
४६५	तेरह प्रतरों में विमानों की संख्या	४०
४६६	गोल-त्रिकोण- चौरस आदि रीति से बतानेके विषय में	४२
४६७	प्रथम प्रतर में वृतादि तथा सब विमानों की संख्या कितनी	४५
४६८	दूसरे प्रतर में वृतादि तथा सब विमानों की संख्या कितनी	४७
४६९	तीसरे प्रतर में वृतादि तथा सब विमानों की संख्या कितनी	४९
४७०	चौथे प्रतर में वृतादि तथा सब विमानों की संख्या कितनी	५१
४७१	पाँचवे प्रतर में वृतादि तथा सब विमानों की संख्या कितनी	५२
४७२	छठे-सातवें प्रतर में वृतादि तथा सब विमानों की संख्या कितनी	५४
४७३	८-९-१० वें प्रतर में वृतादि तथा सब विमानों की संख्या कितनी	५६
४७४	११-१२-१३ वें प्रतर में वृतादि तथा सब विमानों की संख्या कितनी	६०
४७५	एक दिशा के पंक्तिगत विमानों की वृतादि तथा सर्व संख्या	६४

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
४७६	पुष्पावकीर्ण विमानों की संख्या तथा स्थान	६७
४७७	दूसरे देवलोक के सब विमान	७२
४७८	किस इन्द्र का कौन सा विमान है	७५
४७९	संग्रहणी के अनुसार किस इन्द्र का कौन विमान है	७८
४८०	आगम प्रमाण से साधर्मेन्द्र के सब विमानों की संख्या	८१
४८१	आगम प्रमाण से ईशान के सब विमानों की संख्या	८६
४८२	दूसर देवलोक के विमानों की विगत	८९
४८३	त्रिकोण तथा पुष्पावकीर्ण विमानों का आकार	९३
४८४	विमानों द्वार-किला-वेदिका के विषय में	९६
४८५	विमानों का आधार	१०१
४८६	विमानों का प्राकार से विस्तार	१०४
४८७	प्राकार के द्वार का विस्तार	१०६
४८८	द्वार तथा ध्वजाओं पर चित्रों की शोभा	१०७
४८९	किले के कंगूरों का विस्तार	११०
४९०	विमानों-पृथ्वी पिंड तथा प्रासादों के विषय में	११२
४९१	विमानों की उच्चता	११४
४९२	विमानों के दो प्रकार	११७
४९३	विमानों की लम्बाई आदि	११९
४९४	४५ लाख योजन प्रमाण क्या-क्या है	१२१
४९५	विमानों के पार जाने की रीति प्रमाण पूर्वक (दृष्टान्त से)	१२४
४९६	पाँच बड़े गुणवाथी चरणों की माप	१३०
४९७	सात बड़े गुणवाथी चरणों की माप	१३२
४९८	सूर्य के उदय-अस्त के अन्तर (परिक्रमा) से तीन बड़े चरणों की माप	१२४
४९९	नौ बड़े चरणों की नाप	१३४
५००	दृष्टान्त पूर्वक विमानों की विशालता	१३८
५०१	चार देवलोक विमानों की कैसी गति तथा चरणों की माप	१४४
५०२	अच्युत आदि सर्व देव लोक के विमानों की गति	१४७
५०३	जीवाभिगम सूत्र के प्रमाण से	१५१
५०४	प्रथम चरण से किस रीति से किस देव लोक के पारगामी है	१५२
५०५	दूसरे चरण से किस रीति से किस देवलोक ने माप सकें	१५६
५०६	तीसरे चरण से किस रीति से किस देवलोक को मापें	१५९
५०७	चौथे चरण से किस रीति से किस देवलोक को मापें	१६२
५०८	इस गति से कल्याणेत्सव समय की गति के विषय में	१६५
५०९	विमानों का वर्ण	१७१
५१०	देवलोक में दिन-रात नहीं इ[illegible] सम्बंध में	१७५
५११	देवलोक की सुगंध तथा स्पर्श के विषय में	१७९
५१२	विमानों की चारों दिशाओं के बन खंड़ों के नाम	१८३

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
५१३	बावड़ियों की शोभा	१८६
५१४	क्रीड़ा मंड़पों के आसनों के नाम	१९१
५१५	मंड़प गृहों के विषय में	१९३
५१६	विमानों की पीठिका का वर्णन	२००
५१७	प्रासादों की पाँच श्रेणियों का प्रमाण तथा सर्व संख्या	२०४
८१८	प्रासादों की एक दिशा की सर्व संख्या	२११
५१९	प्रासादों की श्रेणि के विषय में मतान्तर	२१२
५२०	अन्य देव लोक के प्रासादों का वर्णन	२१७
	सुधर्मा सभा का वर्णन	
५२१	स्थान-द्वार के विषय में	२२४
५२२	मुख मंड़प-प्रेक्षा गृह का वर्णन	२२६
५२३	चैत्य स्तूप का वर्णन	२२८
५२४	चैत्य वृक्ष-महेन्द्र ध्वज का वर्णन	२३१
५२५	मनोगुठिका पीठिकाओं का वर्णन	२३४
५२६	माणवक स्थंभ का वर्णन	२३८
५२७	जिनेश्वरों की अस्थियों के विषय में	२४३
५२८	सिंहासन-शय्या-शस्त्रागार आदि का स्थान-मान	२४६
५२९	जिनालय के विषय में	२५४
५३०	देव छन्दक के विषय में	२५७
५३१	सिद्धायतन में क्या-क्या है?	२५९
५३२	उपपांत सभा का वर्णन	२६५
५३३	अभिषेक सभा का वर्णन	२६८
५३४	अलंकार सभा का वर्णन	२७१
५३५	व्यवसाय सभा का वर्णन	२७३
५३६	पुस्तक-खड़िया का वर्णन	२७५
५३७	नंदा बावड़ी के विषय में	२८१
५३८	उपपात शय्या के	२८४
५३९	देवों की उत्पत्ति समय की स्थिति	२८७
५४०	उत्पन्न हुए इन्द्र को कर्तव्य का विचार	२९४
५४१	सामानिक देवों को कर्तव्यों की सूचना इन्द्र द्वारा	२९६
५४२	उपपात मन्दिर से अभिषेक सभा में आने की रीति	३००
५४३	सामानिक देवों को अभियोगिक देवों की आज्ञा	३०४
५४४	अभियोगिक देव कहाँ से क्या वस्तु लाते हैं?	३०७
५४५	नये इन्द्र का अभिषेक	३१६
५४६	स्वामी की उत्पत्ति से देवों की चेष्टा	३१८
५४७	स्वामी देव की स्तुति	३२६
५४८	अलंकार सभा में प्रवेश किस तरह	३३०
५४९	देव दूष्य व अलंकार धारण के विषय में	३३३
५५०	व्यवसाय सभा समक्ष वाचना	३३७
५५१	सिद्धायतन में गमन की तैयारी	३३९
५५२	समृद्धि पूर्वक सिद्धायतन में प्रवेश	३४३
५५३	परमात्मा पूजन में प्रमार्जना का महत्त्व	३४६
५५४	परमात्मा पूजा की विधि	३४८
५५५	अष्ट मंगल आदि आलेखन	३५१
५५६	जगत पति की स्तुति	३५६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
५५७	देव चैत्य की सफाई करते है	३५९
५५८	चैत्य द्वारों की सफाई व पुष्प-धूप	३६१
५५९	चैत्य स्तूपों की प्रतिमाओं की पूजा	३६६
५६०	दक्षिण दिशा के चैत्य वृक्ष-ध्वज-नंदा पुष्कारिणी की पूजा	३६९
५६१	उत्तर दिशा के चैत्य वृक्ष-स्तूप-प्रतिमा आदि की पूजा	३७२
५६२	जिनेश्वरों की अस्थि और उसके चैत्य स्तंभों की पूजा	३७४
५६३	मणिपीठिका, शस्त्रागार, देव शय्या आदि की पूजा	३७८
५६४	व्यवसाय सभा की पूजा और विर्सजन	३८२
५६५	जिनेश्वरों के नमन-पूजन में भाव	३८७
५६६	विमानों का वर्णन 'राज-प्रश्नीय' सूत्र के अनुसार	३९१
५६७	कल्पातीत देव क्या, उनके लक्षण	३९६
५६८	देवों की देह की कान्ति-संस्थान के विषय में	३९८
५६९	देवों के शरीर के विषय में-क्या नहीं होता?	३९९
५७०	देवों के दंत केश आदि के विषय में	४००
५७१	देवों के चिन्ह भूषित मुकुटों के विषय में	४०३
५७२	चिन्हों के विषय में मतान्तर	४०३
५७३	देवों की भाषा	४०४
५७४	देवों के चक्षु तथा माला के विषय में	४०६
५७५	देवों की शक्ति	४०९
५७६	देवताओं का काल निर्गमन	४१३
५७७	देवों की काम क्रीड़ा का वर्णन	४१५
५७८	देवों की रति क्रीड़ा	४२२
५७९	वैक्रिय पुदगलों का परिणमन	४२७
५८०	अपरिगृहीता देवियों के साथ में रति क्रीड़ा	४२९
५८१	देवताओं की दो प्रकार की उन्मतता	४३१
५८२	देवों के लिये भी कामदेव अजेय है	४३६
५८३	इच्छा मात्र से आहार की तृप्ति	४३९
५८४	आहार पुद्गल कौन देव देख सकते है	४४३
५८५	भवन पति आदि देवों के आहार-इच्छा-श्वासोच्छवास के विषय में	४४४
५८६	सागपरोपम से कम स्थिति के देवों का आहार-श्वासोच्छवास के विषय में	४४६
५८७	स्थिति अनुसार आहार श्वासोच्छवास देवताओं का काल निर्गमन	४४८
५८८	देवताओं का प्राण निर्गमन	४५३
५८९	देवों का परस्पर औचित्य	४५६
५९०	सर्व देवों का एक विषय में सुख का काल	४५९
५९१	देव मनुष्य लोक में किस कारण नहीं आता	४६०
५९२	यहाँ आते देवों को देवांगनाओं के कटाक्ष	४६४

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
५९३	स्थानांग सूत्र के आधार पर देव मनुष्य लोक में आता नहीं	४६९
५९४	मनुष्य लोक की दुर्गन्ध के कारण देवता यहाँ नहीं आते	४७०
५९५	मनुष्य लोक की दुर्गन्ध कैसे जाय	४७४
५९६	उपदेश माला का अभिप्राय:	४७६
५९७	मनुष्य लोक की दुर्गन्ध के विषय में दृष्टान्त	४७७
५९८	देव-अरिहंत आदि पुण्य से आते है	४८२
५९९	देवों के मनुष्य लोक में आने के कारण	४८६
६००	पुत्र आदि के स्नेह को देवता सफल करते है	४८८
६०१	वैमानिक देवता नरक में जाये	४९१
६०२	कृष्ण-बलभद्र का दृष्टान्त	४९२
६०३	बलभद्र देव ने कृष्ण जी महिमा बढ़ाई	५०१
६०४	नरक में लक्ष्मण को अच्युतेन्द्र द्वारा बोध	५०६
६०५	अल्पऋद्धि वाले देवों का गमानगमन	५०८-५०९
६०६	**अवधि ज्ञान के विषय में**	५१४
६०७	सर्व जीवों को अवधि ज्ञान किस दिशा से होता है	५१८
६०८	मनुष्य-तिर्यंच के अवधि ज्ञान का आकार	५२०
६०९	वैमानिक देवों के जघन्य अवधि ज्ञान के विषय में	५२३
६१०	सर्व जघन्य अवधि के विषय में शंका समाधान	५२४
६११	वैमानिक देवों की अवधि की आकृति	५२९
६१२	**आयुष्य आदि के ज्ञान के विषय में**	५३०
६१३	सौधर्मेन्द्र-ईशान के १३ प्रतरों की उत्कृष्ट स्थिति	५३१
६१४	जघन्य स्थिति	५३७
६१५	सौधर्म-ईशान की स्थिति में विशेषता	५४०
६१६	अच्युत से लेकर देवताओं को कृत्रिम-स्वाभविक देहमान के विषय में	५४२
६१७	ग्रैवेयक-अनुत्तर के देहमान के विषय में	५४५
६१८	देवताओं की सामान्यत: लेश्या	५४६
६१९	सौधर्म-ईशान के देवों की गति-अगति	५४७
६२०	सौधर्म-ईशान की परिगृहिता देवियों का आयुष्य	५४९
६२१	अपरिगृहिता देवियों के विमान कैसे और कितने	५५२
६२२	अपरिगृहिता देवियों की स्थिति	५५३
६२३	सौ धर्म की अपरिगृहीता देवी क्या देवों के भोगने योग्य है	५५५
६२४	ईशान की अपरिगृहिता देवी क्या देवों के भोगने योग्य है	५६४
६२५	अपरिगृहिता देवियों के विमानों की संख्या	५७२
६२६	चारों निकाय के देवों की आयु-कर्म की स्निग्धता	५७७

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
६२७	देवों को शाता-अशाता का उदय	५८८
६२८	जूने (पुरातन) व नये देवों की तेजस्विता	५८६
६२६	देवों को शोक कैसे होता है, इस विषय में भगवती सूत्र का अभिप्राय	५६२
६३०	देव मरण की रीति	५६५
६३१	आगामी जन्म के दुखः से शोक	५६७
६३२	देवों की निद्रा के विषय में	६००
६३३	मिथ्या दृष्टि देवों की भोग विलास में निमग्नता	६०४
६३४	मिथ्या दृष्टि देवों का दुर्गति में जाना	६०७
६३५	सम्यक्दर्शी देव अरिहंत की उपासना करता है	६०८
६३६	सम्यक्दृष्टि देव की सद्गति	६१३
६३७	देव अधर्म में स्थित है, इस विषय में शंका	६१५
६३८	भगवती सूत्र के आधार पर समाधान	६१६
६३६	एक साथ कितने देवों का च्यवन हुआ, तथा उत्पन्न हुए	६१६
६४०	सौधर्म-ईशान के देवों के उपपात-च्यवन काल कितना	६२०
६४१	सौधर्म-ईशान के इन्द्र का स्वरूप	६२४
६४२	पाँच अवतसक विमानों के नाम	६२४
६४३	इन विमानों का प्रमाण	६२७
६४४	विमानों के चारों तरफ क्या-क्या है	६२६
६४५	वर्तमान शक्रेन्द्र का पूर्व वृतान्त (कल्प वृत्ति से)	६३२
६४६	वर्तमान शक्रेन्द्र का पूर्व वृतान्त (भगवती सूत्र से)	६३६
६४७	इन्द्र महाराज की तीन पर्षदा के विषय में प्रथम पर्षदा के देव-देवी कितने	६४६
६४८	दूसरी-तीसरी पर्षदा के देव-देवी कितने	६४७
६४६	तीन पर्षदा के देव-देवियों की स्थिति	६५०
६५०	इस पर्षदा में दूसरे कौन देव-देवी होते हैं	६५३
६५१	सामानिक देवों की संख्या तथा कार्य	६५५
६५२	त्रांयस्त्रिशंक देवों की संख्या तथा कार्य	६५८
६५३	त्रांयस्त्रिशंक के दूसरे नाम के विषय में उत्तराध्ययन के प्रमाण	६६०
६५४	सामानिक-त्रांयस्त्रिशंक देवों के पूर्वभव	६६२
६५५	त्रांयस्त्रिशंक नाम किसलिये	६६६
६५६	आत्मरक्षक देवों की कितनी संख्या व उनका क्या काम	६६८
६५७	सात सेनाओं में से पाँच सानिध्य सेना के विषय में	६७२
६५८	शेष की दो सेनाओं के विषय में	६७७
६५६	सात सेनापतियों के नाम	६८१
६६०	हरिनैगमेषी देव की शक्ति	६८४
६६१	गर्भ हरण की चर्तुभंगी	६८७
६६२	मुर्छा देने के विषय में	६८६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
६६३	ईशानेन्द्र द्वारा सुघोषा घंटा का नाद	६६४
६६४	निर्वाण मार्ग विषय में भगवती सूत्र का अभिप्राय	६६८
६६५	शक्रेन्द्र महाराज को मघवा किस लिये कहा	७००
६६६	देवों की मेघ वृष्टि किस तरह से होती है	७०२
६६७	ऐरावण हाथी के सम्बंध में	७०८
६६८	वज्र की वास्तविकता	७११
६६९	शक्रेन्द्र ने चमरेन्द्र पर वज्र छोड़ा इसका विवरण	७१४
६७०	चमरेन्द्र के विषय में तीन प्रश्न	७१६
६७१	शक्रेन्द्र-चमरेन्द्र तथा वज्र की ऊर्ध्व-अधोगति के विषय में	७१८
६७२	शक्रेन्द्र-चमरेन्द्र को क्यों नहीं पकड़ सका	७२३
६७३	वैमानिक तथा असुर देवों के पुण्य प्रभाव के विषय में	७२७
६७४	वैमानिक देवों की विकुर्वणा शक्ति कितनी है	७३२
६७५	वैमानिक देवों की वैकुर्वणा शक्ति के विषय में भगवती सूत्र का अभिप्राय	७३४
६७६	सामानिक-त्रांयस्त्रिशंक आदि-देव-देवियों की विकुर्वणा शक्ति	७३६
६७७	शक्रेन्द्र की पटरानी कितनी, उनके नाम	७३९
६७८	पटरानियों के पूर्वभव	७४१
६७९	पटरानियों का परिवार तथा विकुर्वणा शक्ति	७४५
६८०	कामक्रीड़ा का स्थान	७४८
६८१	प्रासाद की मणिपीठिका का प्रमाण	७५२
६८२	देदीप्यमान शय्या	७५३
६८३	पाँच प्रकार के काम-भोग	७५५
६८४	**लोक पाल देवों का वर्णन**	७५९
	प्रथम लोकपाल सोम का वर्णन	
६८५	उसका विमान कैसा है, विमान का नाम क्या है	७५९
६८६	तिर्यंच लोक में उनकी राजधानी के विषय में	७६१
६८७	बाकी के लोक पालों की राजधानी के विषय में	७६३
६८८	चार पटरानियों के विषय में	७६५
६८९	उनके आज्ञावर्ती देव कौन है	७६९
६९०	सोमदेव का दक्षिणार्द्ध, जम्बूद्वीप के उपद्रवों का ज्ञान	७७१
६९१	सोमदेव के पुत्र स्थानीय ग्रह कितने	७७५
६९२	सोमराज देव की स्थिति	७७७
६९३	**द्वितीय लोक पाल यमराज का वर्णन**	७७८
६९४	विमान का स्थान व नाम	७७८
६९५	आज्ञावर्ती देव कौन है कितने	७८०
६९६	यमदेव द्वारा दक्षिणार्द्ध जम्बू-द्वीप के उपद्रव का ज्ञान	७८२
६९७	किन देवों के पुत्र समान है	७८६
६९८	यमराज की लोकोक्ति	७८८
६९९	यमराज की स्थिति	७९०
७००	**तृतीय लोकपाल वरूण देव का वर्णन**	७९१

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
७०१	विमान का स्थान व नाम	७९१	७२५	शक्रेन्द्र के मोक्ष गमन के विषय	८४२
७०२	आज्ञावर्ती देव कितने, कौन	७९२	७२६	ईशान देव लोक का वर्णन	८४४
७०३	वरूण देव द्वारा दक्षिणार्द्ध जम्बूद्वीप के पदार्थ का ज्ञान	७९४	७२७	पाँच अवतंसक विमानों के स्थान व नाम	८४५
७०४	सामान्य लोक में ख्याति	७९६	७२८	ईशानवतसंक विमान-उपपात शय्या	८४७
७०५	किन देवों के पुत्र समान है	७९७	७२९	**ईशानेन्द्र का पूर्वभव**	८४९
७०६	पुत्रं देवों का परिचय	७९९	७३०	तामली का दीक्षा स्वीकार करना	८५५
७०७	वरूण देव की स्थिति	८०२	७३१	प्राणों में दीक्षा किसे कहते है	८५६
७०८	**चतुर्थ लोकपाल वैश्रमण देव का वर्णन**	८०३	७३२	६०,००० वर्ष तप किसने किया	८५८
७०९	विमान का स्थान व नाम	८०३	७३३	तामलि तापस के अनशन के विषय में	८६१
७१०	आज्ञावर्ती कैसे है	८०५	७३४	असुर देव-देविओं से तामलि तापस की प्रार्थना	८६४
७११	पदार्थों का ज्ञान	८०७	७३५	तामली तापस ईशानेन्द्र हुआ	८७१
७१२	कौन देव पुत्र समान है	८१२	७३६	असुर देवों की तामली तापस से की गई विड़म्बना	८७४
७१३	कुबेर देव पाल के क्या कार्य है	८१४	७३७	ईशानेन्द्र ने बलि चंचा नगरी को दुसह बनाया	८७७
७१४	दानवीर कुबेर	८१६	७३८	ईशानेन्द्र से क्षमा माँगी	८८१
७१५	कुबेर देव की स्थिति	८१७	७३९	ईशानेन्द्र द्वारा शक्ति संहरण	८८५
७१६	शांस्त्र के अनुसार लोकपालों का आयुष्य	८१८	७४०	अज्ञान तप निष्फल नहीं जाता	८८९
७१७	चारों लोक पालों के पुत्र देव	८१९	७४१	त्रायत्रिंश देवों के पूर्व भव के विषय में	८९३
७१८	इन्द्र महाराज का आनन्द	८२०	७४२	सामानिक तथा आत्म रक्षक देव कितने	८९५
७१९	इन्द्र द्वारा गुणवान की प्रशंसा	८२४	७४३	तीन पर्षदा के देव-देवियों की संख्या	८९६
७२०	इन्द्र महाराज किस रीति से जिनेश्वर की पूजा करते है	८२६	७४४	तीन पर्षदा के देव-देवियों का आयुष्य	८९९
७२१	इन्द्र महाराज का वीर भगवान को निवेदन	८२७			
७२२	इन्द्र महाराज की विशेषता	८२९			
७२३	शक्र ने वीर प्रभु को पाँच अवग्रह बताये	८३३			
७२४	शक्रेन्द्र द्वारा मुनियों कोअवग्रह की अनुज्ञा	८३९			

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
७४५	आठ अप्सराओं के नाम	६०१
७४६	आठ अप्सराओं के पूर्व भव की सामान्य विवरण	६०२
७४७	उन सब (२७०) इन्द्रियाणियों के पूर्व भव की विगत	६०५
७४८	आठ पटरानियों के परिवार की संख्या	६०७
७४९	सेनापतियों के नाम	६०६
७५०	लघु पराक्रम देव के पराक्रम का वर्णन	६१२
७५१	प्रमाण से विमानों के नाम (अणांक सूत्र से)	६१४
७५२	शस्त्र तथा वाहन का वर्णन	६१६
७५३	अंधकार की विकुर्वणा किस तरह से करनी	६१८
७५४	लोकपाल देवों का वर्णन, चार लोक पालों के विमानों के नाम	६२३
७५५	सब लोक पालों की समानता और उनकी राजधानी	६२८
७५६	लोकपाल का आयुष्य	६३२
७५७	पटरानियों के नाम	६३४
७५८	सौधर्म लोकपाल के साथ समानता	६३५
७५९	ऐश्वर्य के विषय में	६३८
७६०	ईशानेन्द्र का कितना अधिपत्य है?	६४०
७६१	ईशानेन्द्र का क्या महत्व है?	६४७
७६२	सौधर्म-ईशान-इन्द्र परस्पर किस तरह वार्तालाप करते है	६४८
७६३	दोनों इन्द्रो के बीच में विवाद होने के विषय में	६५१
७६४	दोनों इन्द्रों की युद्ध करने की तैयारी	६५६
७६५	ईशानेन्द्र की प्रभु भक्ति किस तरह से	६५६
७६६	ईशानेन्द्र के मोक्ष गमन के विषय में	६६४
७६७	सर्ग समाप्ति	६६६

सत्ताईसवां सर्ग

सनत्कुमार माहेन्द्र देवलोक का वर्णन

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
७६८	स्थान, संस्थान	२
७६९	प्रतर कितने है, उनके नाम क्या है?	६
७७०	प्रतर वार विमानों की संख्या	१०
७७१	प्रथम प्रतर के त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	१२
७७२	२, ३, ४ प्रतर के त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	१३
७७३	५, ६, ७, ८ प्रतर के त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	१६
७७४	९, १०, ११, १२ प्रतर के त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	२०
७७५	चार प्रतरों में त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	२४
७७६	पुष्पावकीर्णक पंक्तिगत त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	२६
७७७	सनत्कुमार के त्रिकोण आदि समस्तर विमानों की संख्या	३०
७७८	सनत्कुमार-पुष्पावकीर्णक, त्रिकोण आदि सर्व विमानों की संख्या	३२

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
७७९	माहेन्द्र देव-पुष्पावकीर्णक, त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	३४
७८०	विमानों से इनके, आधार, वर्ण, जानना	३८
७८१	पृथ्वी पिंड़ तथा विमान की ऊँचाई	४०
७८२	दोनों देवलोक के देवों के वर्ण-मुकुट के चिन्ह	४४
७८३	दोनों देवलोक के देवों के सामान्य आयुष्य	४६
७८४	बारह प्रतरोंकी स्थिति	४९
७८५	सनत्कुमार से माहेन्द्र की स्थिति कितनी अधिक है ?	५६
७८६	देवों की ऊँचाई (देहमान),	५८
७८७	देवों के श्वासोच्छ्वास तथा आहार के विषय में	६२
७८८	किस देव लोक की कितने आयुष्य वाली देवी उनके भोगने योग्य है	६५
७८९	देव-देवियों की काम क्रीड़ा के विषय में	६८
७९०	अवधि ज्ञानियों की गति-आगति के विषय में	७३
७९१	उपपात-च्यवन-विरह काल	७६
७९२	**सनत्कुमार इन्द्र का वर्णन** अवतसंक विमान की किस सभा शय्या में उत्पन्न हुए	७८
७९३	सामाजिक तथा तीन पर्षदा के देवों की संख्या-आयुष्य	८१
७९४	परिवार तथा आत्म रक्षक देवों के विषय में	८८
७९५	यान-विमान	८९
७९६	शक्ति-आयुष्य-विमान आधिपत्य	९०
७९७	भोग के लिये गोलाकार स्थान	९२
७९८	उसमें प्रासाद-रत्नपीठिका-सिंहासन आदि के विषय में	९३
७९९	इन्द्र का जिन धर्म में दृढ़ होना	९९
८००	इन्द्र के मोक्ष गमन के विषय में	१०२
८०१	**माहेन्द्र इन्द्र का वर्णन** (उत्पत्ति कैसे)	१०३
८०२	सामाजिक तथा तीन पर्षदा के आत्म रक्षक देवों की संख्या तथा स्थिति	१०४
८०३	इन्द्र की शक्ति तथा सुख के विषय में विमान आधिपत्य	११२
८०४	यान-विमान	११३
८०५	**ब्रह्मदेव लोक का वर्णन** (स्थान-आकृति)	११४
८०६	प्रतर तथा इन्द्रक विमानों के नाम	११६
८०७	प्रतरों में कितने-कितने विमान है	११८
८०८	१, २, ३ प्रतरों में त्रिकोण आदि तथा सर्व विमानों की संख्या	११९
८०९	४, ५, ६, प्रतरों में त्रिकोण आदि तथा सर्व विमानों की संख्या	१२२
८१०	पूरे ६ प्रतरों में त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	१२५
८११	इस देवलोक में, पुष्पावकीर्णक, त्रिकोण आदि तथा विमानों की संख्या	१२८
८१२	पृथ्वी पिंड़-विमान की ऊँचाई	१३०

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
८१३	प्रासादो के वर्ण	१३१
८१४	देवों के मुकुट-चिन्ह तथा लेश्या के विषय में	१३३
८१५	देवों की स्थिति	१३४
८१६	प्रतरवार आयुष्य	१३५
८१७	ऊँचाई	१३७
८१८	आहार तथा श्वासोच्छवास	१४०
८१९	उनके भोग विलास के विषय में	१४१
८२०	देवों की गति-आगति	१४६
८२१	उपपात-च्यवन-विरहकाल	१४८
८२२	अवधिज्ञान का विषय	१४९
८२३	**ब्रह्मदेव का वर्णन** (सामाजिक देवों की संख्या-स्थिति)	१५१
८२४	तीन पर्षदा के देवों की स्थिति तथा संख्या	१५२
८२५	दूसरे देव तथा आत्म रक्षक देव	१५५
८२६	शक्ति-आयुष्य-विमान तथा आधिपत्य	१५८
८२७	यान-विमान	१६०
८२८	**तमस्काय का स्वरूप** (लोकान्तिक देव कहाँ रहते हैं)	१६१
८२९	ये तमस्काय कहाँ से प्रगट होते है ?	१६२
८३०	ऊँचाई तथा आकार	१६८
८३१	कहाँ रूकते है?	१६९
८३२	नीचे-बीच में आकार-विस्तार	१७१
८३३	तमस्काय कोपार करने की विधि	१७७
८३४	बिजली-मेघ-वृष्टि आदि देवों विकर्म	१८०
८३५	उनमें क्या-क्या नहीं है	१८५
८३६	उनकी भंयकरता के विषय में	१८७
८३७	उनके तेरह नाम	१८९
८३८	उन नामों की सार्थकता	१९२
८३९	**कृष्णराजी का वर्णन** (स्थान-सामान्य ज्ञान)	१९६
८४०	चारों दिशाओं की कृष्ण राजी कई दिशा में लम्बी पहुँचती है	१९८
८४१	कई कृष्ण राजी कितनी पुरातन है	२०१
८४२	इन कृष्ण राजियों का गठन-आकार	२०३
८४३	इनका आकृति विस्तार	२०६
८४४	तमस्काय समान राजी का अमुक स्वरूप	२०८
८४५	इन कृष्ण राजियों के नाम तथा सार्थकता	२१२
८४६	**लोकान्तिक देवों का वर्णन** (कृष्णराज की परक्रिमाये आठ लोकान्तिक विमान)	२१७
८४७	मध्यम-नौवा विमान	२२६
८४८	नौ लोकान्तिक देवों के नाम	२३०
८४९	लोकान्तिक देवों के कार्य	२३२
८५०	उन देवों के परिवार	२३६
८५१	अव्याबाध देवों की शक्ति	२४१
८५२	स्थिति तथा मोक्ष गमन	२४३
८५३	मोक्ष गमन के विषय में मतान्तर	२४४
८५४	लान्तक देवों का वर्णन (स्थान तथा प्रतर)	२४५
८५५	प्रतरों के इन्द्रक विमानों के नाम	२४७
८५६	प्रतर-प्रतर में पंक्ति विमान कितने?	२४९

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०	क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
८५७	प्रथम प्रतर के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	२५०	८७९	श्रावस्ती नगर में गमन	३०१
८५८	२-३ प्रतर के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	२५२	८८०	मिथ्यात्व का उदय	३०४
८५९	४-५ प्रतर के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	254	८८१	धमार्थी शिष्यों ने जमाली का त्याग किया	३०८
८६०	पाँचों प्रतर के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	२५६	८८२	चम्पा नगरी में आगमन	३१०
८६१	पाँचों प्रतरो के पंक्तिगत-पुष्पावर्कीण विमानों की संख्या	२५८	८८३	इन्द्रभूति ने प्रश्न पूछे	३११
८६२	विमानों का आधार-ऊँचाई	२६०	८८४	जमाली उत्तर देने में असमर्थ रहा	३१४
८६३	प्रतरवार-आयुष्य	२६३	८८५	किल्विषिक रूप में उत्पन्न हुआ	३१५
८६४	जघन्य स्थिति	२६६	८८६	उत्सूत्र भाषियों का संसार भ्रमण	३१८
८६५	देवों का देहमान	२६७	८८७	**महाशुक्र देव लोक का वर्णन**	३२५
८६६	उपपात-च्यवन-विरह काल	२७२	८८८	स्थान-प्रतर	३२५
८६७	**लांतकेन्द्र का वर्णन** (इन्द्रक विमान-सामानिक देव)	२७३	८८९	प्रतरों के नाम तथा पंक्तिगत विमान	३३०
८६८	तीनों पर्षदा के देवों का परिवार तथा स्थिति	२७५	८९०	१-२-३ प्रतरों के त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	३३२
८६९	आत्म रक्षक देव	२७७	८९१	चौथे चार प्रतरों के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	३३४
८७०	शक्ति-आयुष्य-विमान-अधिपत्य	२८०	८९२	पुष्पावकीर्णक तथा सब विमानों की संख्या	३३७
८७१	यान-विमान	२८२	८९३	आधार तथा देवों के वर्ण	३३९
८७२	**किल्विषिक देवों का वर्णन** (स्थिति-स्थान)	२८३	८९४	पृथ्वी पिंड-विमान-उच्चत्व	३४०
८७३	किल्विषिक कौन जीव है	२८६	८९५	प्रतरवार स्थिति	३४१
८७४		२८७	८९६	देहमान	३४४
८७५	किस कारण से यहाँ उत्पन्न हुए	२८९	८९७	शब्दों से काम क्रीड़ा	३४८
८७६	चय होकर कहाँ जाते हैं	२९३	८९८	गति-अगति	३५३
८७७	जमाली का वर्णन	२९४	८९९	उपपात-च्यवन-विरह काल	३५५
८७८	वैराग्ये दीक्षा ग्रहण	२९७	९००	अवधि ज्ञान के विषय में	३५६
			९०१	देह की कान्ति के विषय में	३५७
			९०२	**महाशुक्रेन्द्र का वर्णन** (इन्द्र का विमान)	३६०

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
९०३	तीन पर्षदा के देवों की संख्या तथा स्थिति	३६२
९०४	सामानिक-अंगरक्षक देवों की संख्या तथा स्थिति	३६५
९०५	शक्ति तथा इन्द्र का आयुष्य-विमान-अधिपत्य	३६७
९०६	यान-विमान	३६९
९०७	**सहस्त्रार देवलोक का वर्णन** (स्थान-प्रतर-नाम)	३७०
९०८	प्रतर वार पंक्तिगत विमान	३७२
९०९	प्रतर-प्रतर के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	३७४
९१०	सारे प्रतरों के त्रिकोण आदि तथा पंक्तिगत विमानों की संख्या	३७७
९११	पुष्पावकीर्ण प्रतर के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	३७९
९१२	प्रतर वार आयुष्य	३८१
९१३	जघन्य आयुष्य	३८३
९१४	देहमान	३८४
९१५	आहार तथा श्वासोच्छवास	३८५
९१६	उपपात-च्यवन तथा विरह काल	३८८
९१७	**सहस्त्रारेन्द्र का वर्णन** (इन्द्र का विमान)	३८९
९१८	तीन पर्षदा के देवों की संख्या तथा स्थिति	३९१
९१९	सामानिक तथा आत्मरक्षक देवों की संख्या तथा स्थिति	३९४
९२०	शक्ति-आयुष्य-विमान-अधिपत्य के विषय में	३९६
९२१	यान-विमान	३९८
९२२	**आनत-प्राणत देवलोक का वर्णन** (स्थान-प्रतर-नाम)	३९९
९२३	प्रतर वार,पंक्तिगत विमान कितने है?	४०२
९२४	१-२ प्रतर में त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	४०३
९२५	३-४ तक में त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	४०५
९२६	सारे प्रतरों में त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	४०६
९२७	विमानों के वर्ण का आधार	४१०
९२८	पृथ्वी पिंड-विमान व उच्चत्व के विषय में	४११
९२९	**आनतेन्द्र का वर्णन** (प्रतरवार आयुष्य)	४१५
९३०	प्राणत स्वर्ग के सम्बंध में	४१७
९३१	प्रतरवार आयुष्य	४१९
९३२	देहमान	४२१
९३३	आहार तथा श्वासोच्छवास	४२४
९३४	मन से काम क्रीड़ा के विषय में	४२६
९३५	शुक्र पुद्गलों से देवियों की तृप्ति	४३१
९३६	देवों का भोग संज्ञा का अल्प-बहुत्व	४३४
९३७	अनुत्तर तक देवों की गति-अगति	४३६
९३८	दोनों स्वर्ग के उपपात-च्यवन-विरह काल	४३९
९३९	दोनों स्वर्ग के उपपात-अवधि ज्ञान के विषय में	४४३
९४०	आरण-अच्युत दोनों स्वर्ग के अवधि ज्ञान के विषय में	४४४

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
६४१	**प्राणतेन्द्र का वर्णन** (इन्द्र का विमान)	४४५
६४२	तीन पर्षदा के देवों की स्थिति तथा संख्या	४४७
६४३	सामानिक तथा आत्मरक्षक देवों की संख्या	४५०
६४४	आयुष्य-यान-विमान-शक्ति	४५२
६४५	**आरण-अच्युत देवलोक का वर्णन** (स्थान-शोभा)	४५५
६४६	प्रतर-इन्द्रक विमान का नाम	४५७
६४७	प्रतरवार-पंक्तिगत विमान	४५६
६४८	१-२ प्रतरों के त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	४६०
६४६	३-४ प्रतरों के त्रिकोण आदि सब विमानों की संख्या	४६२
६५०	चारों प्रतरों के त्रिकोण आदि विमानों-पंक्तिगत विमानों, पुष्पवकीर्णक तथा सब विमानों की संख्या	४६४
६५१	आरण देवों की प्रतर वार स्थिति	४६७
६५२	अच्युत देवों की प्रतरवार स्थिति	४६६
६५३	अन्य देवलोक के देवों की प्रतरवार जघन्य स्थिति	४७१
६५४	देहमान-आहार	४७२
६५५	श्वासोच्छ्वास	४७५
६५६	उपपात-च्यवन-विरह काल	४७८
६५७	**अच्युतेन्द्र का अधिकार** (इन्द्र का विमान)	४७६
६५८	**सीता सति का वर्णन**	
६५६	रामचन्द्र जी ने सीता को वन में त्याग दिया	४८१
६६०	उस समय पर महाराज का आगमन	४८४
६६१	लव कुश का जन्म	४८८
६६२	पिता-पुत्र का युद्ध	४६१
६६३	दिव्य मांगनी	४६४
६६४	सूर्य देव का निवेदन	४६७
६६५	जय भूषण मुनि का दृष्टान्त	५०१
६६६	हरिणैगमेषी देव को इन्द्र ने आदेश किया	५०६
६६७	शील का चमत्कार	५१०
६६८	दीक्षा ग्रहण	५१५
६६६	**अच्युतेन्द्र का वर्णन**	
६७०	तीन पर्षदा के देवों की स्थिति तथा संख्या	५१६
६७१	सामानिक-आत्मरक्षक देवों की संख्या	५२१
६७२	शक्ति-स्थिति-विमान-आधिपत्य	५२३
६७३	यान विमान	५२५
६७४	दश प्रकार के वैमानिक देवों के नाम	५२६
६७५	कौन देव अच्युत स्वर्ग से आगे नहीं जा सकते	५२६
६७६	**नव ग्रैवेयक का वर्णन** (स्थान-शोभा)	५३२
६७७	इन्द्रक विमान का नाम	५३४
६७८	प्रतरवार, एक पंक्तिगत विमान	५३७
६७६	१-२-३ ग्रैवेयक के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	५३६

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
९८०	४-५-६ ग्रवैयेक के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	५४१
९८१	७-८-९ ग्रवैयेक के त्रिकोण आदि तथा सब विमानों की संख्या	५४४
९८२	अधोत्रिक के त्रिकोण आदि सब पंक्तिगत विमानों की संख्या	५४६
९८३	मध्यम-ऊर्ध्व त्रिक के त्रिकोण आदि सब पुष्पावकीर्णक पंक्तिगत सब विमानों की संख्या	५५०
९८४	नव ग्रैवेयक के कुल त्रिकोण आदि, पुष्पावकीर्णक, पंक्तिगत सब विमानों की संख्या	५५३
९८५	पृथ्वी पिंड-विमान-उच्चत्व	५५५
९८६	शरीर की शोभा के विषय में	५५८
९८७	श्री जिनेश्वरों की भाव से पूजा करने के विषय में	५६०
९८८	उसके विषय में तत्वार्थ की समानता	५६०
९८९	कौन से देव से कौन से देव ज्यादा सुखी है	५६४
९९०	वैषयिक सुख की उपेक्षा	५६९
९९१	इन देवों के चतुर्थ व्रत विषय में प्रश्न	५७२
९९२	प्रथम ग्रैवेयक के देवों के आयुष्य तथा देहमान	५७५
९९३	दूसरे ग्रैवेयक के देवों के आयुष्य तथा देहमान	५७८
९९४	तीसरे ग्रैवेयक के देवों के आयुष्य तथा देहमान	५८०
९९५	चौथे ग्रैवेयक के देवों के आयुष्य तथा देहमान	५८२
९९६	पाँचवे ग्रैवेयक के देवों के आयुष्य तथा देहमान	५८४
९९७	छठे ग्रैवेयक के देवों के आयुष्य तथा देहमान	५८६
९९८	सातवें ग्रैवेयक के देवों के आयुष्य तथा देहमान	५८८
९९९	आठवें ग्रैवेयक के देवों के आयुष्य तथा देहमान	५९०
१०००	नौवे ग्रैवेयक के देवों के आयुष्य तथा देहमान	५९२
१००१	आहार तथा श्वासोच्छवास	५९४
१००२	गति-अगति	५९५
१००३	उपपात-च्यवन-विरहकाल	५९७
१००४	अवधिज्ञान का विषय-आकार	६००
१००५	अनुत्तर विमानों का वर्णन (स्थान-नाम की सार्थकता)	६०३
१००६	पाँचों विमानों की क्या रीति है	६०५
१००७	विमानों के नाम	६०७
१००८	त्रिकोण पंक्तिगत तथा सर्व विमानों की संख्या	६०९
१००९	ऊर्ध्व लोक के त्रिकोण आदि सर्व विमानों की संख्या	६११
१०१०	ऊर्ध्व लोक के पंक्तिगत, पुष्पावकीर्णक तथा सर्व विमानों की संख्या	६१३
१०११	पाँच विमानों का प्रमाण	६१६
१०१२	देवों को काल निर्गमन	६१९
१०१३	पाँचों विमानों के देवों की स्थिति	६२१

क्र० सं०	विषय	श्लोक सं०
१०१४	मोती से युक्त चन्दरवा का वर्णन	६२३
१०१५	मोती की मधुर ध्वनि से काल निर्गमन	६२७
१०१६	विजयादि चार विमानों के देवों का देहमान	६३०
१०१७	स्वार्थ सिद्ध के देवों का देहमान	६३२
१०१८	पाँचों विमानों के देवों का आहार-श्वांसोच्छ्वास	६३३
१०१६	अनुत्तर विमान में यहाँ कौन जीव उत्पन्न होय	६३६
१०२०	गति अगति	६३६
१०२१	विजय आदि में गया जीव एक अवतारी या अनेक अवतारी?	६४१
१२२२	पाँच विमानों के देवों का अल्प-बहुत्व	६४४
१०२३	उपपात-च्यवन-विरह काल-	६४५
१०२४	अवधि ज्ञान-आकार-अवधि ज्ञान की समय मर्यादा	६४७
१०२५	**सिद्धशिला का वर्णन** (स्थान)	६५१
१०२६	लम्बाई-चौड़ाई-परिधि	५४२
१०२७	मध्य भाग की ऊँचाई	६५४
१०२८	चार नाम	६५७
१०२६	लोकान्त की दूरी	६६०
१०३०	सिद्ध कौन हैं	६६३
१०३१	अलोक के विषय में	६६५
१०३२	सर्गसमाप्ति	६७०

दो-शब्द

अपने साधु जीवन के प्रारम्भिक काल से सुनता आ रहा था कि, उपाध्याय 'श्री विनय विजय' जी गणि वर्य रचित 'लोक प्रकाश' महान ग्रन्थ है । अनेकों बार वयोवृद्ध श्रमण भगवंतों के मुखारविंद से इस ग्रन्थ में जैन दर्शन के सभी तत्वों का समावेश है, द्रव्य लोक-क्षेत्र लोक -काल लोक एवं भाव लोक के सभी पदार्थों का ज्ञान इसमें है । उस समय ज्ञान की इतनी क्षमता भी नहीं थी की तत्काल इस ग्रन्थ की अद्‌भुत सूक्ष्मता को समझ पाता। जैसे-जैसे संयम साधना चलती रही, शास्त्रों का पठन-पाठन-मनन-अनुशीलन चलता रहा। बुद्धि में भी कुछ जानने-समझने की पात्रता आती गई। अनेकों दुर्लभ ग्रन्थों को पढ़कर-समझकर हिन्दी भाषा में रूपान्तर करने का क्रम भी अविरत गति से चलता रहा । इस ग्रन्थ के प्रति मन में अधिक-अधिक उत्कंठा जागृत होती गई। सौभाग्य से 'लोक प्रकाश' ग्रन्थ पढ़ने में आया । पूर्ण मनोंयोग से दत्तचित्त होकर कई बार आद्यान्त पारायण किया । ग्रन्थराज में वर्णित गूढ़ तत्वों का भान होने पर पता चलता है कि वस्तुत: यह ग्रन्थ तो जैन साहित्य की अमूल्यं निधि है । विभिन्न गुजराती भाषा में रूपान्तरित संस्करण पढ़ने में आये । मन में विचार जाग्रत हुआ कि ऐसे अनुपम और दुर्लभ ग्रन्थ का हिन्दी भाषा प्रचलन न होना बड़ा ही कष्टकारी है । हिन्दी तो राष्ट्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है और हिन्दी भाषी प्रदेश भी कितने ही हैं। बस इसी भावना से प्रेरित होकर बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का आलम्बन पाकर सम्पूर्ण 'लोक प्रकाश' ग्रन्थ सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद करने का द्रढ़ निश्चय कर लिया । श्रुत ज्ञान देव की परम कृपा एवं पूज्य गुरू भगवतों के शुभार्शीवाद से दो वर्ष की अल्पावधि में ही सम्पूर्ण ग्रन्थ को पाँच भागों में हिन्दी भाषा में रूपान्तरित कर सका । यह वर्ष मेरी दीक्षा पर्याय का ५० वाँ साल चल रहा है, उधर ग्रन्थराज 'लोक प्रकाश' का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो रहा है । 'अहो कल्याणं परम्परा' मेरे लिये तो बहुत ही आनन्द दायक है । यह मणिकांचन योग बहुत ही श्रेयस्कर है ।

इस ग्रन्थ का मनोयोग पूर्वक अध्ययन व चिन्तन करने से जैन दर्शन के गूढ व दुर्लभ तत्वों का ज्ञान मिलता है । जीव द्रव्य लोक-क्षेत्र लोक-काल लोक और भाव लोक के पदार्थों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान प्राप्त होता है । इन तत्वों को जानकर मनुष्य जीव हिंसा के पापों से भी बच सकता है और कर्म रहित भी हो सकता है। पवित्र वीत राग परमात्म-मार्ग की आराधना करके मुक्ति पथ का पथिक बनता है। ग्रन्थराज सम्पूर्ण पाँचो भागों में छप चुका है । अपनी अनुकूलताअनुसार पाठक गण प्राप्त कर पठन-पाठन करेगें तो कल्याण होगा ।

'क्षेत्र लोक (उत्तरार्द्ध)' नाम से प्रसिद्ध 'लोक प्रकाश' ग्रन्थ का तीसरा भाग (सर्ग २१ से २७ तक) आपके हाथों में हैं। वर्ण्य विषय की अनुक्रमणिका इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक पृष्ठों पर दी गई है, इससे विषय अन्वेषन में सुविज्ञ पाठक जन को सुविधा होगी। इस ग्रन्थ का विषय यद्यपि दुरुह है फिर भी सूक्ष्मति सूक्ष्म विचार पूर्ण रूप से जैन शैली के अनुरूप हैं। भाषानुवाद में मेरी मतिमंदता अथवा कथचित् प्रमाद वश कहीं कोई स्खलनता रही हे तो मिच्छामि दुक्कडं करोमि"।

सुहृय एवं सुविज्ञजन विचार सहित अध्ययन करें। कहा भी है कि -

अवश्यं भाविनो दोषाः, छद्मस्थत्वानु भावतः।
समाधिंतन्वते सन्तः, किंनराश्चात्र वक्रगा ॥
गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, साधयन्ति सज्जनाः ॥

शिवं भवतु-सुखं भवतु-कल्याणं भवतु

आचार्य पद्म चन्द्र सूरि का धर्म लाभ

परम पूज्य आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय पद्म चन्द्र सूरीश्वर जी म० सा० द्वारा प्रकाशित सरल आध्यात्म हिन्दी साहित्य

		रु० पै०
१.	योग शास्त्र	६०=००
२.	संवेग रंगशाला	४०=००
३.	जैन रामायण	२०=००
४.	महाभारत (पांडव चरित्र)	२०=००
५.	उपदेश माला	७०=००
६.	वंदित्तु सूत्र	२५=००
७.	समरादित्य महाकथा	३०=००
८.	आध्यात्म सार	१२=००
९.	युगादिदेशना	५=००
१०.	पर्व कथा संग्रह	३=००
११.	ज्ञान सार अष्टक	१=५०
१२.	प्रशम रति	२=००
१३.	देव वंदन माला	७=००
१४.	पूजा कैसे करनी चाहिये	२=००
१५.	तीर्थ हस्तिनापुर	०=५०
१६.	प्राचीन तीर्थ (पुरिम ताल) इलाहाबाद	५=००
१७.	ललित भक्ति दर्पण	०=३५
१८.	श्री शान्ति नाथ चरित्र	२५=००
१९.	श्री नेमिनाथ चरित्र	२०=००
२०.	श्री पार्श्वनाथ चरित्र	२५=००
२१.	श्री धर्म कथा संग्रह भाग-१	६०=००
२२.	श्री धर्म कथा संग्रह भाग-२	६०=००
२३.	श्री धर्म कथा संग्रह भाग-३	९०=००
२४.	बीस स्थानक तप आराधना विधि	१२=००
२५.	त्रैलोक्य प्रकाश	७०=००
२६.	पंचाशक प्रकरण	१००=००
२७.	लोक प्रकाश भाग-१	१५०=००
२८.	लोक प्रकाश भाग-२	१५०=००
२९.	लोक प्रकाश भाग-३	१५०=००
३०.	लोक प्रकाश भाग-४	१५०=००
३१.	लोक प्रकाश भाग-५	१५०=००

नोट - श्री ऋषभ देव चरित्र, पंच वस्तुक तथा श्राद्ध विधि कर्म प्रेस में हैं।

ॐ अर्हम् नमः

श्री आत्मवल्लभ, ललित, पूर्णानंद, प्रकाश चन्द्र सूरिभ्यो: नमः

श्रीमद् विनय विजयोपाध्याय विरचित

श्री लोक प्रकाश

क्षेत्र लोक (उत्तरार्ध)

(तृतीय विभाग)

इक्कीस सर्गः

अथास्य जम्बू द्वीपस्य, परिक्षेपकमम्बुधिम् ।
कीर्त्तयामि कीर्त्तिगुरुप्रसादप्रथितोद्यमः ॥१॥

परमपूज्य उपाध्याय श्री कीर्ति विजय जी गुरुदेव की कृपा से मेरे ज्ञान का उद्यम विस्तृत बना है वह मैं (विनय विजय) अब जम्बूद्वीप के आस पास लिपटे हुए समुद्र का वर्णन करता हूँ । (१)

तस्थुषो भोगिन इवावेष्टयैनं द्वीपशेवधिम् ।
क्षारोदकत्वादस्याब्धेर्लवणोद इति प्रथा ॥२॥

जिस तरह सर्प निधान को लिपटा रहता है वैसे इस द्वीप रूप निधान को लिपट कर रहा इस समुद्र का पानी खारा होने से उसका नाम लवण समुद्र कहलाता है ।

चक्रवाल तया चैष, विस्तीर्णो लक्षयोर्द्वयम् ।
योजनानां परिक्षेप परिमाणमथोच्यते ॥३॥

लवण समुद्र गोलाकार से चारों तरफ दो लाख योजन का विस्तार वाला है। अब उसकी परिधि का परिमाण कहते हैं। (३)

एकाशीतिसहस्राढया, लक्षाः पंच्चदशाथ च ।
शतमेकोनचत्वारिंशताऽऽढयं किच्चिदूनया ॥४॥
एषोऽस्य बाह्यपरिधिर्धातकीखण्डसन्निधौ ।
जम्बू द्वीपस्य परिधिर्यः स एवान्तरः पुनः ॥५॥

इस लवण समुद्र की पंद्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस (१५८११३९) में कुछ कम बाह्य परिधि घातकी खंड के पास में है और जम्बू द्वीप के पास है वह तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन से कुछ अधिक है। वह लवण समुद्र की अभ्यंतर परिधि है । (४-५)

जम्बू द्वीप की चौड़ाई एक लाख योजन की है तथा लवण समुद्र की एक ओर की चौड़ाई दो लाख योजन की है, दोनों तरफ की चौड़ाई चार लाख होती है। बीच में जम्बू द्वीप एक लाख उसमें मिलाने से कुल पांच लाख होती है । इस गोलाकार क्षेत्र की परिधि उसकी चौड़ाई करते ३- १/३ से कुछ अधिक होता है । लवण समुद्र के पूर्व किनारे से पश्चिम किनारे तक का माप पांच लाख होता है अथवा उत्तर से दक्षिण किनारे तक भी पांच लाख होता है । उसकी परिधि के अनुसार १५८११३९ में कुछ कम योजन होता है ।

पूर्व पूर्व द्वीपवार्द्धिपरिक्षेषा हि येऽन्तिमाः ।
त एवाग्रयाग्रय पाथोधि द्वीपेष्वभ्यन्तरा मताः ॥६॥

पूर्व पूर्व द्वीप समुद्रों की जो बाह्य परिधि है वह उसके बाद के द्वीप समुद्रों की अभ्यंतर परिधि जानना । (६)

अभ्यन्तर बाह्य परिक्षेप योगे ऽर्द्धिते सति ।
परिक्षेपा मध्यमाः स्युर्विनाऽऽद्यं द्वीपवार्द्धिषु ॥७॥

अभ्यंतर और बाह्य परिधि का जोड़ करके उसका आधा करने पर वह जम्बू द्वीप बिना प्रत्येक समुद्र द्वीप की मध्य भाग की परिधि होती है । जैसे कि जम्बू द्वीप की परिधि ३१६२२७ योजन से कुछ अधिक है और लवण समुद्र की परिधि १५८११३९ योजन से कुछ कम है । (७)

लक्षा नवाष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि षट्शती ।
त्र्यशीतिश्च मध्यमोऽयं, परिधिर्लवणोदधौ ॥८॥

इन दोनों का जोड़ करके आधा करने पर लगभग (९४८६८३) नौ लाख अड़तालीस हजार छः सौ तिरासी लवण समुद्र की मध्यम परिधि होती है । (८)

प्रवेशमार्गरूपो यस्तटाकादिजलाश्रये ।
भूप्रदेशः क्रमान्नीचः, सोऽत्र गोतीर्थमुच्यते ॥६॥

तलाब आदि जलाशय में प्रवेश के मार्ग रूप पृथ्वी का प्रदेश अथवा किनारे के भाग जो धीरे-धीरे ढलते हुए नीचे जाता है उसे गो-तीर्थ कहते हैं । (६)

गोतीर्थं तच्च लवणाम्बुधावुभयतोऽपि हि ।
प्रत्येकं पञ्चनवति, सहस्रान् यावदाहितम् ॥१०॥

लवण समुद्र में वह गोतीर्थ समुद्र के दोनों किनारों से होता है अतः जम्बू द्वीप से और घातकी खंड से पचानवे हजार (९५०००) योजन तक ढलान होता है । (१०)

जम्बू द्वीप वेदिकान्तेऽङ्ग लासंख्यांशंसमितम् ।
गोतीर्थं घातकी खण्ड वेदिकान्तेऽपि तादृशम् ॥११॥

जम्बू द्वीप से वेदिका (किलो) के अंत में पास में वह गोतीर्थ अंगुल के असंख्यातवें भाग का प्रमाण है, उसी प्रमाण से घातकी खंड की वेदिका के अंत में गोतीर्थ अंगुल के असंख्यातवें भाग का प्रमाण है । (११)

ततश्च— अब्धावुभयतो यावद्गम्यतेंऽशाङ्गुलादिकम् ।
भक्ते तस्मिन् पञ्चनवत्याऽऽप्तं यत्तन्मितोण्डता ॥१२॥

इससे समुद्र के दोनों किनारे जितने अंश-अंगुल आदि से जाया जाए उसे उस संख्या को पंचानवे द्वारा भाग करने पर जो संख्या आती है उतने अंश-अंगुल आदि के माप की समुद्र की गहराई होती है । (१२)

यथा पञ्चनवत्यांशैरतिक्रान्तैः पयोनिधौ ।
भुवोऽंशो हीयते पंचनवत्याऽङ्गुलमङ्गुलैः ॥१३॥

योजनैश्च पञ्चनवत्यैकं योजनमप्यथ ।
शतैः पञ्चनवत्या च योजनानां शतं ह्रसेत् ॥१४॥

एवं च पञ्चनवतिसहस्रान्ते समक्षितेः ।
निम्नतोभयतोऽप्यत्र, जाता सहस्रयोजना ॥१५॥

जैसे किनारे की समतल भूमि से समुद्र में पंचानवें अंश जाने पर, एक अंश की गहराई होती है । पंचानवे अंगुल जाने पर एक अंगुल गहराई होती है । पंचानवे योजन जाने के बाद एक योजन की गहराई होती है, पंचानवे सौ योजन जाने के बाद सौ योजन की गहराई होती है और दोनों तरफ से पंचानवे हजार योजन जाने के बाद लवण समुद्र के मध्य में एक हजार योजन की गहराई होती है । (१३-१५)

तथाहु – जत्थिच्छसि उव्वेहं ओगाहित्ताण लवण सलिलस्स ।
पञ्चाणइउ विभत्ते जं लद्धं सो उ उव्वेहो ॥१६॥

वह इस प्रकार कहा है कि – लवण समुद्र में अवगाहन करके जहां तुम्हे गहराई जानने की इच्छा हो उसे पंचानवे की संख्या के द्वारा भाग करने से जो उत्तर आए वही उसकी गहराई समझना । (१६)

ततश्च - द्वयोर्गोतीर्थयोर्मध्ये सहस्रयोजनोन्मितः ।
स्यादुद्वेधः सहस्राणि, दश यावत्समोऽभितः ॥१७॥

और इससे दोनों गोतीर्थ के मध्य में चारों तरफ से समान दस हजार योजन तक है, एक हजार योजन प्रमाण गहराई है । (१७)

जम्बू द्वीप वेदिकान्तेऽङ्गुलासंख्यांश संमितम् ।
सलिलं घातकी खण्ड वेदिकान्तेऽपिताद्दशमं ॥१८॥

ततः पञ्चनवत्यांशैर्वर्द्धन्ते षोडशांशकाः ।
अंङ्गुलैः पञ्चनवत्या, वर्द्धते षोडशाङ्गुली ॥१९॥

जम्बू द्वीप और घातकी खंड की वेदिका के अन्त भाग में अंगुल के असंख्यातवें भाग अनुसार पानी होता है, उसके बाद पंचानवे अंश आगे जाते पानी की शिखा सोलहवें अंश में बढ़ती है और पंचानवे अंगुल जाय तो सोलह अंगुल बढ़ती है । (१८-१९)

अत्रायमाम्नाय :-

घातकीखण्डतो जम्बूद्वीपतो वा पयोनिधौ ।
जिज्ञास्यते जलोच्छ्रायो, यावत्स्वंशाङ्गुलादिषु ॥२०॥

पञ्चोनशत भक्तेषु, सत्सु तेषु यदाप्यते ।
तत् षोडश गुणं यावत्तावांस्तत्र जलोच्छ्रयः ॥२१॥

यहां इस तरह वृद्ध परम्परा है कि घातकी खंड अथवा जम्बू द्वीप से समुद्र के अन्दर जितने अंश-अंगुल योजनादि जाने के बाद पानी की ऊंचाई जानने की इच्छा हो तो उतने अंश अंगुल योजनादि को पंचानवे के साथ में भाग देना और भाग देने पर जो संख्या बनती हो उससे सोलह गुणा पानी की ऊंचाई वहां होती है । ऐसा समझना । (२०२१)

यथाऽत्र पञ्चनवतेर्योजनानामतिक्रमे ।
विभज्यन्ते योजनानि, पञ्चोनेन शतेन वै ॥२२॥

एकं योजनमाप्तं यत्तत्षोडशभिरहतम् ।
योजनानि षोडशैवं, ज्ञातस्तत्र जलोच्छ्रयः ॥२३॥

जिस तरह पंचानवे योजन समुद्र में जाने के बाद उस पचानवे को पंचानवे से भाग करने पर एक योजन प्राप्त होता है वैसे सोलह से गुणा करने से सोलह योजन आता है । इससे पंचानवे योजन से पानी की ऊंचाई सोलह योजन समझना । ९५÷९५=१, १×१६ =१६ योजन). (२२-२३)

तथाहुः क्षमाश्रमण मिश्राः-

जत्थिच्छसि उस्सेह ओगाहित्ताण लवण सलिलस्स।
पंचाण उइविभत्ते सोलसगुणिए गणियमाहु ॥२४॥

श्री जिनभद्र गणि क्षमा श्रमण कहते हैं कि - लवण समुद्र का अवगाहन करके, जहां से पानी की ऊंचाई जानने की इच्छा हो वहां के योजन को पंचानवे की संख्या से भाग देकर सोलह से गुणा करने पर जो संख्या आती है वह उसके पानी की ऊंचाई जानना चाहिए । (२४)

एतश्च घातकी खंड जम्बू द्वीपान्त्यभूमितः ।
दत्वा दवरिकां मध्ये, शिखोपरितलस्य वै ॥२५॥

अपान्तराले च किमप्याकाशं यत् जलोज्झितम् ।
तत् सर्वं कर्ण गत्यैतत्संबन्धीति जलैर्भृतम् ॥२६॥

जम्बू द्वीप और घातकी खंड के किनारे की अंतभूमि से शिखा के उपरितन तल के मध्य में रस्सी रखने से यह गणित होता है और बीच में भी जो आकाश क्षेत्र पानी रहित है वह भी कर्णगति सम्बन्ध अर्थात् समुद्र सम्बन्धित है । इससे वह पानी वाला है । इस तरह मानना चाहिए । (२५-२६)

विवक्षित्वा मानमुक्तं जलोच्छ्रयस्स निश्चितम् ।
मेरोरेकादशभागपरिहाणिरिवागमे ॥२७॥

इस तरह से कर्णगति द्वारा विवक्षा करके जल की ऊंचाई का निश्चित रूप मानने का कहा है । आगम में जिस तरह मेरूपर्वत की एकादशा भाग परिहार कहा है वैसे यह समझना चाहिए । (२७)

तथाहु :- श्री मलयगिरिपादा: ''इह षोडश सहस्त्र प्रमाणाया: शिखाया: शिर सि उभयोश्च वेदिकान्तयोर्मूले दवरिकायांदत्तायांयदपान्तराले किमपि जलरहितमाकाशं तदपि कर्णगत्या तदाभाव्यमिति सजलं विवक्षित्वा विवक्षित मुच्यमानमुच्चत्व परिमाणमवसेयं यथा मन्दर पर्वत स्यैकादश भाग परिहाणि'' रिति॥

''इस विषय में परम पूज्य आचार्य मलयगिरि जी महाराजा जी कहते हैं कि- यहां सोलह हजार प्रमाण शिखा ऊपर और दोनों वेदिका के अन्त भाग पर रस्सी रखे और उसके बाद बीच में जो आकाश प्रदेश जल रहित रहता है, वह भी कर्णगति द्वारा उसका ही अर्थात् समुद्र सम्बन्धी ऊंचाई का माप समझकर उसकी जल सहित विवक्षा करना चाहिए । जैसे मेरू पर्वत की गिनती में ग्यारहवां भाग परिहाण कहा है, वैसे ही ऊंचाई की परिमाण कहलाती है ऐसा समझना ।''

वस्तुत: पुनरूभयोर्द्वीपयोर्वेदिकान्तत: ।
प्रदेशवृद्धयोभयतो वर्द्धतेऽम्बु क्रमात्तथा ॥२८॥

वास्तविकता में तो दोनों द्वीप की वेदिका को अन्तिम भाग किनारे से दोनों प्रदेश से वृद्धि क्रमश: पानी की वृद्धि होती जाती है । (२८)

यथाऽस्मिन् पञ्चनवतिसहस्त्रान्ते भवेज्जलम ।
योजनानां सप्त शतान्युच्छ्रितं समभूतलात् ॥२९॥

योजनानां सहस्रं चोद्वेधोऽत्र समभूतलात् ।
एवं सप्तदश शतान्युद्वेधोद्धत्रपयोनिधेः ॥३०॥

दोना द्वीपों की वेदिका के अन्तिम विभाग के पास से क्रमश पानी की गहराई और ऊंचाई बढ़ती जाती है वह इस तरह बढ़ती जाती है कि – पंचानवे हजार योजन आगे जाते पानी की ऊंचाई सात सौ योजन होती है और पानी की गहराई एक हजार योजन होती है । इस तरह यहां मध्य भाग से समुद्र की तली से पानी की कुल ऊंचाई सत्रह सौ योजन होती है । (२६-३०)

ततः परे मध्यभागे, सहस्रदशकातते ।
जलोच्छ्रयो योजनानां स्यात्सहस्राणि षोडशः ॥३१॥

उसके बाद के दस हजार योजन विस्तार वाले, मध्य भाग में जल की ऊंचाई सोलह हजार होती है । (३१)

सहस्रमत्राप्युद्वेध; उच्छ्रयोद्वेधतस्ततः ।
योजनानां सप्तदश सहस्राण्युदकोच्चयः ॥३२॥

इस स्थान पर भी समभूतल से पानी की ऊंचाई एक हजार की होती है वहां से उसमें पानी की सोलह योजन ऊंचाई मिलाने पर कुल सत्रह हजार योजन पानी की ऊंचाई होती है ।

एवं जघन्योच्छ्रयोऽस्याङ्गुलासङ्ख्यांशसंमितः ।
उत्कर्षतो योजनानां, सहस्राणि च षोडश ॥३३॥

मध्य मस्तूच्छ्रयो वाच्यो, यथोक्ताम्नायतोऽम्बुधे ।
तत्र तत्र विनिश्चित्यजलोच्छ्रयमेनकधा ॥३४॥

इस तरह से पानी की जघन्य से ऊंचाई अंगुल के असंख्यातवें अंश है और उत्कृष्ट से सोलह हजार योजन की है एवं मध्यम ऊंचाई समुद्र के यथोक्त आम्नाय से उस उस स्थान पर अनेक प्रकार की जानना । (३३-३४)

अथास्य लवणाम्भोधेर्गणितं प्रतरात्मकम् ।
घनात्मकं च निर्णेतुं यथाऽऽगमपुपक्रमे ॥३५॥

अब लवण समुद्र का प्रतरात्मक और धनात्मक गणित करने के लिए आगम अनुसार कहना प्रारंभ करता हूँ । (३५)

लवणाम्बुधि विस्तारात्सहस्त्राणि दश स्फुटम् ।
शोधयित्वा शेषमर्द्धीकृतं दशसहस्त्रयुकं ॥३६॥

जातं पञ्चं सहस्त्राढय, लक्षमेकमिदं पुनः ।
अस्मिन् प्रकरणे कोटिरित्येवं परिभाषितम् ॥३७॥

लवण समुद्र का विस्तार दो लाख योजन में से दस हजार योजन निकाल देने पर एक लाख नब्बे हजार (१६००००) योजन रहता है । उसका आधा करने से ६५००० रहता है । उसमें दस हजार मिलाने से एक लाख पांच हजार होते हैं । उसे इस प्रकरण में लवण समुद्र की कोटी नाम की परिभाषा दी है । अर्थात् इसे कोटि कहा जाता है । (३६-३७)

अथैववंरूपया कोट्या, गुणयेल्लवणाम्बुधेः ।
मध्यमं परिधेर्मान, स्यादेव प्रतरात्मकम् ॥३८॥

अब इस प्रकार की कोटि द्वारा लवण समुद्र के मध्य भाग की परिधि से माप-मान निकालने में आए तो नीचे के अनुसार प्रतरात्मक मान आता है । (३८)

तच्चेदं - सहस्त्राणि नव कोटिनां, तथा नव शतान्यपि ।
एक षष्टिः कोट्यश्च लक्षाः सप्तदशोपरि ॥३६॥

सहस्त्राणि पञ्चदश योजनानामिदं जिनैः ।
प्रतरं लवणे प्रोक्तं, सर्वं क्षेत्रफलात्मकम् ॥४०॥

नौ हजार नौ सौ इकसठ करोड़ सत्तर लाख पंद्रह हजार (६६,६११७१५०००) योजन का लवण समुद्र का सम्पूर्ण क्षेत्रफल स्वरूप प्रतरात्मक गणित श्री जिनेश्वर भगवन्त ने कहा है । वह इस प्रकार है - लवण समुद्र की मध्यम परिधि ६४८६८३ को करोड़ करने से ६४८६८३×१०५००० = ६६६११७१५००० योजन का लवण समुद्र प्रतरात्मक गणित होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि लवण समुद्र के एक-एक योजन टुकड़े को एक-एक प्रतर कहते हैं। (३६-४०)

मध्य भागे सप्तदश, सहस्त्राणि यदीरितम् ।
जलमानं तदनेन, प्रतरेणाहतं घनम् ॥४१॥

सतरह हजार (१७०००) योजन स्वरूप मध्यम भाग की जल की ऊंचाई को प्रतर द्वारा गुणा करने से धन आता है । (४१)

कोटय: षोडश कोटीनां, लक्षास्त्रिनवतिस्तथा ।
एकोन चत्वारिंशच्च, सहस्राणि ततः परम् ॥४२॥

सपञ्चदसकोटीनि, नवकोटीशतान्यथ ।
परिपूर्णा योजनानां, लक्षा: पञ्चाशदेव च ॥४३॥

एतावद् धनगणितं कथितं लवणार्णवे ।
विलसत्केवलालोकविलोकितजगत्रयै: ॥४४॥

विलास प्राप्त किये केलव ज्ञान रूप सूर्य द्वारा तीन जगत को देखने वाले श्री जिनेश्वर भगवन्त ने लवण समुद्र का धन गणित सोलह करोड़ तीन लाख उन्तालीस हजार नौ सौ पंद्रह करोड़ और पचास लाख (१६,९३३९,१५,५०,००,०००) योजन कहा है वह इस प्रकार है । उदाहरण तौर पर ९९९६११७ १५००० प्रतर के माप के जल की ऊंचाई साथ में गुणा करने से धन गणित आता है । वह १७००० योजन जल की ऊंचाई है । ९९९६११७१५०००x१७०००/१६, ९३३९, ९१५५०००००० योजन का धन गणित होता है । (४२ से ४४)

नन्वेतावद् धनमिह, कथमुत्पद्यते? यत: ।
न सर्वत्र सप्तदश, सहस्राणि जलोच्छ्रय: ॥४५॥

किन्तु मध्यभाग एव, सहस्रदशकावधि ।
अत्रोच्यते सत्यमेतत्तत्वमाकर्ण्यतां परम् ॥४६॥ *युग्मं //*

यहां प्रश्न करते हैं कि - इतना धन किस तरह प्राप्त हो सकता है क्योंकि प्रत्येक स्थान पर जल की ऊंचाई सत्रह हजार योजन नहीं है - किन्तु दस हजार योजन रूप मध्य भाग में सत्रह हजार की ऊंचाई है । इसका उत्तर देते हैं - तुम्हारी बात सत्य है परनतु वास्तविकता सुनो - (४५-४६)

अब्धे: शिखाया उपरि, द्वयोश्च वेदिकान्तयो: ।
दत्तायां दवरिकायामृज्व्यामेकान्तत: किल ॥४७॥

अनतराले यदाकाशं, स्थितमम्बुधि वर्जितम् ।
तत्सर्वमेतदाभाव्यमित्यम्बुधितयाऽखिलम् ॥४८॥

विवक्षित्वा मानमेतन्निरूपितं धनात्मकम् ।
एतद्विवक्षाहेतुस्तु गम्यः केवलशालिनाम् ॥४६॥

समुद्र के शिखर के ऊपर से और दोनों वेदिका तक बराबर सीधी रस्सी रखी जाय और बीच में जो आकाश क्षेत्र बिना पानी का है, उसे भी पानी वाला समझना चाहिए । यह विवक्षा करने से यह धनात्मकमान कहा है । परन्तु इस विवक्षा का हेतु श्री केवली भगवंत ही जानते हैं । (४७ से ४६)

तथाहु र्दुष्षमाध्वानतनिर्मग्नागमदीपकाः ।
विशेषणवती ग्रन्थे, जिनभद्र गणीश्वराः ॥५०॥

तथा दुषम काल के अंधकार में डूबे हुए को आगम के दीपक समान श्री जिनभद्र गणीश्वर ने विशेषणवती नामक ग्रन्थ में इस तरह कहा है । (५०)

''एयं उभय वेइ यंताओ सोलसहस्सुस्सेहस्स कन्नगईएजं लवण समुद्दाभव्वं जलसुन्नंपि खित्तं तरस गणियं, जहा मंदरस्स पव्वयस्स एक्कारस भाग हाणी कण्ण गइए आगासस्सवि तदाभव्वंतिकाऊण भणिया तहा लवण समुद्दस्सवि''

इन दोनों वेदिका के पास से सोलह हजार योजन जल की ऊंचाई तक कर्णगति से जल शून्य क्षेत्र को भी लवण समुद्र का ही क्षेत्र समझना । जिस तरह मेरूपर्वत के ग्यारह विभाग की हानि में कर्णगति से आकाश क्षेत्र को भी मेरूपर्वत रूप में गिना जाता है, वैसे ही लवण समुद्र का भी समझना चाहिए ।

मुखैश्चतुर्मुख इव द्वारैश्चतुर्भिरेष च ।
जगत्याऽऽलिङ्गितो भाति, स्थितैर्दिक्षुचतसृषु ॥५१॥

चारों दिशा में रहे चार द्वार रूप मुख से चार मुख वाला यह लवण समुद्र जगती द्वारा आलिंगित बना शोभायमान हो रहा है (५१)

पूर्वस्यां विजय द्वारं, शीतोदायाः किलोपरि ।
घातकी खण्ड पूर्वार्द्धाद्धिंशंत्या लवणाम्बुधौ ॥५२॥

द्वाराणि वैजयन्तादीन्यप्येवं दक्षिणादिषु ।
सन्त्यस्य दिक्षु तिसृषु, जम्बूद्वीपइव क्रमात् ॥५३॥

घातकी खंड के पूर्वार्ध में से लवण समुद्र में प्रवेश करती शीतोदा नदी के ठीक ऊपर पूर्वदिशा में विजय द्वार आया है । और विजयंतादि तीन द्वार भी जम्बू द्वीप के समान लवण समुद्र की तीन दिशाओं में अनुक्रम से आए है अर्थात् दक्षिण दिशा में वैजयंत द्वार, पश्चिम दिशा में जयंत द्वार और उत्तर दिशा में अपराजित द्वार आता है । (५२-५३)

विजयाद्याश्च चत्वारो, द्वाराधिष्ठायकाः सुराः ।
ज्ञेयाः प्रागुक्त विजय सदृक्षाः सकलात्मना ॥५४॥

विजयादि चारों द्वारों के अधिष्ठायक, विजयादिचार देवताओं से संपूर्ण रूप, पूर्व में कहे अनुसार विजयदेव के समान स्वरूप वाले जानना । (५४)

एतेषां राजधान्योऽपि, स्मृताः सर्वात्मना समाः ।
राजधान्या विजया, प्राक् प्रञ्चितरूपया ॥५५॥

इनका स्वरूप पहले कह गये हैं ऐसे जम्बू द्वीप के विजय देव की विजय राजधानी के समान प्रत्येक देवों की राजधानी समझना । (५५)

एताः किन्तु स्वस्व दिशि, क्षारोदकभयादिव ।
असङ्ख्य द्वीप पाथोधीनतीत्य परतः स्थिताः ॥५६॥

नाम्नैव लवणाम्भोधौ, रूचिरेक्षुरसोदके ।
योजनानां सहस्राणि, वगाह्य द्वादश स्थिताः ॥५७॥

परन्तु इन सब में लवण राजधानियाँ इस समुद्र के कड़वे पानी के भय से ही मानो इसी समुद्र से असंख्यद्वीप समुद्रों से असंख्यद्वीप समुद्रों का अतिक्रमण करने के बाद लवण समुद्र आया है जो कि नाम से ही लवण समुद्र है उसका पानी तो सुन्दर इक्षुरस समान है । उस समुद्र में बारह हजार योजन जाने के बाद उनकी राजधानियां हैं । (५६-५७)

सहस्राः पञ्चनवतिस्तिस्रो लक्षाः शतद्वयम् ।
अशीतियुक् योजनानां, कोशो द्वाराभिहान्तरम् ॥५८॥

इस लवण समुद्र के विजयादि चार द्वारों का परस्पर अन्तर तीन लाख पंचानवे हजार दो सौ अस्सी (३९५२८०) योजन और एक कोस है । (५८) इस

लवण समुद्र की परिधि १५,८१,१३६ योजन की है । उसको चार से भाग देने पर ३६५२८० योजन और कुछ अधिक होता है उसमें से एक-एक द्वार की चौड़ाई आठ योजन निकाल देने पर ३६५२७६ योजन होता है उसमें द्वार के मध्य भाग तक के ४ योजन मिलाने पर ३६५२८० योजन और कुछ अधिक होता है ।

द्वाराणां परिमाणं च, निःशेषरचनाञ्चितम् ।
जम्बूद्वीपद्वारगतमनुसंधीयतामिह ॥५६॥

इन द्वारों का परिमाण और रचना आदि सारा जम्बू द्वीप के द्वार के वर्णन अनुसार समझ लेना । (५६)

अथास्मिन्नम्बुधौ वेला, वर्द्धते हीयते च यत् ।
तत्रादिकारणीभूतान्, पाताल कलशान् ब्रुवे ॥६०॥

अब पाताल कलशों का वर्णन करते हैं - इस समुद्र में जो वेला-समुद्र के जल का उभार भरता और घटता है उसका मूल कारण भूत पाताल कलश हैं, उसका कुछ वर्णन करता हूँ । (६०)

सहस्रान् पञ्चनवतिं, वगाह्य लवणाम्बुधौ ।
योजनानां स एकैको मेरोर्दिक्षु चतसृषु ॥६१॥

लवण समुद्र में पंचानवे हजार योजन अवगाहन करके मेरू पर्वत से चारों दिशा में वे एक-एक पाताल कलश रहे हैं । (६१)

एव च - पाताल कुम्भाश्चत्वारो महालिञ्जरसंस्थिताः ।
वैरं स्मृत्वाऽब्धिना ग्रस्ता, अगस्त्यस्येव पूर्वजाः ॥६२॥

वह इस प्रकार :- वे चारों पाताल कलश बड़े घड़े के आकार वाले हैं । वे मानो पूर्व का वैर याद करके समुद्र ने अगस्तय ऋषि के पूर्वजों को ही ऐसे चार कलशों को ग्रास किया (पकड़ कर रखा) है । (६२)

वडवामुखनामा प्रागपाक्केयूपसंज्ञितः ।
प्रतीच्यां यूपनामायमुदीच्यामीश्वराभिधः ॥६३॥

उसमें जो पूर्व दिशा का कलश है उसका नाम बडवा मुख है, दक्षिण दिशा के कलश का नाम केयूप है, पश्चिम दिशा के कलश का नाम यूप है और उत्तर दिशा को कलश का नाम ईश्वर है । (६३)

"दाक्षिणात्य कलशस्य बृहत्क्षेत्र समासवृत्तौ केयूप इति नाम, प्रवचन सारो द्वार वृत्तौ केयूर इति समवायांग वृत्तौ स्थानांग वृत्तौ च केतुक इति ॥"

'दक्षिण दिशा के कलश का नाम वृहत्क्षेत्रसमास की टीका में केयूप कहा है, प्रवचन सारोद्वार की वृत्ति में केयूर तथा समवायांग सूत्र और ठाणांग सूत्र की टीका में केतुक नाम कहा है । देशी शब्द से तीनों अर्थ घटते हैं ।'

कालो महाकालनामा, वेलम्बश्च प्रभञ्जनः ।
क्रमादधीश्वरा एषां, पल्यायुषो महर्द्धि काः ॥६४॥

इन चारों कलशों के अधिष्ठायक देव एक पल्योपम के आयुष्य वाले और महाऋद्धि सिद्धि वाले होते है और उनका नाम अनुक्रम से काल, महाकाल, वेलंब और प्रभंजन है । (६४)

समन्ततो वज्रमयात्मनामेषां निरूपिताः ।
बाहल्यतष्ठिक्करिकाः सहस्त्र योजनोन्मिताः ॥६५॥

ये चारों कलश सम्पूर्ण रूप में वज्रमय है, इनके पट की मोटाई एक हजार योजन की है । (६५)

योजनानां सहस्त्राणि, दश भूले मुखेऽपि च ।
विस्तीर्णा मध्य भागे च लक्ष योजन संमिताः ॥६६॥

ये कलश मूल में नीचे और मुख के ऊपर दस हजार योजन के और मध्य-बीच में एक लाख योजन की चौड़ाई वाले हैं । (६६)

एक प्रोदशिक्या श्रेण्या मूलाद्विवर्द्धमानाः स्युः ।
मध्यावधि वक्रावधि ततस्तथा हीयमानाश्च ॥६७॥ (आर्या)

ये कलश एक प्रदेश की श्रेणि में मूल से मध्य भाग तक बढ़ते हैं, और उसके बाद मध्य से मुख तक घटते जाते हैं अर्थात् चौड़ाई में नीचे से मध्यभाग तक बढ़ता जाता है तथा बीच से ऊपर तक घटता है । (६७)

"इति प्रवचन सारो द्वार वृत्तौ"

परमेतत्त दोप पद्यते यद्येषां मध्यदेशे दश योजन सहस्त्राणि यावत् लक्ष योजन विष्कम्भता स्यात् यतः प्रदेश वृद्धया ऊर्ध्वं पचंचत्वारिंशद्योजन

सहस्त्रातिक्रम एवं उभयतो मूल विष्कम्भाधिकाया पञ्च चत्वारिंशत्सहस्त्ररुपायां विष्कम्भवृद्धौ सत्यां यथोक्तो लक्षयोजनरूपो विष्कम्भः संपद्यते, एवं हानिरपि सा त्वेषां मध्ये दश योजन सहस्त्राणि यावल्लक्ष योजन विष्कम्भता कप्युक्ता न दृश्यते, तदत्र तत्वं बहुश्रुता विदन्ति ॥''

''इस तरह से प्रवचन सारोद्वार की टीका में कहा है । परन्तु यह शास्त्र वचन तब घटता है जबकि मध्यप्रदेश में दस हजार योजन से अर्थात् बाहर की दस हजार योजन के साथ में गिनकर एक लाख योजन चौड़ाई होती है क्योंकि प्रदेश की वृद्धि से ऊपर पैंतालीस हजार योजन पार होने के बाद दोनों तरफ से मूल चौड़ाई की दस हजार योजन और पैंतालीस, पैंतालीस हजार योजन रूप चौड़ाई की वृद्धि होने से यथोक्त लाख योजन रूप चौड़ाई प्राप्त होती है । इसी तरह हानि भी गिन लेना परन्तु यह मध्य में दस हजार योजन से लेकर अर्थात् बाहर के १०००० योजन गिनने से एक लाख योजन तक की चौड़ाई कही दिखती नहीं है, इसलिए तत्व तो बहुश्रुत ज्ञानी पुरुष ही जाने। ''

योजनानां, लक्षमेकमवगाढा भुवोऽन्तरे ।
रत्नप्रभामूलभागं, द्रष्टुमुत्कण्ठिता इव ॥६८॥

रत्न प्रभा पृथ्वी के मूल विभाग को देखने के लिए उत्कंठित बने हों इस तरह ये कलश पृथ्वी के अन्दर एक लाख योजन गहरे हैं। (६८)

लक्षद्वयं योजनानां, सहस्त्राः सप्त विंशतिः ।
सप्तत्याढयं शतमेकं, त्रयः क्रोशास्तथोपरि ॥६९॥

एतत्पाताल कलशमुखानामन्तरं मिथः ।
एतन्मूल विभागानामप्येतावदिहान्तरम् ॥७०॥

एक पाताल कलश के मुख से दूसरे पाताल कलश के मुख का अन्तर दो लाख सत्ताईस हजार एक सौ सत्तर योजन तथा तीन कोस (२,२७,१७० योजन ३ कोस) का है इस तरह ही उसके मूल-नीचे तली का भी अंतर समझना । (६९-७०)

उपपत्ति श्चात्र :-

एषां चतुर्णां वदनविस्तारपरिवर्जिते ।
पयोधिमध्यपरिधौ, चतुर्भक्ते मुखान्तरम् ॥७१॥

तथाऽब्धि मध्यपरिधेरेतेषा मध्य विस्तृतौ ।
शोधितायां चतुर्भक्तै, शेषे स्याज्जढरान्तरम् ॥७२॥

उसकी सिद्धि यहां इस प्रकार करते है कि इन चार पाताल कलशों के मुख के विस्तार को छोड़कर शेष समुद्र की मध्य परिधि के चार विभाग करने से मुख अन्तर आता है वह इस प्रकार से :-

९,४८,६८४ मध्यम लवण समुद्र की परिधि ।

४००००/९०८६८३ इसे निकालने के बाद आई संख्या है, उसे चार से भाग देना चाहिये ।

९०८६८३४ = २२७१७० योजन ३ कोस, इस तरह एक कलश से दूसरे कलश के मुख और तली का अन्तर है ।

समुद्र के मध्यम परिधि में से कलश के मध्य विस्तार को निकाल देने के बाद चार संख्या से भाग देने से जो शेष रहे, उस कलश के एक मध्य से दूसरे कलश के मध्य (पेट) का अन्तर आता है । (७१-७२)

योजनानां लक्षमेकं, सप्तत्रिशत्सहस्त्रयुक् ।
सप्तत्याढयं शतं क्रोशास्त्रयस्तदिदमीरितम् ॥७३॥

एक लाख सैंतीस हजार एक सौ सत्तर योजन तीन कोस एक कलश के मध्य विभाग से दूसरे कलश के मध्य भाग का अन्तर कहा है । वह इस प्रकार से :- ९४८६८३ समुद्र की मध्यम परिधि

४०००० कलशों का मध्य विस्तार

५४८६८३ शेष रहे, उसमें चार का भाग दे

५४८६८३४ = १३७१७० योजन तीन कोस एक कलश से दूसरे कलश के मध्य विभाग का अन्तर होता है । (७३)

कल्प्यन्तेऽंशास्त्रयोऽमीषां, सचैकक: प्रमाणत: ।
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि, त्रय स्त्रिंशं शतत्रयम् ॥७४॥

योजनानां योजनस्य, तृतीयांशेन संयुतम् ।
अधस्तने तृतीयांशे, तत्र वायुर्विजृम्भते ॥७५॥

मध्यमे च तृतीयांशे, वायुर्वारि च तिष्ठत: ।
तृतीये च तृतीयांशे, वर्त्तते केवलं जलम् ॥७६॥

इन कलशों के तीन-तीन विभाग की कल्पना करनी, उनका एक-एक का प्रमाण ३३३३३६ १/३ योजन होता है, उसमें नीचे के तीसरे विभाग में वायु है, मध्य के तीसरे विभाग में वायु और पानी है और ऊपर तीसरे विभाग में केवल पानी है। (७४-७६)

अन्येऽपि लघुपाताल कलशा लवणाम्बुधौ ।
सन्ति तेषामन्तरेषु, क्षुद्रालिञ्जरसंस्थिता: ॥७७॥

इस लवण समुद्र में अन्य भी छोटे पाताल कलश हैं जो छोटे घड़े के आकार वाले हैं और ये चार बड़े पाताल कलशों के बीच में रहे हैं । (७७)

तथोक्त जीवाभिगम वृत्तौ - 'तेषां पाताल कलशा नामन्तरेषु तत्र तत्र देशे यावत् क्षुद्रालिञ्जरसंस्थाना: क्षुल्ला: पाताल कलशा: प्रज्ञप्ता' इति ।

'श्री जीवाभिगम की वृत्ति में भी कहा है कि उन पाताल कलशों के बीच के आन्तरों में उस स्थान में छोट घड़ों के आकार वाले छोटे पाताल कलश कहे हैं।'

अत्रायं संप्रदाय :-

जम्बूद्वीपवेदिकान्तादतीत्य लवणाम्बुधौ ।
पहस्रान् पञ्चनवतिं, तत्रायं परिधि: किल ॥७८॥

सल्लक्षद्वयनवतिसहस्र विस्तृते भवेत् ।
नव लक्षा: सप्तदश, सहस्राणि च षट्शती ॥७९॥

यहां इस तरह से वृद्ध परम्परा है - जम्बूद्वीप की वेदिका के अन्तिम में लवण समुद्र में पंचानवे हजार योजन जाने के बाद यह परिधि आती है । इस परिधि

में उसका विस्तार (व्यास) दो लाख नब्बे हजार योजन का होता है और इसकी परिधि नौ लाख सत्रह हजार साठ योजन की होती है । (७८-७९)

''अयं भावः पञ्चनवतिः सहस्राः समुद्र संबंन्धिन एक पार्श्वे, तावन्त एव द्वितीय पार्श्वे मध्ये चैकं लक्षं जम्बू द्वीप संबन्धि, एवं द्विलक्षनवति सहस्त्र विष्कम्भ क्षेत्रस्य परिधिर्नव लक्षाः सप्तदश सहसा षट्शतीत्येवंरूपो भवतीति ॥''

''यहां तात्पर्य यह है कि समुद्र सम्बन्धी पंचानवे हजार योजन एक तरफ, उसी ही तरह दूसरी तरफ पचानवे हजार योजन, एवं मध्य में जम्बूद्वीप सम्बन्धी एक लाख योजन, इस तरह दो लाख नब्बे हजार योजन क्षेत्र का विस्तार है और क्षेत्र की परिधि नौ लाख सत्रह हजार साठ योजन (९०१७०६०) योजन होता है ।''

चत्वारिंशत्सहस्रात्माशोध्यते मुखविस्तृतिः ।
महापाताल कुम्भनामस्माद्राशेस्ततः स्थितम् ॥८०॥

अष्टौ लक्षाः षष्ट्यधिकाः, सहस्राः सप्त सप्ततिः ।
भागे चतुर्भिरेतेषां, लब्धं तत्रान्तरं भवेत् ॥८१॥

लक्षद्वयं सहस्राणामेकोनविंशतिस्तथा ।
सपञ्चषष्टि द्वि शती, कुम्भानां महतां पृथक् ॥८२॥

महापाताल कलशों के मुख का विस्तार चालीस हजार योजन आता है उसे चार से भाग देने से महापाताल कलशों की परस्पर की दूरी प्राप्त होती है वह दो लाख उन्नीस हजार दो सौ पैंसठ (२१९२६५) योजन का महापाताल कुंभों का एक मुख से दूसरे मुख का अन्तर है । पहले गाथा ६९-७० में मुख का २२७१७० योजन तीन कोस अंतर कहा है वह मुख के मध्य भाग में जानना । जबकि यह कलश के किनारे से जानना । (८०-८२)

चतुर्ष्वप्यन्तरेष्वेषु, षडक्तयो नव नव स्थिताः ।
लघु पाताल कुम्भानामाद्यपङ्क्तौ च ते स्मृताः ॥८३॥

प्रत्येकं द्वे शते पञ्चदशोत्तरे किलान्तरम् ।
पूर्वोक्तं गुरु कुम्भानमेवमेभिश्च पूर्यते ॥८४॥

चार महापाताल कलशों के चारों के अन्तर में लघु पाताल कलशों की नौ–नौ श्रेणि है । उसमें चार अन्तर की प्रथम श्रेणी में दो सौ पंद्रह लघु (छोटे) पाताल कलश रहे हैं जो इस तरह कहे अनुसार लघु पाताल कलशों द्वारा महाकलशों का अन्तर पूर्ण होता है । (८३–८४)

एकैकस्योदरव्यासः, सहस्त्र योजनात्मकः ।
ततः शतद्वयं पञ्चदश सहस्त्र ताडितम् ॥८५॥

सहस्त्रैः पञ्चदशभिर्युक्तं लक्षद्वयं भवेत् ।
लघु कुम्भैरियद्रुद्धमेकैकस्यान्तरस्य वै ॥८६॥

एक–एक लघु पाताल कलश का विस्तार एक हजार योजन का है । अतः दो सौ पंद्रह को एक हजार से गुणा करने से दो लाख और पंद्रह हजार होता है । इतनी लघु कलशें द्वारा स्थान रोका हुआ है । ऐसा जानना । (८५–८६)

शेषं सहस्त्राश्चत्वारो, द्वि शती पञ्चषष्टि युक् ।
रूद्धं कथंचित्तत्प्रौढकुम्भान्तरमिथोऽन्तरैः ॥८७॥

महापाताल कलश के अन्तर के योजन में से लघु पाताल कलशों के विस्तार के योजन को निकालते चार हजार दो सौ पैंसठ (४२६५) योजन शेष रहता है वह शेष आकाश क्षेत्र लघु पाताल कलशों का परस्पर अन्तरों से पूर्ण होता है उसका गणित इस प्रकार है :–

२१९२६५ योजन महापाताल कलशों का अन्तर है

२१५००० योजन लघु पाताल कलशों का व्यास निकाल देने से ४२६५ आकाश क्षेत्र शेष रहता है । (८७)

परिधे र्वर्द्धमानत्वात्पङ्क्तौ पङ्क्तौ यथात्तरमम् ।
एकैक कलशस्यापि, वृद्धिर्वाच्या वचस्विभिः ॥८८॥

समुद्र की परिधि बढ़ने से प्रत्येक पंक्ति में आगे से आगे एक–एक कलश की वृद्धि विद्वानों ने कही है । (८८)

ततः पङ्क्तौ द्वितीयस्यां, द्वे शते षोडशोत्तरे ।
पंक्तौ नवम्यामेवं स्युस्त्रयोविंश शतद्वयम् ॥८९॥

अत: दूसरे पंक्ति में दो सौ सोलह कलश होंगे, और इस तरह नौंवी पंक्ति में दो सौ तेईस लघु पाताल कलश होते हैं । (८६)

प्रथम पंक्ति में २१५, दूसरे में २१६, तीसरे में २१७, चौथी में २१८, पांचवे में २१६, छट्ठी में २२०, सातवीं में २२१, आठवीं में २२२, और नौंवी पंक्ति में २२३ लघुपाताल कलश होते हैं ।

एक सप्तत्युपेतानि, शतात्येकोनविंशतिः ।
एकैकस्मिन्नन्तरे स्युर्लघवः सर्वसङ्ख्यया ॥६०॥

एक से दूसरे महापाताल कलश के अंतर में सब मिलाकर उन्नीस सौ इकहत्तर (१६७१) लघु पाताल कलश होते हैं । (६०)

चतुर्णामन्तराणां च मिलिताः सर्वसंङ्ख्यया ।
स्फूरच्चतुरशीतीनि स्युः शतात्यष्ट सप्ततिः ॥६१॥

चारों महापाताल कलशों के अन्तर में कलशों की सर्व संख्या सात हजार आठ सौ चौरासी (७८८४) होती हैं । (६१)

''अयं च संप्रदायो 'वीरं जयसेहरे' त्यादि क्षेत्र समास वृत्यभिप्रायेण, बृहत्क्षेत्र समास वृत्तौ जीवाभिगम वृत्यादौ त्वयं न दृश्यते ॥''

इस बात का इस तरह से संदर्भ 'वीर जयसेहर' इत्यादि लघु क्षेत्र समास की वृत्ति के अभिप्राय अनुसार है बृहत्क्षेत्र समास की टीका में यह परम्परा नहीं दिखती है ।

लघु पाताल कलशा, अमी सर्वेऽप्यधिष्ठिताः ।
सदामहर्द्धिकैर्देवैः, पल्योपमार्द्धजीविभिः ॥६२॥

आधे पल्योपम के आयुष्य वाले महर्द्धि के देवताओं से ये सब लघु पाताल कलश हमेशा अधिष्ठित होते हैं । (६२)

''अयं क्षेत्रसमासवृत्याद्यभिप्रायः, जीवाभिगमसूत्रवृत्तौ च अर्द्धपल्योपम स्थितिकाभिर्देवताभिः परिगृहीता इत्युक्तं ॥''

'यह बात क्षेत्र समास टीका के अभिप्राय से जानना और जीवाभिगम सूत्र की टीका में तो ये अर्ध पल्योपम के आयुष्य वाले देवता से अधिष्ठित हैं । इस तरह कहा है ।'

शत योजन विस्तीर्णा, एते मूले मुखेऽपि च ।
मध्ये सहस्त्रं विस्तीर्णाः, सहस्त्रं क्ष्मोदरे स्थिताः ॥६३॥

दशयोजनबाहल्यवज्रकुडयमनोरमाः ।
वायुवायूदकाम्भोभिः, पूर्णत्र्यंशत्रयाः क्रमात् ॥६४॥

सयोजन तृतीयांशं, त्रयस्त्रिशं शतत्रयम् ।
तृतीयो भाग एकैक, एषां निष्टङ्कितो बुधैः ॥६५॥

ये लघु पाताल कलश मूल और मुख में सौ योजन विस्तार वाले है, मध्य में एक हजार योजन विस्तार वाले हैं और एक हजार योजन पृथ्वी में गहरे अवगाढ़ कर प्रविष्ट रहे हैं तथा दस योजन की मोटी वज्र प्रतर से मनोहर हैं । इन लघु कलशों में भी तीन विभाग है वह क्रमशः वायु, वायु मिश्रित जल और जल से पूर्ण है और वह एक-एक भाग ३३३- १/३ योजन प्रमाण पंडित पुरुषों ने कहा है । (६३-६५)

लघवोऽपि महान्तोऽपि, यावन्मग्ना भुवोन्तरे ।
उत्तुङ्गास्तावदेव सयुर्भूमीतलसमानना; ॥६६॥

बड़े और छोटे कलश जितने भूमि में मग्न है उतने ही ऊंचे हैं और इनका मुख भूमितल की समश्रेणि में रहा है । (६६)

एषां पाताल कुम्भानां, लघीयसां महीयसाम् ।
मध्यमेऽधस्तने चैव, त्र्यंशे जगत्स्वभावतः ॥६७॥

समकालं महावाताः समूर्च्छन्ति सहस्त्रशः ।
क्षुभितैस्तेश्चोपरिस्थं, बहिर्निस्सार्यते जलम् ॥६८॥

तेन निस्सार्यमाणेन, जलेन क्षुभितोऽम्बुधिः ।
वेलया व्याकुलात्मा स्यादुद्वमन्निव वातकी ॥६९॥

इन छोटे बड़े दोनों प्रकार के सभी पाताल कलशों के मध्यम और अन्तिम तृतीयांश में जगत स्वभाव से एक साथ में हजारों महावायु उत्पन्न होते हैं और खलबली होते हुए उस महावायु से कलशों के ऊपर के तृतीयांश का पानी बाहर निकलता है, वह बाहर निकलते पानी से व्याकुल हुआ समुद्र वायु रोग वाले जैसे उलटी करता है वैसे ज्वार से पानी का उफान बाहर निकालता है । (६७-६९)

जगत्स्वाभाव्यत एव, शान्तेषु तेषु वायुषु ।
पुनः पाताल कुम्भानां जलं स्व स्थानमा श्रयेत् ॥१००॥

जग... के स्वभाव से वह महावायु शांत होने के बाद पाताल कलशों का पानी अपने स्थान में फिर वापस जाता है । (१०२)

जलेषु, तेषु स्व स्थानं, प्राप्तेषु सुस्थितोदकः ।
स्वास्थ्यमापद्यतेऽम्भोधिर्वातकीव कृतौषधः ॥१०१॥

जिस तरह वायु के रोग वाला मनुष्य औषध से स्वस्थ होता है वैसे वह सारा जल अपने स्थान में वापिस आता है तब समुद्र का पानी स्थिर हो जाता है । (१०१)

मूर्च्छन्ति द्विरहोरात्रे, वाताः स्वस्थी भवन्ति च ।
ततो द्विः प्रत्यहोरात्रं, वर्द्धते हीयतेऽम्बुधिः ॥१०२॥

यह महावायु एक अहोरात्रि में दो बार उत्पन्न होता है और दो बार शान्त होता है । इस कारण से समुद्र प्रतिदिन दो बार बढ़ता है और दो बार घटता है अर्थात् दिन में दो बार ज्वार भाटा आता है । (१०२)

तथाह जीवाभिगम - 'लवणे णं भंते ! समुद्दे तीसाए मुहूत्तांण कइखुत्तो अईरेग बड्ढई वा हायइ वा ? गोयम ! दुक्खुत्तो अइरेंग वड्ढइ वा हायइ वा ॥'

यह बात श्री जीवाभिगम सूत्र में भी कहा है कि :- हे भगवन्त ! लवण समुद्र के अन्दर तीस मुहूर्त्त में कितने बार जल बढ़ता है और घटता है ? तब भगवन्त ने कहा हे गौतम ! जल दो बार बढ़ता है और दो बार घटता है ।

राकादर्शादितिथिषु चातिरेकेण तेऽनिलाः ।
क्षोभं प्रयान्ति मूर्च्छन्ति, तथा जगत्स्वभावतः ॥१०३॥

ततश्च पूर्णिमाऽमादि तिथिष्वतितमामयम् ।
वेलया वर्द्धते वार्द्धिदेशम्यादिषु नो तथा ॥१०४॥

वह महावायु तथा उस प्रकार के जगत् स्वभाव से पूनम और अमावस्या आदि दिनों में अधिक प्रमाण में क्षोभायमान होता है और शान्त होता है इससे पूनम और अमावस्या के दिन में इस समुद्र का पानी अत्यन्त बढ़ता है । इसी तरह दशमी आदि अन्य तिथियों में उतने समय बढ़ता नहीं है । (१०३-१०४)

लोकप्रथानुसारेण त्वेवम वोचं :-

यथा यथेन्दोर्निजन्दनस्य, कालक्रम प्राप्तकलाकलस्य ।

आश्लिष्यतेऽब्धिर्मृदुभिः कराग्रैस्तथा तथोर्द्धेलमुपैति वृद्धिम ॥१०५॥

लोगों की प्रथा में तो इस तरह कहा जाता है कि - जैसे-जैसे अपना पुत्र चन्द्र कलाक्रम से कला को प्राप्त करते अपनी कोमल किरणाग्र द्वारा समुद्र का आलिंगन करता है वैसे-वैसे समुद्र वृद्धि को प्राप्त करता है । (१०५)

दर्शे त्वपश्यन्नति दर्शनीयं, निजाङ्गजं शीतकरं पयोधिः ।

विवृद्ध वेलावलयच्छलेन, दुःखाग्नि तप्तो भुवि लोलुडीति ॥१०६॥

अमावस्या के दिन में अति दर्शनीय अपने पुत्र चन्द्र को न देख कर समुद्र बढ़ते जल के बहाने से दुःख की अग्नि से पीड़ित हुआ पृथ्वी पर लोटता (तड़पता) है । (१०६)

योजनानामुभयतो, विमुच्य लवणाम्बुधौ ।

सहस्त्रान् पञ्चनवतिं मध्य देशे शिखैधते ॥१०७॥

योजनानां सहस्राणि, दशेयं पृथुलाऽभितः ।

चक्रास्ति वलयाकारा, जलभित्तिरिव स्थिरा ॥१०८॥

लवण समुद्र में दोनों तरफ से पंचानवे हजार (९५०००) योजन छोड़कर मध्यभाग की शिखा शोभायमान हो रही है, वह शिखा दस हजार योजन चारों तरफ से चौड़ी है, इसलिए मानो वलयाकार स्थित रही पानी की दीवार के समान वह शोभायमान है । (१०७-१०८)

सहस्राणि षोडशोच्चा, समभूमि समोदकात् ।

योजनानां सहस्रं च तत्रोद्वेधेन वारिधिः ॥१०९॥

यहां मध्यभाग के दस हजार योजन में समभूमि विभाग से पानी सोलह हजार योजन ऊंचा होता है और वहां एक हजार योजन की ऊंचाई वाला समुद्र है । (१०९)

शिखाभिषाद्दधद्योग पट्टं योगीव वारिधिः ।

ध्यायतीव परब्रह्म, जन्मजाड्योपशान्तये ॥११०॥

मानो शिखा के बहाने से योगपट्ट को धारण करने वाले योगी के समान समुद्र जन्मजात जड़ता की शान्ति के लिए मानो परमब्रह्म का ध्यान करता है । (११०)

सुभगकरणींयद्वा, हारि हारलताभिमाम् ।
श्यामोऽपि सुभगत्वेच्छुर्दधौ वार्द्धिः शिखामिषात् ॥११९॥

अथवा तो कृष्णवर्णी भी सुभगता के इच्छा वाला यह समुद्र सौभाग्य को करने वाला मानो सुन्दर हारलता न हो इस तरह इस शिखा को धारण कर रहा है । (१११)

जम्बूद्वीपोपाश्रयस्थान्, मुनीनुत निनंसिषुः ।
कृतोत्तरासङ्गसंङ्गः शिखावलयकैतवात् ॥११२॥

अथवा तो मध्यशिखा के वलय के बहाने से उत्तरासंग को धारण करने वाला यह समुद्र जम्बूद्वीप के आश्रय में रहे मुनियों को वंदन नमस्कार करने की इच्छा करता है । (११२)

पूर्णकुक्षि भृशं रत्नैरून्मदिष्णुतथाऽथवा ।
पट्ट बद्धोदर इव, विद्यादृप्तकुवादिवत् ॥११३॥

बहुत रत्नो से मानों वह समुद्र रूपी कुक्षी पूर्ण भर गई हो ऐसा यह लवण समुद्र लगता है । अथवा उन्मादी बनने से मानो उदय-मध्यभाग में पट्ट बन्धन किया विद्या से गर्विष्ट बना, कुवादी के समान यह समुद्र लगता है । (११३)

भाति भूयोऽब्धिभूपालवृतो दैवतसेवितः ।
शिखाभिषाप्त मुकुटो दधद्वा वार्द्धि चक्रिताम् ॥११४॥ *त्रिभि विशेषकं //*

अथवा तो बहुत समुद्र रूपी राजाओं से घिरे हुए देवताओं से सेवित और शिखारूपी मुकुट को धारण करने वाले ये समुद्र, समुद्र के चक्रवर्तीपने को धारण करते शोभायमान होते हैं । (११४)

पाताल कुम्भ संर्मूच्छ द्वायुविक्षोभ योगतः ।
उपर्यस्याः शिखायाश्च देशोनमर्द्धयोजनम् ॥११५॥

द्वौ वारौ प्रत्यहोरात्रमुदकं वर्द्धतेतराम् ।
तत्प्रशान्तौ शाम्यति च, भवेद्वेलेयमूर्द्धगा ॥११६॥

पाताल कलश में उत्पन्न हुई वायु के विक्षोभ के कारण से शिखा के ऊपर कुछ कम आधा योजन-दो कोस हमेशा दिन में दो बार समुद्र ज्वार के समय बढ़ती है और वह वायु शान्त होते वह ज्वार भी शान्त होता है । (११५-११६)

तां च वेलामुच्छलन्तीं, दर्वीव्यग्रकराः सुरा ।
शमयन्ति सदा नागकुमारा जगतः स्थितेः ॥११७॥

इस तरह ऊपर छलकती वे पानी की ज्वार को नागकुमार देवता हमेशा बड़े करछे हाथ में लेकर रोकते हैं । ऐसा जगत स्वभाव है । (११७)

तत्र जम्बूद्वीप दिशि, शिखावेलां प्रसृत्वरीम् ।
द्वि चत्वारिंशत्सहस्रा, घरन्ति नागनाकिनः ॥११८॥

जम्बू द्वीप की दिशा भी फैलने वाली ज्वार के बियालीस हजार (४२०००) वेलंधर नागकुमार देवता रोकते हैं । (११८)

घातकी खण्ड दिशि च, प्रसर्पन्तीमिमां किल ।
नीवारयन्ति नागानां, सहस्राणि द्विसप्ततिः ॥११९॥

घात की खण्ड की दिशा तरफ फैलने वाला ज्वार-समुद्र के जल उभार को बहत्तर हजार (७२०००) नागकुमार देवता रोकते हैं ।

देशोनं योजनार्द्धं यद्वर्द्धतेऽम्बु शिखोपरि ।
षष्टिर्नागसहस्राणि, सततं वारयन्ति तत् ॥१२०॥

कुछ कम दो कोस-आधे योजन जो पानी की शिखा ऊपर बढ़ती हैं उसे साठ हजार (६००००) नागकुमार देवता रोकते हैं । (१२०)

लक्षमेकं सहस्राणि, चतुः सप्ततिरेव च ।
वेलन्धरा नागदेवा, भवन्ति सर्वसंख्यया ॥१२१॥

इस तरह वेलंधर नागदेवताओं की कुल संख्या एक लाख चौहत्तर हजार (१७४०००) की होती है । वह इस तरह :-

४२००० - जम्बू द्वीप की ओर नागकुमार देवता

७२००० - घात की खण्ड की ओर नाग कुमार देवता

६०००० – शिखा ऊपर के नाग कुमार देवता

१७४००० – कुल संख्या हुई । (१२१)

एषामुपक्रमेणैव, निरूद्धा नावतिष्ठते ।
वेलेयं चपलाऽतीव, महेलेव रसाकुला ॥१२२॥

किंतु द्वीपस्थसंघार्हद्देवचक्रयादियुग्मिनाम् ।
पुण्यांज्जगत्स्वभावाच्च, मर्यादां न जहाति सा ॥१२३॥

रस आस्वादन की शोकीन स्त्री के समान ये अत्यन्त चलचल जल-तरंगे-वेला वेलंधर देवताओं के प्रयास से ही रूकती है ऐसा नहीं है परन्तु द्वीप में रहे श्री संघ, अरिहंत देव, चक्रवर्ती युगलियों आदि के पुण्य से और तथा प्रकार के जगत् स्वभाव के कारण से ज्वार मर्यादा नहीं छोड़ती है । (१२२-१२३)

''इदं जीवाभिगम सूत्रवृत्त्यभिप्रायेण, पञ्चमाङ्गे तद्‌वृत्तौ च – 'जया णं दीविच्चयाई सिं णोणं तया सामुद्दया ई सिं जया णं सामुद्दया ईसिं णो णं तया दीविच्चयाईसिं ? गोयम ! तेसिणं वायाणं अन्न मन्न विविच्चा सेणं लवण समुद्र वेलं नातिक्कमई'' 'अन्योऽन्य व्यत्यासेन'' यदैके ईषत् पुरो वातादि विशेषणा वान्ति तदेतरे न तथा विधा वान्तीत्यर्थः । वेलं नाइक्क मइं त्ति तथा विधवायुद्रव्य सामर्थ्याद्वेलया स्तथा स्वभाव त्वाच्चे' त्युक्तं, अत्र ईसि पुरोवाता दीनि विशेषणानि त्वेव – 'ईसिं पुरोवाय' त्ति मनाक् सत्रेह वाताः 'पच्छावाय' त्ति पथ्या वनस्य त्यादिहिता वायवः मंदा वायं त्ति मन्दाः- शनैः शनैः संचारिणः अमहावाता इत्यर्थः 'महावाय' त्ति उद्दण्डावाताः, अनल्पा इत्यर्थः ॥''

''यह बात श्री जीवाभिगम सूत्र की टीका के अभिप्राय से कहा है तथा पंचमांग श्री भगवती सूत्र की टीका-वृत्ति में भी कहा है :- हे भगवन ! जब द्वीप की तरफ पुरोवात आदि वायु कुछ हो उस समय समुद्र तरफ पुरोवात आदि वायु नहीं होता ? और जब समुद्र की तरफ पुरोवात आदि वायु कुछ हो उस समय द्वीप की ओर पुरोवात आदि नहीं होता ! उसका कारण क्या है ? इसका उत्तर श्रमण भगवान महावीर प्रभु देते हैं कि – हे गौतम ! वह वायु अन्योन्य (एक दूसरे से) विपरीत होने के कारण से समुद्र की ज्वार तरंगे आगे नहीं बढ़ती है । 'अन्योत्य व्यत्यासे' = जब कई पुरोवातादि विशेषण वाले वायु की कुछ वायु भी हैं । उस

समय अन्य ऐसे प्रकार के वायु की बात नहीं है । 'वेल नाइक्कभइ' = तथा प्रकार के वायु द्रव्य के सामर्थ्य से और ज्वार का उस प्रकार का स्वभाव होने से इस तरह से कहा है । यहां 'ईषुत' शब्द का अर्थ अलग अलग भाव में कहा है । ईसि पुरोवाय:- यहां चार प्रकार वायु कहा है - १- 'सत्रेहवात' :- अर्थात् भीनी-पानी के अंशवाली पवन-वायु । २- पच्छावाय - जो वनस्पति आदि को हितकारी वायु हो । । ३- 'मन्दावाय' :- जो धीरे-धीरे मन्द रूप में चलती हो और ४- 'महावाय' :- प्रचंडवायु अर्थात् बहुत तेज गति से चलता हैं । वह वायु ।'

वेलन्धराणामेतेषां, भवन्त्यावास पर्वता: ।
अस्मिन्नेवाम्बुधौ पूर्वादिषु दिक्षु चतसृषु ॥१२४॥

तथाहि - जम्बूद्वीप वेदिकान्तात्पूर्वस्यां दिशी वारिधौ ।
गोस्तूपः पर्वतो भाति, वेलन्धर सुराश्रय: ॥१२५॥

इन वेलंधर देवताओं के आवास पर्वत इसी समुद्र में पूर्वादि चार दिशाओं में रहे हैं । वे इस प्रकार :- जम्बू द्वीप को वेदिका अन्तिम भाग से समुद्र में पूर्व दिशा के ओर वेलंधर देव के आश्रय रूप गोस्तूप नामक पर्वत शोभायमान है। (१२४-१२५)

नाना जलाशयोद्भूतैः शत पत्रादिभिर्यत: ।
गोस्तूपाकृतिभी रम्यो, गोस्तूपोऽयं गिरिस्तत: ॥१२६॥

विविध प्रकार के जलाशयों में उत्पन्न हुए गोस्तूप आकार वाले शतपत्र कमलों से यह पर्वत रमणीय होने के कारण यह गोस्तूप-गिरि पर्वत कहलाता है। (१२६)

जलंयभ्दासयत्यष्टयोजनी परितोऽशुभि: ।
ततो नाम्नोदकभासोऽपाच्यां वेलन्धराचल: ॥१२७॥

दक्षिण दिशा में रहे पर्वत के चारों तरफ अपने किरणों से आठ योजन तक पानी को प्रकाशित करता है, इससे उसे उदकभाव वेलंधर पर्वत कहलाता है । (१२७)

पश्चिमायां शंखनामा, नगः सोऽप्यन्वितामिधः ।

शङ्खाभैः शतपत्राद्यैर्जलाश्रयोद्भवैर्लसन् ॥१२८॥

पश्चिम दिशा में यर्थाथ नामवाला शंख नामक वेलंधर पर्वत है जो जलाशय में उत्पन्न हुए शंख सदृश कमलों से शोभायमान हो रहा है । (१२८)

उत्तरस्यां दिशि वेलन्धरावास धराधरः ।

दकसीमाभिधः शीतशीतोदोदकसीमाकृत ॥१२९॥

उत्तर दिशा में दक सीमा नामक वेलंधर पर्वत है जो कि शीता और शीतोदा नदी के पानी की सीमा करने वाला है, अर्थात् मर्यादा बांधने वाला है । (१२९)

शीताशीतोदयोर्नद्योः श्रोतांसीह धराधरे ।

प्रतिघातं प्राप्नुवन्ति दक सीमाभिधस्ततः ॥१३०॥

शीता और शीतोदानदी के प्रवाह का इस पर्वत में प्रतिघात होता है अर्थात् रुक जाता है, इससे इस पर्वत का नाम दक सीमा है । (१३०)

एवं च शीता शीतोदे, पूर्व पश्चिमयोर्दिशोः ।

प्रविश्य वारिधौ याते, उदीच्यामिति निश्चयः ॥१३१॥

इस तरह से शीता और शीतोदा नदी पूर्व पश्चिम दिशा में से समुद्र में प्रवेश करके उत्तर दिशा में जाती है इस तरह यहां निश्चय होता है । (१३१)

गोस्तूपे गोस्तूप सुरो, दकभास गिरौ शिवः ।

शङ्खे शङ्खौ दकसीमा पर्वते च मनः शिलः ॥१३२॥

गोस्तूप पर्वत के ऊपर गोस्तूप नामक देव है, दकभास पर्वत पर शिव नाम का देव है, शंख पर्वत पर शंख नाम का देव है और दक सीमा पर्वत के ऊपर मन शील नामक देव है । (१३२)

सामानिक सहस्त्राणां, चतुर्णां च चतसृणाम् ।

पट्टाभिषिक्त देवीनां, तिसृणामपि पर्षदाम् ॥१३३॥

सैन्यानां सैन्यनाथानां, सप्तानामप्यधीश्वराः ।

आत्मरक्षिसहस्त्रैश्च, सेव्याः षोडशभिः सदा ॥१३४॥

स्वस्वावासपर्वतानामाधिपत्यममी सदा ।

पालयन्ति पूर्व जनमार्जितपुण्यानुसारतः ॥१३७॥ *त्रिभि विशेषकं ॥*

अब चार देवों के वैभव का वर्णन करते हैं :- चार हजार सामानिक देवता, चार पट्टाभिषिक्त देवियां, तीन पर्षदा, सात प्रकार की सेना, सात सेनाधिपति और सोलह हजार आत्मरक्षक देवों से हमेशा सेवा होती तथा पूर्वजन्म में उपार्जन किए पुण्य अनुसार से ये सभी देव हमेशा अपने अपने आवास पर्वतों के आधिपत्य का पालन करते हैं । (१३३-१३५)

आज्ञा प्रतीच्छका एषां, सन्त्येतदनुयायिनः ।

अनुवेलन्धरास्तेषां, विदिक्ष्वावासपर्वताः ॥१३६॥

इन चारों देवताओं की आज्ञा को स्वीकार करने वाले और उसके अनुसार चलने वाले अनुवेलंधर देवता है उनका आवास पर्वत की विदिशाओं में होता है। (१३६)

कर्कोटकाद्रिरैशान्यां, विद्युत्प्रभोऽग्निकोण के ।

कैलाशो वायवीयायां, नैर्ऋत्यामरूणप्रभाः ॥१३७॥

ईशान कोने में कर्कोटक, अग्नि कोने में विद्युत्प्रभ, वायव्य कोने में कैलाश और नैऋत्य कोने में अरूण प्रभ नामक अनुवेलंधर पर्वत है । (१३७)

कर्कोटकः कर्दमकः कैलाशश्चारूण प्रभः ।

एषां चतुर्णामद्रीणामीशा गोस्तूप सश्रियः ॥१३८॥

इन चार अनुवेलंधर पर्वत के स्वामी अनुक्रम से कर्कोटक, कर्दमक, कैलाश, और अरूण प्रभ नाम के देव हैं । इनका वैभव गोस्तूप देव अनुसार समझना चाहिए । (१३८)

यथास्वमेषामष्टानांरम्या दिक्षु विदिक्षु च ।

राजधान्यः स्वस्व नाम्ना, परस्मिन्लवणार्णवे ॥१३९॥

इन आठ वेलंधर देवों की अपने-अपने नाम की दूसरे लवण समुद्र में दिशा और विदिशाओं में सुन्दर राजधानियां है । (१३९)

असंड्ख्येयान् द्वीप वार्द्धीनतीत्य परतः स्थिते ।

योजनानां सहस्राणि, वगाह्य द्वादश स्थिताः ॥१४०॥

असंख्य द्वीप और समुद्र पार करने के बाद रहे लवण समुद्र में बारह हजार योजन दूर यह राजधानियां रही है । (१४०)

जम्बूद्वीप वेदिकान्तादष्टापि स्वस्वदिक्ष्वमी ।

द्विचत्वारिंशत्सहस्र योजनातिक्रमेऽद्रयः ॥१४१॥

जम्बूद्वीप की वेदिका के अन्त में ये आठ पर्वत अपनी-अपनी दिशा में बयालीस हजार योजन दूर रहे हैं । (१४१)

सुवर्णाङ्करत्नरूप्यस्फटिकैर्धटिताः क्रमात् ।

दिश्याश्चत्वारोऽपि शैलाः सर्वेविदिक्षु रत्नजाः ॥१४२॥

पूर्व दक्षिण पश्चिम, उत्तर इन चार दिशाओं के वेलंधर पर्वत अनुक्रम से सुवर्ण अंकरत्न, चान्दी और स्फटिक से बने है और विदिशा के पर्वत रत्नों से बने है । (१४२)

अष्टाप्यमी योजनानां, सहस्रं सप्तभिः शतैः ।

एकविंशैः समधिकमुत्तुङ्गत्वेन वर्णिताः ॥१४३॥

ये आठ पर्वत एक हजार सात सौ इक्कीस (१७२१) योजन से कुछ अधिक ऊंचाई वाले कहा है । (१४३)

चतुः शतीं योजनानां, त्रिशां क्रोशाधिकाममी ।

वसुधान्तर्गताः पद्मवेदिकावनमण्डिताः ॥१४४॥

ये आठ पर्वत चार सौ तीस योजन और एक कोस जमीन के अन्दर रहे है और ऊपर के विभाग में पद्म वेदिका तथा वन शोभायमान है । (१४४)

मूले सहस्रं द्वाविंशं, सर्वेऽपि विस्तृता अमी ।

त्रयोविंशानि मध्ये च, शतानि सप्त विस्तृताः ॥१४५॥

योजनानां चतुर्विंशां, चतुः शतीमुपर्यमी ।

विस्तृता सर्व तो व्यासज्ञानोपायोऽथ तन्यते ॥१४६॥

ये आठ पर्वत मूल में एक हजार बाईस योजन, मध्य में सात सौ तेइस योजन और ऊपर विभाग में चार सौ चौबीस योजन विस्तार वाले है । अब चारों तरफ से व्यास (विस्तार) जानने के उपाय कहते है । (१४५-१४६)

योजनादिषु यावत्सूत्तीर्णेषु शिखाराग्रतः ।
वेलन्धर पर्वतानां, विष्कम्भो ज्ञातुमिष्यते ॥१४७॥

अतिक्रान्त योजनादि रूपं तं राशिमञ्जसा ।
अष्टनवत्याऽभ्यधिकैर्गुणयेः पञ्चभि शतैः ॥१४८॥

जातं चैतेषांगिरिणा मुच्छ्रयेण विभाजय ।
यल्लब्धं तच्चतु विंशचतुः शतयुंत कुरू ॥१४९॥

कृते चैवं तत्र तत्र, विष्कम्भोऽभीप्सितास्पदे ।
वेलन्धराद्रिषु ज्ञेयो, दृष्टान्तः श्रुयतामिह ॥१५०॥

इन वेलंधर पर्वतों के शिखर के अग्रभाग से जितने योजन नीचे उतरने के बाद वहां वेलंधर पर्वत की चौड़ाई जाननी हो, तब उतर गये योजन की संख्या को पांच सौ अठानवे से गुणा करना और जो संख्या आती है उसे पर्वत की ऊंचाई सत्रह सौ इक्कीस से भाग देने से जो उत्तर आता है उसमें चार सौ चौबीस मिलाना इस तरह करने से वह इच्छित स्थान में वेलंधर पर्वत का बिष्कंभ (चौड़ाई) के विस्तार की तुम्हें जानकारी मिल जायेगी । उसका दृष्टांत अब यहां सुनो :- (१४७-१५०)

सषष्टीनि शतान्यष्ट, द्वौ क्रौशौ च शिरोऽग्रतः ।
अतीत्य व्यास जिज्ञासा, चेदिदं गुण्यते तदा ॥१५१॥

अष्टानवत्याढय पञ्चशत्यैवं पञ्चलक्षकाः ।
सहस्त्राः द्विः सप्त पञ्चशत्ती सनवसप्ततिः ॥१५२॥

जातास्ते चहृताः सप्तदशत्यैकविंशया ।
शतद्वमीं नव नवत्यधिकां ध्रुवमार्पयत् ॥१५३॥

ततश्च सा चतुर्विशैः शतैश्चतुर्भिरन्विताः ।
त्रयोविंशा सप्तशती, जातेयं तद्ध विस्तृतिः ॥१५४॥

मध्य व्यासोऽयमेवैषां, सर्वत्रैवं विभाव्यताम् ।

स्यादुपायान्तरमेतन्मध्य विष्कम्भनिश्चये ॥१५५॥

शिखर के नीचे आठ सौ साठ योजन और दो कोस नीचे उतरने के बाद यदि चौड़ाई जाननी हो तो उसे पांच सौ अठानवे से गुणा करना तब पांच लाख चौदह हजार पांच सौ उनहत्तर (५१४५६९) होता है, उसे सत्रह सौ इक्कीस की संख्या (जो गिरी की ऊंचाई) से भाग देने से दो सौ निन्यानवे होते है और उसमें चार सौ चौबीस मिलाने से सात सौ तेईस योजन विस्तार हुआ, और यही सभी पर्वतों का मध्य भाग का विस्तार है। यह मध्यम व्यास जानना । इसलिए दूसरा भी उपाय है। (१५१-१५५)

८६० योजन×५९८ = ५१४२८०

१/२ योजन×५९८ = २९९/५१४५१९ योजन होता है ।

१७२१)५१४५७९(२९९ योजन लम्बा

३,४४२

१७०३६

१५४८९

१५४८९

१५४८९

०००००

मूले शिरे च विष्कम्भो यौ तद्योगेऽर्द्धिते सति ।

सर्वत्र मध्यविष्कम्भो, लभ्यो ऽत्रभाव्यतां स्वयम् ॥१५६॥

मूल और ऊपर का जो विस्तार है उसका जोड़ करके आधा करे तो सर्वत्र मध्य विस्तार आता है यह स्वयं बात विचार करे लेना । (१५६)

१०२२ योजन मूल का व्यास

४२४ योजन ऊपर का व्यास

१४४६ जोड़ का आधा ७२३ योजन वह मध्यम की चौड़ाई है ।

एषां वेलन्धराद्रीणां, मूलांशे परिधिं जिनाः ।
जगुः शतानि द्वात्रिंशत्, सह द्वात्रिंशतो नया ॥१५७॥

मध्ये सषडशीतीनि, द्वाविंशतिः शतानि च ।
किंचित्समतिरेकाणि, परिक्षेपो निरूपितः ॥१५८॥

उपरि स्यात्परिक्षेपः शतान्येषां त्रयोदश ।
किञ्चि दूनैक चत्वारिंशता युक्तानि भूभृताम् ॥१५६॥

इन वेलन्धर पर्वतों की मूल परिधि बत्तीस सौ बत्तीस (३२३२) योजन कुछ कम कही है और मध्य में बाईस सौ छियासी (२२८६) योजन से कुछ अधिक और शिखर के विभाग से तेरह सौ इकतालीस (१३४१) योजन में कुछ कम है। इस तरह श्री जिनेश्वर ने कहा है । (१५७ से १५६)

द्वि सप्ततिः सहस्राणि, शतमेकं चतुर्दशम् ।
योजनानामष्टभक्तयोजनस्यलवास्त्रयः ॥१६०॥

अष्टानामेतदेतेषां, मूलभागेमिथोऽन्तरम् ।
वेलन्धर सुराद्रीणां, प्रत्ययश्चात्र दर्श्यते ॥१६१॥

इन आठों वेलन्धर पर्वतों का मूल विभाग से परस्पर अन्तर बहत्तर हजार एक सौ चौदह और तीन अष्ट मास (७२११४- १/८) योजन है उसकी घटना इस प्रकार है । (१६०-१६१)

मूल भागे यदैतेषामन्तरं ज्ञातुमिष्यते ।
एकादशा पञ्चशत्येतदर्धगातदन्विता ॥१६२॥

द्विचत्वारिंशत्सहस्रैर्वार्द्धिगैरेकतो यथा ।
क्रियते परतोऽप्येवमित्येतद् द्विगुणी कुरु ॥१६३॥

पञ्चाशीतिः सहस्राणि, द्वाविंशान्यभवन्निह ।
मध्यस्थजम्बूद्वीपस्य, लक्ष्मेकं तु मील्यते ॥१६४॥

एतेषां परिधिः पञ्च लक्षा योजन संख्यया ।
पञ्चाशीतिः सहस्राणि, तथैक नवतिः परा ॥१६५॥

अष्टानामप्यथाद्रीणां ऽस्मादपनीयते ।
षट्सप्तत्याढयशतयुक्सहस्राष्टक संमितः ॥१६६॥

अपनीतेऽस्मिंश्च पूर्वराशिरीदृग्विधः स्थितः ।
पञ्च लक्षाः सहस्राणि षट् सप्ततिस्तथोपरि ॥१६७॥

नव पञ्च दशाढयानि शतान्येषामथाष्टभिः ।
भागे हृते लभ्यते यत्तदद्रीणां मिथोऽन्तरम् ॥१६८॥

यदि इन वेलन्धर पर्वतों के मूल विभाग का अन्तर जानना हो तो पर्वत के चौड़ाई का आधा पांच सौ ग्यारह (५११) योजन और समुद्र में अवगाहित बने एक तरफ के बयालीस हजार योजन को साथ में (४२०००) गिनना अतः बयालीस हजार योजन और पांच सौ ग्यारह को दो गुणा करने से पचासी हजार बाईस योजन होता उसमें मध्य में रहे जम्बूद्वीप का एक लाख योजन मिलाने से एक लाख पचासी हजार बाईस (१८५०२२) योजन होता है और उसकी परिधि पांच लाख पचासी हजार इकानवे (५८५०९१) होता है उसमें से आठ पर्वतों के विस्तार रूप आठ हजार एक सौ छिहत्तर (८१७६) योजन निकालते, पूर्व की संख्या इस तरह पांच लाख छिहत्तर हजार नौ सौ पंद्रह (५७६९१५) आए, ऐसे आठ भाग करने से **वेलन्धर पर्वत का परस्पर अन्तर आता है** । (१६२ से १६८)

४२००० योजन जम्बूद्वीप की वेदिका समुद्र की ओर पूर्व दिशा

४२००० योजन जम्बूद्वीप की वेदिका समुद्र की ओर पश्चिम दिशा में

५११ योजन जम्बूद्वीप की वेदिका समुद्र की ओर पूर्व दिशा में पर्वत का

५११ योजन जम्बूद्वीप की वेदिका समुद्र की ओर पश्चिम दिशा " "

८५०२२ = कुल जोड़

१००००० जम्बूद्वीप का

१८५०२२ = परिधि = ५८५०९१ योजन

१०२२ एक पर्वत का व्यास इस तरह आठ पर्वत का व्यास ८१७६, योजन निकाले ५८५०९१ - ८१७६ = ५७६९१५ होता है । इसके आठ भाग करते ५७६९१५÷८ = ७२१-१४ ३/८ योजन वेलन्धर पर्वत का अन्तर आता है । (१६२-१६८)

एषां समीपेम्बुवृद्धिर्जम्बूद्वीपदिशि स्फुटम् ।
समभूतलतुल्याम्भोऽपेक्षयोर्द्ध्वं पयोनिधौ ॥१६९॥
नवोत्तरं योजनानां, शतत्रयं तथोपरि ।
पञ्च चत्वारिंशदंशाः पञ्चोन शतभाजिताः ॥१७०॥

इस समतल भूमि की पानी की सपाटी से इन पर्वतों की जम्बू द्वीप की दिशा तरफ पानी की वृद्धि-पानी की ऊंचाई तीन सौ नौ योजन और पैंतालीस-पंचानवे अंश ३०९- ४५/९५ योजन है । (१६९-१७०)

निश्चयः पुनरेतस्य, त्रैराशिकात्प्रतीयते ।
व्युत्पित्सूनां प्रमोदाय, तदप्यातत्य दृश्यते ॥१७१॥

इसका निश्चय त्रिराशि से हो सकता है । विस्तार से जानने की इच्छावाले के आनंद के लिए वह भी हम विस्तारपूर्वक दिखाते हैं । (१७१)

यदि पञ्च सहस्त्रोन लक्षेण वर्द्धते जलम् ।
योजनानां सप्तशती, तदा तद्वर्द्धते कियत् ॥१७२॥
द्विचत्वारिंशत्सहस्त्रैरिति राशित्रयं लिखेत् ।
आद्यन्तयोस्तत्र राश्योः कार्यं शून्यापवर्त्तनम् ॥१७३॥
एतयोर्हि द्वयो राश्योः साजात्यादपवर्त्तनम् ।
धटते लाघवार्थं च क्रियते गणकैरिदम् ॥१७४॥
मध्यराशिः सप्तशती, द्विचत्वारिंशदात्मना ।
अत्येन राशिना गुण्यस्तथा चैवंविधो भवेत् ॥१७५॥
नूने सहस्त्राण्येकोनत्रिंशत्पूर्णा चतुःशती ।
ततः पञ्चनवत्याऽयं, भाज्यः प्रथम राशिना ॥१७६॥
भागे हृते च यल्लब्धं, पानीयं तावदुच्छ्रितम् ।
जम्बू द्वीपदिश्यमीषां, समीपे तत्पुरोदितम् ॥१७७॥

यदि पंचानवे हजार योजन में सात सौ योजन पानी की ऊंचाई बढ़ती है तो बियालीस हजार योजन में कितना पानी बढ़ता है ? उसकी तीन राशि लिखना । (९५०००-७००-४२०००) इसमें से पहली और अन्तिम राशि की बिन्दु मिटा देना,

ये दोनों राशि सजातीय होने से उसके बिन्दु मिटा देना युक्त है और सरलता के लिए गणितज्ञ इस तरह से करते है (९५-७००-४२) रहे मध्यराशि जो सात सौ है उसे अंत्यराशि बयालीस से गुणा करने से उन्तीस हजार चार सौ (२९४००) आता है, उसे प्रथम की राशि पंचानवे के साथ भाग देना और उससे जो उत्तर आए उतना योजन पानी की ऊंचाई जम्बूद्वीप की दिशा तरफ इन पर्वतों के पास में होता है। जो पहले कह गये हैं। (१७२-१७७)

९५०००-७००-४२०००

९२-७००- ४२ ।७००x४२ = २९४०० ।

९५)२९४००(३७९

२८५

९००

८५५

४५

= ३०९ - ४५/९५ योजन जम्बूद्वीप की दिशा तरह इन पर्वतों के पास जलवृद्धि आती है।

जम्बूद्वीपस्य दिश्येषां, गिरीणामन्तिके पुनः ।
गोतीर्थेन धरौद्वेयः स्यात्समोर्वीव्यपेक्षया ॥१७८॥

द्विचत्वारिंशदधिका योजनानां चतुःशती ।
दशपञ्चनवत्यं शास्त्रै राशिकातु निश्चयः ॥१७९॥

जम्बू द्वीप की दिशा तरफ इन पर्वतों के पास में गोतीर्थ के साथ में पृथ्वी की ऊंचाई समभूमि विभाग के अनुसार चार सौ बयालीस योजन और दस- पंचानवे अंश ४४२- १०/९५ योजन त्रिराशि से आता है। (१७८-१७९)

ननु पञ्च सहस्रोन लक्षान्ते यदि लभ्यते ।
भुवोऽवगाहः साहस्रस्तदाऽसौ लभ्यते कियान् ॥१८०॥

द्विचत्वारिंशत्सहस्रपर्यन्त इति लिख्यते ।
राशित्रयं कार्यमाद्यान्त्ययोः शून्यापवर्तनम् ॥१८१॥

मध्यराशिः सहस्रात्मा द्विचत्वारिंशदात्मना ।
हतोऽन्त्येन द्विचत्वारिंशत्सहस्राणि जज्ञिरे ॥१८२॥

आद्येन पञ्चनवति लक्षणेनाथ राशिना ।
भागे हृते लभ्यतेऽयमवगाहो यथोदितः ॥१८३॥

यदि पचानवे हजार योजन में भूमि की गहराई एक हजार योजन की है तो बयालीस हजार योजन में कितनी गहराई आती है ? इस शंका का समाधान करते हैं । प्रथम तीन राशि लिखना और इसमें अन्तिम तथा प्रथम संख्या के बिन्दु मिटा देना और हजार रूपी मध्यराशि को बयालीस द्वारा गुणा करने से बयालीस हजार होते हैं और उसे प्रथम राशि की संख्या पंचानवे से भाग देने से जैसे कहा है वैसे ४४२ १०/९५ योजन की गहराई आती है (१८०-१८३) वह इस प्रकार :-

९५०००-१०००-४२०००

९५-१०००-४२

१०००×४२ = ४२०००

९५)४२०००(४४२

३८०

४००

३८०

२००

१९०

१० शेष

= ४४२- १०/९५ योजन = पर्वत के पास पानी की गहराई होती है ।

योऽयंभूमेरवगाहो, यश्च प्रोक्तो जलोच्छ्रयः ।
एतद् द्वयं पर्वतानामुच्छ्रयादपनीयते ॥१८४॥

अपनीतेऽवशिष्टं यत्तावन्मात्रो जलोपरि ।
जम्बूद्वीपदिष्यमीषां, गिरीणांमयमुच्छ्रयः ॥१८५॥

योजनानां नवशती, सैकोन सप्तति स्तथा ।
चत्वारिंशद्योजनस्य, पञ्चोनशतजा लवा: ॥१८६॥

यदि इस भूमि की गहराई और जल की ऊंचाई कही है उसे पर्वत की ऊंचाई में से निकाल देना और जो संख्या आती है उतनी जल के ऊपर इन पर्वतों की ऊंचाई है, जम्बूद्वीप की दिशा तरफ समझना चाहिए । वह कितनी आती है ? तो नौ सौ उनहत्तर योजन और चालीस-पंचानवे अंश पानी के ऊपर पर्वत की ऊँचाई आती है । (१८४-१८६)

४४२- १०/८५ भूमि की गहराई+३०६- ४५/९५ जल की ऊंचाई = ७५१-४५/९५ है । १७२१ योजन पर्वत की ऊंचाई में से ७५१ ४५/९५ निकाल देने से = ९६९ ४०/९५ पानी के ऊपर की पर्वत की ऊंचाई आती है ।

अत्र चासर्गसंपूर्त्तिं क्वाप्य विशेषतः ।
वक्ष्यंतेऽंशा अमी सर्वे पञ्चोनशतभजिता ॥१८७॥

यहां से यह सर्ग पूर्ण होता है वहां तक जहां कोई विशेष रूप न लिखा हो और अंश की बात की हो वहां पंचानवे भाग-एक योजन का अंश समझना चाहिए । (१८६)

शिखराग्रादशैतावदुत्तीर्य यदि चिन्त्यते ।
अत्र प्रदेशे विष्कम्भो, ज्ञेयोऽमीषामयं तदा ॥१८८॥

षष्टयाढ्यानि योजनानां, शतानि सप्त चोपरि ।
असीतिर्योजनस्यांशा: पञ्चोनशतसंभवा ॥१८९॥

शिखर के समभाग ऊपर से ९६९- ४०/९५ योजन नीचे उतने के बाद वहां कितनी चौड़ाई आती है ? उसका विचार करे तो वहां ७६०- ८०/९५ योजन का विष्कंभ (चौड़ाई) इन पर्वतों की समझना । (१८८-१८९)

तिर्यक्क्षेत्रेणेयता च, जल वृद्धिखाप्यते ।
किञ्चिदूनाष्टपञ्चाशदंशाढया पञ्च योजनी ॥१९०॥

इतने तिरछे क्षेत्र में जम्बू द्वीप की दिशा तरफ पानी की वृद्धि पांच योजन और कुछ कम अट्ठावन अंश का प्रमाण होता है ।

जम्बू द्वीपदिर्शि प्रोक्तात्, पर्वतानां समुच्छ्रयात् ।
स्यादस्यामपनीतायां, शिखादिशि नगोच्छ्रयः ॥१६१॥

जम्बू द्वीप की दिशा तरफ पर्वत की ऊंचाई में से यह पांच योजन और कुछ कम अट्ठावन अंश निकालते शिखा की दिशा में पर्वत की ऊंचाई आती है । (१६१)

स चायं - योजनानां नवशती, त्रिषष्टयाऽभ्यधिका किल ।
सप्त सप्ततिरंशाश्च, तथाऽत्र स्याज्जलोच्छ्रयः ॥१६२॥

योजनानां पञ्चदशाः, शतास्त्रयोऽष्ट चांशकाः ।
चतुः शती च पञ्चाशा, दशांशाश्च धरोण्डता ॥१६३॥

एवं वेलन्धरावास पर्वतानां यथा मतिः ।
स्वरूपं दर्शितं किन्चिज्जीवाभिगमवर्णितम् ॥१६४॥

और उसकी ऊंचाई ९६३- ७७/९५ योजन की है तथा पानी की ऊंचाई ३१५- ८/९५ योजन की और पृथ्वी की ऊंचाई ४५०- १०/९५ योजन की है इस तरह श्री जीवाभिगम सूत्र जो कहा है उसे यथामति-मति अनुसार बताया है । (१६२-१६४)

सुमेरूतः पश्चिमायां, जम्बूद्वीपान्त्यभूमि तः ।
सहस्रान् द्वादशातीत्य, लवणाम्भोनिधाविह ॥१६५॥

योजनानां सहस्राणि, द्वादशायत विस्तृतः ।
शोभते गौतम द्वीपः स्थानं सुस्थितनाकिनः ॥१६६॥

गौतम द्वीप :- सुमेरू पर्वत से पश्चिम दिशा में जम्बू द्वीप के किनारे से लवण समुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने बाद बारह हजार योजन लम्बा और चौड़ा सुस्थित देव के स्थान रूप गौतम द्वीप शोभायमान है । (१६५-१६६)

सप्त त्रिंशत्सहस्राणि, योजनानां शतानि च ।
नवाष्टचत्वारिंशानि, द्वीपेऽस्मिन् परिधिर्भवेत् ॥१६७॥

इस द्वीप की सैंतीस हजार नौ सौ अड़तालीस (३७९४८) योजन परिधि होती है । (१६७)

द्वे गव्यूते जलादूर्द्धमूच्छितोऽब्धि शिखादिशि ।
अन्तेऽस्यास्मिन्नम्बु बृद्धिस्त्रैराशिकात्प्रतीयते ॥१६८॥

समुद्र की शिखा की दिशा तरफ यह द्वीप जल से दो कोस ऊंचा है इस द्वीप के अंत भाग में पानी की वृद्धि कितनी है ? वह त्रिराशि से जानना चाहिए । (१६८)

तथाहि - सहस्त्रेषु द्वादशसु, द्वीपोऽयं तावदाततः ।
चतुर्विंशतिरित्येवं, सहस्त्रा वारिधेर्गताः ॥१६६॥

ततश्च- सहस्त्र पञ्चनवति पर्यन्ते यदि लभ्यते ।
जलवृद्धिर्योजनानां, शतानि सप्त निश्चिता ॥२००॥

चतुर्विंशत्या सहस्त्रैः, कियतीयं तदाप्यते ।
राशित्रयेऽन्त्याद्ययोश्च, कार्यं शून्यापवर्त्तनम् ॥२०१॥

मध्यराशिः सप्तशती, गुणितोऽन्त्येन राशिना ।
चर्तुविंशति रूपेण, सहस्त्राः षोडशाभवन् ॥२०२॥

ततश्च पञ्चनवति रूपेणान्त्येन राशिना ।
विभज्यते ततो लब्धं, षट् सप्तत्यधिकं शतम् ॥२०३॥

अशीतिः पञ्चनवति भागाश्चैतावती किल ।
गौतम द्वीप पर्यन्ते, जलवृद्धिः शिखा दिशिः ॥२०४॥

वह इस तरह से - समुद्र में बारह हजार योजन जाने के बाद यह द्वीप आता है और वह बारह हजार योजन चौड़ा है अतः यह द्वीप पूर्ण होने से समुद्र में चौबीस हजार योजन होता है । इससे पंचानवे हजार (६५०००) योजन के अन्त में जो सात सौ योजन की जलवृद्धि होती है । तो चौबीस योजन में कितनी जलवृद्धि होती है? उसकी त्रिराशि लिखना और उसमें प्रथम् और अन्तिम राशि के बिन्दु हटा देना, सात सौ की मध्य राशि को चौबीस से गुणा करने से सोलह हजार आठ सौ (१६८००) होते हैं उसे पंचानवे रूप प्रथम राशि-संख्या से भाग देने पर एक सौ छिहत्तर योजन आते है और शेष अस्सी- पंचानवे अंश आता है इससे गौतम द्वीप तक में शिखा तरफ यह कहे अनुसार योजन की जलवृद्धि होती है । (१६६-२०४)

९५०००-७००-२४००

९५-७००-२४

७००×२४ = १६८००

९५)१६८००(१७६

९५

७३०

६६५

६५०

५७०

८०

१७६- ८०/९५ योजन शिखा तरफ गौतम द्वीप की जलवृद्धि होती है ।

जम्बूद्वीपदिश्यमुष्य, राशेरर्द्धं जलोच्छ्रयः ।
युक्तश्चैष सहस्राणां, द्वादशानामतिक्रमे ॥२०५॥

ततः पूर्वोक्तस्य राशोर्द्धं यदिदमास्थितम् ।
अष्टाशीतिर्योजनानि, चत्वारिंशत्तथा लवाः ॥२०६॥

जम्बू द्वीप की ओर की दिशा से अर्थात् गौतम द्वीप की ओर दिशा में पानी की ऊंचाई आधी होती है वह युक्त है, क्योंकि चौबीस हजार योजन में से बारह हजार योजन जाने के बाद इस गौतम द्वीप के जम्बूद्वीप तरफ की दिशा आती है इससे वहां ८८- ४०/९५ योजन की जल वृद्धि होती है । (२०५-२०६)

इयान् जम्बू द्वीप दिशि, द्वीपस्यास्योच्छ्रयो जलात्।
शिखादिगुदितद्वीपोच्छ्रयः क्रोशद्वयाधिकः ॥२०७॥

शिखा की दिशा तरफ कहे गौतम द्वीप की ऊंचाई में दो कोस बढ़ाते जम्बूद्वीप की दिशा की ओर पानी से द्वीप की पूर्व कही ऊंचाई आती है । (२०७)

त्रिंशत्पंन्चनवत्यंशाः षड्विंशा शतयोजनी ।
भूनिम्नताऽस्मिन् पर्यन्ते, द्विगुणा च शिखादिशि ॥२०८॥

जम्बू द्वीप की दिशा की ओर के इस गौतम द्वीप के अन्तिम में पृथ्वी की ऊंचाई १२६- ३०/९५ योजन है और शिखा तरफ दो गुणा है, अत: २५२- ६०/९५ योजन है । (२०८)

एवं च - मूलादुच्चो द्वीप दिशि, चतुर्दशं शतद्वयम्।
क्रोशद्वयाधिकं पन्चनवत्यंशाश्च सप्तति: ॥२०९॥

चतु: शती योजनानामेकोनत्रिंशताऽधिका ।
पन्चत्चवारिंशदंशा, द्वौ क्रोशौ च शिखादिशि ॥२१०॥

इस तरह से इस गौतम द्वीप जम्बू द्वीप की दिशा में मूल से दो सौ चौदह योजन, दो कोस और सत्तर- पंचानवे अंश (२१४- ७०/९५ योजन दो कोस) ऊंचा है तथा शिखा की ओर चार सौ उन्तीस योजन दो कोस पैंतालीस- पंचानवे अंश (४२९- ४५/९५ योजन दो कोस) ऊंचा है । (२०९-२१०)

बनाढयया पद्मवेधा, द्वीपोऽयं शोभतेऽभित: ।
नीलरत्नालियुग्मुक्तामण्डलेनेव कुण्डलम् ॥२११॥

यह गौतम द्वीप वनखंड और पद्मवेदिका से चारों तरफ से शोभायमान हो रहा है । नीलरत्न की माला से युक्त मुक्ता मंडल से जैसे कुण्डल शोभता है वैसे यह द्वीप शोभ रहा है । (२११)

द्वीपस्य मध्य भागेऽस्य, रत्नस्तम्भशतान्वितम् ।
भौमेयमस्तिभवनं, क्रीड़ा वासाभिधं शुभम् ॥२१२॥

द्वाषष्टिं योजनान्येतद्, द्वौ क्रौशौ च समुच्छ्रितम् ।
योजनान्येक त्रिंशतं, क्रोशाधिकानि विस्तृतम् ॥२१३॥

इस द्वीप के मध्य भाग में सौ रत्न स्थंभ से युक्त क्रीड़ावास नाम का भूमि के ऊपर का भवन है । यह भवन बासठ योजन और दो कोस ऊंचा है और इक्कीस योजन और एक कोस चौड़ा है । (२१२-२१३)

एत स्यावसथस्यान्तर्भूमिभागे मनोरमे ।
मध्यदेशे महत्येका, शोभते मणिपीठिका ॥२१४॥

योजनायाम विष्कम्भा, योजनार्द्धं च मेदुरा ।
उपर्यस्या: शयनीयं, भोग्यं सुस्थितनाकिन: ॥२१५॥

इस भवन के मनोहर मध्य भूमि भाग में एक बड़ी मणि पीठिका शोभ रही है । उसकी लम्बाई चौड़ाई एक योजन है और ऊंचाई आधे योजन की है । इस मणि पीठिका के ऊपर सुस्थित नामक देवों के योग्य शय्या है । जिसका वह हमेशा उपभोग करते हैं । (२१४-२१५)

सुस्थितः सुस्थिताभिख्यो लवणोदधि नायकः ।
चतुः सामानिक सुरसहस्त्राराधितक्रमः ॥२१६॥
परिवारयुजां चारुरूचां चतसृणां सदा ।
पट्टाभिषिक्त देवीनां, तिसृणामपि पर्षदाम् ॥२१७॥
सप्तानां सैन्यसेनान्यामात्मरक्षकनाकिनाम् ।
षोडशानां सहस्त्राणामन्येषामपि भूयसाम् ॥२१८॥
सुस्थिताख्यराजधानीवास्तव्यानां सुधाभुजाम् ।
भुङ्क्ते स्वाभ्यं तत्र भूरिसुराराधितशासनः ॥२१९॥

चतुर्भि कलापकं ।

सुस्थित देव के परिवार का वर्णन करते है :- सम्यक् प्रकार से रहने वाला सुस्थित नाम का देव लवण समुद्र का स्वामी है । उसके चरणों की सेवा करने वाले चार हजार सामानिक देव हमेशा रहते हैं । अपने-अपने परिवार से युक्त और सुन्दर कान्ति वाली पट्टाभिषिक्त चार पट्टरानियां है । तीन पर्षदा, सात प्रकार सैना, सात सेनापति और सोलह हजार आत्मरक्षक देवता है । ये सब तथा अन्य भी सुस्थित नामक राजधानी में रहने वाले अनेकानेक देवताओं का स्वामीत्व वह भोग रहा है और अनेक देव उनकी आज्ञा पालन कर रहे हैं । (२१६-२१९)

रत्नद्वीपादिपतयो, लवणाम्भोधिवासिनः ।
देव्यो देवाश्च ते सर्वेऽप्यस्यैव वशवर्त्तिनः ॥२२०॥

लवण समुद्र में रहे रत्न द्वीप आदि के अधिपति जो कोई देव और देवियां हैं वे सब भी इसी सुस्थित देवता के वश रहते हैं। (२२०)

राजधानी सुस्थितस्य, लवणाधिपतेः किल ।
प्रतीच्यां गौतमद्वीपादसङ्ख्यद्वीपवारिधीन् ॥२२१॥

अतीत्य तिर्यगन्यस्मिंल्लवणाम्भोनिधौ भवेत् ।
योजनानां सहस्त्रैर्द्वादशभिर्विजयोपमा ॥२२२॥

लवण-समुद्र के अधिपति इस सुस्थित देव की राजधानी गौतम द्वीप से पश्चिम दिशा में असंख्य द्वीप समुद्र पार करने के बाद दूसरे लवण समुद्र में तिरछे बारह हजार योजन आगे आती है उसका स्वरूप विजय राजधानी के समान है। (२२१-२२२)

जम्बू द्वीप वेदिकान्तात् , प्रतीच्यामेव मेरूतः ।
योजनानां सहस्त्राणि, द्वादशातीत्य वारिधौ ॥२२३॥

स्युश्चत्वारो रवि द्वीपा, द्वौ जम्बू द्वीपचारिणोः ।
भान्वो द्वौं चार्वाक् शिखाया, लवणाम्बुधि चारिणोः ॥२२४॥

अब सूर्य और चन्द्र द्वीप का वर्णन करते है - मेरू पर्वत से पश्चिम दिशा में जम्बू द्वीप की वेदिका की पास से लवण समुद्र में बारह हजार योजन दूर जाने के बाद चार सूर्य द्वीप आते है, उसमें दो द्वीप जम्बू द्वीप में परिभ्रमण करने वाले सूर्य है और दो द्वीप लवण समुद्र की शिखा के पूर्व विभाग में घूमने वाले सूर्य के है। (२२३-२२४)

मेरो प्राच्यां दिशि जम्बू द्वीपस्य वेदिकान्ततः ।
स्युर्योजन सहस्त्राणां, द्वादशानामन्तरम् ॥२२५॥

चत्वारोऽत्र शशिद्वीपा, द्वौ जम्बूद्वीपचारिणोः ।
इन्द्वो द्वौं चार्वाक् शिखाया, लवणो दधि चारिणोः ॥२२६॥

मेरू पर्वत से पूर्व दिशा में जम्बू द्वीप की वेदिका के अन्त विभाग से बारह हजार योजन दूर जाने के बाद चार चन्द्रद्वीप आते है उसमें दो जम्बू द्वीप के चन्द्र के है और दो शिखा से पूर्व भाग में परिभ्रमण करने वाले चन्द्रों के द्वीप है। (२२५-२२६)

तथैव धातकी खण्ड वेदिकान्तादतिक्रमे ।
स्युर्योजन सहस्त्राणां, द्वादशानामिहाम्बुधौ ॥२२७॥

जम्बू द्वीप स्थायि मेरोः प्रतीच्यां दिशि निश्चितम् ।
अष्टौ दिनकरद्वीपा दीपा इव महारूचः ॥२२८॥ *युग्मं ॥*

उसी तरह से घातकी खण्ड की वेदिका के अन्त भाग से लवण समुद्र में बारह हजार योजन आगे बढ़ने के बाद और जम्बू द्वीप के मेरूपर्वत से पश्चिम दिशा में निश्चित रूप में आठ सूर्य द्वीप आते हैं, मानों महातेजस्वी दीपक न हो ! इस तरह वे दिखते हैं । (२२७-२२८)

बहिः शिखायाश्चरतोर्द्वौं द्वीपावर्कयोर्द्वयोः ।
षट् षण्णां घातकी खण्ड र्वाचीनार्द्ध प्रकाशिनाम् ॥२२६॥

इन आठ सूर्य द्वीपो में लवण समुद्र की शिखा के पीछे के विभाग में परिभ्रमण करने वाले सूर्य के दो द्वीप है और शेष छः द्वीप घातकी खंड के पूर्वार्ध को प्रकाश करने वाले छः सूर्य के है । (२२६)

तथैव घातकी खण्ड वेदिकान्तादनन्तरम् ।
योजनानां सहस्रेषु, गतेसु द्वादशस्विह ॥२३०॥

प्राच्यां जम्बू द्वीप मेरोः, सन्त्यष्टौ लवणोदधौ ।
राशिद्वीपास्तत्र च द्वौ, शिखायाश्चरतोर्बहिः ॥२३१॥

षडन्ये घातकीखण्डार्वाक्तनार्द्ध प्रचारिणाम् ।
षण्णां हिमरूचामेवमेते सर्वेऽपि संख्यया ॥२३२॥

स्युश्चतुर्विशंतिश्चन्द्रसूर्यद्वीपाः सर्वेऽप्यमी ।
गौतम द्वीप सदृशा, मानतश्च स्वरूपतः ॥२३३॥

इसी ही तरह से घातकी खंड की वेदिका से लवण समुद्र में बारह हजार योजन जाने के बाद जम्बू द्वीपस्थ मेरू पर्वत से पूर्व दिशा में आठ चन्द्र द्वीप है। उसमें दो द्वीप लवण समुद्र की शिखा के बाह्य विभाग में भ्रमण करने वाले चन्द्र के है और छः द्वीप घातकी खंड के पूर्वार्ध में भ्रमण करने वाले हैं । ये सूर्य और चन्द्र द्वीप कुल चौबीस है, एवं ये चौबीस द्वीप प्रमाण से और स्वरूप से सर्व प्रकार से गौतम द्वीप के समान है । (२३०-२३३)

जलोच्छ्रयावगाहादि, सर्वं ततोऽविशेषितम् ।
गौतम द्वीपवद्वाच्यं सर्वेषामपि सर्वथा ॥२३४॥

इन सब द्वीपों के पानी की गहराई आदि सर्व ही सभी प्रकार से गौतम द्वीप के समान जानना ।

किन्तु तत्रास्ति भौमेयमेषु प्रासादशेखरः ।
वाच्यः प्रत्येकमेकैको, भौमेय सममानकः ॥२३५॥

परन्तु वहां भूमि सम्बन्धी भवन है, इन सब द्वीपों में श्रेष्ठ प्रासाद है, ये प्रासाद प्रत्येक द्वीप में एक-एक है । गौतम द्वीप की भूमि सम्बन्धी भवन समान मान वाला है। (२३५)

प्रतिप्रासादमेकैकं सिंहासनमनुत्तरम् ।
तेषु चन्द्राश्च सूर्याश्च, प्रभुत्वमुपभुञ्जते ॥२३६॥

प्रत्येक प्रासाद के अन्दर एक-एक उत्तम सिंहासन है, उस सिंहासन ऊपर चन्द्र और सूर्य आधिपत्य भोगते हैं । (२३६)

सुस्थिता नरवत्सेव्याः, सामानिकादिभिः सुरैः ।
वर्ष लक्षसहस्राढय प्रल्योपमायुषः क्रमात् ॥२३७॥

सु स्थित देव के समान सामानिक देव आदि से सेवा होते ये चन्द्र और सूर्य अनुक्रम से एक लाख वर्ष से अधिक और एक हजार वर्ष से अधिक एक पल्योपम के आयुष्य वाले होते है । अर्थात् चन्द्र का आयुष्य एक पल्योपम और एक लाख वर्ष का है और सूर्य का एक पल्योपम और एक हजार वर्ष का आयुष्य होता है । (२३७)

एतेषां राजधान्योऽपिस्वस्वदिक्षु मनोरमाः ।
स्युः सुस्थितपुरीतुल्याःपरिस्मिंल्लवणार्ण वे ॥२३८॥

इन सब की मनोहर राजधानियां अपने-अपने दिशा में आगे के लवण समुद्र में है और वह सुस्थित देव की नगरी के समान है । (२३८)

ये तु सन्त्यन्तर द्वीपाः षट् पन्चाशदिहाम्बुधौ ।
निरूपितास्ते हिमवद्गिरिप्रकरणे मया ॥२३९॥

इस समुद्र में जो छप्पन अन्तर द्वीप है, उसका कथन मैने हिमवंत पर्वत के प्रकरण में कहा है । (२३६)

एवमेकाशीतिरस्मिन्, द्वीपा लवण वारिधौ ।
वेलन्धराचलाश्चाष्टौ, दृष्टा दृष्टागमाब्धिभिः ॥२४०॥

इस प्रकार चार वेलंधर पर्वत, चार अनुवेलंधर पर्वत, बारह चन्द्र द्वीप, बारह सूर्यद्वीप, एक गौतम द्वीप और छप्पन अर्न्तद्वीप, १२+१२+१+५६ = ८१ इस तरह लवण समुद्र में इक्यासी द्वीप और आठ वेलंधर पर्वत है जो कि आगम समुद्र दर्शक महापुरुषों ने श्रुत ज्ञान द्वारा देखे हैं। (२४०)

महापाताल कलशाश्चत्वारो लघवश्च ते ।
सहस्राः सप्त चतुरशीतिश्चाष्टषै शतानि च ॥२४१॥

इस लवण समुद्र में चार महापाताल कलश और सात हजार आठ सौ चौरासी (७८८४) छोटे पाताल कलश हैं । (२४१)

रत्नद्वीपादयो येऽन्ये, श्रूयन्तेऽम्भोनिधाविह ।
द्वीपास्ते प्रतिपत्तव्याः, प्राप्त रूपैर्यथागमम् ॥२४२॥

रत्न द्वीप आदि अन्य भी इस समुद्र में जो द्वीप सुने जाते हैं उनका स्वरूप आगम में कहे अनुसार जानना । (२४२)

सुधांशवोऽस्मिंश्चत्वार श्चत्वारोऽर्काश्च तीयधौ।
संचरन्ति समश्रेण्या, जम्बू द्वीपेन्दु भानुभिः ॥२४३॥

इस समुद्र में चार चन्द्र और चार सूर्य हैं जो जम्बू द्वीप के चन्द्र और सूर्य की समश्रेणि में विचरण करते हैं। (२४३)

यदा जम्बूद्वीपगतश्चारं चरति भानुमान् ।
एको मेरोर्दक्षिणास्यां, तदाऽस्मिन्नम्बुधावपि ॥२४४॥

तेन जम्बूद्वीपगेन, समश्रेण्या व्यवस्थितौ ।
दक्षिणस्यामेवमेरोद्वौ चारं चरतो रवी ॥२४५॥

एकस्तत्रार्वाक् शिखायाः सम श्रेण्या सहामुना ।
शिखायाः परतोऽन्योऽब्धावुक्षेव युगयन्त्रितः ॥२४६॥

जम्बू द्वीप का एक सूर्य जब मेरू पर्वत की दक्षिण दिशा में भ्रमण करता है, तब वह जम्बू द्वीप के सूर्य की समश्रेणि में रहे समुद्र दो-दो सूर्य की मेरू पर्वत के दक्षिण में ही भ्रमण करते हैं उसमें एक शिखा के पूर्व भाग में सूर्य और एक शिखा के पश्चिम भाग में गाड़ी के जुए में जोडे हुए दो बैलों के समान ये दोनों सूर्य इसी तरह अविरति रूप भ्रमण करते हैं । (२४४-२४६)

एवमुत्तरतोमेरोर्यो जम्बूद्वीपगो रविः ।
द्वौ पुनस्तत्समश्रेण्या, चरतोऽर्काविहाम्बुधौ ॥२४७॥

इस प्रकार जम्बूद्वीप का सूर्य जब मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में भ्रमण करता है तब उसकी समश्रेणि में रहे समुद्र के दो सूर्य भी उत्तर में भ्रमण करते हैं । (२४७)

तदा च चरतोर्जम्बूद्वीपे पीयूषरोचिषोः ।
मेरोः प्राच्यां प्रतीच्यां च, समश्रेण्याऽम्बुधावपि ॥२४८॥

द्वौ द्वौ शाशाङ्कौ चरतः, पूर्व पश्चिमयोर्दिशोः ।
अर्वाक् शिखाया एकैक, एकैकः परतोऽपि च ॥२४६॥

तथा जम्बू द्वीप में भ्रमण करने वाले दो चन्द्र मेरू पर्वत से पूर्व पश्चिम में जब भ्रमण करते हैं उस समय समश्रेणि में रहे समुद्र के दो-दो चन्द्र भी मेरू पर्वत के पूर्व और पश्चिम दिशा में ही भ्रमण करते हैं । उसमें एक चन्द्र शिखा के पहले और दूसरा शिखा के बाद में भ्रमण करता है । (२४८-२४६)

एवं रवीन्द्रवो येऽग्रे सन्ति मर्त्योत्तरावधि ।
जम्बूद्वीप चंद्र सूर्य समश्रेण्यिा चरन्ति ते ॥२५०॥

इसी तरह आगे भी मानुषोत्तर पर्वत तक जितने सूर्य और चन्द्र हैं, वे सब जम्बूद्वीप के सूर्य और चन्द्र की समश्रेणि में भ्रमण करते हैं । (२५०)

यथोत्तरं यदधिकाधिक क्षेत्राक्रमेऽपि ते ।
पर्याप्नुवन्ति सह तद्गत्याधिक्यात् यथोत्तरम् ॥२५१॥

आगे से आगे क्षेत्र का विस्तार अधिक से अधिक होने पर भी आगे के सूर्य चन्द्र उत्तरोत्तर अधिक गति के योग से साथ में गति करते हैं । (२५१)

दृश्यते भ्रमतां श्रेण्या मेढीमनु गवामिह ।
अर्वाचीनापेक्षयाऽन्यगत्याधिक्यं यथोत्तरम् ॥२५२॥

कोल्हू के मध्य में रहे खंभे के गोलाकार फिरते बैलों में पूर्व की अपेक्षा से बाद के बैलों की गति अधिक दिखती है । वैसे उनकी दिखती है । (२५२)

एवं सर्वेऽनुवर्त्तन्ते, जम्बू द्वीपेन्दु भास्कराः ।
मण्डलान्तरसंचारायनाहर्वृद्धिहानिभिः ॥२५३॥

इस तरह से सर्व सूर्य चन्द्र मंडलातर के संचार में, अयन में और दिन की वृद्धि-हानि में जम्बूद्वीप के सूर्य चन्द्र के अनुसार होते हैं । (२५३)

ततो जम्बू द्वीप इव, भर्त्योत्तराचलावधि ।
यदाऽहर्मेरुतोऽपाच्यां, तदैवोत्तरतोऽप्यहः ॥२५४॥

सहैवैवं निशा मेरोः, पूर्व पश्चिमयोर्दिशोः ।
एवं जम्बूद्वीपरीतिः सर्वत्राप्यनुवर्त्तते ॥२५५॥

इससे जम्बूद्वीप के समान मानुषोत्तर पर्वत तक जब मेरू पर्वत की दक्षिण में दिन होता है तब उत्तर में भी दिन होता है और उसी समय में मेरू पर्वत के पूर्व पश्चिम दिशा में रात्रि होती है । इस प्रकार से जम्बू द्वीप में सूर्य चन्द्र को चलने की पद्धति है वह सर्वत्र-मानुषोतर पर्वत तक उसी तरह है। (२५४-२५५)

''उक्तं च सूर्य प्रज्ञप्तौ - 'तया णं लवण समुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवति तया णं उत्तर ड्ढेवि दिवसे भवति, तया णं लवणसमुद्दे पुरत्थिमपच्चत्थिमे राई भवइ, एवं जहां जंबू दीवे तहेव' एव घात की खण्ड कालोद पुष्करार्द्ध सूत्राण्यपि ज्ञेयानि॥''

सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र में कहा है कि - जब लवण समुद्र के दक्षिणार्ध में दिन होता है तब उत्तरार्ध मेंभी दिन होता है और उस समय लवण समुद्र में पूर्व पश्चिम में रात्रि होती है । इस तरह से जैसे जम्बू द्वीप में है । उसी तरह घातकी खंड, कालोदधि समुद्र और पुष्करार्ध द्वीप सम्बन्धी बाते हैं वह विशेष रूप से सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र में से समझ लेना चाहिए ।

नन्वत्र षोडशहस्त्रोच्चया शिखयाऽम्बुधौ ।
ज्योतिष्काणां संचरतां, व्याधातो न गतेः कथम् ? ॥२५६॥

यहां प्रश्न करते हैं कि – यहां समुद्र के अन्दर रही सोलह हजार योजन ऊंची शिखाओं के द्वारा समुद्र में संचरण करते ज्योतिष्क विमानों की गति का व्याघात-विघ्न क्यों नहीं करता ? (२५६)

ब्रूमोऽत्र ये ज्योतिषिक विमाना लवणाम्बुधौ ।
ते भिन्दन्तः संचरन्ति, जल स्फटिकजा जलम् ॥२५७॥

तदेतेषां जलकृतो, व्याघातो न गतेर्भवेत् ।
जलस्फटिकरत्नं हि, स्वभावाज्जल भेदकृत ॥२५८॥

इसका उत्तर देते है कि – लवण समुद्र में जो ज्योतिष्क विमान है वे जलफटीक रत्न के होने से वे विमान संचरण (गमन) करते समय जल को भेदन कर जाता है, इससे इन विमानों की गति में जल से व्याघात नहीं होता । क्योंकि जल स्फटिक रत्न स्वभाव से ही जल को भेदन करने वाला होता है । (२५७-२५८)

उर्द्धलेश्याकास्तथैते, विमाना लवणोदधौ ।
ततः शिखायामप्येषां प्रकाशः प्रथतेऽभितः ॥२५६॥

लवण समुद्र में परिभ्रमण करने वाले ये विमान ऊर्ध्व प्रकाश वाले होते है अर्थात उनका प्रकाश ऊपर की दिशा में फैलता है । इससे उन विमानों का प्रकाश शिखा में भी चारों तरफ फैल जाता है । (२५६)

सामान्य स्फाटिकोत्थानि, शेषेषु द्वीप वार्द्धिषु ।
ज्योतिष्काणां विमानानि, नीचैः सर्पन्महांसि च ॥२६०॥

शेष द्वीप समुद्र के ज्योतिष्क विमान सामान्य स्फटिक के बने है और उन विमानों का तेज नीचे फैलता है । (२६०)

तथाह – विशेषणवती – "सोलस साहस्सियाए सिहाए कहं जोइ सियविधातो न भवति ?, तत्थ भन्नइ, जेणं सूर पण्णत्तीए भणियं –"

जोइ सिय विमाणाइं सव्वाइं हवंति फालियमयाइं ।
दग फालि यामया पुण लवणे जे जोइ सविमाणा ॥२६०॥ (अ)

विशेषणवती ग्रन्थ में कहा है कि – वहां प्रश्न रखा है कि :- "सोलह हजार योजन से ऊंची शिखा में ज्योतिष्क का विघात क्यों नहीं होता है ?"

इसका उत्तर देते है – सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र में कहा है कि –ज्योतिष्क के सर्व विमान स्फटिक रत्न के बने हुए होते हैं, जब लवण समुद्र के ज्योतिष्क के विमान जल स्फटिकमय है । (२६०) (अ)

जं सव्वदीव समुद्देसु फालियामयाइं लवण समुद्दे चेव केवलं दगफालियाम याइं तत्थेद मेव कारणं – मा उदगेण विधाओभव उत्ति, जं सूरपण्ण त्तीए चेव भणियं –

इस विषय पर विशेषणवती में उल्लेख है – सर्व द्वीप समुद्र के ज्योतिष्क के विमान केवल स्फटिकमय है और केवल लवण समुद्र के ज्योतिष्क विमान जल स्फटिक मय है, उसमें यही कारण है कि पानी द्वारा उसका विघात नहीं होता । इसलिए सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र में भी कहा है कि –

लवणं तो (णे जे) जोइ सिया: उद्ध लेसा भवंति णायव्वा।
तेण परं जोइ सिया अह ले सागा (मु) णेयव्वा ॥२६०॥ (आ)
तंपि उदगमाला व भासणत्थमेव लोगढिई एस त्ति ॥"

लवण समुद्र के ज्योतिष्क विमान ऊर्ध्व लेश्या वाले ऊपर जाते प्रकाश वाले जानना । और उसके बाद के ज्योतिष्क विमान नीचे जाते प्रकाश वाले जानना । (२६०) (आ) इसी प्रकार की लोक स्थिति भी उदकमाला–शिखा के (पानी की शिखा को) प्रकाशित करने के लिए है ।"

एवं चत्वारोऽत्र सूर्यश्चत्वारश्च सुधांशवः ।
नक्षत्राणां शतमेकं, प्रज्ञप्तं द्वादशोत्तरम् ॥२६१॥

द्वि पन्चाशत्समाधिकं, ग्रहाणां च शतत्रयम् ।
प्रमाणमथ ताराणां, यथाऽऽम्नायं निरूप्यते ॥२६२॥

द्वे लक्षो सप्तषष्टिश्च, सहस्त्राणि शतानि च ।
नवैव कोटा कोटीनां, प्रोक्तानि तत्व वेदिभिः ॥२६३॥

इस प्रकार से इस लवण समुद्र में चार सूर्य, चार चन्द्रमा, एक सौ बारह नक्षत्र, तीन सौ बावन ग्रह है और तारा की गिनती आम्नाय परम्परा अनुसार कहते है - वह इसके अनुसार है – दो लाख सड़सठ हजार नौ सौ (२६७९००) कोटा कोटी तारा की संख्या तत्वज्ञ पुरुषों ने कही है । (२६१-२६३) .

अत्रायमाम्नाय: -

यत्र द्वीपे समुद्रे वा, प्रमाणं ज्ञातुमिष्यते ।
ग्रह नक्षत्र ताराणां तत्रत्य चन्द्रसङ्खयया ॥२६४॥

एकस्य राशिनो गुण्यो, वक्ष्यमाणाः परिच्छदः ।
एवं ग्रहोडुताराणां, मानं सर्वत्र लभ्यते ॥२६५॥

यहां परम्परा इस तरह से है – जिस किसी द्वीप अथवा समुद्र में ग्रह नक्षत्र तारा की संख्या जाननी हो उस द्वीप या समुद्र सम्बन्धी चन्द्र की संख्या से एक चन्द्र का कहलाता परिवार गिनना । उसके अनुसार करने से ग्रह, नक्षत्र और तारा का मान सर्वत्र मिल सकता है । (२६४-२६५)

एक शशि परिवारश्चायम् -

अष्टाशीतिर्ग्रहा ऋक्षाण्यष्टाविंशतिरेव च ।
शराश्वाङ्करसरसास्ताराणां कोटिकोटय: ॥२६६॥

एक चन्द्र का परिवार इस तरह कहा है :- अठासी ग्रह (८८) अट्ठाईस नक्षत्र (२८) और छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर (६६९७५) कोटा कोटी तारा समुदाय होता है। (२६६)

लवणाब्धौ च कालोदे, स्वयम्भूरमणेऽपि च ।
भूयस्यो मत्स्यमकर कूर्माद्या मत्स्यजातय: ॥२६७॥

लवण समुद्र के अन्दर कालोदधि समुद्र में और स्वयं रमण समुद्र में बहुत मत्यस्य, मगरमच्छ, और कछुआ आदि जलचर जीव अनेक जाति के होते है । (२६७)

तत्रास्मिल्लवणाम्भोधावुत्सेधाङ्गुलमानतः ।
योजनानां पञ्च शतान्युत्कृष्ट मत्स्यभूधनम् ॥२६८॥

शतानि सप्तकालोदे, सहस्रमंतिमेऽम्बुधौ ।

गुर्वङ्गमानं मत्स्यानामल्पमत्स्याः परेऽब्धयः ॥२६९॥

उसमें से इस लवण समुद्र में मछली उत्सेध अंगुली के माप से पांच सौ योजन की होती है, कालोदधि समुद्र में सात सौ योजन की माप वाली होती है तथा स्वयं भूरमण समुद्र में एक हजार योजन के माप वाली होती है । यह शरीरमान उत्कृष्ट समझना । तथा अन्य समुद्र में मछली आदि अल्प संख्या में होते है । (२६८-२६९) योगशास्त्र के चौथे प्रकाश में तो लवण समुद्र कालोदधि और स्वयं भूरमण समुद्र के बिना अन्य समुद्रों में मछली आदि नहीं होते, ऐसा कहा है तत्व तो बहुश्रुत ज्ञानी पुरुष जाने ।

स्युर्योनिप्रभवा जाति प्रधानाः कुलकोटयः ।

लवणे सप्त मत्स्यानां कालोदवारिधौ ॥२७०॥

अर्द्ध त्रयोदश तथा, मत्स्यानां कुलकोटयः ।

स्वयम्भू रमणाम्भोधौ, प्रज्ञप्ताः परमेष्टिभिः ॥२७१॥

योनि से उत्पन्न हुए और मुख्य जाति वाले मछलियों की कुल कोटियां लवण समुद्र में सात प्रकार से है, कालोदधि समुद्र में नौ प्रकार से है और स्वयं भूरमण समुद्र में साढ़े बारह प्रकार से है । इस तरह परमोपकारी श्री परमेष्ठि ने फरमाया है । (२७०-२७१)

तथा च जीवाभिगमे - 'लवणे णं भंते । समुद्दे कइमच्छ जाति कुल कोडि जोणी पमुह सव सहस्सा पण्णत्ता ? गोयम ! लवणे सत्त, कालेए नव, सयं भूरमणे अद्धतेरस त्ति ।'

' श्री जीवाभिगम सूत्र में भी कहा है कि - हे भगवन ! लवण समुद्र में मछली की जाति कुल कोटी योनि आदि कितने लाख कहा है ? इस प्रश्न का उत्तर भगवान देते हैं हे गौतम ! लवण समुद्र में सात, कालोदधि में नौ और स्वयं भूरमण समुद्र में साढे बारह कुल कोटि होते हैं ।'

जम्बू द्वीपे प्रविशन्ति, मत्स्या लवण तोयधेः ।

नव योजन प्रमाणा जगती विवराध्वना ॥२७२॥

लवण समुद्र में से जम्बू द्वीप की जगती के विवर-कंदरा मार्ग द्वारा नौ योजन प्रमाण काया वाले मछली जम्बूद्वीप में लवण समुद्र के प्रवेश करते है । (२७२)

एवं च --

क्वचिदयमुदधिः सुधांशु चन्द्रातप धनसार समुज्जवलश्च कास्ति।
गत शिखशिरसः शिखाभिरामो, रहसि हसन्निव वारिधीन शेषान् ॥२७३॥

क्वचिदुदभदमन्दभानुतेजो, घुसृणरसप्रसरारूणान्तरालः।
प्रकटमिव वहन्नदीषु रागं, हृदि रसतः पति तासु वल्लभासु ॥२७४॥ *युग्मं॥*

और वह इस प्रकार से - किसी समय यह समुद्र अमृत समान किरणों वाले चन्द्र के प्रकाश रूपी चन्दन से उज्जवल हुआ और शिखा से मनोहर बने उस शिखा के ऊपर आए शिखा रूपी मस्तक से रहित समस्त समुद्रों को मानो एकान्त मे हंसता हो ऐसा शोभता है, कभी उदय हुए तीव्र सूर्य के प्रकाश रूपी केशर रस के फैलाव से उसका अंतराल (बीच बीच) में भाग लाल हो गया है, इस प्रकार यह समुद्र अपने हृदय (मध्य भाग) में प्रेम रस से गिरती नदी रूप वल्लभा ऊपर मानो प्रगट रूप में राग धारण करता हो इस तरह शोभायमान हो रहा है । (२७३-२७४)

क्वचिदनणुगुणैर्विभाति मुक्ता मणिभिरूडुप्रतिबिम्बतैरिवान्तः ।
अविरत गति खिन्न भानु मुक्तैः, क्वचन कर प्रकरैरिवप्रवालै ॥२७५॥

किसी स्थान पर महा मूल्यवान मोती न हो इस प्रकार समुद्र में प्रतिबिंब बने नक्षत्रों द्वारा यह समुद्र शोभायमान हो रहा है, तथा किसी स्थान पर अविरत-लगातार गमन करने से श्रांत (परिश्रम से थका हुआ) बने सूर्य ने मानो मुक्त किया हो ऐसी किरण समान प्रवाल-मूंगा से यह समुद्र शोभायमान हो रहा है । (२७५)

क्वचन जल गजैर्नियुद्ध सज्जैरस कृदुदस्तकरोद्धरैः करालः ।
जगदुपकृति कारिनीरपानोपनतघनेषु घृतप्रतीभशङ्कैः ॥२७६॥

जगत का उपकार करने वाला नीर (पानी) का पान करने के लिए बादल में शत्रु हाथी की शंका करते बारम्बार ऊंची करते सूंढ से भयंकर और युद्ध के लिए तैयार हुए जल हस्तियों से यह लवण समुद्र किसी स्थान पर विकराल लगता है । (२७६)

स्थल चरसम सर्वजाति सत्वाकृति मदनेकझषौथपूर्णमध्यः ।
प्रलयतरलितं जगद्धानो, हरिरिव कुक्षि निकेतने कृपार्द्रः ॥२७७॥

स्थलचर जीवों के समान सर्वजाति के जीवों की आकृति वाले अनेक मछली के समूह से मध्य भाग जिसका पूर्ण है, यह कृपालु समुद्र मानो प्रलयकाल से घबराये न हो इस तरह जगत के कृपालु विष्णु के समान अपने उदर रूप भवन में धारण करता है । (२७७)

(प्रमुदित वदना (मंदाकिनी) प्रभाश्च)

क्वचिदिह कमलायाः कौतुकादारा मंत्या, जलचर नरकन्यालीषु हल्ली सकेन।
अयमुपनयतीवा पत्यरागैकगृह्यः, पवनजवनवेलागर्जिवाद्यं विनोदात् ॥२७८॥

जलचर मनुष्यों की कन्याओं की श्रेणि में कौतुक से रास क्रीड़ा से खेलती लक्ष्मी के अपत्य रूप के (लोगों में समुद्र की पुत्री मानी जाती है) राग के वश बना हुआ यह समुद्र वायु के वेग वाली ज्वार-भाटा के गर्जना रूप वाद्य-बाजे को मानो हर्षपूर्वक बजा रहा है । (२७८)

तरलतरङ्गोत्तुङ्गरङ्गत्तुरङ्गः, प्रसरदतुलवेलामत्तमातङ्गसैन्यः ।
अतिविपुलमनोज्ञद्वीपदुर्गैरूदग्रः, कलयति, नृपलक्ष्मीं वाहिनीनां विवोढा ॥२७९॥ (मालिनी)

अत्यन्त चपल तरंग रूपी उत्तुंग (बहुत ऊं.) और कूदते अश्व के सैन्य वाले, फैलती बड़ी बड़ी लहर रूपी मदोन्मत्त हाथी के सैन्य वाले, अति विशाल और मनोहर द्वीप रूप किले द्वारा श्रेष्ठ और नदियों का स्वामी यह लवण समुद्र राज-लक्ष्मी की शोभा को धारण करता है । (२७९)

स्वच्छोन्मूर्च्छदतुच्छमत्स्यपटलीपुच्छोच्छलच्छीकरः,
च्छेदोत्सेकितबुब्दुदार्बुदमिषोद्भिन्न श्रमाम्भः कणः ।
हेलोत्प्लाविततुङ्ग पर्वत शतोत्सर्पत्तरङ्गोद्धतो,
वीरं मन्य इवैष चिक्रमिषया दिग्भूभृतां धावति, ॥२८०॥

समुद्र के ऊपर आते बड़े-बड़े मछलियों के समूह की पूच्छ में प्रहार से उछलते पानी के बिन्दु नीचे पानी में गिरते है उससे उत्पन्न हुआ स्वच्छ बुलबुला के झाग के बहाने से पसीना के बिन्दु वाला, पानी की लहरों से गीला होते सैंकड़ो

तरंगे पर्वत ऊपर होकर जाते तरंगों से उद्धत देखती है और अपने को वीर मानते यह समुद्र दिशाओं के पर्वतों को जीतने की इच्छा से मानो कि दौड़ रहा है । ऐसा दिख रहा है । (२८०)

क्रुद्धा खण्डलवज्र मण्डलजालज्वाला करालानलः,
त्रस्तानेक गिरीन्द्र कोटि शरणं कल्पद्रुमाणां वनम् ।
तत्तद्वस्तु वदान्ततातरलितैरप्यर्थितो निर्जरै -
र्यौरत्नाकर इत्यनेककविभिर्नाना विकल्पैः स्तुतः ॥२८८॥

(शार्दूल विक्रीडिते)

क्रोधायमान बने देवेन्द्र के वज्र मंडल में से फैल रही ज्वाला के विकराल अग्नि से त्रसित हुए अनेक करोड़ गिरीन्द्रों के शरण रूप कल्प वृक्षों के वन स्वरूप और उस-उस वस्तुओं के दान में उदारता युक्त देवों ने भी जिसके पास में याचना की है, वह इस समुद्र (लवण समुद्र) की अनेक कवियों के द्वारा विविध प्रकार से स्तवना (स्तुति) की है । (२८१)

निर्व्रीड क्रीडदम्भश्चरनरतरूणीक्लृप्त दीपोपचारै-
र्नूलैरत्नैरयत्नोज्जवल घृणिभिः क्वापि दीप्रांतराल ।
क्वापि प्राप्त प्रकर्षः पृथुमकर कराकृष्ट पाटीन पीठ,
भ्रस्यन्नक्र प्रमोदोल्लन चल जलोत्सिक्त डिंडीर पिंडैः ॥२८२॥

(स्त्रग्धरा) दशभिरादि कुलकं ।

लज्जा रहित क्रीडा कर रही जलचर मनुष्यों की तरूणियों के द्वारा किये हुए दीपक के उपचार से प्रेरित स्वाभाविक उज्जवल और अनेक किरणोंवाला नये रत्नों से किसी स्थान में तेजस्वी अन्तराल वाला और किसी स्थान पर विशाल मगरमच्छ के हाथी से आकृष्ट करते मछली की पीठ पर से नीचे गिरते और जलचर जंतुओं से हर्षपूर्वक उछालते चंचल पानी के पड़ने से उत्पन्न हुए समुद्र के झाग के समूह से प्रकर्षता प्राप्त करने वाला यह लवण समुद्र शोभायमान हो रहा है। (२८२)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिष -
द्राज श्री तनयोऽतनिष्ट विनय: श्री तेजपालात्मज: ।
काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्व प्रदीपोपमे,
संपूर्ति सुखमेक विंशति तम: सर्गो मनोज्ञोऽगमत् ॥२८३॥

ग्रन्थाग्रं ॥३३७॥

॥ इति श्री लोकप्रकाशे एक विंशतितम सर्ग: समाप्त: ॥

इस जगत को आश्चर्य चकित करने वाले कीर्तिमान उपाध्याय प्रवर श्री कीर्ति विजय जी महाराज के अन्तेवासी राजश्री माता के पुत्र और श्री तेजपाल पिता के अंगज श्री विनय विजय जी उपाध्याय ने जगत के निश्चित तत्वों को ज्ञान कराने में दीपक समान यह काव्य बनाया है । इस काव्य में सुन्दर कोटी का इक्कीसवां मनोज्ञ सर्ग सुख रूप समाप्त हुआ है । (२८३)

इक्कीसवां सर्ग समाप्त

बाईसवां सर्ग

धातकी खंड द्वीप का स्वरूप

अथास्माल्लवणाम्भोधेरनन्तरमुपस्थितः ।
वर्ण्यते धातकीखण्डद्वीपो गुरुप्रसादतः ॥१॥

अब इस लवण समुद्र के बाद धातकी खण्ड द्वीप का वर्णन गुरुदेव की कृपा से करता हूँ । (१)

वृक्षेण धातकीनाम्ना, तदसौ शोभितः सदा ।
वक्ष्यमाण स्वरूपेण, ततोऽयं प्रथितस्तथा ॥२॥

जिसका आगे वर्णन करने में आयेगा वह धातकी नाम के वृक्ष से हमेशा शोभित होने से यह द्वीप धातकी खंड रूप है प्रसिद्ध हुआ है । (२)

चतुर्योजन लक्षात्मा, चक्रवाल तथाऽस्य च ।
विस्तारो व्रर्णितः पूर्णज्ञानालोकितविष्टवैः ॥३॥

केवल ज्ञान द्वारा समग्र विश्व के दर्शक श्री भगवान ने इस द्वीप को चक्रवाल-गोलाकार चौड़ाई चार लाख योजन कहा है । (३)

परिक्षेपः पुनरस्यः कुक्षिस्थ द्वीपवारिधेः ।
त्रयोदश लक्ष रूपःक्षेत्र लब्धोऽमीरितः ॥४॥

मध्य के द्वीप समुद्र (जम्बूद्वीप-लवण समुद्र) के क्षेत्र से प्राप्त हुए तेरह लाख योजन रूप व्यास इस धातकी खंड द्वीप का है । (४)

लक्षाः किलैकचत्वारिंशत्सहस्राण्यथो दश ।
योजनानां नवशती, किञ्चिदूनैकषष्टियुक् ॥५॥

अयं कालोदपार्श्वेऽस्य, परिधिश्चरमो भवेत् ।
आद्यस्तु लवणाम्भोधेरन्ते यः कथितः पुरा ॥६॥

तथा इकतालीस लाख, दस हजार, नौ सौ और कुछ कम इकसठ योजन की परिधि है यह परिधि कालोदधि समुद्र के पास में है, उसे चरम परिधि कहते

हैं और इसके आगे कही हुई लवण समुद्र के पास की परिधि है वह आद्य परिधि कहलाती है । (५-६)

मध्यमः परिधिर्लक्षाण्यष्टाविंशतिरेव च ।
षट्चत्वारिंशत्सहस्राः पन्चाशद्योजनाधिकाः ॥७॥

धातकी खण्ड की मध्यम परिधि अट्ठाईस लाख सैंतालीस हजार पचास (२८४७०५०) योजन से अधिक है । (७)

जम्बू द्वीप वदेषोऽपि, द्वारैश्चतुर्भिरन्वितः ।
तेषा नाम प्रमाणादि, सर्वं तद्वभ्दवेदिह ॥८॥

जम्बू द्वीप के समान यह धातकी खंड भी विजयादि चार द्वार से युक्त है उसके नाम प्रमाणादि सर्व जम्बूद्वीप के समान है । (८)

किंत्वेतद् द्वार पालानां, विजयादि सुधा भुजाम् ।
परस्मिन् धातकी खण्डे, राजधान्यो निरूपिताः ॥९॥

परन्तु उन द्वार के द्वार पाल जो विजय आदि देव है उनकी राजधानियां आगे दूसरे धातकी खंड में है । (९)

दश लक्षा योजनानां, सहस्राः सप्तविंशतिः ।
पन्चत्रिंशा सप्तशती मिथो द्वारामिहान्तरम् ॥१०॥

विजयादि द्वारों का परस्पर अन्तर दस लाख सत्ताईस हजार, सात सौ पैंतीस (१०२७७३५) योजन होता है । (१०)

दक्षिण स्यामुदीच्यां च, द्वीपस्यैतस्य मध्यगौ ।
इषुकारौ नगवरौ, जगदाते जगद्धितैः ॥११॥

योजनानां पन्च शतान्युच्चौ सहस्र विस्तृतौ ।
चत्वारि योजनानां च लक्षाण्यायामतः पुनः ॥१२॥

अतः एव स्पृष्टवन्तौ, कालोदलवणोदधी ।
आभ्यां संगन्तुमन्योऽत्यं भुजाविव प्रसारि तौ ॥१३॥

कूटैश्चतुभिः प्रत्येकं शोभितौ रत्न भासुरैः ।
चैत्यमेकैकं च तत्र, कूटे कालोदपार्श्वगे ॥१४॥ *चतुर्भिः कुलकं ॥*

जगत के हितकारी भगवान ने इस द्वीप के मध्य भाग में दक्षिण दिशा और उत्तर दिशा के अन्दर दो इषुकार पर्वत कहे है (११) ये इषुकार पर्वत पांच सौ योजन ऊंचे हैं, एक हजार योजन चौड़े और चार लाख योजन लम्बे है। (१२) ये इतने लम्बे होने के कारण कालोदधि और लवण समुद्र के स्पर्श करने वाले ये पर्वत मानों कि लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र को परस्पर एकत्रित करते हो इसलिए हाथ प्रसारित किए हो इस तरह लगते हैं। (१३) ये दोनों पर्वत रत्न द्वारा तेजस्वी चार-चार शिखरों से सुशोभयमान हो रहे हैं और उसमें से कालोदधि समुद्र की ओर में रहे दोनों पर्वत में कूट है और ऊपर एक-एक चैत्यालय है। (१४)

आभ्यां द्वाभ्यामिषुकार पर्वताभ्यामयं द्विधा ।
द्वीपो निर्दिश्यते पूर्व पश्चिमार्द्धविभेदतः ॥१५॥

इन दो इषुकार पर्वतों से दो भाग में रहे ये द्वीप पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध कहलाता है। (१५)

यच्च जम्बूद्वीपमेरोः प्राच्यां पूर्वार्द्धमस्य तत् ।
तस्य प्रतीच्यामर्द्धं यत्तत्पश्चिमार्द्धमुच्यते ॥१६॥

जम्बू द्वीप के मेरू पर्वत से पूर्व में यह धातकी खंड का जो अर्धभाग है वह पूर्वार्ध है और उसके पश्चिम में जो अर्धभाग है वह पश्चिमार्ध कहलाता है।

द्वयोरप्यर्द्धयोर्मध्ये, एकैको मन्दराचलः ।
तयोरपेक्षया क्षेत्र व्यवस्थाऽत्रापि पूर्ववत् ॥१७॥

दोनों अर्धविभाग के मध्य में एक-एक मेरू पर्वत है। उसकी अपेक्षा से यहां धातकी खण्ड के अन्दर भी क्षेत्र व्यवस्था पूर्व में जम्बूद्वीप में कही है। वैसा ही जानना। (१७)

तथाहि - अपाच्यामिषु कारो य, इहत्यमेर्व पेक्षया।
पूर्वतस्तस्य भरलक्षेत्रं प्रथमतो भवेत् ॥१८॥

ततो हैमवतक्षेत्रं हरिवर्ष ततः परम् ।
ततो महाविदेहाख्यं, रम्यकाख्यं ततः परम् ॥१९॥

ततश्च हैरण्यवतमैरावतं ततस्ततः ।
औत्तराह इषुकार, एषा पूर्वार्द्ध संस्थितिः ॥२०॥

वह इस तरह है – यहां जम्बू द्वीप के मेरू पर्वत की अपेक्षा से दक्षिण दिशा में जो इषुकार पर्वत है । उस इषुकार पर्वत से पूर्व में प्रथम भरत क्षेत्र आता है, उसके बाद हैमवंत क्षेत्र, फिर, हरिवर्ष क्षेत्र, बाद में महाविदेह क्षेत्र, उसके बाद रम्यक् क्षेत्र, बाद में हैरण्यवत क्षेत्र उसके बाद ऐरवत क्षेत्र और उसके बाद उत्तर का इषुकार पर्वत आता है । यह पूर्वार्ध घातकी खंड की स्थिति है । (१८-२०)

पश्चिमायामपि तस्माद्दाक्षिणात्येषुकारतः ।
प्रथमं भरतक्षेत्रं, ततो हैमवताभिधम् ॥२१॥

एवं यावदौत्तराह, इषुकार धराधरः ।
पूर्वार्द्धवत्क्षेत्ररीतिरेवं पश्चिमतोऽपि हि ॥२२॥

उस दक्षिण दिशा के इषुकार पर्वत से पश्चिम दिशा में भी प्रथम भरत क्षेत्र उसके बाद हैमवंत आदि इसी तरह से उत्तर के इषुकार प्रर्वत तक का जानना । यहां पूर्वार्ध के सदृश पश्चिमार्ध में भी क्षेत्र व्यवस्था जानना । (२१-२२)

द्वयोरप्यर्द्धयोरेषां, क्षेत्राणां सीमकारिणोः ।
षट् षट् वर्षधराः प्राग्वत्, सर्वेऽपि द्वादशोदिताः ॥२३॥

इन क्षेत्रों की सीमा का विभाग करने वाला, दोनों के अर्ध विभाग में छः-छः वर्षधर पर्वत पहले के समान है, वे सभी मिलाकर बारह वर्षधर पर्वत है । (२३)

जम्बूद्वीपवर्षधराद्रिभ्यो द्विगुणविस्तृताः ।
तुङ्गत्वेन तु तैस्तुल्याः सर्वे वर्षधराद्रयः ॥२४॥

ये सारे वर्षधर पर्वत जम्बूद्वीप के वर्षधर पर्वत से दो गुणा चौड़े है, और ऊंचाई में सब समान है । (२४)

आयामतश्चतुर्लक्षयोजनप्रमिता अमी ।
पर्यन्तस्पृष्टकालोदलवणोदधि वारयः ॥२५॥

लम्बाई में ये सब वर्षधर पर्वत चार लाख योजन के है और दोनों अन्तिम विभाग कालोदधि तथा लवण समुद्र के पानी को स्पर्श करते हैं । (२५)

तथाह्यत्र हिमवतोर्गियो: शिखरिणोरपि ।
विष्कम्भोऽयं जिनैरुक्त:, पूर्वापरार्द्ध भाविनो: ॥२६॥

योजनानां शतान्येकविंशति: पन्चचोपरि ।
कला: पन्चैवाथ महाहिमवतोश्च रूक्मिणो: ॥२७॥

अष्टावेव सहस्राणि, योजनां चतु:शती ।
एक विंशत्यभ्यधिका, तथैवैक कलाधिका ॥२८॥

त्रयस्त्रिं शत्सहस्राणि, योजनानां शतानि षट् ।
स्फुरच्चतुरशीतीनि, कलाश्चतस्त्र एव च ॥२९॥

विष्कम्भोऽयं निषधयोर्गियोंनीलवतोरपि ।
द्वादशानामप्यमीषां, व्याससंकलनात्विमम् ॥३०॥

लक्षमेकं योजनां षट् सप्ततिसहस्त्रयुक्त ।
शतान्यष्टौ द्विचत्वारिंशता समधिकानि च ॥३१॥

वह इस प्रकार से है :- धातकी खण्ड के पूर्वाध और पश्चिमार्ध के हिमवान् और शिखरी पर्वत की चौड़ाई दो हजार एक सौ पांच योजन तथा पांच कला श्री जिनेश्वर भगवन्त ने कहा है, तथा महा हिमवान् और रूकमी पर्वत की चौड़ाई आठ हजार चार सौ इक्कीस योजन और एक कला । निषध और नीलवान पर्वत की चौड़ाई तैंतीस हजार छ: सौ चौरासी योजन और चार कला है और इन बारह पर्वतों की व्यास की संकलना चौड़ाई की जोड़ एक लाख छिहत्तर हजार आठ सौ बयालीस योजन होता है । (२६ से ३१) वह इस प्रकार :-

लघु हिमवंत पर्वत	२१०५	योजन-५ कला
शिखरी पर्वत	२१०५	योजन ५ कला
महाहिमवंत पर्वत	८४२१	योजन १ कला
रूक्मि पर्वत	८४२१	योजन १ कला
निषध पर्वत	३३६८४	योजन ४ कला
नीलवंत पर्वत	३३६८४	योजन ४ कला

८८४२० २० कला (१६ कला का एक योजन होता है)

+१ – १ कला

८८४२१ – १ कुल योजन ।

८८४२१	योजन पूर्व धातकी खंड के छः वर्षधर पर्वत
+ ८८४२१	योजन पश्चिम धात की खंड के छः वर्षधर पर्वत.
१७६८४२	कुल योजन बारह पर्वत का चौड़ाई है ।
+ २०००	दो इषुकार पर्वत का
१७८८४२	योजन धात की खंड के कुल वर्षधर पर्वत-इषुकार पर्वत का विस्तार हुआ ।

द्वे योजन सहस्रे च विष्कम्भ इषुकारयोः ।
तस्मिंश्च योजितेऽत्राद्रि रूद्धं क्षेत्रभिदं भवेत् ॥३२॥

एकं लक्षं योजनानां, सहस्राण्यष्ट सप्ततिः ।
द्वि चत्वारिंशदधिकान्यष्टौ शतानि चोपरि ॥३३॥

दोनों इषुकार पर्वत की चौड़ाई दो हजार योजन की है वह उस में मिलाने से पर्वतों द्वारा रोकने का क्षेत्र एक लाख अठत्तर हजार आठ सौ बयालीस योजन होता है । (३२-३३)

अथैतल्लवणाम्भोधि परिधेरपनीयते ।
द्वादशाभ्यां शताभ्यां च तेन न्यूनः स भज्यते ॥३४॥

लब्धानि योजन सहस्राणि षट् षट् शतानि च ।
चतुर्दशाढयानि भागाश्चैकोनत्रिंशकं शतम् ॥३५॥

द्वादशाढय शत द्वन्द्व क्षुण्णैकयोजनोद्भवाः ।
तत्रैयत्पृथवस्तेंऽशा, द्वि शती द्वादशा भवन् ॥३६॥

अथ चैतादृशैरंशैर्वा स्वमुपकल्पितैः ।
चतुर्दशानां क्षेत्राणां लभ्यते मुख विस्तृतिः ॥३७॥

अब इस संख्या एक लाख अठहत्तर हजार आठ सौ बयालीस (१७८८४२) को लवण समुद्र की परिधि में से निकाल देने के बाद उसे दो सौ बारह से भाग देने पर छः हजार छः सौ चौदह योजन और उन्तीस, दो सौ बारह २६/२१२ अंश योजन होते है । इस प्रकार के वे अंश कुल दो सौ और बारह होते हैं और प्रत्येक क्षेत्रों का यथा योग्य कल्पीत किया उस अंश से चौदह क्षेत्र के मुख का विस्तार आता है । (३४-३७) वह इस प्रकार :-

१५,८१,१३९ - लवण समुद्र की परिधि
१,७८,८४२ - वर्षधर और इषुकार पर्वत विस्तार निकाल देना
१४०२२९७ शेष रहता है इसे २१२ से भाग देना ।

२१२)१४०२२९७(६६१४
१२७२
०१३०२
१२७२
००३०९
२१२
८७७
८४८
२९

= ६६१४- २९/२१२ योजन चौदह क्षेत्र के मुख्य का विस्तार होता है ।

भाग कल्पनां चैवं -

एकैकोऽंशो भरतयोस्तथैरवतयोरपि ।
चत्वारो हैमवतयो हैरण्वतयोरपि ॥३५॥

हरिवर्षाख्ययोरेवं, तथा रम्यकयोरपि ।
पूर्वापरार्द्ध गतयोरंशाः षोडश षोडश ॥३९॥

चतुष्षष्टिश्चतुष्षष्टिर्देह क्षेत्रयोर्द्वयोः ।
द्वि शती द्वादश चैवं, भागाः स्युः सर्व संख्यया ॥४०॥

दो भरत के एक-एक अंश	= २
दो ऐरवत के एक-एक अंश	= २
दो हिमवान् के चार-चार अंश	= ८
दो हैरण्यवंत के चार-चार अंश	= ८
दो हरिवर्ष के सोलह-सोलह अंश	= ३२
दो सम्यक् के सोलह-सोलह अंश	= ३२
दो महा विदेह के चौंसठ-चौंसठ अंश	= १२८

इस तरह कुल मिलाकर सर्व २१२ विभाग अंश होते हैं। (३८-४०)

भरतैरवतेभयो वा चतुर्घ्ना मुख विस्तृतिः ।
विज्ञेया हैमवतयोः हैरण्यवतयोरपि ॥४१॥

षोडशध्ना हरिवर्षरम्यकद्वय विस्तृतिः ।
तथा चतुष्षष्टि गुणा, विदेहक्षेत्रयोर्द्वयोः ॥४२॥

भरत और ऐरवत क्षेत्र से हैमवंत (२) और हैरण्यवंत (२) की चौड़ाई मुख विस्तार चार गुणा है । हरिवर्ष (२) और रम्यक् (२) को सोलह गुणा है, और दोनों महाविदेह क्षेत्र की चौंसठ गुणा है । (४१-४२)

एवं च धातकी खण्डे, मध्यमात्परिधेरपि ।
पूर्वोदितादुक्तशैक्तरूद्ध क्षेत्र विनाकृतात् ॥४३॥

द्वादशाढयशत द्वन्द्व विभक्तादुपकल्पितैः ।
मुखविस्तृतिवद्भगैर्लभ्येषां मध्य विस्तृतिः ॥४४॥

इस प्रकार धात की खंड की मध्यम परिधि में से पहले कहा था उन पर्वतों से रुके क्षेत्र का निकाल देने पर दो सौ बारह से भाग देने से यथा योग्य भाग द्वारा मुख के विस्तार के समान इस क्षेत्र का मध्य विस्तार भी प्राप्त होता है । (४३-४४)

तथाऽत्र कालोदासन्नात्यपर्यन्त परिधेरपि ।
नगरूद्धक्षेत्रहीनाद् द्वादशद्विशताहतात् ॥४५॥

मुख विस्तृति वद्भागैर्यथास्वमुपकल्पितैः ।
चतुर्दशानां क्षेत्राणां, लभ्या पर्यन्त विस्तृति ॥४६॥

इसी तरह यहां कालोदधि समुद्र के पास में धातकी खंड तक परिधि में से पर्वतों से रोके क्षेत्र को निकाल देने पर दो सौ बारह का भाग देने से यथा योग्य आया भाग द्वारा मुख विस्तार के समान ही चौदह क्षेत्र का अंत विस्तार प्राप्त होता है। (४५-४६)

एवं च- वक्ष्यमाणायां क्षेत्रत्रिविधविस्तृतौ ।
मा भूत्संमोह इत्येष, आम्नायः प्राक् प्रपञ्चितः ॥४७॥

इस तरह से आगे कहा जायेगा उस क्षेत्र के त्रिविध-तीन प्रकार विस्तारों में पढ़ने वाले को उलझन में पड़ जाए इसके लिए आम्नाय परम्परा की प्ररूपण (कथन) करते हैं। (४७)

किं च- कृत्वाऽद्रिरूं क्षेत्रं तत्सहस्त्रद्वितयोज्झितम् ।
कर्त्तव्याश्चतुरशीति - स्तस्याप्यंशा दिशाऽनया ॥४८॥

एकैकोऽंशो हिमवतोस्तथा शिखरिणोरपि ।
अंशाश्चत्वारश्च महाहिमवतोश्च रूक्मिणोः ॥४९॥

षोडशांशा निषधयोर्नीलवन्नगयोरपि ।
एवं चतुरशीत्याऽंशैर्वर्षभूधर विस्तृतिः ॥५०॥

अब पर्वतों से जितना क्षेत्र रुका हो उस क्षेत्र में से इषुकार पर्वतों के दो हजार योजन निकाल कर उसे चौरासी से भाग देना और इस तरह से वर्षधर क्षेत्र के समान इसमें से एक-एक अंश हिमवान और शिखरी पर्वत के चार-चार अंश महा हिमवान और रूक्मी पर्वत के सोलह-सोलह अंश, निषध और नीलवंत पर्वत के इस तरह वर्षधर पर्वतों का विस्तार चौरासी अंश प्रमाण है। (पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध धातकी खंड मिलकर होता है) (४८-५०)

१७८८४२ योजन पर्वतों से रूका हुआ क्षेत्र
२००० योजन इषुकार पर्वत के निकाल देना ।
१७६८४२ योजन शेष रहे । इसको ८४ से भाग देना

८४)१७६८२४(२१०५

१६८

८८

८४

४४२

४२०

२२

= २१०५ २२/८४ योजन = १ अंश होता है ।

१- १ अंश हिमवान और शिखरी = २१०५ २२/८४-२१०५ २२/८४

४- ४ अंश महाहिमवान, व रूकमी = ८४२१ ४/८४-८४२१ ४/८४

१६ - १६ अंश निषध और नीलवत = ३३६८४ १६/८४-३३६८४ १६/८४

४४२१० ४२/८४ - ४४२१० ४२/८४

४४२१० ४२/८४+४४२१० ४२/८४ = ८८४२१ योजन

पूर्वार्ध के ८८४२१ योजन पूर्वत से रूके हुए क्षेत्र

पश्चिमार्ध के ८८४२१ - - -

१७६८४२

अत एव च वक्ष्यन्ते, भागाश्चतुरशीतिजाः ।
वर्षाद्रिमानेऽस्मिन् पुष्करार्द्धऽपि योजनोपरि ॥५१॥

और इसी प्रकार पुष्करार्ध क्षेत्र की योजना में भी वर्षधर पर्वत के प्रमाण के लिए चौरासी भाग आगे जाकर कहा जायेगा । (५१)

क्षेत्राण्येतानि दधति, चक्रारकान्तराकृतिम् ।
क्षाराब्धिदिशि संकीर्णन्यन्यतो विस्तृतानि यत् ॥५२॥

ये सभी क्षेत्र चक्र के आरे के अन्तर की आकृति को धारण करते हैं जिससे ये क्षेत्र लवण समुद्र की ओर संकीर्ण संकरा है और कालोदधि तरफ विस्तृत है । (५२)

जम्बूद्वीपक्षाखार्द्धिमध्य नाभि मनोहरे ।
वर्षाचलेषुकारादि चतुर्दशारकान्चिते ॥५३॥

अस्मिन् महाद्वीप चक्रे, कालोदयः प्रधिस्थिरे ।
अरकान्तखद्भान्ति, क्षेत्राणीति चतुर्दश ॥५४॥

जम्बू द्वीप तथा लवण समुद्र रूपी जिसकी मध्य नाभि मंडल मनोहर है, तथा वर्षधर पर्वत इषुकार पर्वत आदि आराओं से युक्त है, यह धातकी खण्ड नामक द्वीप रूपी चक्र है और दूसरे चारों तरफ कालोदधि समुद्र रूपी लोहे के तख्त से स्थिर किये है उसमें चौदह क्षेत्र उस आरे के अन्तर रूप श्रेष्ठ शोभायमान हो रहे हैं । (५३-५४)

क्षेत्राणामिह पर्यन्त, एषां कालोदसन्निधौ ।
मुखं च लवणाम्भोधि समीपे परिभाषितम् ॥५५॥

इन सब क्षेत्रों का अन्तिम विभाग कालोदधि के पास में है और मुख लवण समुद्र के पास में कहलाता है । (५५)

ज्ञेयाः प्रकरणे, सामान्येनोदिता लवाः ।
द्वादशद्विशतक्षुण्णयोजनोत्था वुधैरिह ॥५६॥

इस क्षेत्र प्रकरण में सामान्य रूप में विभाग (अंश लव) कहा गया हो, वह एक योजन के दो सौ बारह भाग के अंश है । इस तरह विद्वान पुरुषों को जानना चाहिए । (५६)

तत्रेह याम्येषुकारहिमवत्पर्वतान्तरे ।
पूर्वार्द्धे प्रथमं भाति, क्षेत्रं भरतनामकम् ॥५७॥

चतुर्दशानि षट्षष्टिशतानि विस्तृतं मुखे ।
एकस्य योजन स्यांशश्चैकोनत्रिंशकं शतम् ॥५८॥

योजनानां सहस्राणि, मध्ये द्वादश विस्तृतम् ।
सैकाशीतिं, तथा षट्त्रिंशतंलवान् ॥५९॥

अष्टादश सहस्राणि, योजनानां शतानि च ।
पन्चैव सप्तचत्वारिंशद्योजनाधिकान्यथ ॥६०॥

पन्च पन्चाशदधिकमंशानां नियतं शतम् ।
एतावद्भरत क्षेत्रं, पर्यन्ते विस्तृतं मतम् ॥६१॥

उसमें यहां पूर्वार्ध धातकी खंड में दक्षिण इषुकार पर्वत और हिमवान पर्वत के बीच में प्रथम भरतक्षेत्र है उसका मुख विस्तार छः हजार छः सौ चौदह (६६१४) योजन और एक सौ उन्तीस (१२९) अंश का है । मध्य विस्तार बारह हजार पांच सौ इकासी (१२५८१) योजन और एक सौ छत्तीस (१३६) अंश का है और पर्यन्त विस्तार अठारह हजार पांच सौ सैंतालीस (१८५४७) योजन और एक सौ पचपन (१५५) अंश का है । (५७-६१)

त्रैराशि कादिना भाव्यो, विस्तारोऽन्यत्र तु स्वयम्।
तादृक् क्षेत्राकृत्य भावान्नात्र ज्याधनुरादिकम् ॥६२॥

उसी प्रकार अन्यत्र विस्तार त्रिराशी आदि द्वारा स्वयं जान लेना चाहिए । तथा जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र अनुसार आकृति न होने से यहां पर जरा धनुष्य आदि का विधान नहीं कहा । (६२)

मध्य भागेऽस्य वैताढय, उच्चत्वपृथुतादिभिः ।
जम्बू द्वीपस्य भरत वैताढय इव सर्वथा ॥६३॥
आयामतः किन्तु चतुर्लक्षयोजनसंमितः ।
युक्तश्चोभयतः पन्च पन्चाशता महापुरैः ॥६४॥

इस धात की खंड के भरत के मध्य भाग के अन्दर वैताढय पर्वत है जिसकी ऊंचाई और चौड़ाई जम्बू द्वीप में रहे भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत का जितना है उतना सर्व प्रकार से है परन्तु लम्बाई चार लाख योजन का प्रमाण है । और दोनों तरफ दोनो श्रेणि के पचपन-पचपन महानगरों से युक्त है । (६३-६४)

उत्तरार्द्ध मध्य खण्डे, हिमवद्गिरिसन्निधौ ।
जम्बू द्वीपर्षभकूट तुल्योऽत्र वृषाभाचलः ॥६५॥

इस भरत में उत्तरार्ध के मध्य खण्ड में हिमवान गिरि के पास में जम्बू द्वीप के भरत के ऋषभकूट समान यहां ऋषभांचल है । (६५)

शेषा सर्वापि व्यवस्था, षट खण्ड भवनादिका ।

जम्बू द्वीप भरतवद्, ज्ञेयाऽत्राप्य विशेषिता ॥६६॥

शेष छः खंड भवन आदि की सारी व्यवस्था जम्बूद्वीप के भरत के समान यहां भी एक समान जानना । (६६)

तथाऽत्र भरतादीनां तैर्जम्बूद्वीपगैः सह ।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव पर्यायाः स्युः समाः क्रमात् ॥६७॥

तथा यहां के भरत आदि क्षेत्रों के द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव के सभी ही पर्यायों (परिस्थिति) को क्रमशः जम्बू द्वीप के उस-उस क्षेत्रों के समान ही जानना चाहिए । (६७)

परोऽस्माद् हिमवानद्रिः, पन्चाढयानेक विंशतिम् ।

शतांस्ततो लवान् विंद्वाशति चतुरशीतिजान् ॥६८॥

इस भरत क्षेत्र के बाद हिमवान पर्वत आता है जो इक्कीस सो पांच योजन तथा बाईस-चौरासी है (२१०५ २२/८४ योजन) । (६८)

"ननु जम्बू द्वीप हिमवतो माने द्विगुणिते सति यथोक्ता योजनोपरि एकोनविंशतिजाः पन्च भागा भवन्ति, अत्र च चतुर शीति जा द्वाविंशति रूक्तास्ततः कथमस्य ततो द्वै गुण्यं न व्याहन्यते ? अत्रोच्यते-एषां भागानां द्वैविध्येऽपि विशेषः कोऽपि नास्ति, यतो यावदेकोन विंशति जैः पच्चभि र्भागैर्भवति तावदेव चतुर शीति जै र्द्वा विंशत्यापि भवति, उभयत्रापि किन्चिदधि कयोजन चतुर्थ भाग स्यैव जायमान त्वादिति एवम ग्रेऽपि भाव्यं ।"

यहां शंका करते हैं - जम्बू द्वीप के हिमवान के प्रमाण को दो गुणा करने से यथोक्त योजन पर ५/१६ अंश आता है जबकि यहां २२/८४ अंश कहा है तो यहां के हिमवान के प्रमाण में जम्बूद्वीप के हिमवान से दो गुणा कहलाता है उसमें बाधक नहीं होता ?

इस शंका का समाधान करते है - इन दोनों प्रकार के अन्दर विशेष कुछ भी नहीं है क्योंकि ५/१६ अंश द्वारा जितना प्रमाण होता है उतना ही प्रमाण २२/८४ अंश द्वारा होता है । दोनों ही स्थान पर कुछ अधिक योजन के चतुर्थ भाग जितना

ही प्रमाण आता है। इसी तरह ही आगे भी समझना चाहिए । (योजन के ८४ विभाग कल्पना कर जम्बू द्वीप के वर्णन में योजन की १६ कला कही थी वैसा है)

पद्महृदाभिधानोऽस्य, मस्तकेऽस्ति महाहृदः ।
योजनानां द्वे सहस्त्रे, दीर्घः सहस्त्र विस्तृतः ॥६९॥

दश योजनानां रूपोऽस्योद्वेधोऽब्जवलयादि च ।
जम्बूद्वीपपद्महृद, इवेहापि विभाव्यताम् ॥७०॥

इस हिमवान पर्वत के ऊपर पद्म हृद नामक महा सरोवर है, जो दो हजार योजन लम्बा है । एक हजार योजन चौड़ा है और दस योजन गहरा है तथा इस सरोवर के कमलों के वलय आदि जम्बू द्वीप के पद्म सरोवर के समान यहां भी समझ लेना । (६९-७०)

एवं येऽन्ये वर्षधराचलेषु कुरुषु हृदा ।
तथा नदीनां कुण्डानि, द्वीपाः कुण्डगताश्च ये ॥७१॥

अविशेषेण ते सर्वेऽप्युद्वेधोच्छ्रयमानतः ।
जम्बूद्वीपस्थायितत्तद्द्वीपकुण्डहृदैः समाः ॥७२॥

इसी तरह अन्य भी वर्ष धर पर्वत के ऊपर सरोवर, कुरुक्षेत्र के जो सरोवर, नदी के जो कुंड है, और कुंड में रहे जो द्वीप है उन सब की ऊंचाई और गहराई के प्रमाण में सब प्रकार से जम्बू द्वीप में रहे उन द्वीप, कुंड और सरोवर के समान ही है । कुंड और द्वीप की लम्बाई चौड़ाई एवं गहराई जम्बूद्वीप के समान यहां भी समझ लेना । (७१-७२)

ततस्तदुद्विद्धतादि तथाऽब्जवलयादि च ।
अनुच्यमानमप्यत्र, स्वयं ज्ञेयं यथाऽऽस्पदम् ॥७३॥

इससे उन स्थानों की गहराई आदि तथा कमल के वलय आदि यहां नहीं कहा है फिर भी उस स्थान में उस-उस रीति से स्वयं समझ लेना चाहिए । (७३)

विष्कम्भायामतस्त्वेते, सर्वेऽपि द्वि गुणास्ततः ।
व्यासोद्वेधाभ्यां च नद्यो, व्यार्स्रैर्वनमुखान्यपि ॥७४॥

उपरोक्त सर्व पदार्थ - जम्बू द्वीप के उन-उन पदार्थों से लम्बाई और चौड़ाई में दो गुणा है, नदियों की चौड़ाई और गहराई में दो गुणा है, और वन मुख में चौडाई दो गुणा है । (७४)

तथाहु - "वासहरकुरु सु दहा नईण कुण्डाइं तेसु जे दीवा ।
उव्वेहुस्सयतुल्ला विक्खंभायामओ दुगुणा ॥७५॥

सव्वाओ वि नईओ विक्खंभोव्वे हदु गुण माणाओ।
सीयासी ओ याणं वणापि दुगुणाणि विक्खंभे ॥७६॥

और कहा है कि - वर्षधर पर्वत और कुरुक्षेत्र में सरोवर, नदी के कुंड और उसमें रहे जो द्वीप है उन सब की गहराई और ऊंचाई में समानता है, जबकि चौड़ाई और लम्बाई में दो गुणा है, और सब नदियों की चौड़ाई और गहराई द्विगुण है तथा शीता और शीतोदा नदी के वनों की चौड़ाई द्वी गुण है । (७५-७६)

एवं च - गङ्गा सिन्धु रक्तवती रक्तेत्याख्यास्पृशामिह ।
षट्त्रिंशशतसङ्ख्यानां नदीनां हृद निर्गमे ॥७७॥

अध्यर्द्धानि योजनानि, विष्कम्भो द्वादश स्मृतः ।
पर्यन्तेपन्चविंशं, योजनानां शतं भवेत् ॥७८॥

इसी तरह से गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तावती नाम की जो एक सौ छत्तीस नदियां हैं उन नदियों के सरोवर में निकलते समय में साढ़े बारह योजन की चौड़ाई होती हैं और अन्त में सवा सौ योजन की चौड़ाई होती है । (७७-७८)

आसां तावन्ति कुण्डानि, त्रिस्तृता न्यायतानि च ।
विंशं हि योजनशतं द्वीपाः षोडशयोजना ॥७९॥

इन नदियों की उतनी ही (१३६) कुंड है जो एक सौ बीस योजन का विस्तृत और लम्बा है एव द्वीप सोलह योजन के होते है । (७९)

स्वर्णकूला रूप्यकूला, रोहिता रोहितांशिका ।
इत्यष्टादौ विस्तृताः स्युः, पन्चविंशति योजनीम् ॥८०॥

अन्ते च सार्द्धां द्विशतीं, सर्वत्रैतावदेव च ।
चतुर्विंशति रप्यन्तर्नद्यः स्युरिह विस्तृता ॥८१॥

स्वर्णकूला, रूप्यकूला, रोहिता और रोहितांशा आदि आठ नदियां प्रारंभ में पच्चीस योजन चौड़ी होती है और अन्तिम में अढाई सौ (२५०) योजन चौड़ी होती है और इसकी चौबीस अंतर नदियां भी इसी तरह ही सर्वत्र विस्तार वाली होती है । (८०-८१)

चत्वारिंशा द्विशत्यासां, कुण्डेष्वायतिविस्तृती ।
द्वात्रिंशद्योजनान्यासां, द्वीपा आयत विस्तृताः ॥८२॥

इन नदियों के कुंड २४० योजन के लम्बाई-चौड़ाई वाले होते हैं और इन नदियां के द्वीप ३२ योजन लम्बे-चौड़े होते है । (८२)

नारीकान्ता नरकान्ता हरिकान्ताभिधा नदी ।
हरिसलिलेत्यष्टानां, सरितां मूल विस्तृतिः ॥८३॥

पन्चाशद्योजनान्यासां, पर्यन्त विस्तृतिः पुनः ।
योजनानां पन्च शतात्युक्तानि तत्ववेदिभिः ॥८४॥

नारीकान्ता, नरकान्ता, हरिकान्ता, हरि सलिला इन नामों की आठ नदियों का मूल में विस्तार पचास योजन का होता है, और अन्तिम में समुद्र में मिलने के समय पांच सौ योजन का तत्वज्ञ महापुरुषों ने कहा है । (८३-८४)

आसां कुण्डायति व्यासावशीतियुक् चतुः शती।
चतुष्षष्टिर्योजनानि, द्वीपाश्चायत विस्तृताः ॥८५॥

इन नदियों के कुंडों की लम्बाई-चौड़ाई चार सौ अस्सी (४८०) योजन की है और द्वीपों की लम्बाई-चौड़ाई चौंसठ (६४) योजन की है । (८५)

शीता शीतोदाभिधानां, निम्नगानां चतसृणाम् ।
आद्यन्तयोः क्रमाद्व्यासः शतं सहस्रमेव च ॥८६॥

शीता शीतोदा नामक चार नदियों की प्रारंभ में चौड़ाई एक सौ योजन की है और अन्त में भी चौड़ाई एक हजार योजन की है । (८६)

सषष्टिर्नवशत्यासां, कुण्डेष्वायति विस्तृति ।
अष्टाविंशं शतं चासां, द्वीपा आयतविस्तृताः ॥८७॥

इन नदियों के कुंडों की लम्बाई–चौड़ाई नौ सौ साठ (९६०) योजन की है और द्वीप की लम्बाई–चौड़ाई एक सौ अट्ठाईस (१२८) योजन की है । (८७)

षट्त्रिंशं शतमष्टौ च पुनरष्टौ चतुष्टयम् ।
चतुर्विधानामित्यासामाद्यन्तोद्विद्धता क्रमात् ॥८८॥

गव्यूतं योजने सार्द्धे, द्वौ क्रोशौ पन्चयोजनी ।
योजनं दश चैतानि, योजने द्वे च विंशतिः ॥८७॥

गंगा सिन्धु, रक्ता, रक्तवती आदि एक सौ छत्तीस (१३६) नदियां प्रारंभ में गहराई एक कोस की है और अन्त में अढ़ाई योजन की है । रोहिता, रोहितांशा, सवर्णकूला, रूप्यकुज ये आठ नदियां प्रारंभ गहराई दो कोस की है और अन्त में पांच योजन की है । हरिकान्ता, हरिसलिला, नारिकांता नर कान्ता ये आठ नदियां प्रारंभ में गहराई एक योजन की है और अन्त में दस योजन है । शीता शीतोदा ये चार नदियां प्रारंभ में गहराई दो योजन की है और अन्त में बीस योजन है । (८८-८९)

अर्न्तनदीनां सर्वासामपि प्रारम्य मूलतः ।
पर्यन्तं यावदुद्वेधस्तुल्यः स्यात्पन्चयोजनी ॥९०॥

चौबीस अन्तर्नदियां भी गहराई प्रारंभ से अन्त तक एक समान पांच योजन की ही होती है । (९०)

स्वकीय मूल विस्तृत्या, जिह्विका विस्तृतिः समा।
मूलो द्वेध समश्चासां सर्वासां जिह्विकोच्छ्रयः ॥९१॥

इन सब नदियों का मूल विस्तार जितना ही जिह्विका का विस्तार है और मूल की गहराई जितनी जिह्विका की मोटाई है । (९१)

उक्त शेषं तु स्वरूपं, सकलं वेदिकादिकम् ।
एतास्वप्यनुसंधेयं, जम्बू द्वीप नदी गतम् ॥९२॥

इतना वर्णन के बाद शेष रही वेदिका आदि का सकल स्वरूप जम्बू द्वीप की नदी के समान इन नदियों में समझ लेना । (९२)

पूर्वाभिमुख्यः पूर्वार्द्धे, कालोदे यान्ति निम्नगाः ।
क्षारोदमपरोन्मुख्योऽपरार्द्धे तु विपर्ययः ॥६३॥

आसामित्युक्तो विशेषः प्रसङ्गाल्लाघवाय च ।
तत्र तत्र नाम मात्रं, स्थानाशौन्याय वक्ष्यते ॥६४॥

पूर्वार्ध धातकी खंड की पूर्वाभिमुखी नदियां कालोदधि समुद्र जाकर मिलती है, और पूर्व धातकी खंड की ही पश्चिमाभिमुखी नदियां लवण समुद्र में मिलती है एवम् पश्चिमार्ध धात की खंड में इससे विपरीत जानना । ये बात नदियों सम्बन्धी विशेष थी इसलिए यहां प्रसंगोपात कही है । अब उन स्थानों में संक्षेप में ही स्थान शून्य न रहे इसके लिए केवल नाम मात्र से कहा जाएगा । (६३-६४)

अथ प्रकृतं - अथैतस्मात्पद्महृदान्नद्यस्तिस्रो विनिर्गताः ।
गङ्गसिन्धुरोहितांशाः, पूर्वापरोन्तराध्वभिः ॥६५॥

तत्र गङ्गा च सिन्धुश्च, पूर्व पश्चिमयोर्दिशोः ।
निर्गत्य स्वदिशोर्गत्वा, यथार्हं पर्वतोपरि ॥६६॥

स्वस्वावर्त्तनकूटाभ्यां, निवर्त्य दक्षिणामुखे ।
कुण्डे निपत्य विशतः, कालाक्षारोदधी क्रमात् ॥६७॥

रोहितांशा तूत्तरस्यां योजनानि नगोपरि ।
द्वि पन्चाशां पन्चशतीं त्रिपन्चाश ल्लवाधिकाम् ॥६८॥

अतिक्रम्य निजे कुण्डे, निपत्य योजनान्तरा ।
शब्दा पाति गिरेः प्रत्यक् प्रवृत्ता लवणोऽविशत् ॥६९॥

अब मूल बात प्रारंभ होती है - इस पद्म सरोवर में से तीन नदियां गंगा, सिन्धु और रोहितांशा निकलती है, जो अनुक्रम से पूर्व पश्चिम और उत्तर दिशा में जाती है उसमें गंगा और सिन्धु ये दो नदियां अपने-अपने पूर्व और पश्चिम दिशा में से निकलकर अपने-अपने दिशा में यथा योग्य रूप में पर्वत ऊपर जाकर, अपने- अपने आवर्त्तन कूट से मुड़कर दक्षिणाभिमुख कुंड में गिरकर अनुक्रम से कालोदधि और लवण समुद्र में प्रवेश करती है । और रोहितांशा तो उत्तर दिशा में पर्वत पर पांच सौ बावन योजन और तिरपन लव जाकर अपने कुंड में गिरकर

शब्दापाती नाम के वृत्त वैताढय से एक योजन दूर रहकर पश्चिम दिशा तरफ मुड़कर वह लवण समुद्र में प्रवेश करती है । (९५-९६)

अथास्माद्धिमवच्छैलादुत्तरस्यां व्यवस्थितम् ।
क्षेत्रं हैमवताभिख्यमाकृत्या भरतोपम् ॥१००॥

अब इस हिमवंत पर्वत की उत्तर दिशा में रहा भरतक्षेत्र की आकृति वाला, हैमवत नामक क्षेत्र है ।

षट्विंशति सहस्राणि, योजनानां चतुः शतीम् ।
अष्टपन्चाशां लवान् द्वानवर्तिं विस्तृतं मुखे ॥१०१॥

पन्चाशतं सहस्राणि, चतुर्विंशं शतत्रयम् ।
चतुश्चत्वारिंशमंशशतं मध्ये च विस्तृतम् ॥१०२॥

योजनानां सहस्राणि, चतुः सप्ततिमन्ततः ।
नवत्याढयं शतं षण्णवत्याढयं च शतं लवान् ॥१०३॥

यह हैमवत क्षेत्र मुख में छब्बीस हजार चार सौ अट्ठावन (२६४५८) योजन और बयानवे (९२) लव चौड़ा है । मध्य में पचास हजार तीन सौ चौबीस (५०३२४) योजन और एक सौ चंवालीस (१४४) लव चौड़ा है और अन्त में चौहत्तर हजार एक सौ नब्बे (७४१९०) योजन तथा एक सौ छियानवे (१९६) लव चौंड़ा है । (१०१-१०३)

मध्येऽस्य शब्दापातीति, वृत्तवैताढयपर्वतः ।
सहस्र योजनोत्तुङ्गः सहस्रं विस्तृतायातः ॥१०४॥

इस क्षेत्र के मध्य विभाग में शब्दापाती नाम का वृत्त वैताढय पर्वत है । उसकी ऊंचाई, चौडाई और लम्बाई १००० योजन की है । (१०४)

अयं जम्बूद्वीप शब्दापातिना सर्वथा समः ।
तद्वत्सप्तान्येऽपि वृत्त वैताढया इह तत्समाः ॥१०५॥

यह शब्दापाती पर्वत सर्व प्रकार से जम्बू द्वीप के शब्दापाती वैताढय पर्वत के समान है । इसी तरह अन्य भी सात वृत्त वैताढय पर्वत जम्बू द्वीप के वृत्त वैताढय पर्वत के समान है । (१०५)

अद्रिरस्यान्ते च महा हिमवान् योजनानि सः ।
एकविंशानि चतुरशीतिशतान्यथांशकान् ॥१०६॥

पूर्वोक्त मानांश्चतुरो, विस्तीर्ण स्तस्य चोपरि ।
पद्मैः परिष्कृतो भाति, महापद्मा भिधो ह्रदः ॥१०७॥

इस क्षेत्र के बाद हिमवान नामक पर्वत है उसकी चौड़ाई आठ हजार चार सौ इक्कीस (८४२१) योजन है और पूर्वोक्त मान वाले हिमवान् पर्वत से चार गुणा चौड़ा है, उसके ऊपर पद्मो से युक्त महा पद्म नामक सरोवर है । (१०६-१०७)

योजनानां सहस्राणि, चत्वार्येवायमायातः ।
विष्कम्भतो योजनानां सहस्र द्वितयं भवेत् ॥१०८॥

यह महापद्म सरोवर चार हजार (४०००) योजन लम्बा और दो हजार (२०००) योजन चौडा है । (१०८)

दक्षिण स्यामुदीच्यां च, नद्यौ द्वे निर्गते ततः ।
रोहिता हरिकान्ता च, पर्वतोपर्युभे अपि ॥१०६॥

योजनां शतान् द्वात्रिंशतं गत्वा दशोत्तरान् ।
चतुश्चत्वारिंशतं च, भागान् जिह्विकया गिरेः ॥११०॥

पततः स्व स्व कुण्डेऽथ कालोदं, याति रोहिता ।
द्विधा कृत्वा हैमवंत, वैताढयाद्योजनान्तरा ॥१११॥

हरिकान्ता च वैताढया द्योजनद्वितयान्तरा ।
हरि वर्ष विभजती, प्रयाति लवणोदधौ ॥११२॥

इस महापद्म सरोवर में से रोहिता और हरिकान्ता नामक दो नदियां निकलती है और ये नदियां पर्वत के ऊपर ही दक्षिण और उत्तर दिशा में तीन हजार दो सौ दस (३२१०) योजन और चवालीस (४४) अंश जाकर जिह्विका द्वारा पर्वत ऊपर से अपने-अपने कुंड में गिरती है । उसमें से रोहिता हैमवत क्षेत्र को दो भाग करती वृत वैताढय पर्वत से एक योजन दूर रहकर कालोदधि समुद्र में जाकर मिलती है, और हरिकान्ता वृत्त वैताढय से दो योजन दूर रहकर हरिवर्ष क्षेत्र को दो भाग करती लवण समुद्र में मिलती है । (१०६-११२)

अथोदीच्यां क्षेत्रमस्माद्धरिवर्ष विराजते ।
सश्रीकमध्यं यद्गन्धापाति वैताढयभृभृता ॥११३॥

अब इस महाहिमवान् पर्वत से उत्तर दिशा में हरिवर्ष क्षेत्र है उसके मध्यविभाग में गन्धापाती नामक वृत्त वैताढय पर्वत शोभायमान है । (११२)

त्रयस्त्रिंशाष्टपन्चाशच्छताढयां लक्षयोजनीम् ।
षद् पन्चाशमं शतं, विस्तीर्णमिदमानमे ॥११४॥

द्वे लक्षे द्वादशशतीं, मध्येऽष्टावर्ति तथा ।
योजनानामंशशतं, द्विपन्चाशं च विस्तृतम् ॥११५॥

योजनानां षण्णवत्या, समन्वितम् सहस्त्रकैः ।
लक्षद्वयं सप्तशतीं, त्रिषष्टयाऽप्यधिकां तथा ॥११६॥

अष्टचत्वारिंशमंशशतं पर्यन्त विस्तृतम् ।
शेषाऽस्य जम्बू द्वीपस्य हरिवर्ष समा स्थितिः ॥११७॥

इस हरिवर्ष क्षेत्र का विस्तार एक लाख पांच हजार आठ सौ तैंतीस (१०५८३३) योजन और एक सौ छप्पन (१५६) अंश है, मध्य विस्तार दो लाख बारह सौ अठानवे (२०१२९८) योजन और एक सौ बावन (१५२) अंश है, और अंत्ये विस्तार, दो लाख छियानवे हजार सात सौ तिरसठ योजन और एक सौ अड़तालीस (१४८) अंश है । और इस हरिवर्ष क्षेत्र की शेष सारी स्थिति जम्बूद्वीप के समान समझ लेना चाहिए । (११४-११७)

क्षेत्रास्यास्य च पर्यन्ते निषधो नाम भूधरः ।
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि, योजनानां शतानि षद् ॥११८॥

स्याद्विस्तीर्णः स चतुर शीतीन्यंशाश्च षोडश ।
तिगिच्छि नामा वर्वर्त्ति महाहृदोऽस्य चोपरि ॥११९॥

सहस्राणि योजनानामष्टा वायामतः स च ।
विष्कम्भतस्तु चत्वारि, सहस्राणि भवेदसौ ॥१२०॥

इस क्षेत्र के अन्त में निषध नामक पर्वत है, उसका विस्तार तैंतीस हजार छः सौ चौरासी (३३६८४) योजन है और वह हिमवान पर्वत से सोलह गुणा है । इस

पर्वत के ऊपर तिगिंछि नामक महासरोवर है यह सरोवर आठ हजार योजन लम्बा है और चार हजार योजन चौड़ा है । (११८-१२०)

दक्षिणस्यामुदीच्यां च, हृददस्मान्निरीयतुः ।
वाहिन्यौ हरि सलिला शीतोदे ते नगोपरि ॥१२१॥

योजनानां सहस्राणि, चतुर्दश शतानि च ।
अष्टौ द्विचत्वारिंशानि, परिक्रम्याष्ट चांशकाम् ॥१२२॥

स्व स्व जिह्विकया स्वस्वकुण्डे निपततस्ततः ।
हरिः स्व वृत्त वैतढया द्योजनद्वितयान्तरा ॥१२३॥

हरिवर्षाभिधं वर्षं द्विधा विदधती सती ।
कालोदाब्धौ निपतति, रमेवाच्युत वक्षसि ॥१२४॥ *चतुर्भि कलापकम् ॥*

दक्षिण और उत्तर दिशा के अन्दर इस सरोवर से हरि सलिला और शीतोदा नाम की दो नदियां निकलती है । ये नदियां पर्वत ऊपर चौदह हजार आठ सौ बयालीस (१४८४२) योजन और आठ अंश आगे जाकर अपने-अपने जिह्विका से अपने-अपने कुण्ड में गिरती है । उसके बाद अपने माल्यवंत नामक वृत्त वैताढय पर्वत से दो योजन दूर रहकर, हरिवर्ष नामक क्षेत्र के दो विभाग में बंटवारा करती लक्ष्मी कृष्ण के वक्षस्थल में गिरती है, वैसे ही कालोदधि समुद्र में मिलती है। (१२१-१२४)

शीतोदा च देव कुरु भद्रसाल विभेदिनी ।
चतुर्भिर्योजनैर्मेरोर्दूरस्था पश्चिमोन्मुखी ॥१२५॥

प्रत्यग्विदेहविजय सीमाकरण कोविदा ।
गोत्र वृद्धेव मध्यस्था, यात्यन्ते लवणोदधिम् ॥१२६॥

और शीतोदा नदी देवकुरु और भद्रसाल वन को भेदन करती मेरू पर्वत से चार योजन दूर रहकर पश्चिमाभिमुख वह नदी पश्चिम विदेह के विजय के विभाग करके होशियार मध्यस्थ कुटुम्ब की वृद्धा स्त्री के समान वह लवण समुद्र में जाकर मिलती है । (१२५-१२६)

शीतोप्येवं नीलवतो, निर्गता केसरिह्रदात् ।
कुण्डोत्थितोत्तर कुरु भद्रसालप्रभेदिनी ॥१२७॥

चतुर्भिर्योजनैर्मेरोर्दुरस्था पूर्वतोमुखी ।
प्राग्विदेहान् विभजंतीयाति कालोदवारिधौ ॥१२८॥

इसी तरह के शीता नदी भी नीलवंत पर्वत के केशरी सरोवर में से निकल कर अपने कुंड में गिरती है, और वहां से निकलकर उत्तर कुरु और भद्रशाल वन को दो विभाग में बंटवारा करती और मेरूपर्वत से चार योजन दूर रहकर पूर्व सन्मुख जाती हुई वह पूर्व विदेह के विजयों का विभाग करके कालोदधि समुद्र में प्रवेश करती है । (१२७-१२८)

वाच्योदीच्यां रम्यकान्ता, तथैवैरवतादिका ।
क्षेत्रत्रयी शिखयद्या, नीलन्ता च नगत्रयी ॥१२९॥

यथेयं हरिवर्षान्ता, त्रिवर्षी भरतादिका ।
उक्ता हिमवदाधा च, निषधान्ता नगत्रयी ॥१३०॥

तद्वत्त्रिधा क्षेत्रमानमादिमध्यान्तगोचरम् ।
तावदायाम विस्तारा ह्रदा वर्षधरोपरि ॥१३१॥

तावदेवातिक्रमणं, नदीनां पर्वतोपरि ।
सैवांकृतिर्नाममात्रे, विशेषः सोऽभिधीयते ॥१३२॥

और इसी तरह से उत्तर दिशा में भी ऐरवत से लेकर रम्यक क्षेत्र के तीन क्षेत्र (ऐरवत, हैरण्यवंत व रम्यक) है तथा शिखरी से नीलवंत तक के तीन पर्वत (शिखरी, रूकमी, नीलवंत) समझ लेना । जिस तरह भरत क्षेत्र से लेकर हरिवर्ष तक के तीन क्षेत्र कहे हैं (भरत, हिमवतं, हरिवर्ष) और हिमवंत से निषध तक तीन पर्वत (हिमवंत, महाहिमवत निषध) कहे हैं । उसी हो प्रमाण से आदि, मध्य और अन्तिम क्षेत्र का प्रमाण तीन प्रकार से होता है । और वर्ष धर पर्वत के ऊपर के सरोवरों की लम्बाई और चौड़ाई इसी तरह है । नदियों का पर्वत ऊपर परिभ्रमण क्षेत्र भी इतना ही है, आकृति भी उसी ही तरह है केवल नाम मात्र में जो विशेषता है, उसे हम कहते हैं । (१२९-१३२)

ऐरावतमुदीच्येषुकारात्स्वस्वगिरेर्दिशि ।
शिखरी पर्वतोऽन्तेऽस्य, पुण्डरीक ह्रदान्वितः ॥१३३॥

अस्माद्रक्ता रक्तवती स्वर्णकूला विनिर्ययुः ।
रक्तैरवतमध्येन, याति कालोदवारिधिम् ॥१३४॥

लवणाब्धौ प्रविंशति, तथैव रक्तवत्यथ ।
स्वर्णकूला तु कालोदं, हैरण्यवतमध्यगा ॥१३५॥

उत्तर इषुकार से अपने-अपने पर्वत की दिशा में ऐरवत क्षेत्र है और अन्त में पुंडरीक सरोवर से युक्त शिखरी पर्वत है उस पुंडरीक सरोवर में से रक्ता, रक्तावती और स्वर्णकूला ये तीन नदियां निकलती है । इसमें से रक्ता नदी ऐरवत क्षेत्र के मध्य में से निकल कर कालोदधि समुद्र में जाकर मिलती है । इसी तरह से रक्तवती नदी एरवत की मध्य में होकर लवण समुद्र में प्रवेश करती है और हैरण्यवतक्षेत्र के मध्य में होकर स्वर्णकूला नदी कालोदधि समुद्र में जाकर मिलती है । (१३३-१३५)

परं शिखरिणः क्षेत्रं हैरण्यवत नामकम् ।
विकटा पातिना वृत्त वैताढयेन सुशोभितम् ॥१३६॥

इस शिखरी पर्वत के बाद हैरण्यवत नाम का क्षेत्र आता है जो विकटापाती नामक वृत्त वैताढय से सुशोभायमान है । (१३६)

ततो रूक्मी नाम महापुण्डरीक ह्रदान्वितः ।
गिरिस्ततो रूप्यकूलानरकान्ते विनिर्गते ॥१३७॥

हैरण्यवंत मध्येन, क्षारोदं रूप्यकूलिका ।
कालोदं नरकान्ता च याति रम्यकमध्यतः ॥१३८॥

उसके बाद महा पुंडरीक नामक सरोवर युक्त रूकमी नामक पर्वत आता है, और उसमें से रूप्यकूला और नरकान्ता नाम की दो नदियां निकलती है, उसमें से रूप्यकूला नदी हैरण्यवंत क्षेत्र के मध्य में होकर लवण समुद्र में जाकर मिलती है और नरकान्ता नदी रम्यक् क्षेत्र के मध्य विभाग में होकर कालोदधि समुद्र में जाकर मिलती है । (१३७-१३८)

ततः परं रूक्मि गिरेः क्षेत्रं राजति रम्यकम् ।
मध्ये माल्यवता वृत्तवैताढयेन विभूषितम् ॥१३६॥

इस रूक्मी पर्वत के बाद रम्यक् नाम का क्षेत्र आता है, उसके मध्य में माल्यवंत नाम का वृत्त वैताढय पर्वत शोभ रहा है । (१३६)

ततोऽपि परतो भाति, नील वान्नाम पर्वतः ।
महाह्रदः केसरीति, तस्योपरि विराजते ॥१४०॥

शीता च नारी कान्ता च ततो नद्यौ निरीयतुः ।
नारी कान्ता रम्यकान्तर्व्यूढेति लवणोदधिम् ॥१४१॥

शीता नदी तु पूर्वोक्तरीत्या कालोदवारिधौ ।
व्रजति प्राग्विदेहस्थ विजयव्रजसीम कृत ॥१४२॥

उसके बाद नीलवंत नाम का पर्वत शोभायमान हो रहा है । उसके ऊपर केसरी नाम का महासरोवर शोभायमान है उस सरोवर में से शीता और नारीकान्ता नाम की दो नदियां निकलती है । उसमें से नारीकान्ता रम्यक्क्षेत्र के अन्दर से होकर लवण समुद्र में जाकर मिलती है और शीता नदी तो पहले कहे अनुसार पूर्व महाविदेह के विजय के समुद्र की सीमा को विभाजित करती वह कालोदधि समुद्र में जाकर मिलती है । (१४०-१४२)

योजनं द्वे च विकटापाति माल्यवतोर्भवेत् ।
चत्वारि मेरोः स्वक्षेत्र नदीभ्यामन्तरं क्रमात् ॥१४३॥

अपने-अपने क्षेत्र की नदी का अन्तर विकटापाति से एक योजन है, माल्यवंत पर्वत से दो योजन है और मेरूपर्वत से चार योजन हैं । (१४३)

अथास्ति मध्ये नगयोर्नीलवन्निषधाख्ययोः ।
क्षेत्रं महाविदेहाख्यं, मन्दरालङ्कृतान्तरम् ॥१४४॥

इन नीलवंत और निषध पर्वत के बीच में महाविदेह क्षेत्र है उसके मध्य विभाग में मेरूपर्वत शोभायमान है । (१४४)

त्रयोविंशत्या सहस्रैर्योजनानां त्रिभिः शतैः ।
चतुस्त्रिशैः समधिका, लक्षाश्चतस्र एव च ॥१४५॥

द्वादशद्विशतक्षुण्णयोजनस्य लवाः पुनः ।
द्वे शते विस्तीर्णमेतल्लवणाम्भोधिसन्निधौ ॥१४६॥

ततं लक्षाणि मध्येऽष्टावेकपन्चाशतं शतान् ।
चतुर्नवत्याढयानंशशतं चतुरशीतिंयुक् ॥१४७॥

अन्ते चैकादश लक्षाः, सप्ताशीतिं सहस्रकान् ।
चतुष्पन्चाशान् लवानां, साष्टषष्टि शतं ततम् ॥१४८॥

इस महाविदेह का लवण समुद्र के पास में चार लाख, तेईस हजार तीन सौ चौंतीस (४२३३३४) योजन और दो सौ बारह अंश मुख्य विस्तार है आठ लाख पांच हजार एक सौ चौरानवे (८,०५,१६४) योजन और एक सौ चौरासी-दो-बारह १८४/२-१२ अंश का मध्य विस्तार है । तथा कालोदधि समुद्र के पास में ग्यारह लाख सत्तासी हजार चौवन (११८७०५४) योजन और एक सौ अड़सठ, दो सौ बारह १६८/२१२ योजनांश का अन्त विस्तार है । (१४५-१४८)

जातं चतुर्थं तदपि, जम्बूद्वीपविदेहवत् ।
देव कुरुत्तर कुरु पूर्वापर विदेहकैः ॥१४६॥

देव कुरु, उत्तर कुरु, पूर्व महाविदेह क्षेत्र और पश्चिम महाविदेह क्षेत्र से ये महाविदेह क्षेत्र भी जम्बू द्वीप के महाविदेह के समान चार विभाग में बंटा हुआ है । (१४६)

स्युर्देवकुरवोऽपाच्यामुदीच्यां कुरवः पराः ।
मेरोः प्राच्यां प्राग्विदेहाः, प्रतीच्यामपरे पुनः ॥१५०॥

मेरू पर्वत से दक्षिण दिशा में देवकुरु है, उत्तर दिशा में उत्तर कुरु है । पूर्व दिशा में पूर्व महाविदेह है और पश्चिम दिशा में पश्चिम महा विदेह है । (१५०)

शीता शीतोदा नदीभ्यां, विदेहास्ते द्विधाकृताः ।
प्राग्वदेव चतुर्ष्वंशेष्वष्टाष्ट विजया इह ॥१५१॥

यह महाविदेह क्षेत्र, शीता और शीतोदा नदी द्वारा दो विभाग में बांटा गया है और पहले के समान चार विभाग में आठ-आठ विजय है । (१५१)

तथैवोदक्कुरू प्राच्यसीमाकृन्माल्यवद् गिरेः ।
आगन्धमादनं सृष्ट्या, क्रमस्तैरेव नामभिः ॥१५२॥

उत्तर कुरु में पूर्व सीमा को करने वाला माल्यवंत पर्वत से लेकर गन्धमादन पर्वत तक सृष्टि प्रकृति के क्रम से वही पूर्ववत् नाम से जानना । (१५२)

चतुर्ष्वंशेष्वन्तरेषु वक्षस्कारास्तथैव च ।
चत्वारश्चत्वार एव, तिस्रस्तिस्रोऽन्तरापगाः ॥१५३॥

महाविदेह क्षेत्र के चार विभाग में चार-चार वक्षस्कार पर्वत और तीन-तीन अन्तर नदियां है । (१५३)

विजयेष्वेषु वैताढया, नदी कुण्डर्षभाद्रयः ।
षट् खण्डा राजधान्यांश्च, तन्नामान स्तथा स्थिताः ॥१५४॥

इन विजयो के अन्दर वैताढ्य पर्वत, नदियां कुण्ड ऋषभकूट पर्वत, छः खण्ड, राजधानियां ये प्रत्येक पर्वत जम्बूद्वीप के महाविदेह के समान उस-उस नाम के अनुसार से रहे है । (१५४)

तथैव चत्वारोऽप्यंशाः पर्यन्ते वनराजिताः ।
केवलं परिमाणानां, विशेषः सोऽभिधीयते ॥१५५॥

इन चार विभागों के अन्त में वन राजी शोभायमान हो रही है उसके परिमाण में जो विशेष है, उसे कहते हैं । (१५५)

वक्षस्कार वन मुखान्तर्नदीमेरू काननैः ।
विष्कम्भतः संकलितैः स्याद्राशिर्विजयान् बिना ॥१५६॥

लक्षद्वयं षट् चत्वारिंशत्सहस्राः शतत्रयम् ।
षट् चत्वारिंशतोपेतं योजनानामनेन च ॥१५७॥

चतुर्लक्षात्मके द्वीप विष्कम्भे राशिनोज्झिते ।
हृते षोडशभिर्मानं, लभ्यं विजय विस्तृतेः ॥१५८॥

योजनानां सहस्राणि, नव त्र्याढया च षट्शती ।
षट् षोडशांशाः प्रत्येकं, ज्ञेयां विजय विस्तृतिः ॥१५९॥

विजयो को छोड़कर वक्षस्कार पर्वत, वनमुख, अंतर्नदियां मेरूपर्वत और उसके वन-भद्रशाल वन की चौड़ाई मिलाने से दो लाख छियालीस हजार तीन सौ (२४६३४६) योजन प्रमाण होता है। इस राशि को चार लाख योजन रूप द्वीप की चौडाई में से बाद करके सोलह से भाग देने से जो विस्तार आता है वह विजयो का विस्तार होता है और वह नौ हजार छः सौ तीन (९,६०३) योजन और छः योजन ६/१६ योजनांश एक विजय का विस्तार है। (१५६-१५९) वह इस प्रकार थे :-

४००००० = धात की खंड की चौड़ाई

२४६३४३ भद्रशाल वन आदि की चौड़ाई वक्षस्कार, वनमुख, अन्तर्नदी, मेरू पर्वत भद्रशावन निकालने के बाद आई संख्या

१५३६५४

१६)१५३६५४(९६०३
१४४
९६
९६
५४
४८
६

= ९६०३ ६/१६ योजनांश एक विजय का विस्तार आता है।

एवमिष्टान्यविष्कम्भलर्जितद्वीपविस्तृते
स्व स्व सङ्खया विभक्ताया, लभ्यतेऽमीष्ट विस्तृतिः ॥१६०॥

इस तरह से इष्ट अर्थात जिसकी चौड़ाई खोजना हो तो इष्ट स्थान से अन्य वस्तुओं की चौड़ाई से रहित द्वीप के विस्तार को अपनी अपनी संख्या से भाग देने से इष्ट स्थान का विस्तार मिल सकता है। (१६०)

ततत्र- विनाऽद्रीन् विजयादीनां, व्यास सङ्कलनात्वियम्।
तिस्त्रो लक्षा द्विनवतिः, सहस्रा योजनात्मकाः ॥१६१॥

अनेन वर्जिते द्वीपविष्कम्भे विहतेऽष्टभिः।
वक्षस्काराद्रिविष्कम्भो, लभ्यः सहस्र योजनः ॥१६२॥

वह इस तरह से - पर्वतों को छोड़कर विजय आदि की चौड़ाई की संकलन (जोड) के तीन लाख बयानवे हजार (३९२०००) योजन का होता है और इससे शेष रहे द्वीप चौड़ाई आठ हजार योजन की आठ से भाग देने पर एक हजार योजन आता है, और वह प्रत्येक वक्षस्कार पर्वत की चौड़ाई समझना। (१६१-१६२)

अन्तर्नदीर्विना शेषव्याससङ्कलना भवेत् ।
लक्षास्तिस्त्रोऽष्टनवतिः सहस्त्राः पन्चशत्यपि ॥१६३॥

अनेन वर्जिते द्वीप विष्कम्भे षड्भिराहते ।
सार्द्धे द्वे योजन शते, व्यासोऽन्तः सरिता मयम् ॥ १६४॥

अन्तर नदी को छोड़कर शेष जोड़ तीन लाख अठानवे हजार पांच सौ (३९८५००) योजन होता है। और द्वीप की चौड़ाई के शेष के १५०० योजन को छः से भाग देने से नदी की दो सौ पचास योजन की चौड़ाई आती है। (१६३-१६४)

विदेहानां यत्र भावान्, स्याद्व यासो ऽन्तर्मुखा दिषु।
तस्मिन् सहस्त्रोरू शीता शीतोदान्यतरोज्झिते ॥१६५॥

शेषेऽर्द्धिते तत्र तत्र तावान् भाव्यो विवेकिभिः ।
विजयान्तर्नदी वक्षस्कारा यामः स्वयं धिया ॥१६६॥

महाविदेह के मुख्य अंत आदि स्थानों में जिस स्थान में जितना व्यास हो उसमें से एक हजार योजन की चौड़ी या शीतोदा दोनों में से एक का निकाल देने पर जो योजन शेष रहे, उसे आधा करने से उस-उस स्थानों में उतने विजय वक्षस्कार और अन्तर्नदी की लम्बाई विवेकियों ने अपनी बुद्धि द्वारा जान लेना चाहिए। (१६५-१६६)

द्वयोरप्यर्द्धयोरस्मिन् , द्वीपे वनमुखानि च ।
वक्षस्कारक्षितिभृतो, विजयाश्चान्तरापगाः ॥१६७॥

लवणोददिशि ह्रस्वाः क्षेत्र सांकीर्ण्यतः स्मृताः ।
दीर्घाः कालोदक कुभि, क्षेत्र बाहुल्यतः कृमात ॥१६८॥

इस द्वीप के अन्दर महाविदेह के दोनों अर्ध विभाग में वन मुख,

वक्षस्कार, पर्वत, विजय और अन्तर्नदियां ये सब क्षेत्र की संकीर्णता-सकरास के कारण से लवण समुद्र की दिशा में संक्षेप है और कालोदधि की दिशा में क्षेत्र की विशालता के कारणा से विस्तृत है। (१६७-१६८)

अष्टानां वनमुखानां कले द्वे विस्तृति र्लघुः ।
गुरुश्चतुत्वारिंशाष्ट पंचशच्छती भवेत् ॥१६६॥

आठ वनमुख की जघन्य चौड़ाई दो कला की होती है तथा उत्कृष्ट से चौड़ाई अट्ठावन सौ चवालीस (५८४४) योजन की होती है। (१६६)

तत्र द्वयोर्द्वयोः पूर्वपरार्द्धवर्तिनोस्तयोः ।
क्षाराब्धयास सन्नयोः शीता शीतो दासीम्नि सा लघुः ॥१७०॥

गुरुस्तु नील निषधान्तयोरेतच्चयुक्तिमत् ।
अमीषां वलयाकारं, क्षारब्धिं स्पृशता बहिः ॥१७१॥

पूर्व और अपरार्ध विदेह में रहने वाले और लवण समुद्र की नजदीक रहे दोनों वनमुख की शीता और शीतोदा नदी की सीमा में वह जघन्य चौड़ाई होती है और वलयाकार से बाहर से लवण समुद्र को स्पर्श करते तथा निषध और नीलवंत पर्वत केपास में रहे वनमुख की चौड़ाई उत्कृष्ट है और वह युक्ति संगत है। (१७०-१७१)

अपरेषां तु कालोद वल याभ्यन्तरस्पृशाम् ।
लघ्वी निषधनीलान्ते गुर्वी सा सरिदन्तिके ॥१७२॥

कालोदधि के अन्दर के वलय को स्पर्श करने वाले अन्य वन मुख की चौड़ाई निषध और नीलवंत पर्वत के पास में जघन्य है और शीता शीतोदा नदी के पास में उत्कृष्ट है। (१७२)

तथोक्तं वीरंजय क्षेत्र समास वृत्तौ - "तथा वनमुखानां विस्तारो द्वि गुण उक्तः परं लंवणोदधि दिशि वन मुख पृथुत्वं विपरीतं संभाव्यते, यथा नद्यन्ते कलाद्वयं गिर्यन्ते चतुश्चत्वारिंशदधिकान्यष्टपन्चाशत्छातानि पृथुत्व" मिति संप्रदाय इति। वृहत्क्षेत्र समास वृत्तौ तु एषां जघन्यं मानं नीलवन्निषधान्ते, शीता शीतोदो पान्ते चोत्कृष्ट मुक्तं, न च कश्चिद्विशेषोऽभिहितः ।

वीरंजय क्षेत्र समास वृति - लघु क्षेत्र समास की वृत्ति में वन मुख का विस्तार ट" गुणा कहा है, परन्तु लवण समुद्र की दिशा में वनमुख की चौड़ाई विपरीत संभव होता है । वह इस तरह से - नदी के पास में दो कला की चौड़ाई और पर्वत के पास में पांच हजार आठ सौ चवालीस (५८४४) योजन की विस्तृति है और इस प्रकार से परम्परा है ।

बृहत्क्षेत्र समास की वृत्ति में तो यह वन मुख का जघन्य प्रमाण निषध और नीलवंत पर्वत के पास में कहा है । और शीता -शीतोदानदी के पास उत्कृष्ट मान कहा है । इसमें कोई विशेष नहीं है । कालोदधि समुद्र तरफ की दिशा की अपेक्षा से बृहत्क्षेत्र समास की बात संगत होती है ।

अथ देवोत्तरकुरुक्षेत्रसीमाविधायिनः ।
गजदन्ता कृतीन् शैलान, चतुरश्चतुरो ब्रुवो ॥१७३॥

अब देव कुरु और उत्तर कुरु क्षेत्र की सीमा को करने वाले गजदंत की आकृति वाले चार-चार पर्वतों की बात मैं करता हूं । (१७३)

तत्र देव कुरुणां यः, प्रत्यग् विद्युत्प्रभो गिरिः ।
तथोत्तर कुरूणां च, प्रत्यग् यो गन्धमादनः ॥१७४॥

द्वावप्यायामत इमौ, षट् पन्चाशत्सहस्त्र काः ।
लक्षास्तिस्त्रे योजनानां, सप्तविंशं शत द्वयम् ॥१७५॥

उसमें देव कुरु के पश्चिम में जो विद्युत्प्रभ नामक पर्वत है तथा उत्तर कुरु के पश्चिम में जो गन्धमादन नामक पर्वत है, ये दोनों पर्वत तीन लाख छप्पन हजार दो सौ सताईस (३५६२२७) योजन लम्बे है । (१७४-१७५)

अथ देव कुरुणां प्राग्गिरिः सौमनसोऽस्ति यः ।
तथोत्तर कुरुणां प्राक् पर्वतो माल्यवांश्च यः ॥१७६॥

एता वायामतः पन्चलक्षा एकोनसप्ततिः ।
सहस्त्राणि योजनानां, द्विशत्येकोनषष्टियुक् ॥१७७॥

उसी ही तरह देव कुरु के पूर्व दिशा में सौमनस पर्वत है, और उत्तर कुरु के पूर्व दिशा में माल्यवंत पर्वत है । ये दोनों पर्वत पांच लाख उनहत्तर हजार दो सौ उनसठ (५६६२५६) योजन लम्बे हैं । (१७६-१७७)

इदं प्रमाणं पूर्वार्द्धे भावनीयं विचक्षणैः ।
परार्द्धे क्षेत्र विस्तार व्यत्यासेन विपर्ययः ॥१७८॥

जो इस तरह कहा है वह विचक्षण पुरुषों ने पूर्वार्द्ध में समझना, परार्ध में क्षेत्र विस्तार विपरीत होने से उलटा समझना चाहिए । (१७८)

पूर्वार्द्धे हि भवेत्क्षेत्रं, प्राच्यां विस्तीर्णमन्यतः ।
संकीर्णमपरार्द्धे तु प्रत्यक् पृथ्व्यन्यतोऽन्यथा ॥१७६॥

पूर्वार्ध के अन्दर-पूर्व दिशा में क्षेत्र विस्तृत होता है और पश्चिम दिशा में संकीर्ण (थोडा-अल्प) होता है । (१७६)

ततः पूर्वार्द्धे यदुक्तं मानं प्राचीन शैलयोः ।
सौमनसमाल्यवतोस्तत्प्रतीचीनयोरिह ॥१८०॥

ज्ञेयं विद्युत्प्रभगन्धमादनाद्रयोः परार्द्धके ।
यत्प्रतीचीनयोस्तत्र, मानं तत्प्राच्य योरिह ॥१८१॥

इससे पूर्वार्ध में पूर्व दिशा में सौमनस और माल्यवंत पर्वत का जो प्रमाण कहा था वही यहां पश्चिमार्ध में पश्चिम दिशा के पर्वत का प्रमाण समझना, और पश्चिमार्ध में पश्चिम दिशा के विद्युत्प्रभ और गन्धमादन पर्वत का जो प्रमाण कहा है, वह पूर्वार्ध में पूर्व दिशा के पर्वतों का समझना चाहिए । (१८०-१८१)

एते चत्वारोऽपि शैलाः स्वस्व वर्षधरान्तिके ।
सहस्र योजन व्यासास्तनयो मेरूसन्निधौ ॥१८२॥

ये चारों पर्वत अपने-अपने वर्षधर पर्वत के पास में एक हजार योजन चौड़ा है और मेरूपर्वत के पास में अल्प विस्तार वाला है । (१८२)

शेष वर्ण विभागादि, कूट वक्तव्यतादि च ।
जम्बू द्वीप गजदन्त गिरिवच्चिन्त्यतामिह ॥१८३॥

पर्वत के वर्ण विभाग आदि शेष वर्णन और कुट सम्बन्धी वक्तव्यता जम्बू द्वीप के गजदन्त पर्वत के समान ही यहां विचार कर लेना चाहिए । (१८३)

अथ स्वस्वप्रतीचीनप्राचीन गजदन्तयोः ।
आयाममानयोर्योगे, धनुर्मानं कुरुद्वये ॥१८४॥

नव लक्षा योजनानां, सहस्त्रां: पन्चविंशतिः ।

तथा शतानि चत्वारि, षडशीत्यधिकानि च ॥१८५॥

अब अपने-अपने पूर्व और पश्चिम के गजदन्त की लम्बाई के प्रमाण एकत्रित करने से दोनों कुरु क्षेत्रों का धनुपृष्ठ होता है और उसका माप नौ लाख पच्चीस हजार चार सौ छियासी (९२५४८६) योजन होता है । (१८४-१८५)

भद्रसालायतिर्दिघ्ना, मेरू विष्कम्भसंयुता ।

गजदन्तद्वय व्यास हीना ज्या कुरुषु स्फूटा ॥१८६॥

त्रयोर्विशत्या सहस्त्रैरधिकं लक्षयोर्द्वयं ।

योजनानामष्ट पन्चाशताधिकं तथा शतम् ॥१८७॥

भद्रशाल वन की लम्बाई को दो गुणा करके उसमें मेरू पर्वत की चौड़ाई मिलाना तथा दोनों गजदंत पर्वतों का व्यास छोड़कर जो संख्या आती है वह कुरु क्षेत्र की जया का मान जानना । और वह दो लाख तेईस हजार एक सौ अट्ठावन (२,२३,१५८) योजन प्रमाण है । (१८६-१८७) यह इस प्रकार :-

२१५७५८ भद्रशाल वन द्वि गुण करके

+९४०० मेरू पर्वत का विस्तार

२२५१५८

२००० दो गजदंत का विस्तार निकाल देना

२२३१५८ =योजन कुरु क्षेत्र की जया जानना ।

विदेहमध्य विष्कम्भे, मेरू विकष्भवर्जिते ।

अर्द्धीकृते च प्रत्येकं, लभ्यते कुरु विस्तृतिः ॥१८८॥

सा चेयं - त्रि लक्षी सप्त नवतिः, सहस्त्राण्यष्टशत्यपि ।

ससप्तनवतिर्योजनानां द्विनवतिर्लवाः ॥१८९॥

महाविदेह के मध्य चौड़ाई में से मेरूपर्वत की चौड़ाई निकाल देने के बाद उसे आधा करने से प्रत्येक कुरुक्षेत्र का विस्तार आता है और वह यह प्रमाण से है। तीन लाख सतानवे हजार आठ सौ सतानवे योजन (३९७८९७) और बयानवे अंश है । वह इस प्रकार :-

महाविदेह का मध्य विस्तार ८०५१९४ योजन १८४ अंश

मेरू पर्वत का मध्य विस्तार ९४०० योजन निकाल देना

७९५७९४ योजन १८४ अंश है

इस संख्या का आधा करने से ३,९७,८९७ योजन और ९२ अंश आता है जो एक कुरुक्षेत्र का विस्तार होता है । (१८८-१८९)

अथापाच्यामुदीच्यां च नीलवन्निषधाद्रितः ।

प्रत्येकं यमकाद्रीस्तो, जम्बू द्वीप कुरुष्विव ॥१९०॥

इसके बाद नीलवंत और निषध पर्वत से दक्षिण और उत्तर दिशा में दो-दो यमल पर्वत है, और वह जम्बू द्वीप के कुरुक्षेत्र के समान समझना । (१९०)

जम्बूद्वीपयमकवत्स्वरूपमेतयोरपि ।

सहस्त्र योजनोच्चत्व विस्तारायामशालिनो: ॥१९१॥

एक हजार योजन की ऊंचाई-लम्बाई और चौड़ाई से शोभायमान ये दोनों यम्क पर्वतों का स्वरूप जम्बू द्वीप के यमक पर्वत समान है । (१९१)

क्रमात्तोहृदाः पन्चतन्नामानस्तथा स्थिता ।

तटद्वये दश दश कान्चनाजलचारव: ॥१९२॥

क्रमशः उसके बाद पांच सरोवर है जोकि जम्बू द्वीप के समान नामवाले है उस सरोवर के दोनों तट-किनारे पर दस-दस कंचन गिरि पर्वत है । (१९२)

हृदाः पन्चाप्यमी तादृगृनाममिः सेविताः सुरैः ।

तद्वत्पद्मान्वितास्तेभ्यो, द्वि गुणायत विस्तृताः ॥१९३॥

ये पांचो सरोवर वैसे ही नामवाले देवताओं से सेवित है । जम्बू द्वीप के सरोवर समान कमलों से युक्त है और लम्बाई चौड़ाई में जम्बू द्वीप से दो गुणा है। (१९३)

तटद्वये दश दश, ये चात्र कान्चनाद्रयः ।

स श्रीकास्तेऽपि मानेन, तैर्जम्बू द्वीपगैः समाः ॥१९४॥

यहां दोनो तट पर जो दस-दस कंचन गिरि रहे है वे जम्बू द्वीप के कंचन गिरि के समान प्रमाण वाले और शोभायमान वाले है । (१९४)

किन्तु संबद्ध मूलास्तेऽमीतु व्यवहिता मिथः ।
योजनानां शतेनैका दशेननवमांशिना ॥१९५॥

परन्तु जम्बू द्वीप के कंचन गिरि पूर्वत मूल में परंस्पर संबद्ध है जबकि ये कंचन गिरि पर्वत एक दूसरे के बीच में १११- १/९ योजन का अंतर वाले हैं। (१९५)

तच्चैवं– एषां दशानां पृथुत्वे, सहस्त्र मिलिते भवेत् ।
तत्सहस्त्रद्वयादेकहृदायामाद्वियोज्यते ॥१९६॥

शेषं स्थितं सहस्त्रं यन्नवमिस्त द्विभज्यते ।
अन्तरैः काञ्चनाद्रीणामेवंयथोक्तमन्तरम् ॥१९७॥

इन दस कंचन गिरि पर्वतों का पृथुत्व एकत्रित करते एक हजार योजन होता है उसे सरोवर की चौड़ाई के दो हजार योजन में से निकालने के बाद एक हजार शेष रहता है । उस हजार योजन को दस पर्वतों का नौ अंतर से भाग देने पर अन्तर आता है। (१९६-१९७) वह इस प्रकार

सरोवर की चौड़ाई = २००० योजन

उसमें कंचन गिरि की चौड़ाई = १००० निकाल देना

१००० योजन शेष रहे ।

१० पर्वत के अन्तर ९ है इससे ९ का भाग देना ।

९)१०००(१११
  ९
  १०
   ९
  १०
   ९
   १

= १११- १/९ योजन

कंचन गिरि का अरस परस का अन्तर आता है ।

जम्बू द्वीपे तु ह्रदानीं, सहस्त्रायाम भावतः ।
न किन्चित्कान्चनाद्रीणां, व्यवधानं परस्परम ॥१९८॥

जम्बू द्वीप के सरोवर की चौड़ाई एक हजार योजन की होने से कंचन गिरि का परस्पर अन्तर कुछ भी रहता नहीं है । (१९८)

यमकाद्रिह्रदायामवर्जितात्सप्तमिर्हृतात् ।
लभ्यन्ते कुरु विष्कम्भात्सप्तान्त राणि तानि च ॥१९९॥

यमकाद्योनीलवतस्ताभ्यामाद्यह्रस्य च ।
क्रमाच्चतुर्णो ह्रदनां क्षेत्रान्तस्यान्तिमह्रदात् ॥२००॥

सहस्त्राः पन्च पंचाश द्योजनानां शत् द्वयम् ।
एक सप्तत्याऽधिकं तद्भवेदेकैकमन्तरम् ॥२०१॥

कुरु क्षेत्र की चौडाई में से यमक पर्वतों का और पांच सरोवरों का विस्तार छोड कर जो संख्या आती है उसे सात से भाग देने पर ७ सात अंतर आता है । वे सात अन्तर इस प्रकार से है । १- नीलवंत पर्वत से यमक पर्वत, २- यमक पर्वत से पहला सरोवर, ३- प्रथम सरोवर से दूसरा सरोवर, ४- दूसरे सरोवर से तीसरा सरोवर, ५- तीसरे सरोवर से चौथा सरोवर, ६- चौथे सरोवर से पांचवा सरोवर और ७- अन्तिम सरोवर से क्षेत्रांत (गजदंत वक्षस्कार पर्वत) ये सात अन्तर होते है और प्रत्येक अन्तर में पचपन हजार दो सौ इकहत्तर (५५२७१) योजन होता है । (१९९-२०१) वह इस प्रकार है :-

कुरुक्षेत्र की चौड़ाई ३९७८९७ योजन है

पांच सरोवर और यमक का विस्तार ११,००० योजन निकाल देना ।

३८६८९७ शेष को सात से ७ से भाग देना

७)३८६८९७(५५२७१

३५

३६

३५

१८

१४
४६
४६
०७
७
००

= ५५२७१ योजन परस्पर अन्तर होता है ।

निषध या नीलवंत पर्वत से ५५२७१ योजन पर यमक पर्वत

यमक पर्वत से ५५२७१ – पहला सरोवर

प्रथम सरोवर से ५५२७१ – दूसरा –

दूसरा – ५५२७१ – तीसरा –

तीसरा – ५५२७१ – चौथा –

चौथा – ५५२७१ – पांचवा –

पांचवा – ५५२७१ – गजदंत वक्षस्कार पर्वत

३८६८६७ योजन कुल विस्तार

आसूत्तरासु कुरुषु, नीलवद् गिरि सन्निधौ ।
राजते धातकी वृक्षो, जम्बू वृक्ष इवापराः ॥२०२॥

माने स्वरूपेत्वनयोर्विशेषोऽस्ति न कश्चन ।
किंतु तस्या नादृत वदस्य देवः सुदर्शनः ॥२०३॥

इस उत्तर कुरु में नीलवंत पर्वत की समीप में मानो दूसरा जम्बू द्वीप न हो ऐसा धातकी वृक्ष शोभता है । यह धात की वृक्ष प्रमाण और स्वरूप में जम्बू वृक्ष से कोई विशेष नहीं है । केवल जम्बू द्वीप का वह अनादृत है और धात की वृक्ष का देव सुदर्शन है । (२०२-२०३)

उदीचीनासु कुरुषु पश्चार्द्धेऽप्येवमीदृशः ।
स्यान्महा धातकी वृक्षः प्रिय दर्शन दैवतः ॥२०४॥

पश्चिमार्ध धातकी खंड के उत्तर कुरु में भी धातकी वृक्ष समान जो महाधातकी नाम का वृक्ष है उसका अधिष्ठायक देव प्रियदर्शन है । (२०४)

उत्तरासां कुरुणां यत्स्वरूपमिह वर्णितम् ।
तदेव देव कुरुषु, विज्ञेयमर्द्धयोर्द्धयोः ॥२०५॥

किंत्वासु नीलवत्स्थाने, वक्तव्यो निषधाचलः ।
गिरी चित्र विचित्राख्यौ, वाच्यौ च यमकास्पदे ॥२०६॥

पूर्व और पश्चिम धातकी खण्ड में रहा उत्तर कुरु समान ही पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्ध में देव कुरु क्षेत्र है, परन्तु यहां (उत्तर कुरु में) नीलवंत पर्वत के स्थान पर निषध नाम का पर्वत है तथा यमक पर्वत के स्थान पर वहां चित्र, विचित्र नाम के पर्वत जानना । (२०५-२०६)

पूर्वा परार्द्धयो देवकुरुषुस्तौ थथाऽऽस्पदम् ।
प्राग्वच्छाल्मलिनौ वेणुदेवाभिधसुराश्रयौ ॥२०७॥

पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्ध के देव कुरु में यथा स्थान पर धातकी महाधातकी वृक्ष के स्थान के समान ही दो शाल्मली वृक्ष है और उसके अधिष्ठायक वेणु देव नामक देवता है । (२०७)

तथोक्तं स्थानाङ्ग द्वितीय स्थानक वृत्तौ - "दो देव कुरु महादुमत्ति द्वौ कूट शाल्मलि वृक्षावित्यर्थः द्वौ तद्वासि देवौ वेणुदेवा वित्यर्थः ।"

यही बात स्थानांग सूत्र के दूसरे स्थानक की वृत्ति में इस तरह उल्लेख मिलता है - 'देव कुरु के दो महा वृक्ष है' वे कूट शाल्मली नामक है और उनमें रहने वाला देव वेणुदेव नामक है । (शाल्मली और कूट शाल्मली दोनों एक ही है)।

शेषं तु ह्रदनामादि, यदत्र नोपदर्शितम् ।
तज्जम्बू द्वीपवद् ज्ञेयं विशेषो ह्यत्रदर्श्यते ॥२०८॥

शेष सरोवर के नामादि जो यहां नहीं कहा है, वह जम्बू द्वीप के सदृश ही जानना, और जो विशेष है वह अब यहां कहते हैं । (२०८)

मध्येऽत्र मेरूश्चतुरशीतिं तुङ्ग सहस्त्रकान् ।
योजनानां सहस्त्रं चावगाढो वसुधांतरे ॥२०९॥

धातकी खंड के मध्य में पृथ्वी से ऊपर चौरासी हजार (८४०००) योजन की ऊंचाई वाले और एक हजार योजन पृथ्वी में गहराई वाला मेरूपर्वत है। (२०९)

शतानि पन्चनवति, मूले भूमि गते पृथुः ।
चतुर्नवतिमेव क्ष्मातले शतानि विस्तृतः ॥२१०॥

इस मेरू पर्वत का भूमि के अन्दर का विस्तार नौ हजार पांच सौ (९५००) योजन का है और पृथ्वी ऊपर उसका विस्तार नौ हजार चार सौ (९४००) योजन का है। (२१०)

यत्रोत्तीर्य यौजनादौव्यासोऽस्य ज्ञातुमिष्यते ।
तस्मिन् दशहृते लब्धे, सहस्त्राढये च तत्र सः ॥२११॥

मेरू पर्वत ऊपर से योजन आदि नीचे उतरने के बाद उस स्थान का विस्तार जानने की इच्छा हो तो जितने योजन आदि नीचे उतरे हो उतने योजन आदि का दस द्वारा भाग देना और उसमें हजार योजन मिलाने से उस-उस स्थान का विस्तार आता है। (२११)

तथाहि– शिरोऽग्राच्चतुरशीतेः, सहस्त्राणामतिक्रमे ।
व्यासे जिज्ञासित एतान् सहस्त्रान् दशभिर्भजेत् ॥२१२॥

लब्धान्येवं च चतुरशीतिः शतानि तान्यथ ।
सहस्त्राढ यानि पूर्वोक्तो, विष्कम्भो ऽस्य भुवस्तले ॥२१३॥

वह इस तरह से :- जैसे कि शिखर के अग्रभाग से चौरासी हजार (८४०००) योजन नीचे आने के बाद उस स्थान के विस्तार को जानने की इच्छा होने से उस चौरासी हजार योजन को दस से भाग देने पर चौरासी सौ (८४००) योजन आते है और उसमें एक हजार योजन मिलाने से पृथ्वी तल के ऊपर का विस्तार पूर्व में कहे अनुसार ही नौ हजार चार सौ (९४००) योजन होता है। (२१२-२१३)

मूलाद्यदोर्ध्वं गमने, विष्कम्भो ज्ञातुमिष्यते ।
तदा यावद्यातमूर्ध्वं, तत्संख्या दशभिर्भजेत् ॥२१४॥

लब्धे च मूल विष्कम्भाच्छोधिते यत्तु तिष्ठति ।
तत्र तावत्प्रमाणोऽस्य, विष्कम्भो लभ्यते गिरे : ॥२१५॥

और नीचे की भूमितल से ऊपर जाते चौड़ाई जानने की इच्छा हो तो योजनादि की जो संख्या हो उसे दस से भाग देने से जो संख्या आती है उसे मूल विष्कंभ (६४००) योजन में से निकाल देने पर जो शेष रहता है उतनी चौड़ाई उस स्थान की जानना चाहिए । (२१४-२१५)

यथोर्ध्वं चतुरशीतौ, सहस्रेषु भुवस्तलात् ।
गतेषु चतुरशीतिं सहस्रान् दसभिर्भजेत् ॥२१६॥

लब्धानि चतुरशीतिः शतानि तानि शोधयेत् ।
भूतल व्यासतः शेषा, साहस्री मूर्ध्नि विस्तृतिः ॥२१७॥

उदाहरण रूप में पृथ्वी तल से ऊपर चौरासी हजार योजन जाने के बाद उसे दस से भाग देने से चौरासी सौ योजन आता है और उसे भूतल का व्यास जो नौ हजार चार सौ (६४००) योजन है उसमें से निकाल देने से एक हजार योजन का विस्तार शिखर के ऊपर आता है । (२१६-२१७)

आम्नायोऽयं कर्णगत्या, मेरू निम्नोन्न तत्वयोः ।
ज्ञेयोऽविवक्षणात्प्राग्वन्मेखला युग्म जातयोः ॥२१८॥

पहले के समान मेरूपर्वत की दोनो मेखलाओं से हुआ मेरू पर्वत की ऊंचाई नीचाई की अपेक्षा करके कर्णगति से यह आम्नाय जानना । (२१८)

श्रियं श्रयत्ययमपि, चतुर्भिश्चारूकाननैः ।
दन्तैरैरावत इव, दैत्यारिरिव बाहुभिः ॥२१९॥

जिस तरह चार दांत द्वारा ऐरावत हाथी शोभता है और चार हाथ से श्रीकृष्ण शोभते है वैसे यह मेरूपर्वत भी सुन्दर चार वनों से शोभता है । (२१९)

तत्र भूमौ भद्रसालवनं तरूलताधनम् ।
तरणित्रासितं ध्वान्तमि वैतत्पादमाश्रितम् ॥२२०॥

उसमें पृथ्वी तल ऊपर भद्रसाल नाम का वन है, वह अत्यन्त गाढ वृक्षों वाला और उसकी लताओं वाला है और सूर्य के त्रास से पीडित को अन्धकार मानो उंसके चरण के आश्रय में रहा है अर्थात् वह वन अत्यन्त गीच और गाढ अंधकार वाला है । (२२०)

प्राच्यां प्रतीच्यां प्रत्येकं तद्दीर्घं लक्षयोजनीम् ।

सहस्रान् सप्तसैकोनाशीतीन्यष्ट शतानि च ॥२२१॥

उस भद्रसाल वन के पूर्व और पश्चिम दिशा में अलग-अलग एक लाख सात हजार आठ सौ उनासी (१०७८७९) योजन लम्बा है ।

प्राच्येऽथवा प्रतीचीने, दैर्घ्येऽष्टाशीति भाजिते ।

यल्लब्धं सोऽस्य विष्कम्भो, दक्षिणोत्तरणयोः स च ॥२२२॥

योजनानां पन्चविंशाः शता द्वादश कीर्त्तिताः ।

तथैकोनाशीतीश्चांशाः शता द्वादश कीर्त्तिताः ॥२२३॥

पूर्व अथवा तो पश्चिम की लम्बाई को अठासी से भाग देने से जो भी संख्या आती है उसे दक्षिण अथवा उत्तर का विस्तार जानना । वह विस्तार बारह सौ पच्चीस ७७/८८ योजन होता है । यह उत्तर तथा दक्षिण का है । (२२२-२२३)

अष्टा शीत्या गुणि तायामेतस्यां पुनराप्यते ।

प्राच्यां प्रतीच्यां चायामो, यः प्रागस्य निरूपितः ॥२२४॥

इसी ही संख्या को १२२५- ७९/८८ को अठासी से गुणा करने से जो संख्या आती है वह पूर्व और पश्चिम की लम्बाई जानना । जो पूर्व में कह गये हैं। (२२४) वह इस प्रकार :-

१२२५×८८ = १०७८००

+ ७९

पूर्व पश्चिम की १०७८७९ योजन लम्बाई होती है ।

एवं प्रमाण विस्तारायाममेतद् वनं पुनः ।

गजदन्तमन्दराद्रि नदीभिरष्टधा कृतम् ॥२२५॥

इस तरह की लम्बाई चौड़ाई वाला यह भद्रवन, चार गज दंत पर्वत, एक मेरूपर्वत और दो नदियों से आठ विभाग में बांटा हुआ है । (२२५)

तच्च जम्बू द्वीप भद्रसालवद्धाव्यतां बुधैः ।
तथैतद्वक्ष्यमाणवनकूटादिक स्थितिः ॥२२६॥

और वह भद्रशालवन जम्बूद्वीप के भद्रशाल समान प्राज्ञपुरुषों ने कहा है, तथा आगे कहा जायेगा वह वन कूटादि की स्थिति भी जम्बू द्वीप के वे वन-कूटानि समान ही जानना । (२२६)

अथोत्क्रम्य योजनानां, शतानि पन्च भूतलात् ।
कटयां नन्दनवन्मेरो राजते नन्दनं वनम् ॥२२७॥

अब पृथ्वी तल से पांच सौ योजन ऊपर जाने के बाद उस मेरू पर्वत के कमर पर रहे पुत्र के समान नदंनवन शोभता है । (२२७)

तच्च चक्रवाल तया, शतानि पन्च विस्तृत् ।
अनल्पकल्प फल दलतामण्डपमण्डितम् ॥२२८॥

यह नंदन वन चक्राकार में पांच सौ योजन विस्तार वाला है और विशाल कल्प वृक्ष के फलों को देने वाले लता मंडप से मनोहर है । (२२८)

बहिर्विष्कम्भोऽत्र मरोरूक्ताम्नायेन लभ्यते ।
योजनानां सहस्राणि, नवसार्द्धं शतत्रयम् ॥२२९॥

तथाहि - उत्क्रान्तायाः पन्चशत्या, दशभिर्भजने सति ।
लब्धपन्चाशतोऽधःस्थव्यासात्यागे भवेदयम् ॥२३०॥

यहां मेरू पर्वत के बाहर के विस्तार युक्त आम्नाय द्वारा नौ हजार तीन सौ पचास (९३५०) योजन का है । वह इस तरह से ऊपर पांच सौ योजन जाने के बाद, उस पांच सौ की संख्या को दस से भाग देने पर पचास योजन आते, उसे नीचे के मूल विस्तार के नौ हजार चार सौ (९४००) योजन में से निकाल देने पर नौ हजार तीन सौ पचास (९३५०) योजन की संख्या आती है । (२२९-२३०)

बहिर्व्यासात्पन्चत्यास्त्यागे चोभयतः पृथक् ।
अन्तर्व्यासोऽष्टौ सहस्रास्त्रिशत्या सार्द्धयाधिकाः ॥२३१॥

दोनों तरफ के बाहर का पांच सौ योजन कुल हजार योजन का विस्तार निकाल देने से अन्दर का विस्तार आठ हजार तीन सौ पचास (८३५०) योजन होता है। (२३१)

सहस्राणि पन्च पन्चाशतं पन्चशतीं तथा ।
अतिक्रम्य योजनानामूर्ध्वं नन्दनकाननात् ॥२३२॥

अत्रान्तरे सौमनसं स्यात्पन्चशत विस्तृतम् ।
चक्रवाल तया मेरोग्रैवेयकभिवामलम् ॥२३३॥

नन्दन वन से पचपन हजार पांच सौ योजन ऊपर जाने के बाद में सौमन वन आता है जोकि पांच सौ योजन के विस्तार वाला और गोलाकार होने से मेरू पर्वत की ग्रीवा-गले का निर्मल आभूषण समान शोभता है। (२३२-२३३)

बहिर्विष्कम्भोऽत्र गिरे गुरुभिर्गदितो मम् ।
योजनानां सहस्राणि, त्रीण्येवाष्टौ शतानि च ॥२३४॥

यहां मेरू पर्वत की बाह्य चौड़ाई तीन हजार आठ सौ (३८००) योजन की है, इस तरह गुरु महाराज ने मुझे कहा है। (२३४)

तथाहि - षट् पन्चाशत्सहस्राणि, यान्यतीतानि भूतलात्।
एषां दशम भागः स्यात्षट् पन्चाशच्छतात्मकः ॥२३५॥

असौ भूतल विष्कम्भात्पूर्वोक्तादपनीयते ।
तस्थुर्यथोदितान्येवमष्टा त्रिंशच्छतानि वै ॥२३६॥

सहस्रापगमे चास्मात्स्यादन्तर्गिरि विस्तृतिः ।
द्वे सहस्रे योजनानां, शतैरष्टभिरन्विते ॥२३७॥

वह इस तरह से :- समभूतल पृथ्वी छप्पन हजार (५६०००) योजन जाने के बाद सौमनसवन नामक वन आता है, इससे उस छप्पन हजार को दसवां भाग छप्पन सौ योजन होता है और उसे मूल विस्तार के नौ हजार चार सौ (९४००) में से निकाल देने से सौमन सवन पास के मेरूपर्वत का बाह्य विस्तार (९४००-५६०० = ३८००) तीन हजार आठ सौ योजन का आता है और उसमें से सौमनस वन के दोनों तरफ पांच सौ योजन (१०००) निकाल देने से अट्ठाईस सौ (२८००) योजन

का सौमनसवन के पास में मेरू पर्वत का अन्तर विस्तार प्राप्त होता है। (२३५-२३७)

अथैतस्माद्वनादूर्ध्वमुत्क्रान्तैर्मेरूमूर्द्धनि ।

अष्टाविंशत्या सहस्रैर्योजनैः पण्डकं वनम् ॥२३८॥

अब इस सौमनस वन से ऊपर अट्ठाईस हजार योजन जाने के बाद मेरू पर्वत के शिखर पर पांडकवन आता है । (२३८)

चक्रवाल तया तच्च, विस्तीर्णं वर्णितं जिनैः ।

चतुर्नवत्याऽभ्यधिकां, योजनानां चतुः शतीम् ॥२३६॥

उस पांडकवन का चक्रवाल चौड़ाई चार सौ चौरानवे योजन का श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा है । (२३६)

तच्चैवं - मेरू मस्तक विष्कम्भात्सहस्त्र योजनो न्मितात्।

मध्यस्थ चूलिका व्यासो, द्वादश योजनात्मकः ॥२४०॥

शोध्यते तच्छेषमर्द्धीकृते पण्डक विस्तृतिः ।

शेषा शिलादि स्थितिर्या, सा जम्बू द्वीप मेरूवत् ॥२४१॥

वह इस तरह से - मेरूपर्वत के शिखर ऊपर एक हजार योजन का विस्तार है मध्य में रही चूलिका की बारह योजन निकाल देने के बाद उसे आधा करने से जो संख्या आती है वह पांडकवन का चक्रवाल चौड़ाई जानना और वहां रही शीला आदि की स्थिति जम्बू द्वीप के मेरू पर्वत के समान ही जानना । (२४०-२४१) वह इस प्रकार से १००० योजन में बारह निकाल पर ६८८ शेष रहते है उसका आधा ४६४ योजन होता है ।

तथैवास्य मरकतमयी शिरसि चूलिका ।

नाना रत्न निर्भितेन, शोभिता जिन सद्मना ॥२४२॥

तथा इस मेरू पर्वत के शिखर ऊपर जो चूलिका है वह मरकत मणिमय है, और वह चूलिका विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित श्री जिनेश्वर भगवन्त के भवन से शोभायमान है ।

एवं यदन्यदप्यत्र कूट चैत्यादि नोदितम् ।
जम्बू द्वीप मेरू वत्तद्वक्तव्यं सुधिया धिया ॥२४३॥

इसी ही तरह जो दूसरा भी कूट-चैत्य आदि यहां कहा नहीं है, वह सब जम्बू द्वीप के मेरू पर्वत के समान ही बुद्धिमान पुरुषों ने जानना चाहिए । (२४३)

एवं यथाऽस्य द्वीपस्य पूर्वार्द्धमिइ वर्णितम् ।
पश्चिमार्द्धमपि तथा, विज्ञेयम विशेषितम् ॥२४४॥

गजदन्त प्रमाणादौ, विशेषो यस्तु कश्चन ।
स तु तत्तत्प्रकरणे, नामग्राहं निरूपित: ॥२४५॥

इस तरह जैसे धातकी खंड के पूर्वार्द्ध का वर्णन किया है वैसे ही पश्चिमार्ध धातकी खंड का भी सम्पूर्ण रूप में वर्णन जानना चाहिए । गजदंत पर्वत के प्रमाण आदि में जो विशेषता है वह उस-उस प्रकरण में नाम लेकर निरूपण किया है । (२४४-२४५)

किं च - विजये पुष्कलावत्यां, वप्राख्ये विजये तथा ।
वत्से च नलि नावत्यां, विहरन्त्य धुना जिना: ॥२४६॥

पुष्कलावती, वप्रा, वत्स और नलिनावती इन चार विजयों में हमेशा चार जिनेश्वर भगवन्त विचरण करते हैं । (२४६)

प्राचीनेऽर्द्धे सुजातोऽर्हन् स्वयं प्रभर्षभाननौ ।
श्रीमाननन्तवीर्यश्च, पश्चिमार्ध तु तेष्वमी ॥२४७॥

सूरप्रभोजिन: श्रीमान् विशालो जगदीश्वर: ।
जगत्पूज्यो वज्रश्चन्द्रानन: प्रभु: क्रमात् ॥२४८॥

उसमें पूर्वार्ध में क्रमश: सुजात स्वामी, स्वयं प्रभ स्वामी, ऋषभानन स्वामी और श्रीमान अनंतवीर्य स्वामी ये चार तीर्थंकर भगवन्त विचरते है और पश्चिमार्ध में उन विजयों में अनुक्रम से सूर प्रभ जिनेश्वर, श्री विशाल स्वामी वज्रधर स्वामी और चन्द्रानन स्वामी ये चार जगत् पूज्य परमात्मा हमेशा विचरते रहते हैं । (२४७-२४८)

एवं चात्र - श्रियं दधाते द्वौ मेरू, द्वीपस्यास्य कराविव ।
उदस्तौ पृथुतादर्पान्निभसो निजिघृक्षया ॥२४६॥

आकाश को पकड़ने की इच्छा से इस धातकी खंड नामक द्वीप में अपनी चौड़ाई के अभिमान से मानो ऊंचे किए दो हाथ न हो इस इस तरह दो मेरू पर्वत शोभायमान हो रहे हैं । (२४६)

यद्वोद्दण्डकरौ बद्ध कच्छौ च नन्दनच्छलात् ।
स्पर्द्धया संमुखी नौ द्वौ, महा मल्लाविवोत्थितौ ॥२५०॥

अथवा तो नंदनवन रूपी बन्धन किए कच्छ (लंगोट) वाला और दण्ड से युक्त ऊंचे हाथ वाले दो हाथ मानो स्पर्द्धा से आमने सामने आये हो ! इस प्रकार दो मेरू पर्वत शोभायमान हो रहे है । (२५०)

स्थापयत्येकधाऽऽत्मानं, मेर्वेकाङ्गुलि संज्ञया ।
जम्बू द्वीपेऽयमेताभ्यां, द्विधा तं स्थापयन्निव ॥२५१॥

जम्बू द्वीप में रहे मेरूपर्वत मानो एक अंगुली की संज्ञा से आत्मा को एक रूप में स्थापना करता है, और धातकी खंड दो मेरूपर्वत से आत्मा के दो रूप में स्थापना करता है । (२५१)

अनलं भूष्णुनोत्थातुं द्वीपानानेन वार्द्धकात् ।
धृतौ दण्डाविवोद्दण्डौ, मेरू द्वाविह राजतः ॥२५२॥

मानो वृद्धत्व के कारण खड़े होने में असमर्थ इस द्वीप में ऊंचे दो दंड रूप दो मेरू पर्वत धारण किया हो इस तरह शोभते है । (२५२)

वर्षाद्रयो द्वादशाष्टषष्टि वैताढय भूधराः ।
दीर्घा अष्टौ च वृत्तास्ते, कान्चनाद्रिचतुः शती ॥२५३॥

वक्षस्काराद्रयो द्वात्रिंशदष्टौ गजदंतकाः ।
द्वौ चित्रौ द्वौ विचित्रौ च, चत्वारो यमकाचलाः ॥२५४॥

इषुकारद्वयं चैवं, सर्वाग्रेणात्र भूभृताम् ।
चत्वारिंशा पन्चशती, चत्वारश्च महाद्रुमाः ॥२५५॥

इस धात की खंड के अन्दर १२ वर्षधर पर्वत है, ६८ दीर्घ वैताढय पर्वत ८ वृत्त वैताढय पर्वत, ४०० कांचन गिरि, ३२ वक्षस्कार पर्वत, ८ गजदंत पर्वत २ चित्र पर्वत, २ विचित्र पर्वत, ४ यमक पर्वत, २ इषुकार पर्वत और २ मेरूपर्वत है इस तरह सर्व पर्वतो का कुल जोड़ पांच सौ चालीस (५४०) पर्वत है और चार महावृक्षक होते हैं । (२५३-२५५)

चतुर्दशात्र वर्षाणि, चतस्रः कुरवोऽपि च ।
षट् कर्मभूमयोऽकर्म भूमयो द्वादश स्मताः ॥२५६॥

इस धातकी खण्ड में १४ क्षेत्र है ४ कुरु क्षेत्र है छह कर्म भूमियां है और बारह अकर्म भूमियां है । (२५६)

दीर्घ वैताढबेषु कूटाः प्राग्वन्नव नवोदिताः ।
स क्रोश षड् योजनोच्चा, द्वादशा षट् शतीति ते ॥२५७॥

यहां रहे अड़सठ दीर्घ वैताढय पर्वत पर जम्बू द्वीप के समान ही नौ-नौ कूट (शिखर) कहे है, और ये कूट सवा छः योजन ऊंचे है और वे कुल मिलाकर ६८×६ = ६१२ कुट होते है । (२५७)

रूक्मि महाहिमवन्तः, कूटैरष्टभिरष्टभिः ।
सप्तभिश्च सौमनसौ, तथा च गन्धमादनौ ॥२५८॥

दो रूक्मि पर्वत और दो महाहिमवंत पर्वत आठ-आठ कूटो-शिखरों से युक्त है । दो सौमनस और दो गन्धमादन पर्वत सात-सात शिखर से युक्त है । (२५८)

मेर्वोर्द्वे नन्दनवने, निषधौ नीलवद्गिरी ।
विद्युत्प्रभौ माल्यवन्तौ, नव कूटाः समेऽप्यमी ॥२५९॥

दो मेरूपर्वत, दो नन्दनवन, दो निषध पर्वत, दो नीलवंत पर्वत दो विद्युत्प्रभ पर्वत, दो माल्यवंत पर्वत, इन सब के ऊपर नौ-नौ शिखर है । (२५९)

हिमवन्तौ शिखरिणौ, तैरेकादशभिर्युतौ ।
वक्षस्कार गिरिणां च, प्रत्येकं तच्चतुष्टयम् ॥२६०॥

दो लघु हिमवंत पर्वत और दो शिखरी पर्वत के ११, ११ शिखर है और ३२ वक्षस्कार पर्वत के चार-चार शिखर से युक्त है । (२६०)

त्रयः शताः स्युर्द्वा विंशाः, कूटान्ये तानि तत्र च ।
षोडशा त्रिशती प्रोक्तहिमवद्गिरि कूटवत् ॥२६१॥

इसी तरह कुल मिलाकर तीन सौ बाईस (३२२) शिखर होते है, उसमें से तीन सौ सोलह (३१६) शिखर जम्बूद्वीप के हिमवंत पर्वत के शिखर समान ही है। (२६१)

हरिकूटौ द्वयोर्विद्युत्प्रभयो यौंहरिस्सहौ ।
माल्यवतोर्बलकूटो, मेरूनन्द योश्च यौ ॥२६२॥

एते षडपि साहस्रास्त्रैधानामिति मानतः ।
चतुस्त्रिंशाद्रि कूटानामेवं नवशती भवेत् ॥२६३॥

दो विद्युत्प्रभ पर्वत के दो हरिकूट, दो माल्यवान् पर्वत के दो हरिस्सहकूट और दो मेरू पर्वत के नन्दनवन के दो बलकूट इस प्रकार से इन कुछ कूट-शिखरों की एक हजार योजन की लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई है । और इस तरह पर्वत के शिखर की संख्या कुल मिलाकर नौ सौ चौंतीस (९३४) होते है । (२६२-२६३)

सहेषुकारकूटैर्द्वाचित्वारिंशा शता नव ।
तत्रेषुकारकूटानां, मानं तु नोपलभ्यते ॥२६४॥

दो इषुकार पर्वत के शिखर को एकत्रित करते कुल शिखरों की संख्या नौ सौ बयालिस (९४२) की होती है । इसमें इषुकार पर्वत के शिखर का माप नहीं मिलता है । (२६४)

चतुःषष्टौ विजयेषु भरतैरवतेषु च ।
स्युरष्टषष्टिवृषभकूटा एकैक भावतः ॥२६५॥

चौंसठ विजयों में और दो भरत और दो ऐरवत क्षेत्रों में एक-एक इस तरह अड़सठ (६८) वृषभ कूट-शिखर होते है । (२६५)

धातक्यादिषु चतुष्के, द्वयोश्च भद्रसालयोः ।
अष्टाष्टेति च सर्वाग्रे भू कूटाः षोडशं शतम् ॥२६६॥

धातकी आदि चार महावृक्षों के आठ-आठ दो भद्रसाल वन के आठ-आठ (८×८ =३२, ८×२ = १६ = ४८) इस तरह अड़तालीस भूकट होते हैं उसमें अड़सठ (६८) वृषभकूट मिलाने से कुल मिलाकर एक सौ सोलह भूकूट (जमीन पर कूट) शिखर होते हैं। (२६६)

एतेषां वक्तुमुचिते, पर्वतत्वेऽपि वस्तुतः ।
कूटत्व व्यवहारस्तु, पूर्वाचार्यानुरोधतः ॥२६७॥

इन सभी को वास्तविक में पर्वत कहना उचित है, फिर भी पूर्वाचार्यों ने वचन के अनुसार यहां कूट रूप में व्यवहार किया है । (२६७)

महारूद्रा द्वादशैव, विंशतिश्च कुरुहृदाः ।
श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मीनां च द्वयं द्वयम् ॥२६८॥

श्री, ह्रीं, धृति, कीर्ति, लक्ष्मी देवियों के दो दो सरोवर होने से पद्म सरोवर आदि बारह महासरोवर है । और बीस कुरुक्षेत्र के सरोवर है । (२६८)

सहस्रा द्वादशैकोन त्रिंशल्लक्षाश्च कीर्तिताः ।
तरङ्गिणीनामेतस्मिन् , द्वीपे मतान्तरे पुनः ॥२६९॥

पन्च त्रिंशल्लक्षाणि चतुर शीतिः सहस्रकाश्चैव ।
इह संभवन्ति सरितां तत्वं तु विदन्ति तत्वज्ञाः ॥२७०॥ आर्या ।

इस धात की खण्ड के अन्दर उन्तीस लाख बारह हजार (२९१२०००) नदियां है और मतान्तर में पैंतीस लाख चौरासी हजार (३५८४०००) नदियां है इसमें वास्तविक में क्या है वह तत्वज्ञ पुरुष जाने । (२६९-२७०)

विदेह युग्मे प्रत्येकं, स्युः कुण्डान्यष्ट सप्ततिः ।
द्वे द्वे च शेषवर्षेषु शतमेवमशीतियुक् ॥२७१॥

इस धात की खंड के प्रत्येक विदेह क्षेत्र के अन्दर अठहत्तर, अठहत्तर (७८) कुंड होते हैं, और शेष बारह क्षेत्रों में दो दो कुंड होते हैं । इससे कुल ७८+७८+२४ = १८० एक सौ अस्सी कुंड होते हैं । (२७१)

एतेऽद्रयो हृदाः कूटाः, कुण्डान्येतान्यथापगाः ।
स्युर्वेदिकावनोपेतास्तत्स्वरूपं तु पूर्ववत् ॥२७२॥

ये सब पर्वत, सरोवर, कूट, कुंड और नदियां, वेदिका और वन से युक्त है तथा वेदिका और वन का स्वरूप जम्बूद्वीप के समान समझना । (२७२)

एषां याम्योदीच्यवर्षसरिच्छैलादिवर्त्तिनाम् ।
विजयस्वर्गिवत् प्रौढसमृद्धीनां सुधा भुजाम् ॥२७३॥

दक्षिण स्यामुदीच्यां च जम्बू द्वीपस्थ मेरूतः ।
अन्यस्मिन् धातकी खण्डे, राजधान्यो जिनैः स्मृताः ॥२७४॥

दक्षिण और उत्तर दिशा के क्षेत्र नदियां, पर्वत में रहने वाले जो भी देव है वे विजयदेव के समान समृद्धिशाली है उनकी राजधानी जम्बूद्वीप के मेरूपर्वत से दक्षिण और उत्तर में अन्य धातकी खंड के अन्दर होती है इस प्रकार श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा है । (२७३-२७४)

श्रेण्यश्चतस्त्रः प्रत्येक वैताढयेष्विति मीलिताः ।
श्रेण्यो भवन्ति द्वीपेऽस्मिन्, द्विशती सद्विसप्ततिः ॥२७५॥

प्रत्येक वैताढय पर्वतों के ऊपर चार-चार श्रेणियां है, वे सब मिलाकर ६८×४ = २७२ दो सौ बहत्तर श्रेणियां होती है । (२७५)

दशोत्तरं पुरः शतं प्रति वैताढयमित्यतः ।
तेषां सहस्त्राः सप्त स्यु साशीतिश्च चतुः शती ॥२७६॥

प्रत्येक वैताढय पर्वत पर एक सौ दस नगर है, इससे सर्व नगरों की संख्या (६८×११० = ७४८०) सात हजार चार सौ अस्सी होती है । (२७६)

जघन्यतोऽष्टेह जिना भवेयुरूत्कर्षतस्ते पुनरष्टषष्टिः ।
जघन्यतः केशवचक्रिरामा, अष्टावयोत्कृष्टपदेतु षष्टि ॥२७७॥

(उपजातिः)

धातकी खंड में जघन्य से आठ और उत्कृष्ट अड़सठ (६८) श्री तीर्थंकर परमात्मा होते हैं और जघन्य से बलदेव वासुदेव और चक्रवर्ती आठ होते है और उत्कृष्ट से साठ होते हैं। (२७७)

सद्वादशास्युर्निधयोऽत्र षट्शती, प्रकर्षतस्तान्युपभोगभाञ्जि तु ।
द्विविंशतिः पन्चशतानि च ध्रुवं, द्वासप्ततिस्तानि जघन्यतस्तथा ॥२७८॥

(इन्द्रवंशा)

इस धातकी खण्ड में उत्कृष्ट से निधान की संख्या छः सौ बारह होती है उपयोग में तो उत्कृष्ट से पांच सौ चालीस आती है और जघन्य से तो बहत्तर उपयोग में आते हैं। (२७८)

विंशानि चत्वारि शतानि प-चै काक्षाणि रत्नानि पृथग् भवेयुः ।
उत्कर्ष तस्तानि जघन्यतश्च, पन्चाशदाढया ननु षड्भिरेव ॥२७६॥

(इन्द्रवज्रा)

तथा चक्रवर्ती के एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रत्न उत्कृष्ट से चार सौ बीस (४२०) होते है, इससे कुल आठ सौ चालीस रत्न होते है और जघन्य से एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रत्न छप्पन होते है । (२७६)

द्वादशोण्णमहंसः सुधांशवो, द्वादश ग्रह सहस्त्रमन्वितम् ।
षड्युतार्द्ध शतकेन भानि षट्त्रिंशता समधिकं शतत्रयम् ॥२८०॥

(रथोद्धता)

त्रिभिः सहस्त्रैरधिकानि लक्षाण्यष्टौ तथा सप्त शतानि चात्र ।
स्युः कोटि कोटयः किल तारकाणां, तमोऽङ्कुरोन्मूलनकारकाणाम् ॥२०१॥

(उपजातिः)

इस धांतकी खंड के अन्दर बारह सूर्य और बारह चन्द्र होते हैं। एक हजार और छप्पन ग्रह होते हैं । तीन सौ और छत्तीस नक्षत्र है और आठ लाख, तीन हजार सात सौ (८०३७००) कोडा कोडी तारा समुदाय होता है जोकि अन्धकार का उन्मूलन करता है । (२८०-२८१)

द्वीपोऽयमेवं गदितस्वरूपः कालोदनाम्नोदधिना परीतः ।
विभाति दीप्रप्रधिनेव चक्रमिवेभसेनावलयेन भूपः ॥३८२॥

(उपजातिः)

यह जिसका वर्णन किया है वह इस धातकी खंड द्वीप के चारों तरफ कालोदधिनाम समुद्र से लिप्त हुआ है वह देदीप्यमान नाभि से जैसे चक्र शोभता है और हाथी की सेना से जैसे राजा शोभता है, वैसे वह शोभ रहा है । (२८२)

कालो महाकाल इतीह देवौ, प्राच्य प्रतीच्यार्द्धधृताधिकारो ।
तद्दैवत: श्यामतोदकश्च, तदेष कालोद इति प्रसिद्ध: ॥२८३॥

(उपजाति)

इन समुद्र के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध के क्रम से काल और महाकाल नामक दो देव अधिष्ठायक है, इससे उस देव के नाम के कारण से अथवा तो समुद्र का पानी काला वर्ण होने से वह 'कालोदधि' नाम प्रसिद्ध हुआ है । (२८३)

लक्षांण्यष्टौ विस्तृतो योजनानामु द्वि द्धोऽयं योजनानां सहस्रम् ।
आदावन्ते मध्यदेशे समानो द्वेध: सर्वत्रापि पूर्णहृदाम: ॥२८४॥

(शालिनी)

इस समुद्र का विस्तार आठ लाख योजन का है । गहराई एक हजार योजन की है, और पानी से भरे हुए सरोवर के समान इस समुद्र की भी आदि में अन्त में और मध्य विभाग में इस तरह सर्वत्र गहराई समान ही है अर्थात् सर्वत्र एक हजार योजन की है । (२८४)

न चूला न वेला न च क्षोभितास्मिन् न पाताल कुम्भादिका वा व्यवस्था ।
सदम्भोदमुत्कोदकसवादुनीर:, प्रसन्नश्च साधेर्मनोवद् गंभीर: ॥२८५॥

(भुजंग प्रयातं)

इस तरह समुद्र के पानी के अन्दर लवण समुद्र के समान पानी का ऊंचा शिखर नहीं है, ज्वार नहीं है, और भाटा नहीं है, पाताल कलशादि नहीं है सुन्दर मेघ में से बरसते पानी के समान मधुर पानी वाला है और साधु के मन के समान प्रशांत तथा गंभीर है । (२८५)

लक्षाण्यथै कनवति: परिधि: सहस्रा:,
स्यात् सप्तति: षडिह पन्चयुता: शताश्च ।
द्वारैश्चतुभिरयमप्यभितो विभाति ।,
पूर्वादिदिक्षु विजयादिभिरूक्त रूपै ॥२८६॥

(वसंततिलका)

इस समुद्र की बाहर की परिधि इकानवे लाख सत्तर हजार छः सौ पांच (६१७०६०५) योजन की है और पूर्वादि चारों दिशा के अन्दर जम्बूद्वीप के वर्णन जैसा कहा उसी तरह स्वरूप वाला ही विजयादि चार द्वार से यह समुद्र शोभायमान है। (२८६)

लक्षा द्वाविंशतिश्चद्विनवतिरूपरि स्यु: सहस्राणि नूनं,
षट्चत्वारिंशदाढया जिनपति गदिता षट्शती योजनानाम् ।
पादोनं योजनं चान्तरमिह निखिलद्वार्षु तुल्यप्रमाणं,
कालोदे द्वारपानं विजयवदुदिता राजधान्योऽपरस्मिन् ॥२८७॥

(स्रग्धरा)

इस समुद्र के चारों द्वारों का परस्पर अन्तर (दूरी) बाईस लाख बयानवे हजार छः सौ छियालिस (२२९२६४६) योजन में एक कोस कम है और चारों द्वारों के अधिष्टायक देवों की राजधानी उस दिशा मेंअन्य कालोदधि समुद्र में है और उनकी ऋद्धि सिद्धि आदि विजयदेव के समान जानना (२८७)

प्राक्प्रतीच्योर्दिर्शार्द्वादश द्वादश, द्वादशेभ्य: सहस्रेभ्य एवान्तरे ।
सन्ति कालोदधौ धातकीखण्डतोऽत्रा, न्तरीपा अमुष्यामृतोष्णात्विषाम् ॥२८८॥

(मौक्तिकदाम्)

धात की खंड से पूर्व और पश्चिम दिशा में बारह, बारह हजार योजन के अन्तर (दूरी) पर कालोदधि समुद्र में धातकी खंड सम्बन्धी बारह सूर्य और बारह चन्द्रमा अंतर द्वीप होते है । (२८८)

पुष्करद्वीपतोऽप्येवमत्राम्बुधौ, तावता प्राक्प्रतीच्यो: सुधोष्णात्विषाम्।
नेत्रवेदैर्मिता नेत्रवेदैर्मिता (४२), एतदब्धि स्पृशामन्तरीपा: स्थिता: ॥२८९॥

(मौक्तिकदाम)

इसी तरह पुष्कर द्वीप से भी पूर्व और पश्चिम दिशा में बारह-बारह हजार योजन जाने के बाद कालोदधि समुद्र में कालोदधि समुद्र सम्बन्धी बयालीस चन्द्र और बयालीस सूर्यों के अन्तर द्वीप आते हैं । (२८९)

अन्तरीपा अमी गौतमद्वीपवद्भावनीयाः स्वरूपप्रमाणादिभिः ।

वेदिकाकाननालङ्कृताः सर्वतः, क्रोशयुग्मोच्छ्रिता वारिधेर्वारितः ॥२६०॥

(मौक्तिकदाम)

इन सब अन्तर द्वीपों को स्वरूप और प्रमाण से गौतम द्वीप समान ही जानना । इन सब अन्तर द्वीपों के चारों तरफ वेदिका और वन से अलंकृत है और समुद्र के पानी से दो कोस ऊंचे हैं । (२६०)

अथाम्भोधावस्मिन्नमृतरूचयस्तिग्मकिरणा,

द्विचत्वारिंशत्स्युर्ग्रह सहस्त्रत्रयमथ ।

शतैः षड्भिर्युक्तं षडधिकनवत्या समधिकैः,

सहस्त्रं षट् सप्तत्याधिक शतयुक् चात्र भगणः ॥२६१॥

(शिखरिणी)

पंचाशदूनानियतं सहस्त्रास्त्रयोदशीभाक्षि मिताश्च लक्षाः ।

स्युस्तारकाणामिह कोटाकोटयः कालोदधौ तीर्थकरोपदिष्टाः ॥२६२॥

(उपजातिः)

इस कालोदधि समुद्र में सूर्य बयालीस है और चन्द्र भी बयालीस है, ग्रह तीन हजार छः सौ छियानवें (३६९६) है नक्षत्र की संख्या ग्यारह सौ छिहत्तर (११७६) है तथा अट्ठाईस लाख, बारह हजार नौ सौ पचास (२८,१२,९५०) कोडा कोडी प्रमाण तारा समूह है। इस तरह श्री तीर्थंकर परमात्मा ने कहा है। (२६१-२६२)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिष-

द्राज श्री तनयो ऽतनिष्ट विनयः श्री तेजपालात्मजः।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्व प्रदीपोपमे,

द्वाविंशो मधुरः समाप्ति मगत्सर्गो निसर्गो ज्ज्वलः ॥३६३॥

॥ इति श्री लोक प्रकाशे धातकी वर्णको द्वाविंशति तमः सर्गः समाप्तः ॥

॥ग्रन्थाग्रं ३१४॥

विश्व को आश्चर्यजनक करने वाले कीर्ति वाले उपाध्याय श्री कीर्ति विजय श्री गणिवर्य के शिष्य और माता राज श्री और पिता तेजपाल के पुत्र श्री विनय विजय जी महाराज द्वारा रचित निश्चित जगत के पदार्थों के लिए दीपक के समान इस काव्य में कुदरती उज्जवल और मधुर बाईसवां सर्ग विघ्न रहित सम्पूर्ण हुआ है । (२६३)

卐 बाईसवां सर्ग समाप्त 卐

तेईसवां सर्ग

पुष्करवर द्वीप का स्वरूप

वक्ष्येऽथ पुष्करवर द्वीपं कैकय देशवत् ।
विशेषितार्द्धमावेष्टय, स्थितं कालोदवारिधिम् ॥१॥

कैकय देश अर्थात् आर्यदेश साढे पच्चीस कहलाते हैं उसमें आधा आर्यदेश के समान शेष रहा है वह आधा विभाग है और कालोदधि समुद्र से लिप्त हुआ है ऐसे पुष्करवर द्वीप का अब मैं वर्णन करता हूं । (१)

वक्ष्यमाण स्वरूपैर्यच्छोभितश्चारूपुष्करैः ।
ततोऽयं पुष्करवर इति प्रसिद्धिमीयिवान् ॥२॥

जिसका स्वरूप आगे कहा जायेगा, वह सुन्दर पुष्कर (कमल विशेष) से यह द्वीप शोभायमान होता है, इससे यह द्वीप पुष्कर द्वीप के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। (२)

चक्रवालतयैतस्य, विस्तारो वर्णितः श्रुते ।
योजनानां षोडशैव लक्षा न्यक्षार्थवेदिभिः ॥३॥

सूक्ष्म अर्थ के जानकार महापुरुषोंने आगम में इस द्वीप का चक्रवाल विस्तार सोलह लाख योजन का कहा है । (३)

द्वीपस्यास्य, मध्यदेशे, शैलोऽस्ति मानुषोत्तरः ।
अन्विताख्यो नरक्षेत्र सीमाकारितयोत्तरः ॥४॥

इस द्वीप के मध्य विभाग में मानुषोत्तर नामक पर्वत है । वह मनुष्य क्षेत्र की सीमा करने वाला होने से और मनुष्य क्षेत्र के बाद रहा हुआ होने से वास्तविक नाम वाला है । (४)

उभयोः पार्श्वयोश्चारू वेदिका वनमण्डितः ।
योजनानामेकविंशान् शतान् सप्तदशोच्छ्रितः ॥५॥

यह मानुषोत्तर पर्वत के दोनों तरफ सुन्दर वेदिका और वन से सुशोभित है और उसकी ऊंचाई सत्रह सौ इक्कीस (१७२१) योजन की है । (५)

चतुः शतीं योजनानां, त्रिंशां क्रोशाधिकां भुवि ।
मग्नो मूले सहस्त्रं च, द्वाविंशं किल विस्तृतः ॥६॥

त्रयो विंशानि मध्येऽयं शतानि सप्त विस्तृतः ।
चतुर्विंशानि चत्वारि, शतान्युपरिविस्तृतः ॥७॥

यह पर्वत चार सौ तीस योजन और एक कोस भूमि के अन्दर अवगाढ-प्रविष्ट है, पृथ्वी से एक हजार बाईस (१०२२) योजन है मध्यविभाग में सात सौ तेईस (७२३) योजन और शिखर पर चार सौ चौबीस (४२४) योजन विस्तार वाला है । (६-७)

यथेष्ट स्थान विष्कम्भ ज्ञानोपायस्तु सारम्यतः ।
भाव्यो वेलन्धरावासगोस्तूपादिगिरिष्विव ॥८॥

इच्छित स्थान का विस्तार जानने की इच्छा हो तो उसका उपाय वेलंधरावास-गोस्तूप आदि पर्वत के समान ही जानना । (८)

अग्रेतनं पादयुग्मं, यथोत्तम्भ्यनिषीदति ।
पुताभ्यां केसरी पादद्वयं संकोच्य पश्चिमम् ॥९॥

ततः शिरः प्रदेशे स, विभाति भृश मुन्नतः ।
तथा पश्चात्यभागे च, निम्नो निम्नतरः क्रमात् ॥१०॥

तद्वदेष गिरिः सिंहोपवेशनाकृतिस्ततः ।
यद्वा यवार्द्ध संस्थानसंस्थितोऽयं तथैव हि ॥११॥

जिस तरह केसरी सिंह आगे के दो पैरों को ऊंचा करके और पीछे के दो पैर को पुत्त-प्रदेश द्वारा संकोच करके बैठता है, उस समय में उसके मस्तक के भाग समान अत्यन्त ऊंचा लगता है और पीछे के भाग में जैसे क्रमशः नीचे-नीचे लगता है, वैसे यह पर्वत भी सिंह की बैठने की आकृति वाला है अथवा आधा जौ के समान आकृति वाला है । (९-११)

समभित्तिः सर्व तुङ्गो, जम्बू द्वीपस्य दिश्ययम् ।
प्रदेशहान्या पश्चात्तु निम्नतरः क्रमात् ॥१२॥

यह पर्वत जम्बू द्वीप की दिशा में समान रूप दीवार के समान और एक

समान ऊंचा है और पीछे के विभाग में एक-एक प्रदेश में अनुक्रम से कम होते नीचे होता जाता है । (१२)

अत्रायं संप्रदायः- द्वे सहस्रे चतुश्चत्वारिंशे मूले सुविस्तृतम् ।
शतान्यष्टाष्टचत्वारिंशानि मूर्ध्नि च विस्तृतम् ।।१३।।

एक विंशान् शतान् सप्तदशोच्चं वलयाकृतिम् ।
प्रकल्प्याद्रिं ततोऽस्याभ्यन्तरार्द्धेऽपहृते सति ।।१४।।

विस्तारमधि कृत्याथ, शेषस्तिठति यादृशः ।
तादृशोऽयं संप्रदायात्, प्रज्ञप्तो मानुषोत्तरः ।।१५।।

यहां परम्परा इस तरह है कि - इस पर्वत के मूल में दो हजार चवालीस (२०४४) योजन और शिखर ऊपर आठ सौ अड़तालीस (८४८) योजन का विस्तार वाला है तथा सत्रह सौ इक्कीस (१७२१) योजन का ऊंचा वलयाकृति वाला पर्वत कल्पना कर उसमें से आधा विभाग दूर करके विस्तार से जितना शेष रहे उतना यह मनुयोत्तर पर्वत संप्रदाय से कहा गया है । (१३-१५)

वसन्त्यस्योर्ध्वसुपर्ण कुमारा निर्जरा बहिः ।
मध्ये मनुष्यश्चेत्येष, त्रिधा गिरिरलङ्कृतः ।।१६।।

इस पर्वत के उर्ध्व भाग में सुपर्ण कुमार देव रहते है, बाहर के विभाग में देव निवास करते हैं और अन्दर के विभाग में मनुष्य रहते हैं । इस प्रकार तीन विभाग से यह पर्वत शोभायमान हो रहा है । (१६)

तथोक्तं जीवाभिगम सूत्रे - "माणु सुत्तरस्स णं पव्वयस्स अंतो मणुआ उप्पिं सुवण्णा बाहिं देवा ।" इति ।

श्री जीवाभिगम सूत्र में इस प्रकार कहा है कि - मनुषोत्तर पर्वत के मनुष्यों के ऊपर सुपर्ण कुमार देव रहते हैं और बाहर विभाग में देव निवास करते हैं।

जाम्बूनदमयश्चित्र मणिरत्नविनिर्मितैः ।
लतागृहै दीर्घिकाभिर्मण्डपै श्चैष मण्डितः ।।१७।।

कूटैः षोडशभिश्चैष, समन्ताद्भात्यलंकृतः ।
नानारत्नमयै रम्यैः प्राकारोऽट्टालकैरिव ॥१८॥

जाम्बूनद (सुवर्ण) मय यह पर्वत विविध प्रकार के मणि एवं रत्नों से बनी हुई लता मंडप, वावड़ियां और मंडप समूह से शोभायमान है। विविध प्रकार के रत्नमय और मनोहर सोलह कूट-शिखरों से चारों तरफ से अलंकृत यह पर्वत गवाक्ष के समान जैसे किला शोभता है वैसा शोभता है ।

त्रयं त्रयं स्यात्कूटानां, पङ्क्त्या दिशा चतुष्टये ।
द्वादशाप्येकैकदेवाधिष्ठितानि भवन्त्यथ ॥१९॥

इस पर्वत के चारों दिशा में तीन-तीन कूट-शिखर है और इन बारह शिखर पर एक-एक देवता अधिष्ठित है । (१९)

उक्तं च स्थानाङ्ग वृत्तौ -

"पुव्वेण तिन्नि कूत्र दाहिण ओ तिन्नि तिन्नि अवरेण ।
उत्तरओ तिन्नि भवे चउद्दिसिं माणुसनगस्स ॥२०॥" इति ।

श्री स्थानांग सूत्र की टीका में कहा है कि - पूर्व दिशा के अन्दर तीन शिखर है, दक्षिण में तीन, पश्चिम में तीन और उत्तर दिशा में तीन, इस तरह चार दिशा में मानुषोत्तर पर्वत पर शिखर है । (२०)

विदिक्षु चत्वारि तत्राग्नेय्यां रत्नाभिधं भवेत् ।
निवास भूतं तद्वेणुदेवस्य गरूडे शितुः ॥२१॥

इस पर्वत के ऊपर विदिशाओं में चार शिखर है । उसमें अग्निकोन में गरूड निकाय के स्वामी वेणुदेव का रत्न नाम का निवास स्थान है । (२१)

रत्नोच्च ख्यायं नैऋत्यां वेलम्बस्यानिलेशितुः ।
नाम्ना विलम्बसुखदमित्यप्येतन्निरूपितम् ॥२२॥

नैऋत्य कोने में वायु कुमार के इन्द्र वेलंबदेव का रत्नोच्चय नाम का निवास स्थान है, और यह शिखर 'विलम्बसुखद' के नाम से भी कहा जाता है । (२२)

पूर्वोत्तरस्यां च कूटं, सर्वरत्नाभिधं भवेत् ।
तत्सुपर्णकुमारेन्द्रवेणुदालेः किलास्पदम् ॥२३॥

ईशान कोन में सर्वरत्न नाम का शिखर है, वहां सुपर्णकुमार का इन्द्र है जो गरूड कुमार का दूसरा इन्द्र है जो वेणु दालि है, उसका स्थान है । (२३)

तथाऽपरोत्तरस्यां स्यात्तद्रत्नसंचयाभिधम् ।
प्रभञ्जनपराख्यं च, प्रभञ्जन सुरेशितुः ॥२४॥

तथा वायव्य कोने में रत्न संचय नामक शिखर है, इसका दूसरा नाम प्रभंजन भी है, वह प्रभंजन नाम का इन्द्र-वायुकुमार का दूसरा इन्द्र है उसका निवास स्थान है । (२४)

अत्र यद्यपि रत्नादीनि चत्वारि कूटानि स्थानाङ्ग सूत्रे चतुर्दिश मुक्तानि तथाहि - "माणु सुत्ररस्स णं पव्वयस्स चउ द्दिशिं चत्तारि कुडा पं० तं० रयणे- रयणुच्चये सव्व रयणे रयण संचए ॥" इति तथाप्येतत्सूत्रं श्री 'अभयदेव सूरिभिरेवं व्याख्यातं - तथाहि - "इह च दिगग्रहणेऽपि विदिक्ष्विति द्रष्टव्यं, तथा एवं चैत द्वया ख्यायते द्वीप सागर प्रंज्ञप्ति संग्रहण्यनुसारेणे" इत्यादि ॥

यहां यद्यपि ये रत्ना आदि चार शिखर स्थानांग सूत्र में चार दिशाओं में कहा है । वह इस तरह है - "मानुषोत्तर पर्वत ऊपर चार दिशा में रत्न, रत्नोच्चय, सर्वरत्न और रत्न संचय नाम के शिखर है" फिर भी इस सूत्र में श्री अभयदेव सूरीश्वर जी महाराज ने इस सूत्र की इस तरह व्याख्या की है - 'यहां दिशा शब्द के ग्रहण से भी विदिशा में ही है' - इस तरह समझना चाहिए । क्योंकि द्वीप सागर प्रज्ञप्ति तथा संग्रहणी आदि में इसी तरह व्याख्या मिलती है ।".

चतु र्दिशमिहैकैकः, कूटे भाति जिनालयः ।
दिशां चतसृणां रत्नकिरीट इव भासुरः ॥२५॥

चारों दिशा में एक-एक शिखर पर एक-एक जिनालय है ये चारों दिशाओं के देदीप्यमान रत्न मुगर के समान शोभायमान होते हैं। (२५)

तथोक्तं चिरंजय क्षेत्र समास सूत्रेः -

"चउ सुवि उसुयारेसुं इक्कि वक्कं नरनगंमि चत्तारि ।
कूडो वरि जिण भवणा कुलगिरि जिण भवण परिमाणा ॥२६॥"

यह बात लघु क्षेत्र समान सूत्र में कही है कि - 'चारो इषुकार पर्वत ऊपर

(घात की खंड के २+पुष्कार्ध के २ =४) और मानुषोत्तर पर्वत के चारों दिशा के एक-एक शिखर ऊपर एक-एक जिनालय है, जोकि कुल गिरि ऊपर कहे गये हैं वैसे जिनेश्वर देव के भवन समान परिमाण वाले हैं ।' (२६)

साक्षान्न यद्यपि प्रोक्तः, सिद्धान्तेऽत्र जिनालयः ।
तथाव्यागमवाग्लिः गदनुमानत्प्रतीयते ॥२७॥

यतो विद्याचारणर्षितिग्गति निदर्शने ।
विश्रामोऽत्र गिरौ प्रोक्तश्चैत्य वन्दन पूर्वकः ॥२८॥

यहां जिनालय की बात सिद्धान्त में साक्षात् स्पष्ट रूप में नहीं कहा फिर भी आगम की वाणी के अनुसार से अनुमान द्वारा यहां जिनालय कहा है । इस तरह प्रतीत होता है । क्योंकि विद्याचारण मुनियों की तिर्च्छागति के दृष्टांत में इस गिरि पर चैत्य वंदन पूर्वक का विश्राम लेने का कहा है । (२७-२८)

तथाह पच्चामाङ्गे – विज्जाचारणस्सपणं भंते । तिरियं केवतिए गति विसए पन्नत्ते ? गोयम ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं माणु सुत्तरे पव्वए समोसरणं करेइ, माणु०२ त्ता तहिं चेइयाइं वदंति ।"

पांचवे अंग श्री भगवती सूत्र में कहा है कि – 'हे भगवन्त ! विद्याचारण मुनियो की तिर्यक्गति के विषय में कितनी कही हैं ? इसका उत्तर श्रमण भगवान महावीर देव देते हैं कि – हे गौतम ! वे यहां से एक उत्पात द्वारा मानुषोत्तर पर्वत पर जाते है और वहां चैत्यवंदन करते है ।'

एतच्चास्मिन् विना चैत्यं, कथमौ चित्यमन्वंति ?
ततोऽत्र जिन चैत्यानि, युक्तमूचुर्महर्षयः ॥२६॥

यहां चैत्य वंदन करने की बात श्री जिनेश्वर देव के चैत्य बिना किस तरह हो सकता है, इससे यहां जिन चैत्य है, यह बात पूर्व महर्षियों ने योग्य हो कहा है । (२६)

एवं शाश्वतचैत्यानां, मान्यत्वं यो न मन्यते ।
सोऽप्यनेनैव वाक्ये नोत्थातुं नेष्टे पराहतः ॥३०॥

इस तरह शाश्वत जिनालयो को जिन्होंने स्वीकार नहीं किया वे भी इस वाक्य से हारे हैं और इस बात को उत्थापन करने में समर्थ नहीं है ।

यश्चात् चैत्य शब्दार्थं, विपर्यस्यति वातकी ।
तस्याप्येतच्चारणर्षिनमस्यावाक्यमौषधम् ॥३१॥

चैत्य शब्द का अर्थ जो वायुदोष वाला मनुष्य अलग करता है, उनके भी चारण ऋषियों के द्वारा चैत्य नमस्कार का वाक्य औषध समान है । अर्थात् इस प्रकार ये चैत्य नमस्कार के शब्द के अर्थ को वे क्या करेंगे ? (३१)

नहींदृशास्तपः शक्ति लब्धैतादृशलब्धयः ।
बिना जिनादीन् वन्दन्ते, सम्यक्त्वभ्रंशभीलुकाः ॥३२॥

इस प्रकार के उत्कृष्ट तप से प्राप्त हुई ऐसी लब्धी वाले और सम्यक्त्व के भ्रंश अधःपतन से डरने वाले ये महात्मा श्री जिनेश्वर देव के बिना अन्य किसी को नमस्कार नहीं करते हैं। (३२)

अथ प्रकृतं - अनेन पुष्करवर द्वीपो द्वेधा व्यधीयत ।
भित्येव गृहमस्यार्द्धद्वयं निर्दिश्यते ततः ॥३३॥

अभ्यन्तरं पुष्करार्द्धं बाह्यं तदर्द्धमेव च ।
अर्वाचीनमानन्तरार्द्धं बाह्यमर्द्धं ततः परम् ॥३४॥

अब प्रस्तुत बात कहते हैं - दीवार द्वारा जैसे घर के दो विभाग किये जाते हैं वैसे इस मानुषोत्तर पर्वत से यह पुष्करवर द्वीप के दो विभाग वाला होता है और उस दो अर्ध भाग का निर्देश अभ्यन्तर पुष्करार्ध और ब्राह्य पुष्करार्ध इस तरह अथवा अन्दर का अर्ध भाग और बाहर का अर्धभाग इस तरह से होते हैं। (३३-३४)

मनुषोत्तर शैलस्तु, बाह्यार्द्धक्षेत्ररोधकः ।
इत्यान्तरार्द्ध पूर्णाष्टलक्षयोजनसंमितम् ॥३५॥

यह मानुषोत्तर पर्वत बाहर के अर्धक्षेत्र को रोकता है अर्थात् बाहर के क्षेत्र के आठ लाख योजन में उसका समावेश होता है । इससे अन्तरार्ध पूर्ण आठ लाख योजन का होता है । (३५)

तथाहुर्ज्ञान चन्दन मलय गिरयो मलय गिरयः - ''अयं च मानुषोत्तर पर्वतो बाह्य पुष्करवरार्द्ध भूमौ प्रतिपत्तव्य'' इति बृहत्क्षेत्र समास वृत्तौ ॥

ज्ञान रूपी चन्दन के लिए मलय पर्वत सदृश पूज्य श्री मलयगिरि जी महाराज कहते है कि 'यह मानुषोत्तर पर्वत बाह्य पुष्करार्ध भूमि में जानना ।' इस तरह से बृहत्क्षेत्र समास की टीका में कहा है ।

कोटिरेका द्विचत्वारिंशल्लक्षाणि सहस्रकाः ।
चतुस्त्रिंशत्छतान्यष्टौ, त्रयोविंशानि चोपरि ॥३६॥

एतावद्योजनमितो, मानुषोत्तर भूभृतः ।
स्यान्मध्ये परिधिर्मौलौ, त्वस्यायं परिधिर्भवेत् ॥३७॥

कोटीरेकाऽथ लक्षाणि, द्वि चत्वारिंशदेव च ।
द्वात्रिंशच्च सहस्राणि, द्वात्रिंशाच्च शता नव ॥३८॥

एक करोड़ बयालीस लाख, चौंतीस हजार आठ सौ तेईस (१,४२,३४,८२३) योजन प्रमाण रूप मानुषोत्तर पर्वत की मध्य परिधि है और शिखर के ऊपर की परिधि एक करोड़ बयालीस लाख बत्तीस हजार नौ सौ बत्तीस (१,४२,३२,९३२) योजन की जानना । (३६-३८)

पृथुगुक्तो परिक्षेपौ, यौ मध्येऽस्य तथोपरि ।
बहिर्भागापेक्षया तौ, पार्श्वेऽस्याभ्यन्तरे पुनः ॥३९॥

समानभित्तिकतया, मूले मध्ये तथोपरि ।
तुल्य एव परिक्षेपः सर्वत्राप्यवसीयताम् ॥४०॥

इस मानुषोत्तर पर्वत की मध्यभाग तथा शिखर की परिधि जो भिन्न प्रकार कही है वह बाहर के भाग की अपेक्षा से जानना, परन्तु अन्दर के भाग में तो समान दीवार होने के कारण मूल, मध्य और ऊपर इस तरह तीनों स्थान की समान परिधि होती है । (३९-४०)

एका कोटी द्विचत्वारिंशल्लक्षाणि सहस्रकाः ।
षट्त्रिंशच्च शताः सप्त, त्रयोदश समन्विताः ॥४१॥

एतावन्ति योजनानि, दृष्टानि जिन नायकैः ।
मानुषोत्त्र शैलस्य, बाह्यस्य परिधेर्मितौ ॥४२॥

एक करोड़ बयालीस लाख छत्तीस हजार सात सौ तेरह (१४२३६७१३) योजन प्रमाण मानुषोत्तर पर्वत की बाह्य परिधि श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा है । (४१-४२)

इति बृहत्क्षेत्र समास वृत्यभिप्रायेण, जीवाभिगम सूत्रे 'सत्त चौद्द सुत्तरे जोअ णसए' इत्युक्तं ।'

यह बात बृहत्क्षेत्र समास की टीका के आधार पर जानना, परन्तु जीवाभिगम सूत्र में तो सात सौ तेरह (७१३) के स्थान पर सात सौ चौदह योजन कहा है कुछ अधिक योजन का विभाग को व्यवहार से योजन ही कहा जाता हैं । इसलिए चौदह योजन अधिक कहा है ।

द्विचत्वारिंशता लक्षैरेक कोटि समन्विता ।
त्रिंशत्सहस्त्राश्चैकोनपन्चाशा द्विशती तथा ॥४३॥

मानुषोत्तरशैलस्यैतावान् परिधिरान्तरः ।
एष एवाभ्यन्तरस्य, पुष्करार्द्धस्य चान्तिमः ॥४४॥

एक करोड़ बयालीस लाख, तीस हजार दो सौ उन्चास (१४२३०२४९) योजन मानुषोत्तर पर्वत की अभ्यन्तर परिधि है और यही अभ्यन्तर पुष्करार्ध की अन्तिम परिधि जानना । (४३-४४)

नृक्षेत्रस्यापि परिधिरेष एवावसानिकः ।
अथास्य पुष्करार्द्धस्यमध्यमः परिधिस्तवयम् ॥४५॥

एकः कोटी योजनानां, लक्षाः सप्तदशोपरि ।
सप्तविंशत्यन्त्रितानि, चत्वार्येव शतानि च ॥४६॥

और मनुष्य क्षेत्र की अंतिम परिधि भी इसी तरह इतनी ही जानना । अब पुष्करार्ध की मध्यम परिधि कहते हैं । वह एक करोड़, सत्रह लाख चार सौ सत्ताईस (११७००४२७) योजन की जानना । (४५-४६)

कालोदस्यान्त्यपरिधिर्यः पूर्वमिहदर्शितः ।
स एव पुष्करार्द्धस्य, भवेत्परिधिरान्तरः ॥४७॥

कालोदधि समुद्र की जो बाह्य परिधि पहले बता गये है वही पुष्करार्ध की अभ्यन्तर परिधि जानना । (४७)

द्विधेदमिषुकाराभ्यां धातकी खण्ड वत्कृतम् ।
अभ्यन्तरे पुष्करार्द्धे तत्स्थितद्वयामपागुदक् ॥४८॥

अभ्यन्तर पुष्करार्ध में रहे दो इषुकार पर्वत द्वारा पुष्करार्ध क्षेत्र भी धातकी खंड के समान उत्तर दक्षिण दो भाग में बंटवारा हुआ है । (४८)

धातकी खण्डेषुकारसधर्माणाविमावपि ।
चतुष्कूटावन्त्यकूट स्थितोत्तुङ्ग जिनालयौ ॥४९॥

धातकी खंड के इषुकार पर्वत के समान ये पुष्करार्ध के दो इषुकार पर्वत ऊपर भी चार शिखर है और उन दोनों के अन्त्य शिखर पर उत्तुंग जिनालय हैं । (४९)

एकेनान्तेन कालोदं, परेण मानुषोत्तरम् ।
स्पृष्टवन्तौ योजनानां, लक्षाण्यष्टयताविति ॥५०॥

इन दोनों इपुकार पर्वत के एक किनारा अन्तिम भाग कालोदधि समुद्र को और दूसरा किनारा अन्तिम विभाग मानुषोत्तर पर्वत को स्पर्श करता है । और इन दोनों पर्वतों की लम्बाई आठ लाख योजन की है । (५०)

एवमभ्यंतरं पुष्करार्द्ध निर्दिश्यन्ते द्विधा ।
पूर्वार्द्ध पश्चिमार्द्ध च, प्रत्येकं मेरूणाऽन्वितम् ॥५१॥

इसी तरह से अभ्यन्तर पुष्करार्ध क्षेत्र, पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध इस तरह दो प्रकार से है । इन दोनों में एक-एक मेरूपर्वत है । (५१)

पूर्वार्द्ध परार्द्धयोरत्र, कालोदवेदीकान्ततः ।
पुरतः पुनरर्वाक् च, मानुषोत्तरपर्वतात् ॥५२॥
सहस्रान्नवनवतिं, प्रत्येकं लक्षकत्रयम् ।
योजनानामतीत्यासिति, कुण्डमेकैकमद्भुतम् ॥५३॥

यहां इस पुष्करार्ध द्वीप में पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में कालोदधि समुद्र की वेदिका से आगे और मानुषोत्तर पर्वत से पीछे तीन लाख निन्यानवें हजार (३,९९,०००) योजन जाने के बाद एक-एक अद्भुत कुंड है । (५२-५३)

अधस्ते विस्तृते स्तोकमुपर्युनुक्रमात् ।
विस्तीर्णे विस्तीर्णतरे, जायमाने शरावक्त् ॥५४॥

ये दोनों कुंड-सरोवर नीचे से अल्प विस्तृत और क्रमशः ऊपर कटोरे के समान अधिक से अधिक विस्तार वाले होते हैं । (५४)

भुवस्तले द्वे सहस्रे विस्तीर्ण योजनान्यथ ।
उद्विद्धे दश शुद्धाम्भोवीचीनिचयचारूणी ॥५५॥

उन कुंड के नीचे भूमीतल में २००० योजन विस्तृत और दस योजन गहरा है तथा शुद्ध-निर्मल जल के तरंगों की माला से मनोहर है । (५५)

द्वयोरप्यर्द्धयोर त्रैकैकमन्दरनिश्रया ।
षट् षट वर्षधराः सप्त, सप्त क्षेत्राणि पूर्ववत् ॥५६॥

पुष्करार्ध क्षेत्र के दोनों आधे भाग में एक एक मेरूपर्वत के आश्रित छः-छः वर्ष धर पर्वत और सात-सात क्षेत्र पूर्ववत् है । (५६)

धातकी खण्डस्थ वर्षधरद्विगुण विस्तृताः ।
भवन्त्यत्र वर्षधर, उच्चत्वेन तु तैः समाः ॥५७॥

इन वर्षधर पर्वत के विस्तार में धातकी खंड के वर्षधर पर्वतों से दो गुणा जानना और ऊंचाई में समान जानना । (५७)

एवमत्रेपुकाराभ्यां, सहवर्षमहीभृताम् ।
विष्कम्भ संकलनया, नगरूंभवेदियत् ॥५८॥

इस तरह से इन वर्षधर पर्वतों के और दो इषुकार पर्वतों के विस्तार से रुके हुए स्थान का कुल जोड़ इस प्रकार है । (५८)

तिस्त्रो लक्षा योजनानां पन्चाश देव च ।
सहस्राणि चतुरशीत्यधिकानि शतानि षट् ॥५९॥

तीन लाख, पचपन हजार छः सौ और चौरासी (३५५६८४) योजन जितनी भूमि पर्वतों से रूकी है । (५६)

आद्यमध्यान्त्यपरिधौ, प्राग्वदेतेन वर्जिते ।
द्वादशः द्विशत क्षुण्णे, कल्प्यन्ते प्राग्वदंशकाः ॥६०॥

क्षेत्र के योजन (विस्तार) की गिनती करने में पूर्व के समान ही पहले श्लोक में कहे योजन की संख्या – आद्य–मध्य और अन्त्य परिधि में से निकाल देने पर और पूर्व के समान ही एक योजन के दो सौ बारह (२१२) अंश कल्पना करना चाहिए (६०) पुष्करार्ध द्वीप में आये पर्वतों का विस्तार इस तरह है : –

४२१०	योजन १० कला पूर्वार्ध हिमवंत पर्वत
+ ४२१०	योजन १० कला पूर्वार्ध शिखरी पर्वत
+ १६८४२	योजन २ कला पूर्वार्ध महाहिमवंत पर्वत
+ १६८४२	योजन २ कला पूर्वार्ध रूक्मि पर्वत
+ ६७३६८	योजन ८ कला पूर्वार्ध निषध पर्वत
+ ६७३६८	योजन ८ कला पूर्वार्ध नीलवंत पर्वत
= १७६८४२	योजन २ कला पूर्वार्ध पूर्वार्ध पुष्करार्ध के पर्वतों का विस्तार
+ १७६८४२	योजन २ कला पूर्वार्ध पश्चिमार्ध पुष्करार्ध के पर्वतों का विस्तार
+ २०००	योजन दो इषुकार पर्वत का विस्तार ।

३५५६८४ योजन ४ कला पुष्करार्ध क्षेत्र में इतना क्षेत्र पर्वतों का रोका है । उसके बिना का क्षेत्र जानने के लिए कालोदधि समुद्र की परिधि में से क्षेत्र के योजन निकाल देने के बाद ।

९१,७०,६०५	योजन कालोदधि समुद्र की बाह्य परिधि
३,५५,६८४	'' रोके क्षेत्र का माप
८८,१४,९२१	योजन मूल ध्रुवराशि
११७००४२७	मध्य परिधि

१४२३०२४६ बाह्य मनुष्य क्षेत्र परिधि

३५५६८४ पर्वत का विस्तार

३५५६८४ पर्वत का विस्तार

११३४४७७३ मध्य ध्रुव राशि

१३८७४५६५ बाहर की ध्रुव राशि

इस तरह मूल, मध्य अथवा बाह्य क्षेत्र का विस्तार जानने के लिए मूल ध्रुवराशि को और बाह्य ध्रुवराशि को दो सौ बारह के भाग से क्षेत्र का मूल, मध्य और बाह्य विस्तार आता है ।

''वर्ष वर्षधर भाग कल्पनात्वत्र घातकी खण्डवद् ज्ञेया ।''

यहां वर्ष क्षेत्र और वर्षधर पर्वत के भाग की कल्पना की धात की खंड की तरह जानना चाहिए ।

द्वादशद्वि शतोत्थास्ते, येऽत्रांशा योजनोपरि ।
क्षेत्राणामब्धिदीश्यादीरन्तश्चनृगिरेर्दिशि ॥६१॥

यहां कहे दो सौ बारह अंश है वह योजन की ऊपर कहे अनुसार ही क्षेत्रों की आदि कालोदधि समुद्र तरफ और अन्त मानुषोत्तर पर्वत तरफ जानना । (६१)

तत्र याम्येषु कारस्योभयतोऽप्यर्द्धयोर्द्वयोः ।
एकैकमस्ति भरतं, स्व स्व स्वर्ण गिरेर्दिशि ॥६२॥

वहां पुष्करार्ध में दक्षिण दिशा के इषुकार पर्वत से दोनों तरफ के पुष्करार्ध में पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्ध अपने-अपने मेरूपर्वत की दिशा में एक-एक भरतक्षेत्र आया हुआ है । (६२)

सहस्राण्येक चत्वारिंशच्छतान् पन्च विस्तृतम् ।
सैकोनाशीतीन् मुखेऽंशशतं च स त्रिसप्ततिः ॥६३॥

इन दोनों भरत क्षेत्र के प्रारंभ का विस्तार इकतालीस हजार पांच सौ उनासी योजन और दो सौ बारह में से उत्पन्न हुए एक सौ तिहत्तर अंश - ४१५७६ १७३/

२१२ जानना अर्थात् ८८१४६३१ मूल ध्रुव राशि में २१२ = ४१५७६ १७३/२१२ होता है । (६३)

त्रिपन्चाशत्सहस्त्राणि, द्वादशा पन्चशत्यपि ।

शतं नव नवत्याढयमंशाश्च मध्य विस्तृतिः ॥६४॥

मध्य का विस्तार तिरपन हजार पांच सौ बारह योजन और दो सौ बारह में से एक सौ निन्यानवे अंश (५३५१२ १६६/२१२) जानना अर्थात् ११३४४७४३ मध्य ध्रुव राशि में २१२ = ५३५१२- १६६/२१२ होता है । (६४)

पन्चषष्टिं सहस्त्राणि योजनानां चतुःशतीम् ।

षट्चत्वारिंशां लवांश्च त्रयोदशान्त विस्तृतः ॥६५॥

और बाह्य विस्तार पैंसठ हजार चार सौ छियालीस योजन और दो सौ बारह में से तेरह अंश (६५४४६ १३/२१२) जानना । अर्थात १३८,७४५६५ बाह्य ध्रुव राशि में २१२ = ६५४४६ १३/२१२ होता है । (६५)

मध्य भागेऽस्य वैताढयो लक्षाण्यष्टौ सचायतः ।

धातकी खण्ड वैताढयवच्छेषंत्विह भाव्यताम् ॥६६॥

इस भरत क्षेत्र के मध्य में वैताढय पर्वत आया है । उसकी लम्बाई आठ लाख योजन की है, और उसका स्वरूप धातकी खण्ड के भरत के वैताढय के समान जानना । (६६)

अन्येऽपि दीर्घ वैताढयाः स्युः सप्तषष्टिरीदृशाः ।

भरतैरवत क्षेत्र विदेह विजयोद्भवाः ॥६७॥

भरतक्षेत्र, ऐरवत क्षेत्र तथा महाविदेह क्षेत्र की विजय में रहे अन्य भी ऐसे सढसठ दीर्घ वैताढय पर्वत है । (६७)

उत्तरार्द्धमध्यखण्डे, गाङ्गसैन्धवकुण्डयोः ।

मध्ये वृषभकूटोस्ति, जम्बूद्वीपर्षभाद्रिवत् ॥६८॥

इस पुष्करार्ध द्वीप के भरत क्षेत्र के उत्तरार्ध मध्य खण्ड में गंगा और सिन्धु के कुंड के मध्य में जम्बू द्वीप के ऋषभकूट समान ऋषभकूट आया है । (६८)

पर्यन्तेऽस्य ततः शैलो, हिमवान्नामवर्त्तते ।
आयामतोऽष्टौ लक्षाणि, विष्कम्भतो भवेदियान् ॥६६॥

योजनानां द्विचत्वारिंशच्छता दशसंयुताः ।
चतुश्चत्वारिंशदंशाश्चतुरशीतिनिर्मिताः ॥७०॥

इस ऋषभ कूट पर्वत के समाप्त विभाग में हिमवान नामक पर्वत आया है वह लम्बाई में आठ लाख योजन का है और चौड़ाई में चार हजार दौ सौ दस योजन और चौरासी में से चवालीस अंश (४२१० ४४/८४) की है । (६६-७०)

तस्योपरि पद्महृदःप्राग्वत्पद्मालिमण्डितः ।
सहस्रांश्चतुरो दीर्घः सहस्रद्वयविस्तृतः ॥७१॥

इस हिमवान पर्वत के ऊपर पद्म सरोवर है उसका स्वरूप पूर्व के पद्म सरोवर के समान है, वह पद्म-कमल की श्रेणियों से युक्त है । उसकी लम्बाई चार हजार योजन की है और दो हजार योजन की उसकी चौड़ाई है । (७१)

गंगासिन्धुरोहितांशास्ततो नद्यो विनिर्ययुः ।
प्राच्यां प्रतीच्यामुदीच्यां, क्रमात्तत्रादिमे उभे ॥७२॥

हृदोदगमे योजनानि, विस्तीर्णे पन्चविंशतिम् ।
उद्विद्धे च योजनार्द्धसमुद्र संगमे पुनः ॥७३॥

विस्तीर्णे द्वे शते सार्द्धे, उद्विद्धे पन्चयोजनीम् ।
तत्र सिन्धु प्राच्य पुष्करार्द्धात्कालोदमङ्गति ॥७४॥

गंङ्गा तु प्राप्य पूर्वस्यां, मानुषोत्तर भूधरम् ।
सुमतिर्दुष्टसंसर्गादिव तत्र विलीयते ॥७५॥

इस पद्म सरोवर में से पूव दिशा में गंगा और पश्चिम दिशा में सिन्धु तथा उत्तर दिशा में रोहितांशा नामक तीन नदियां निकलती है । उसमें भी पहली दो गंगा और सिन्धु नदी सरोवर में से निकलने के स्थान से पच्चीस योजन विस्तृत और आधा योजन गहरी है और समुद्र के संगम समय में २५० योजन चौड़ी और पांच योजन गहरी होती है । उसमें सिन्धु नदी पूर्व पुष्करार्ध में से निकलकर कालोदधि समुद्र में मिलती है । जैसे दुष्ट मनुष्य के संसर्ग से सद्बुद्धिनाश होती है वैसे पुष्करार्ध की गंगा नदी मानुषोत्तर पर्वत में समा जाती है । (७२-७५)

पश्चिमार्द्धात्पुनर्गङ्गा, याति कालोदवारिधौ ।
सिन्धुर्नरोत्तरनगपादमूले विलीयते ॥७६॥

पश्चिमार्ध की गंगा नदी कालोदधि समुद्र को मिलती है, जबकि वहां भी सिन्धु नदी मानुषोत्तर पर्वत के मूल में विलीन हो जाती है ।

एवं नरोत्तरनागभिमुखाः सरितोऽखिलाः ।
विलीयन्त इह ततः परं तासामभावतः ॥७७॥

इस तरह मानुषोत्तर पर्वत तरफ की सर्व नदियां मानुषोत्तर पर्वत के पास में ही विलय हो जाती है । क्योंकि आगे मनुष्य क्षेत्र के बाहर नदियां नहीं होती है । (७७)

गंङ्गा सिन्धु प्रपाताख्ये, कुण्डे विष्कम्भ तो मते ।
चत्वारिंशत्समधिकं, योजनानां शतद्वयम ॥७८॥

गंगा और सिन्धु नदी को गिरने के दो कुंड-गंगा प्रपात कुंड और सिन्धु प्रपात कुंड है, इन दोनों कुंडों का विस्तार दो सौ चालीस योजन से कुछ अधिक है । (७८)

तदन्तर्वर्तिनौ द्वीपौ, प्रज्ञप्तौ विस्तृता यतौ ।
द्वात्रिंशद्योजनी मूल प्रवाह इव जिह्विके ॥७९॥

इन कुंडों में एक-एक द्वीप आया है, वह बत्तीस योजन की लम्बाई वाला, और चौड़ाई वाला है और उसकी जिह्विका प्रारंभ के प्रवाह का पच्चीस योजन विस्तार वाली है । (७९)

गंगा सिन्धु रक्तवती रक्ता स्वेतन्निरूपणम् ।
षट्त्रिंशशतसङ्ख्यासु, सर्वमप्यविशेषितम् ॥८०॥

गंगा और सिन्धु (३४+३४ = ६८) अड़सठ तथा रक्तवती और रक्ता (३४+३४ = ६८) अड़सठ, इस तरह कुल मिलाकर एक सौ छत्तीस नदियों का सारा वर्णन समान समझना । (८०)

रोहितांशा योजनानि पन्चाशन्नदनिर्गमे ।
विस्तीर्णैक योजनं चोद्विद्धोदीच्यां नगोपरि ॥८१॥

एकादश योजनानां शतान् पन्चसमन्वितान् ।
अंशान् द्वाविंशतिं गत्वा, कुण्डं प्राप्याथ पूर्ववत् ॥८२॥

क्षेत्रं हेमवतं द्वेधा, स्वप्रवाहेण कुर्वती ।
कालोदं याति पूर्वार्द्धे, परार्द्धेमानुषोत्तरम् ॥८३॥

हिमवान् पर्वत के ऊपर रोहितांशा नदी निकलने के स्थान में पचास योजन विस्तारवाली है तथा एक योजन गहरी है । यह नदी हिमवान पर्वत पर उत्तर दिशा में ग्यारह सौ पांच योजन और बाईस अंश (११०५-२२) क्षेत्र आगे बढ़कर, पूर्व के समान कुंड में गिरकर हैमवत् क्षेत्र को अपने प्रवाह से दो विभाग करके वह पूर्वार्ध की कालोदधि समुद्र में मिलती है । और पश्चिमार्ध की नदी मानुषोत्तर पर्वत में जाकर विलय होती है । (८१-८३)

अस्याः कुण्डं योजनानामशीत्याढया चतुःशती ।
विष्कम्भायामतो मूल प्रवाहवच्च जिह्विका ॥८४॥

इन रोहितांशा नदियों के कुंड चार सौ अस्सी (४८०) योजन लम्बे चौड़े है तथा उसकी जिह्विका मूल प्रवाह समान है । (८४)

अस्याः कुण्डान्तर्गतश्च, द्वीपो भवति यः स तुः ।
चतुःषष्टिर्योजनानि, विषकम्मायामतो मतः ॥८५॥

इन रोहितांशा नदियों के कुंडों के अन्तर्गत रहे द्वीप चौसठ (६४) योजन लम्बे चौड़े है । (८५)

रूप्यकूले स्वर्णकूले, रोहिते रोहितांशिके ।
अष्टाप्योतास्तुल्य रूपाः, स्वरूप परिवारतः ॥८६॥

दो रूप्य कूला, दो स्वर्ण कूला, दो रोहिता और दो रोहितांशा ये आठो नदियां स्वरूप में और परिवार में समान है । (८६)

अथोत्तरं हिमवतः क्षेत्रं हैमवतं स्थितम् ।
वृत वैताढयेन शब्दापातिनाऽङ्कृतान्तरम् ॥८७॥

अब हिमवान पर्वत से आगे हैमवत क्षेत्र रहा है, उसके मध्य में शब्दापाती नाम का वृत्त वैताढय पर्वत शोभता है । (८७)

मुखे लक्षं योजनानां, षटषष्टिं च सहस्त्रकान् ।
एकोनविंशां त्रिशतीं, षट् पन्चाशल्लवास्ततम् ॥८८॥

इस हैमवत क्षेत्र का प्रारंभ विस्तार एक लाख छियासठ हजार तीन सौ उन्नीस योजन और छप्पन लव (१६६३१९ ५६/२१२) योजन का है । (८८)

लक्षद्वये योजनानां सहस्त्राणि चतुर्दश ।
एक पंचाशानि ततं, मध्येऽंशान् षष्टि युक्शतम् ॥८९॥

उस क्षेत्र का मध्य विस्तार दो लाख चौदह हजार, इकावन योजन और एक सौ साठ अंश (२१४,०५१ १६०/२१२) का है । (८९)

अन्ते शतान् सचतुर शीतीन् सप्त सहस्त्रकान् ।
एकषष्टिं द्वि लक्षीं च द्वापन्चाशल्लवांस्ततम् ॥९०॥

इस क्षेत्र का अन्तिम विस्तार दो लाख इकसठ हजार सात सौ चौरासी योजन और बावन अंश (२,६१,७८४- ५२/२१२) का है । (९०)

जम्बू द्वीप स्थायिवृत्त वैताढयैः सदृश यथा ।
धातकीखंडस्थवृत्तवैताढयाः सर्वथा तथा ॥९१॥

अत्रापि वृत्ता वैताढयाः, पूर्वोक्तैः सदृशाः समे ।
शब्दापाति प्रभृतयः प्रत्येतव्या मनस्विभिः ॥९२॥

जम्बू द्वीप में रहे वृत्त वैताढय पर्वत के समान धातकी खंड के शब्दपाती आदि वृत्त (गोलाकार) वैताढय पर्वत है । बुद्धिशाली पुरुषों को वृत्त वैताढय पर्वत पूर्वोक्त वृत्त वैताढय पर्वत समान ही जानना । (९२)

द्वाभ्यां चतुर्भिरष्टाभिर्योजनैरन्तरं क्रमात् ।
स्वापगाभ्यां शब्दगन्धापातिमेरूमहीभृताम् ॥९३॥

अपने-अपने क्षेत्र में से बहती नदियां शब्दापाती वृत्त वैताढय पर्वत से दो योजन दूर होती हैं । गन्धापाती वृत्त वैताढय पर्वत से चार योजन दूर होती है, और मेरू पर्वत से आठ योजन दूर होती है । (९३)

विकटापातिनोर्माल्यवतोस्तथान्तरं क्रमात् ।
स्व स्व क्षेत्रापगाभ्यां द्वे, योजने तच्चतुष्टयम् ॥९४॥

अपने-अपने आगे से आगे क्षेत्रों में से बहती नदी विकटा पाती वृत्त वैताढय से दो योजन दूर रहती है और माल्यवान् पर्वत से उसके आगे के क्षेत्र की नदी चार योजन दूर रहती है । (९४)

अस्योत्तरस्यां च महा हिमवान् वर्त्तते गिरिः ।
लक्षाण्यष्टायतो मौलौ, महापद्म ह्रदाङ्कितः ॥९५॥
योजनानां सहस्राणि, षोडशाष्टौ शतानि च ।
द्विचत्वारिंशदाढयानि, कलाश्चष्टैष विस्तृतः ॥९६॥

इस हैमवंत क्षेत्र की उत्तर दिशा में महाहिमवान नाम का पर्वत है, उसकी लम्बाई आठ लाख योजन की है और उसके शिखर पर महापद्म नाम का सरोबर रहा है । इस महाहिमवान गिरि का विस्तार सोलह हजार आठ सौ बयालीस (१६८४२) योजन और आठ कला का है । (९५-९६)

महापद्महृदस्त्वष्टौ, सहस्राण्यायतो भवेत् ।
योजनानां सहस्राणि, चत्वारि चैष विस्तृतः ॥९७॥

इस पर्वत के शिखर के ऊपर रहे इस महापद्म सरोवर की लम्बाई आठ हजार योजन और विस्तार में चार हजार योजन है । (९७)

दक्षिणस्यामुदीच्यां न नद्यौ द्वे निर्गते इतः ।
रोहिता हरिकान्ता च, ते उभे पर्वतोपरि ॥९८॥
चतुःषष्टि शतान्येकविंशान्यंशचतुष्टयम् ।
अतीत्य स्वस्वकुण्डान्तर्निपत्य निर्गते ततः ॥९९॥
पूर्वार्द्धाद् हैमवतगा नराद्रिं याति रोहिता ।
अपरार्द्धात्तु सा याति, कालोदनाम वारिधिम् ॥१००॥

इस सरोवर में दक्षिण दिशा में रोहिता नाम की और उत्तर दिशा में हरिकान्ता नाम की एक-एक नदी निकलती है । इन दोनों नदियों के पर्वत के ऊपर छः हजार चार सौ इक्कीस योजन (६४२१) और ४ कला जाने के बाद अपने-अपने कुंड में गिरती है, फिर वहां से निकलकर पूर्वार्ध के हैमवंत क्षेत्र में रही रोहिता नदी मानुषोत्तर पर्वत में जाती है और पश्चिमार्ध के हैमवंत में रही रोहिता नदी कालोदधि समुद्र में जाकर मिलती है । (९८-१००)

हरिकान्ता पुनर्याति, कालोदं हरिवर्षगा ।
पूर्वार्द्धादपरार्द्धात्तु, याति सा मानुषोत्तरम् ॥१०१॥

जबकि हरिकान्ता नदी में विपरीत है । पूर्वार्ध के हरिवर्ष में रही हरिकान्ता नदी कालोद समुद्र में जाकर मिलती है और पश्चिमार्ध हरिवर्ष में रही हरि कान्ता नदी मानुषोत्तर पर्वत में जाती है । (१०१)

नद्योर्हरिसलिलयोर्हरिकान्ताख्ययोरपि ।
तयोर्नारीकान्तयोश्च, तथैव नरकान्तयोः ॥१०२॥

इत्यष्टानामापगानां, विष्कम्भो ह्रद निर्गमे ।
भवेच्छतं योजनानामुण्डत्वं योजन द्वयम् ॥१०३॥

पर्यन्ते च योजनानां सहस्रमिह विस्तृतिः ।
उण्डत्वं च योजनानां, विशतिः परिकीर्तितम् ॥१०४॥

दो हरि सलिला, दो हरिकान्ता, दो नारीकान्ता, और दो नरकान्ता नाम की इन आठों नदियों का विस्तार सरोवर निर्गम स्थाने में एक सौ योजन का होता है । और वहां गहराई दो योजन की होती है । तथा पर्यन्त (समाप्ति) स्थान पर उसकी चौड़ाई एक हजार योजन की है और गहराई बीस योजन की कही है । (१०२-१०४)

विष्कम्भायामतः कुण्डान्येतासां विस्तृतायताः ।
षष्टयाढ्यानि योजनानां, शतानीह नव श्रुते ॥१०५॥

इन आठों नदियों के प्रपात कुंडों की लम्बाई चौड़ाई नौ सौ साठ योजन है। इस तरह जिनेश्वर भगवन्त ने आगम में कहा है । (१०५)

अष्टाविंशं शतं द्वीपाश्चैतासां विस्तृतायताः ।
जिह्विका विस्तृतोद्विद्धाश्चासां मूल प्रवाहवत् ॥१०६॥

इन आठों प्रपात कुंडों में रहा द्वीप एक सौ अट्ठाईस योजन की लम्बाई चौड़ाई वाला होता है और इन आठों नदियों की जिह्विका का विस्तार और गहराई मूल प्रवाह समान ही होती है । (१०६)

शैलात्ततः परं क्षेत्रं, हरिवर्षं विराजते ।
तद्ग्रन्थापातिवैताढयेनान्वितं विस्तृतं मुखे ॥१०७॥

लक्षाणि षड् योजनानां, पच्चषष्टिं सहस्रकान् ।

द्वे शते सप्तसप्तत्याऽधिके द्वादश चांशकान् ॥१०८॥ *युग्मं //*

इस महाहिमवंत पर्वत के बाद हरिवर्ष नाम का क्षेत्र शोभायमान है और उसके मध्य में गन्धापाती नाम का वृत्त वैताढय पर्वत शोभता है । इस हरिवर्ष क्षेत्र का प्रारंभ विस्तार छः लाख, पैंसठ हजार दो सौ सत्तत्तर योजन और बारह अंश (६,६५,२७७+१२/२१२) का होता है । (१०७-१०८)

अष्टौ लक्षाः सहस्राणि, षट् पन्चाशच्छत द्वयम् ।

सप्तोत्तरं योजनानां मध्येऽशाश्चतुरतम् ॥१०६॥

सहस्रैः सप्तचत्वारिंशताढया दशलक्षिकाः ।

षट्त्रिंशं च योजनानां शतमंशशतद्वयम् ॥११०॥

अष्टाढयं विस्तीर्णमन्ते, स्वरूपमपरं पुनः ।

जम्बूद्वीपहरिवर्षवदिहापि विभाव्यताम् ॥१११॥

इसका मध्यम विस्तार आठ लाख छप्पन हजार दो सो सात योजन और आठ अंश (८५६२०७+८/२१२) का है और अन्तिम विस्तार दस लाख सैंतालीस हजार एक सौ सैंतीस योजन और दो सौ आठ अंश (१०४७१३६- २०८/२१२) का होता है। और इसके सिवाय शेष सब उसका स्वरूप जम्बूद्वीप के हरिवर्ष क्षेत्र के अनुसार समझना चाहिए । (१०८-१११)

इतः परश्च निषधः, पर्वतः सर्वतः स्फुरन् ।

हृदेनालङ्कृतोमूर्ध्नि, सदब्जेन तिगिन्छना ॥११२॥

इस हरिवर्ष क्षेत्र के बाद निषध नाम का पर्वत आता है जो कि चारों तरफ से शोभायमान है। इस पर्वत के शिखर प्रदेश पर सुन्दर कमलों वाला तिगिंछि नाम का सरोवर शोभता है । (११२)

सप्तषष्टिं सहस्राणि, साष्टषष्टि शतत्रयम् ।

योजनानां लवान् द्वात्रिंशतं स्यादेष विस्तृतः ॥११३॥

इस निषध पर्वत का विस्तार सड़सठ हजार तीन सौ अड़सठ योजन और बत्तीश अंश प्रमाण (६७३६८ ३२/२१२) क. होता है । (११३)

तिंगिच्छिस्तु योजनानां, सहस्राण्यष्ट विस्तृतः ।
सहस्राणि षोडशैष, भवेदायामतः पुनः ॥११४॥

वह तिंगिछि सरोवर आठ हजार योजन का विस्तार वाला और सोलह हजार योजन की लम्बाई वाला है । (११४)

एतस्याद्धरिसलिला, शीतोदेति निरीयतुः ।
दक्षिणस्यामुदीच्यां च पर्वतोपर्यमुउभे ॥११५॥

एकोनत्रिंशतं गत्वा, सहस्रान् षट्शतानि च ।
योजनानां सचतुरशीतीन् षोडश चांशकान् ॥११६॥

पततः स्व स्व कुण्डान्तर्हरिवर्षान्तराध्वना ।
पूर्वार्द्धाद्धरि सलिला, प्राप्नोति मानुषोत्तरम् ॥११७॥

पश्चिमार्द्ध गता सा तु, कालोदमुपसर्पति ।
सर्वासां दिग्विनिमय, एवं पूर्वापरार्द्धयोः ॥११८॥

इस सरोवर में से दो हरिसलिला और दो शीतोदा नदी निकलती है । उसमें से दो नदियां पर्वत के ऊपर दक्षिण दिशा में और दो उत्तर दिशा में उन्तीस हजार छः सौ चौरासी योजन और सोलह अंश २९६८४- १६/२१२ जाकर अपने-अपने कुंड में गिरती है. । उसमें पूर्वार्ध की हरिसलिला नदी, हरिवर्ष क्षेत्र के मध्य भाग में होकर मानुषोत्तर पर्वत में मिल जाती है, और पश्चिमार्ध की हरि सलिला नदी कालोदधि समुद्र में मिलती है । इस तरह पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध की सारी नदियों की दिशाओं का निश्चय करना । (११५-११८)

पूर्वार्द्ध शीतोदा प्रत्यग्विदेहार्द्धविभेदिनी ।
कालोदमत्यार्द्धस्था तु, प्राप्नोति मानुषोत्तरम् ॥११९॥

पूर्वार्ध के अन्दर रही शीतोदा नदी पश्चिम महाविदेह को दो विभाग में बटवारा करती कालोदधि समुद्र में मिलती है और पश्चिमार्ध रही शीतोदा नदी मानुषोत्तर पर्वत में समा जाती है । (११९)

एताश्चत्स्रो विस्तीर्णा, द्वे शते ह्रदनिर्गमे ।
चत्वार्युण्डा योजनानि, प्रान्ते दशगुणस्ततः ॥१२०॥

ये चारों नदियां, दो हरिसलिला, दो शीतोदा सरोवर में निकलती है, तब दो सो योजन के विस्तार वाली और वहां चार योजन की गहराई वाली होती है और अन्त विभाग में उन नदियों का विस्तार और गहराई दस गुणा होती है । अर्थात् अन्त में नदियों का विस्तार दो हजार योजन का और गहराई चालीस योजन की होती है । (१२०)

विस्तीर्णान्यायतान्यासां कुण्डानि च चतसृणाम् ।
सविंशानि योजनानां, शतान्येकोन विंशतिम् ॥१२१॥

इन चारों नदियों के कुंडों की लम्बाई और चौड़ाई में उन्नीस सौ बीस योजन (१९२०) प्रमाण का है । (१२१)

एतत्कुण्डान्तर्गताश्च, द्वीपाः प्रोक्ता महर्षिभिः ।
षट्पन्चाशे योजनानां, द्वे शते विस्तृतायताः ॥१२२॥

इन नदियों के कुण्ड में अर्न्तगत रहे द्वीपों का आयाम और विस्तार दो सौ छप्पन (२५६) योजन का महर्षियों ने कहा है । (१२२)

सर्वे कुण्ड गता द्वीपाः क्रोशद्वयोच्छ्रिता इति ।
तैर्जम्बूद्वीपगैस्तुल्या, उच्छ्रयेण नगा इव ॥१२३॥

जम्बू द्वीप के कुण्ड गत द्वीपों के समान इन कुण्डों के द्वीप दो कोस ऊंचाई वाले है और ऊंचाई के कारण पर्वत समान लगते हैं। (१२३)

यथेदमर्द्धं व्याख्यातं याम्यं पूर्वापरार्द्धयोः ।
तथा ज्ञेयमुदीच्यार्द्धमपि, मानस्वरूपतः ॥१२४॥

किन्तूदीच्येषुकाराद्रेः परतः पार्श्वयोर्द्वयोः ।
स्यादेकेकमैरवतक्षेत्रं भरतसन्निभम् ॥१२५॥

इस तरह से पुष्कर द्वीप के दक्षिणार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध का वर्णन किया है, उसी तरह के मान स्वरूप से पुष्करार्ध के उत्तरार्ध में भी पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध का मान स्वरूप समान ही समझना । परन्तु उत्तर दिशा के इषुकार पर्वत के बाद दोनों तरफ भरतक्षेत्र के समान ही एक-एक ऐरवत क्षेत्र होता है । (१२४-१२५)

पुण्डरीकाह्रदोपेतस्ततश्च शिखरी गिरिः ।
तस्माद्रक्ता रक्तवती, स्वर्णकूला विनिर्ययुः ॥१२६॥

ऐरवत क्षेत्र के बाद पुंडरीक नाम के सरोवर से युक्त शिखरी नाम का पर्वत आता है । और उस सरोवर में से रक्ता, रक्तवती और स्वर्णकला नाम की तीन नदियां निकलती है । (१२६)

तत्रादिमे द्वे सरितौ, क्षेत्रमैरतं गते ।
जगाम हैरण्यवतंविकटापातिनाऽङ्कितम् ॥१२७॥

उसमें से प्रथम दो रक्ता और रक्तवती नाम की नदियां ऐरवत क्षेत्र में जाती है, और तीसरी स्वर्णकूला नदी हैरण्यवत क्षेत्र में जाती है । (१२७)

ततश्च हैरण्यवतं, विकटापातिनाऽङ्कितम् ।
ततो महापुंडरीकहृदवान् रूक्मिपर्वतः ॥१२८॥

इस शिखरी पर्वत के बाद हैरण्यवत क्षेत्र आता है उसके मध्य में विकटापाती नाम का वृत वैताढय पर्वत रहा है । और इस हैरण्यवत क्षेत्र के बाद महापुंडरीक नामक सरोवर से युक्त रूक्मी पर्वत है । (१२८)

एतद्भवा रूप्यकूला, हैरण्यवतगामिनी ।
रम्यकान्तर्नरकान्ता, प्रयात्येतत्समुद्भवा ॥१२९॥

इस पुंडरीक सरोवर में से निकलकर रूप्यकूला नामक नदी हैरण्यवत क्षेत्र में जाती हैं और इस सरोवर में से निकलकर नरकान्ता सरिता रम्यक क्षेत्र में जाती है । (१२९)

ततोऽर्वाग् रम्यकक्षेत्रं, माल्यवद्वृत्तभूधरम् ।
केसरिहृदवन्नीलवन्नामा पर्वतस्ततः ॥१३०॥

इस रूक्मी पर्वत से आगे रम्यक क्षेत्र आता है उसके मध्य में माल्यवान् वृत्त वैताढय पर्वत आता है । इस रम्यक् क्षेत्र के बाद केसरी सरोवर से युक्त नील वंत नामक पर्वत आता है । (१३०)

प्रवर्त्तते विदेहान्तः, शीतैतन्नगसम्भवा ।
नारीकान्ता रम्यकान्तः, प्रसर्पत्येतदुद्गता ॥१३१॥

इस नीलवंत पर्वत के केसरी सरोवर में से शीता और नारीकान्ता नाम की दो नदियां निकलती है, उसमें से शीता नदी विदेह क्षेत्र में जाती है और नारी कान्ता रम्यक् क्षेत्र मेंजाती है । (१३१)

एषु क्षेत्रषु पूर्वार्द्धान्नद्यो याः पूर्व संमुखाः ।
ता मानुषोत्तरं यान्ति, कालोदं पश्चिमामुखाः ॥१३२॥

पश्चिमार्द्धात्तु कालोदं, प्रयान्ति पूर्व संमुखाः ।
पश्चिमाभिमुखास्तास्तु, प्रयान्ति मानुषोत्तरम् ॥१३३॥

पूर्वार्ध के इन सब क्षेत्रों में भी पूर्वमुखी जितनी नदियां हैं वे सभी नदियां मानुषोत्तर पर्वत की तरफ जाती है और पश्चिम मुखी जितनी नदियां है वे सभी नदियां कालोदधि समुद्र में जाती है । पश्चिमार्ध में इससे विपरीत समझना अर्थात् वहां की पूर्व मुखी सारी सरिताएं कालोदधि समुद्र में मिलती है और पश्चिममुखी सभी नदियां मानुषोत्तर पर्वत में जाकर विलय हो जाती है। (१३२-१३३)

मध्ये क्षेत्रं विदेहाख्यं, नीलवन्निषधा गयोः ।
एकैकं मेरूणोपेतं, भाति पूर्वापरार्द्धयोः ॥१३४॥

पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में नीलवान और निषध पर्वत के मध्य में एक-एक विदेह क्षेत्र आया है और वहां एक-एक मेरूपर्वत शोभता है । (१३४)

अष्टचत्वारिंशदंशान्, लक्षाः षड् विंशतिं मुखे ।
योजनान्येकषष्टिं सहस्रान् साष्टशतं ततम् ॥१३५॥

इस महाविदेह क्षेत्र का मुख्य विस्तार छब्बीस लाख इकसठ हजार एक सौ आठ योजन अड़तालीस अंश (२६, ६१, १०८ +४८/२१२) का है । (१३५)

तथा लक्षाश्चतुस्त्रिंशद्योजनानां समन्विताः ।
चतुर्विंशत्या सहस्रैरष्टाविशं शताष्टकम् ॥१३६॥

षोडशांशांश्च विस्तीर्णं मध्ये तस्य च विस्तृतिः ।
लक्षाण्यथैक चत्वारिंशदष्टाशीतिरेव च ॥१३७॥

सहस्राणि सप्तचत्वारिंशा पन्चशती तथा ।
योजन्नानामंशशतं षण्णवत्या समन्वितम् ॥१३८॥

तथा उसका मध्य विस्तार चौंतीस लाख चौबीस हजार आठ सौ अट्ठाईस योजन और सोलह अंश (३४, २४, ८२८ + १६/२१२) प्रमाण है । और बाह्य विस्तार इकतालीस लाख अठ़ासी हजार पांच सौ सैंतालीस योजन और एक सौ छियानवें अंश (४१, ८८५४७– १६६/२१२) प्रमाण जानना । (१३७-१३८)

सहस्राणि योजनानामेकोनविंशतिस्तथा ।
स चतुर्नवतिः सप्तशती क्रोशस्तथोपरि ॥१३६॥

विष्कम्भः प्रति विजयं प्रत्येकमर्द्धयोर्द्वयोः ।
योजनानां द्वे सहस्रे, वक्षस्काराद्रि विस्तृतिः ॥१४०॥

यहां पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में प्रत्येक विजयों का विस्तार उन्नीस हजार सात सौ चौरानवे (१६७६४) योजन और एक कोस का जानना और प्रत्येक वक्षस्कार पर्वत का विस्तार दो हजार योजन का जानना । (१३६-१४०)

प्रत्येकमन्तर्मद्यश्च, शतानिपन्च विस्तृताः ।
स्वरूपं सर्वमत्रान्यद्धातकी खण्डवद्भवेत् ॥१४१॥

प्रत्येक विजय में रही अन्तर्नदियों का विस्तार पांच सौ योजन का है । और शेष सारा विदेह क्षेत्र का स्वरूप धातकी खंड के समान जानना । (१४१)

अष्टानां वनमुखानां, विस्तृतिः स्याल्लघीयसी ।
एकोनविंशति भवाश्चत्वारो योजनांशकाः ॥१४२॥

इस महाविदेह में रहे आठो वनमुखो का जघन्य विस्तार चार– उन्नीस अंश ४/१६ योजन प्रमाण का है । (१४२)

एकादश सहस्राणि, योजननां शतानि षट् ।
साष्टाशीतिनि चैतेषां, विस्तृतिः स्याद्गरीयसी ॥१४३॥

और इसका उत्कृष्ट विस्तार ग्यारह हजार छः सौ अठासी (११६८८) योजन प्रमाण का है । (१४३)

उपवर्षधरं गुर्वी, लध्वी च सरिदन्तिके ।
तेषां चतुर्णां कालोदबहिभार्गस्पृशां भवेत् ॥१४४॥

चतुर्णां तु नरनगासन्नानां विस्तृति र्गुरुः ।
शीता शीतोदान्तिकेऽन्या, नीलवन्निषधान्तिके ॥१४५॥

कालोदधि समुद्र के बाहर के विभाग का स्पर्श करने वाले चार वन मुखो का उत्कृष्ट विस्तार वर्षधर पर्वत (निषध-नीलवंत) पास में है । जबकि जघन्य विस्तार शीता और शीतोदा नदी के पास में है। और मानुषोत्तर पर्वत के अभ्यन्तर विभाग को स्पर्श करने वाले चार वनमुखों का उत्कृष्ट विस्तार शीता-शीतोदानदी के पास में है तथा निषध-नीलवंत पर्वत के पास में जघन्य विस्तार है । (१४४-१४५)

पूर्वापरं भद्रसालवनायामः समन्वितः ।
मेरू विष्कम्भेण सह, गर्भभागात्मको भवेत् ॥१४६॥

चत्वारिंशत्सहस्त्राणि लक्षाश्चतस्त्र एव च ।
योजनानां नवशती, निर्दिष्टा षोडशोत्तरा ॥१४७॥

मेरू पर्वत के विस्तार के साथ में भद्रशाल वन की पूर्व पश्चिम की लम्बाई चार लाख, चालीस हजार, नौ सौ सोलह (४४०९१६) योजन की होती है। (१४६-१४७)

षोडशानां विजयानां, व्यास संकलणात्वियम् ।
तिस्त्रो लक्षा योजनानां सहस्त्राणि च षोडश ॥१४८॥

सप्त शत्यष्टोत्तराऽथ, वक्षस्कार महीभृताम् ।
अष्टानां तत्संकलना, स्युः सहस्त्राणि षोडश ॥१४९॥

षण्णमन्तर्नदीनां तु, व्याससङ्कलना भवेत् ।
सहस्त्राणि त्रीणि वन मुखयोरूभयोस्त्वियम् ॥१५०॥

षट् सप्तति स्पृक् त्रिशती, सहस्त्रास्त्र्यक्षि संमिताः।
द्वीपव्यासोऽष्ट लक्षाणि, सर्व संकलने भवेत् ॥१५१॥

सोलह विजय के विस्तार का कुल जोड़ करते उसकी संख्या तीन लाख सोलह हजार सात सौ आठ (३१६७०८) योजन की है और आठ वक्षस्कार पर्वत

का विस्तार कुल जोड सोलह हजार (१६०००) योजन की होती है छः अन्तर्नदियों का व्यास जोड़ तीन हजार योजन प्रमाण होता है और वनमुख के विस्तार का कुल मिलाकर तेईस हजार तीन सौ छिहत्तर (२३३७६) योजन होता है और इन सब का विस्तार मिलाने पर पुष्करार्ध का विस्तार आठ लाख (८०००००) योजन का होता है । (१४८-१५१) वह इस प्रकार :-

४४०६१६ - मेरूपर्वत के विस्तार सहित भद्रशाल वन की पूर्व पश्चिम की लम्बाई

३१६७०८ - सोलह विजय का विस्तार,

१६००० - आठ वक्षस्कार का विस्तार,

३००० - छः अन्तर नदियों का विस्तार

२३३७६ - दो वनमुख का विस्तार

८००००० = पुष्करार्ध का विस्तार

अत्रापीष्टान्य विष्कम्भवर्जितद्वीपविस्तृते: ।
स्व स्व सङ्ख्या विभक्तायां, लभ्यतेऽभीष्ट विस्तृतिः ॥१५२॥

यहां भी इष्ट क्षेत्रादि का विस्तार जानना हो तो इष्ट क्षेत्रादि सिवाय के अन्य क्षेत्रादि के विस्तार द्वीप के विस्तार में से निकाल देना और वह शेष रहे द्वीप के विस्तार को अपनी-अपनी संख्या से भाग देने से अष्ट वस्तु का विस्तार प्राप्त होता है इसकी पद्धति धातकी खंड के समान जानना । (१५२)

भावना धातकीखण्डवत् -

महाविदेह विष्कम्भे, यथेष्ट स्थान गोचरे ।
शीता शीतोदान्यतर व्यास हीनेऽर्द्धिते सति ॥१५३॥

विजयांतर्नदी वक्षस्कारान्तिमवनायतिः ।
ज्ञायते सा तत्र तत्र स्थाने भाव्या स्वयं बुधैः ॥१५४॥

धातकी खंड के समान महाविदेह क्षेत्र में किसी भी इच्छित स्थान के विष्कंभ में से शीता अथवा शीतोदा नदी के विष्कंभ को बाद करके उसका आधा

करने के बाद विजय अन्तर नदी वक्षस्कार पर्वत और अन्तिम वन की चौड़ाई उस-उस स्थान से जान सकते हैं । वह प्राज्ञ पुरुषों ने स्वयं विचार कर लेना । (१५३-१५४)

अथ देवकुरुणां यः प्राच्यां सौमनसो गिरिः ।
तथोत्तरकुरुणां यः पूर्वस्यां माल्यवानियौ ॥१५५॥

त्रिचत्वारिंशत्सहस्रान्, लक्षाविंशतिमायतौ ।
एकोनविंशाद्विशती योजनानामुभावपि ॥१५६॥

देवोत्तर कुरुभ्यश्च, प्रतीच्यां यौ व्यवस्थितौ ।
विद्युत्प्रभगिरिर्गन्धमादनश्चायतावुभौ ॥१५७॥

योजनानां षौडशैव, लक्षाः षड् विंशतिं तथा ।
सहस्राणि शतमेकं, संपूर्णं षौडशोत्तरम् ॥१५८॥

इदं मानं पुष्करार्द्ध प्राचीनार्धव्यपेक्षया ।
पश्चिमार्द्धेविपर्यासो, धातकी खंड वत् स तु ॥१५९॥

अब देव कुरु की पूर्व दिशा में सौमनस नाम का गजदंत पर्वत आता है और उत्तर कुरु की पूर्व दिशा में माल्यवान नामक गजदंत पर्वत है । इन दोनों पर्वतों की लम्बाई बीस लाख तैंतालीस हजार दो सौ उन्नीस (२०,४३, २१९) योजन की है, तथा देव कुरु और उत्तर कुरु की पश्चिम दिशा में क्रमशः स्थित जो विद्युत्प्रभ और गन्धमादन नामक दो गजदंत पर्वत है वे लम्बाई में सोलह लाख छब्बीस हजार एक सौ सोलह (१६२६११६) योजन के है । इस तरह पुष्करार्ध दीप के पूर्वाध में रहे पर्वतों का है । पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिमार्ध में इससे विपरीत है और वह विपरीत धातकी खंड के समान जानना । अर्थात पश्चिम के देवकुरु और उत्तरकुरु की पूर्व दिशा में रहे सौमनस और माल्यवान नामक दो गजदंत पर्वत की लम्बाई सोलह लाख छब्बीस हजार एक सौ सोलह योजन हें और पश्चिम दिशा में रहे विद्युत्प्रभ और गन्धमादन नामक पर्वत की लम्बाई बीस लाख तैंतालीस हजार दो सौ उन्नीस योजन की है । (१५५-१५९)

अष्टाप्येते गजदन्ता, नीलवन्निषधान्ति के ।
सहस्रद्वय विस्तीर्णाः सूक्ष्माश्चमन्दरान्तिके ॥१६०॥

ये आठो गजदंत पर्वत नीलवान और निषध पर्वत के समीप में उत्कृष्ट से दो हजार योजन विस्तृत है और मेरूपर्वत के पास में जघन्य से अंगूल के असंख्यातवे भाग जितना विस्तृत है । (१६०)

विदेह मध्य विष्कम्भान्मेरून्यासे विशोधिते ।
शेषेऽर्द्धिते च विष्कम्भः, प्रत्येतव्य कुरुद्वये ॥१६१॥

लक्षाः सप्तदश सप्त, सहस्राणि शतानि च ।
चतुर्दशानि सप्तैव, योजनानां लवाष्टकम् ॥१६२॥

महाविदेह क्षेत्र का जो मध्यभाग का विष्कंभ होता है उसमें से मेरू पर्वत का विस्तार निकाल देना और जो शेष रहे उसका आधा विभाग करने से देवकुरु और उत्तर कुरु का व्यास चौथाई आती है । इस तरह करने से सत्रह लाख सात हजार सात सौ चौदह योजन और आठ अंश अर्थात १७०७७१४- ८/२१२ यह एक कुरुक्षेत्र का विस्तार होता है । (१६१-१६२) वह इस तरह :-

योजन - कला

३४२४८२२८ - १६ महा विदेहक्षेत्र के मध्यविभाग की चौड़ाई

९४०० - ०० मेरू पर्वत के विस्तार को निकाल देना

३४१५४२८ - १६ निकाल देने में शेष रहे योजन ।

१७०७७१४ - ८ आधा करने पर देवकुरु उत्तर कुरु की चौड़ाई

मेरू युक्त भद्रसालायामात्प्रागुपदर्शितात् ।
गजदंतद्वयहीनाच्छेषं जीवा कुरुद्वये ॥१६३॥

लक्षाश्चतस्त्रः षट् त्रिं शत्, सहस्राणि शतानि च ।
नवैव षोडशाढयानि, योजनानीति तन्मिति ॥१६४॥

मेरूपर्वत के साथ में भद्रशालवन की लम्बाई जो पूर्व में श्लोक १४६-१४७ के अन्दर कहा गया है उसमें से दो गजदन्त पर्वतों के विस्तार निकाल देने से जो संख्या आती है वह प्रत्येक कुरु क्षेत्र की जीवा (रस्सी) जानना और वह चार लाख छत्तीस हजार नौ सौ सौलह (४३६९१६) योजन आते है । (१६३-१६४) वह इस तरह :-

४४०६१६ - योजन मेरू पर्वत के साथ में भद्रशाल वन की लम्बाई

४००० - योजन = दो गजदन्त पर्वतों का विस्तार

४३६६१६ - योजन = कुरुक्षेत्र की जीवा

आयाममानयोः प्राच्य प्रतीच्य गजदन्तयोः ।
योगे भवेद्धनुः पृष्टं, कुरुद्वय इदं तु तत् ॥१६५॥

लक्षाः षट्त्रिंशदेकोनसप्ततिश्च सहस्त्रकाः ।
शतत्रयं योजनानां पन्चत्रिंशत्समन्वितम् ॥१६६॥

पूर्व दिशा और पश्चिम के दो गजदन्त पर्वत की लम्बाई एकत्रित करने से जो संख्या आती है वह प्रत्येक कुरुक्षेत्र का धनुष्पृष्ठ होता है और वह छत्तीस लाख उनहत्तर हजार तीन सौ पैंतीस (३६६९३३५) योजन का होता है । (१६५-१६६) वह इस प्रकार :-

१६२६२१६ योजन = पूर्व दिशा के गजदन्त की लम्बाई

२०४३२१९ योजन = पश्चिम दिशा के गजदन्त की लम्बाई

३६६९३३५ योजन = कुरुक्षेत्र का धनुः पृष्ट होता है ।

धातकीखण्डवदिहाप्यग्रतो नीलवद्गिरेः ।
यमकावुदक्कुरूषु, सहस्त्रं विस्तृताय तौ ॥१६७॥

ततः परं ह्रदाः पन्च, स्युर्दक्षिणोत्तरायताः ।
सहस्त्रांश्चतुरो दीर्घा, द्वे सहस्त्रे च विस्तृताः ॥१६८॥

धातकी खंड के समान यहां पर भी नीलवान पर्वत के आगे उत्तर कुरूक्षेत्र में एक हजार योजन की लम्बाई चौड़ाई वाले दो यमक (यमक-जमक) पर्वत है। इन दो यमक पर्वत के बाद पांच सरोवर आते है ये सरोवर दक्षिण उत्तर चार हजार योजन लम्बे और दो हजार योजन चौड़े है । (१६७-१६८)

नीलवतो यमकयोस्ताभ्यामाद्यह्रदस्य च ।
मिथो ह्रदानां क्षेत्रान्तसीम्नश्च पन्चमह्रदात् ॥१६९॥

सप्तप्येतान्यन्तराणि, तुल्यान्यैकैककं पुनः ।
लक्षद्वयं योजनानां चत्वारिंशत्सहस्त्रकाः ॥१७०॥

शतानि नव सैकोनषष्टीनि योजनस्य च ।
सप्तक्षुण्णस्यैक भागस्तत्रोपत्तिरूच्यत ॥१७१॥

दैर्ध्य ह्रदानां पन्चानां, यत्सहस्राणि विंशतिः ।
साहस्त्रयमकर्व्यासयुक्तं तत्कुरु विस्तृतेः ॥१७२॥

विशोध्यतेऽथयच्छेषं, तत्सप्तभिर्विभज्यते ।
सप्तानां व्यवधानानामेवं मानं यथेदितम् ॥१७३॥

नीलवान पर्वत से क्षेत्र के अंत भाग तक में सात अंतरा आते है वह इस प्रकार है - १- नीलवान पर्वत से दो यमक पर्वत पर यमक पर्वत का, २- दो यमक पर्वत से प्रथम सरोवर का, ३- प्रथम सरोवर से दूसरे सरोवर का, ४- दूसरे सरोवर से तीसरे सरोवर का, ५- तीसरे सरोवर से चौथे सरोवर का, ६- चौथे सरोवर से पांचवे सरोवर का और ७- पांचवे सरोवर से क्षेत्र की सीमा का अन्तर है । इन सातों का अन्तर समान माप वाला है । उसमें से प्रत्येक का माप दो लाख चालीस हजार नौ सौ उनसठ तथा एक सप्तमांश (२४०९५९- १/७) योजन होता है । उसका इस प्रकार होता है पांच सरोवर की लम्बाई का कुल जोड बीस हजार योजन होता है और यमक पर्वत का विस्तार एक हजार योजन का है । इस इक्कीस हजार योजन को कुरुक्षेत्र के विस्तार में से निकाल देने पर जो शेष रहे, उसका एक समान सात करने पर पूर्व कहे अनुसार व्यवहार का माप आता है (१६९-१७३) वह इस प्रकार :-

१७०७७१४ योजन कुरूक्षेत्र का विस्तार है ।

२१००० योजन पांच सरोवर और यमक पर्वत का विस्तार निकाल दें

१६८६७१४ शेष रहता है, इसे सात का भाग देना ।

७) १६८६७१४ (२४०९५९

१४

२८

२८

६७

६३

४१

३५

६४

६३

१

इस तरह प्रत्येक का अन्तर = २४०६५६- १/७ आता है ।

उदक्कुरूषु पूर्वर्द्धि, पद्मनामा महातरु: ।
पश्चिमाधे महापद्मस्तौ जम्बू वृक्षसोदरौ ॥१७४॥

पूर्वार्ध के उत्तर कुरुक्षेत्र में पद्म नाम का महावृक्ष है और पश्चिमार्ध के उत्तर कुरु क्षेत्र में महापद्म नाम का महावृक्ष है । और ये दोनों जम्बूवृक्ष के समान है। (१७४)

पद्मनाम्नो भूमिरूह:, पद्मनामा सुर: पति: ।
महापद्मस्य तु स्वामी, पुण्डरीक: सुरोत्तम: ॥१७५॥

पद्मनाम के वृक्ष का अधिष्ठाता देव पद्मनाम का है और महापद्म वृक्ष का अधिष्ठायक पुंडरीक नाम से देव है । (१७५)

स्युर्देवकुरवोऽप्येवं, किंत्वत्र निषधात्परौ ।
विचित्र चित्रावचलौ, तत: पन्च ह्रदा: क्रमात् ॥१७६॥

पूर्वार्द्धे चापरार्द्धे च स्यातां शाल्मलिनाविह ।
जम्बूवृक्षसधर्माणावेतावपि स्वरूपत: ॥१७७॥

उत्तर कुरु के समान देव कुरु मेंभी यह सब व्यवस्था है, परन्तु यहां निषध पर्वत के बाद विचित्र और चित्र नाम के दो पर्वत है और उसके बाद क्रमश: पांच सरोवर है । पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध के देवकुरु में शाल्मली नामक दो महावृक्ष है । उसका सम्पूर्ण स्वरूप जम्बू वृक्ष समान है । (१७६-१७७)

पुष्करार्द्धेऽथ यौ मेरू, स्यातां पूर्व परार्द्धयो: ।
धातकी खण्डस्थ मेरू समानौ तौ तु सर्वथा ॥१७८॥

किं त्वेतयो र्भद्रसालवनयोरायतिर्भवेत् ।
लक्षद्वयं पंचदश, सहस्राणि शतानि तु ॥१७९॥

अष्ट पन्चाशानि सप्त, पूर्व पश्चिमयोर्दिशोः ।
प्रत्येकं दक्षिणोदीच्योः स्याद्व्यासस्त्वयमे तयोः ॥१८०॥

द्विसहस्र्येकपन्चाशा, योजनानां चतुःशती ।
अष्टा शीत्या योजनस्य, भक्तस्यांशाश्च सप्ततिः ॥१८१॥

पुष्करार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में रहे दो मेरुपर्वत सर्व प्रकार से धातकी खंड में रहे मेरूपर्वत के समान ही है, केवल यहां रहे पुष्करार्ध के मेरु पर्वत के पास के भद्रशाल वन की पूर्व पश्चिम की लम्बाई दो लाख पंद्रह हजार सात सौ अट्ठावन (२१५७५८) योजन की है । और दक्षिण उत्तर की चौड़ाई दो हजार चार सौ इकावन योजन और सत्तर अठासी अंश (२४५१- ७०/८८) योजन की है । (१७८-१८१)

उपपत्ति स्त्वत्र प्राग्वत् -

यहां पर उसकी सिद्धि पूर्व के समान समझना । अर्थात भद्रशाल वन की पूर्व पश्चिम की लम्बाई को अठासी (८८) से भाग देने से भद्रशाल वन की दक्षिण-उत्तर की चौड़ाई आती है और दक्षिण व उत्तर की चौड़ाई को ८८ अठासी से गुणा करने से जो संख्या आती है वह भद्रशाल वन की पूर्व-पश्चिम की लम्बाई को जानना ।

शेषा त्वत्र नन्दनादिं वनवक्तव्यताऽखिला ।
धातकीखण्डमेरूभ्यां, पुनरुक्तेतिनोच्यते ॥१८२॥

यहां पुष्करार्ध द्वीप के दो मेरूपर्वत का जो भी नन्दन वन आदि का वर्णन है, वह धातकी खंड के मेरूपर्वत समान ही होने से यहां पुनः नहीं कहा है । (१८२)

जम्बू द्वीपो महामेरूश्चतुर्भिर्मेरूभिः श्रियम् ।
धत्ते तीर्थंकर इव, चतुर्भिः परमेष्ठिभिः ॥१८३॥

अन्य चार परमेष्ठि भगवन्त के साथ में जैसे परमेष्ठी श्री अरिहंत परमात्मा शोभायमान होते है वैसे जम्बूद्वीप में रहे महामेरू पर्वत अन्य चार धातकी खण्ड के दो और पुष्करार्ध द्वीप के दो, कुल चार मेरू पर्वत से शोभायमान होता है । (१८३)

प्रागुक्ताख्येषु पूर्वार्द्धे, विजयेष्वधुना जिनाः ।
चन्द्रबाहुर्भुजङ्गश्चेश्वरोनेमि प्रभोऽपि च ॥१८४॥

पश्चिमार्द्धे तु तेष्वेव, वीर सेनो जिनेश्वरः ।
महाभद्र देवयशोऽजितवीर्या इति क्रमात् ॥१८५॥

पुष्करार्ध क्षेत्र के पूर्वार्ध में १- पुष्कलावती विजय में चन्द्रबाहु स्वामी, २- वत्स विजय में भुजंग स्वामी, ३- नलिनावती विजय में ईश्वरनाथ और ४- वप्र विजय में नेमिप्रभ स्वामी नाम के चार जिनेश्वर भगवान अभी विचरते है और पश्चिमार्ध मेंभी उसी ही नाम वाले विजयों में क्रमशः १- वीर सेन स्वामी, २- महाभद्र स्वामी, ३- देवयशा स्वामी, और ४- अजित वीर्य स्वामी इन नाम वाले चारों जिनेश्वर भगवान वर्तमान काल में विचरते हैं । (१८४-१८५)

द्वीपार्धेऽस्मिन्नगादीनां, संग्रहः सर्वसंख्यया ।
धातकी खण्डवद् ज्ञेयोऽविशेषोन्नोदितः पृथक् ॥१८६॥

यह पुष्करार्ध द्वीप में पर्वतादि की संख्या का कुल जोड़ धातकी खण्ड के समान ही होने से यहां अलग नहीं कहा है । (१८६)

द्विसप्ततिः शशभृतस्तावन्त एव भास्कराः ।
षट् सहस्राणि षट्त्रिंशा त्रिशत्यत्र महाग्रहाः ॥१८७॥

नक्षत्राणां सहस्रे द्वे, प्रज्ञप्ते षोडशोत्तरे ।
प्रमाणमथ ताराणां, पुष्करार्द्धे निरूप्यते ॥१८८॥

अष्टचत्वारिंशदिह, लक्षा द्वाविंशति स्तथा ।
सहस्राणि द्वे शते च, स्युस्ताराः कोटी कोटयः ॥१८९॥

इस पुष्करार्ध द्वीप में चन्द्र बहत्तर (७२) है सूर्य भी बहत्तर है, महाग्रह छः हजार तीन सौ छत्तीस (६३३६) है । नक्षत्र दो हजार सोलह (२०१६) है और तारा अड़तालीस लाख बाईस हजार दो सौ (४८२२२००) कोडा कोडी प्रमाण है

४८२२२०००००००००००००००० तारा है ४८२२२ ऊपर सोलह बिन्दु है । (१८७-१८६)

एव च - लक्षाण्यष्टौ पुष्करार्धं तावान्कालोवदवारिधिः ।
चत्वारि धातकी खण्डो, द्वे लक्षे लवणोदधिः ॥१६०॥

एवं द्वाविंशतिर्लक्षाण्येकतः परतोऽपि च ।
मध्ये जम्बूद्वीप एकं, लक्षमायतविस्तृतः ॥१६१॥

पन्चचत्वारिंशदेवं, लक्षाण्यायतविस्तृतम् ।
नरक्षेत्रं परिक्षेपो, ज्ञेयोऽस्य पुष्कराद्धं वत् ॥१६२॥

आठ लाख योजन का पुष्करार्ध द्वीप, आठ लाख योजन का कालोदधि समुद्र चार लाख योजन का धातकी खण्ड और लाख योजन का लवण समुद्र इस तरह (८+८+४+२ = २२) बाईस लाख योजन का विस्तार एक तरफ से है और दूसरी तरफ से भी इसी ही तरह बाईस लाख योजन विस्तार गिनना । इससे कुल ४४ चवालीस लाख योजम होता है और बीच में एक लाख योजन के विस्तार वाला जम्बू द्वीप है । इस तरह कुल मिलाकर पैंतालीस लाख योजन प्रमाण मनुष्य क्षेत्र होता है । इस मनुष्य क्षेत्र की परिधि पुष्करार्ध क्षेत्र की परिधि के समान जानना । (१६०-१६२)

एतावतो नरक्षेत्रात्, परतो न भवेन्नृणाम् ।
गर्भाधानं जन्म मृत्यू समूर्छिमनरोद्भवः ॥१६३॥

इस पैंतालीस लाख योजन के मनुष्य क्षेत्र के बाहर मनुष्यों का गर्भाधान, जन्म, मृत्यु और समुर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति नहीं होती है । (१६३)

आसन्न प्रसवां कश्चित्स्त्रियं नयति चेत्सुरः ।
नरक्षेत्रात्परं नासौ, प्रसूते तत्र कर्हिचित् ॥१६४॥

यदि नजदीक में ही प्रसव समय वाली किसी स्त्री को कोई देव, मनुष्य क्षेत्र से बाहर ले जाय, फिर भी वहां मनुष्य क्षेत्र से बाहर उसे कभी भी प्रसव नहीं होता है । (१६४)

यदि कण्ठ गत प्राणो, मनुष्य क्षेत्रतः परम ।
मनुष्यो नीयते नासौ, म्रियते तत्र कर्हिचित् ॥१९५॥

-मृत्यु शय्या पर पड़े हुए किसी मनुष्य को कोई देव, मनुष्य क्षेत्र से बाहर ले जाय फिर भी वहा उसकी मृत्यु नहीं होती है । (१९५)

अथावश्यंभाविजन्मक्षीणायुष्कौ च तौ यदि ।
तदा सुरस्य तन्नेतुर्भवदेद्वाऽन्यस्य कस्यचित् ॥१९६॥

मनस्तथैव येनैनामासन्न प्रसवां स्त्रियम् ।
तं वा कण्ठ गत प्राणं, नरक्षेत्रे पुनर्न येत् ॥१९७॥ *युग्मं* ॥

अब यदि इन जीवों का जन्म अथवा मृत्यु का समय आया हो तो वह ले जाने वाला देव अथवा तो अन्य किसी देव को इस प्रकार का विचार उद्भव-उत्पत्ति होती है और इससे ही नजदीक में प्रसव वाली स्त्री को और कंठगत प्राण वाले मनुष्य को मनुष्य क्षेत्र के अन्दर अवश्य ले जाता है । (१९६-१९७)

एवं नातः परमहर्निशादि समय स्थितिः ।
न बादराग्निर्न नदी, न विद्युद्गर्जिनीरदाः ॥१९८॥

नार्हदाद्या न निधयो, नायने नैव चाकराः ।
नेन्दुवृद्धिक्षयौ नोपरागोऽर्केन्द्वोर्न वा गतिः ॥१९९॥

इस मनुष्य क्षेत्र के बाहर क्या-क्या नहीं है उसे कहते है :- इस मनुष्य क्षेत्र के बाहर दिन रात आदि समय की व्यवस्था नहीं है, बादर अग्निकाय नहीं है नदियां, बिजली, गर्जना, बादल, अरिहंत भगवान, चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव आदि नहीं है, निधि, (खजाना) उत्तरायण अथवा दक्षिणायन, खान, चन्द्र का क्षय या वृद्धि, चन्द्र सूर्य आदि ग्रहण एवम् चन्द्र सूर्य आदि गति-उदय अस्त आदि कुछ भी नहीं होता है । (१९८-१९९)

तथाहुः- अरिहंत समय वायर अग्गी विज्जू बलहग्ग थाणआ ।
आगर नइ निहि उव राग निग्गमे वुड्ढि अयणं च ॥२००॥"

शास्त्र में भी कहा है कि - "मनुष्य क्षेत्र के बाहर अरिहंतादि, समय की व्यवस्था, बादर अग्नि, काय, बादल, बिजली, गर्जना, मेघ खान नदियां, निधान, सूर्य

चन्द्र का ग्रहण से युक्त होना अथवा उसकी वृद्धि क्षय होना और काल आदि कुछ भी नहीं होता है । (२००)"

"गतत्सर्वमर्थतो जीवाभिगम सूत्रे चतुर्थ प्रतिपतौ ।"

'ये सारी बात अर्थ से श्री जीवाभिगम सूत्र की चौथी प्रतिपत्ति में कही है ।'

क्षेत्रेषु पन्चचत्वारिंशतीह भरतादिषु ।
अन्तर्द्वीपेषु षट्पन्चा शत्येवसंभवेन्नृणाम् ॥२०१॥

बाहुल्याज्जन्म मृत्युश्च, वार्द्धिवर्षधरादिषु ।
शेषेषु तु नृणां जन्म, प्रायेण नोपपद्यते ॥२०२॥ *युग्मं //*

मृत्युस्तु संहरणतो, विद्यालब्धि बलेन वा ।
गतानां तत्र तत्रायुः क्षयात्संभवति क्वचित् ॥२०३॥

भरत आदि पैंतालीस क्षेत्र - पंद्रह कर्म भूमि और तीस अकर्म भूमि और छप्पन अन्तर द्वीप में ही अधिकतः मनुष्य जन्म लेते है अथवा मृत्यु होती है। शेष स्थानो में समुद्र और वर्षधर पर्वत (अढाई) द्वीप में रहे दो समुद्र और अढाई द्वीप में रहे सारे पर्वतों में मनुष्यों का जन्म प्रायः नहीं होता है । जब कि वहां मृत्यु संभव हो सकता है । क्योंकि वहां समुद्र और पर्वतों में देव द्वारा अपहरण होने से अथवा तो विद्या या लब्धि के बल से मनुष्य गया हो, और यदि वहां आयुष्य का क्षय हो गया हो तो वहां मृत्यु का संभव है । परन्तु ऐसी बातें कभी बनती है । (२०१-२०३)

अथैतस्मिन्नरक्षेते, वर्षक्षेत्रादिसंग्रहः ।
क्रियते सुख बोधाय, तदर्थोऽयं ह्यपक्रमः ॥२०४॥

अध्यर्द्धौ द्वाविह द्वीपौ, द्वावेष च पयोनिधी ।
भरतान्यैरवतानि, विदेहाः पन्च पन्च च ॥२०५॥

एवं पन्च दश कर्म भूमयोऽत्र प्रकीर्तिताः ।
देवोत्तराख्याः कुरवो, हैरण्यवत रम्यके ॥२०६॥

हैमवतं हरिवर्ष, पन्च पन्च पृथक् पृथक् ।
सर्वाण्यपि त्रिंशदेवं भवंत्य कर्मभूमयः ॥२०७॥

अन्तर्द्वीपांश्च षट् पन्चश देवं युग्मि भूमयः ।
षड्शीतिर्नर स्थानान्येवमेकोत्तरं शतम् ॥२०८॥

मनुष्य क्षेत्र का संक्षेप में वर्णन करते हैं :- अब सुख पूर्वक बोध हो इसके लिए इस मनुष्य क्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीप समुद्र है दो समुद्र है पांच भरत पांच ऐरवत क्षेत्र और पांच महाविदेह क्षेत्र है । इस तरह पंद्रह कर्म भूमिया होती है । पांच देवकुरु, पांच उत्तरकुरु, पांच हैरण्यवत क्षेत्र, पांच सम्यकक्षेत्र पांच हैमवत क्षेत्र और पांच हरिवर्ष क्षेत्र, इस तरह ६×५ = ३० अकर्म भूमिया होती है एवम् छप्पन अन्तर द्वीप होते हैं । इस प्रकार कुल ३० अकर्म भूमि और ५६ अन्तर द्वीप मिलाकर छियासी युगलिक की भूमि है और सब मिलाकर कुल मनुष्य के स्थान (१५+३०+५६ = १०१) एक सौ एक होता है । (२०४-२०८)

तथाऽत्र मेरवः पन्चविंशतिर्गजदन्तकाः ।
वक्षस्काराद्रयोऽशीतिः, सहस्त्रं कान्चनाच लाः ॥२०९॥

विचित्राः पन्च वित्राश्च, पन्चाथ यमका चलाः ।
दश त्रिशद्वर्षधरा, इषुकार चतुष्टयम् ॥२१०॥

विंशतिर्वृवैताढयाः, शतं दीर्घाः ससप्ततिः ।
एकोनपन्चाशान्यद्रि शतान्येवं त्रयोदश ॥२११॥

इस मनुष्य क्षेत्र में पांच मेरू पर्वत है, बीस गजदन्त पर्वत है अस्सी वक्ष स्कार पर्वत है, एक हजार कांचन गिरि पर्वत है, पांच विचित्र नाम के पर्वत है, पांच चित्र नाम के पर्वत है, दस यमक नाम के पर्वत हैं, तीस वर्षधर पर्वत हैं, चार इषुकार पर्वत हैं, बीस वृत्त वैताढय पर्वत हैं और एक सौ सत्तर दीर्घ वैताढय पर्वत हैं । इस तरह कुल मिलाकर ५+२०+८०+१०००+५+५+१०+३०+४+२०+१७० = १३४९ तेरह सौ उनचास पर्वत मनुष्य क्षेत्र के अन्दर है । (२०९-२११)

अष्टै दाढाः पार्वताः स्युः, कूटास्त्विह चतुर्विधाः ।
वैताढय शेषाद्रि सहस्रांक भूकूट भेदतः ॥२१२॥

तत्र च - सार्द्ध सहस्त्रं वैताढय कूटानां त्रिंशताऽधिकम् ।
शेषाद्रिकूटानामष्टशती षड्धिका भवेत् ॥२१३॥

सहस्राङ्काः पन्चदशेत्येवं कूटानि भूभृताम् ।
सर्वाग्रेणैक पन्चाशे, द्वे सहस्रे शतत्रयम् ॥२१४॥

भद्रसाल वने मेरोर्यानि दिक्षु विदिक्षु च ।
तानि दिग्गज कूटानि, चत्वारिंशद्भवेदिह ॥२१५॥

द्रूणां दशानामष्टाष्ट, यानि दिक्षु विदिक्षि च ।
कूटानि तान्यशीतिः स्युर्नृक्षेत्रे सर्व संख्यया ॥२१६॥

शतं वृषभ कूटानां, सप्तत्याऽधिकमाहितम् ।
भवन्त्येवं भूमि कूटा, नवत्याढयं शतद्वयम् ॥२१७॥

महावृक्षा दश तत्र, पन्च शाल्मलिसंज्ञकाः ।
शेषा जम्बूर्धातकी च पद्मश्चान्त्यौ महापरौ ॥११८॥

इस मनुष्य क्षेत्र के अन्दर पर्वत में से निकलने वाली आठ दाढायें हैं हिमवंत पर्वत में से चार निकलती है और शिखरी पर्वत में से चार निकलती है । कूट चार प्रकार के है । १- वैताढय पर्वत के, २- शेष पर्वतों के, ३- एक हजार योजन के (सहस्र कूट) ४- भूमि सम्बन्धी - पृथ्वी पर रहे कूट उसमें वैताढय पर्वत के कूट पंद्रह सौ तीस (१७०×९ = १५३०) है, शेष पर्वत के कूट आठ सौ छः (८०६) है और एक हजार योजन के ऊंचाई वाले कूट पंद्रह हैं । इस तरह सब मिलाकर पर्वत के कूट दो हजार तीन सौ इकावन (१५३०+८०६+१५ = २३५१) होते है जबकि भूमि सम्बन्धी कूट कुल दो सौ नब्बे होते हैं । वह इस प्रकार भद्रशाल वन में मेरूपर्वत की दिशा और विदिशा में रहे दिग्गजकूट का कुल संख्या चालीस ८×५ = ४० है । मनुष्य लोक में रहे दस महावृक्षों की दिशा विदिशा में आठ-आठ कूट होते है, वे सब मिलाकर अस्सी ८×१० = ८० होते हैं। मनुष्य क्षेत्र में सब मिलाकर एक सौ सत्तर वृषभ कूट होते हैं । इस प्रकार भूमि सम्बन्धी पृथ्वी के ऊपर कूट कुल दो सौ नब्बे ४०+८०+१७० = २९० होते हैं। जो दस महावृक्ष है उसमें शाल्मली नाम के पांच वृक्ष है और शेष पांच जम्बू वृक्ष-धात की वृक्ष, महाधातकी वृक्ष, पद्म वृक्ष और महापद्म वृक्ष ये पांच एक-एक वृक्ष है । इस तरह कुल महावृक्ष है । (२१२-२१८)

महाह्रदास्त्रिंशदिह, पन्चाशच्च कुरु ह्रदाः ।
भवत्यशीतिरित्येवं, ह्रदानां सर्व संख्यया ॥२१६॥

इस मनुष्य क्षेत्र में तीस महासरोवर है और पचास कुरुक्षेत्र के सरोवर है । इस प्रकार कुल सारे मिलाकर अस्सी सरोवर है । (२१६)

भरतादि क्षेत्र महानदी कुण्डानि सप्ततिः ।
विदेहविजयस्थानि, तानि विंशं शतत्रयम् ॥२२०॥

षष्टिरन्तर्नदीनां स्युरित्येवं सर्व संख्यया ।
चतुः शतीह कुण्डानां, पन्चाशदधिका भवेत् ॥२२१॥

भरतादि की महानदियों के सत्तर कुंड है उसमें गंगा के पांच; सिन्धु के पांच, रक्ता के पांच रक्तवती के पांच, रोहिता के पांच, रोहितांशा के पांच, स्वर्ण कूला के पांच, रूप्यकूला के पांच, हरिकांता के पांच, हरिसलिला के पांच, नरकान्ता के पांच, नारीकान्ता के पांच, शीता के पांच शीतोदा के पांच, = १४×५ = ७० महाविदेह क्षेत्र के विजयों की नदियां के तीन सौ बीस (१६०×२ = ३२०) कुंड है और विजय को आन्तर करने वाली साठ अन्तर नदियों के साठ कुंड है । इस तरह सब मिलाकर कुल चार सौ पचास (७०+३२०+६० =४५०) कुंड है । (२२०-२२१)

भरतादि क्षेत्रगता, महानद्योऽत्र सप्ततिः ।
विदेहविजयस्थानां, तासां विशं शतत्रयम् ॥२२२॥

अन्तर्नद्यः षष्टिरिति परिच्छदजुषामिह ।
पन्चाशा मुख्य सरितां, सर्वाग्रेण चतुःशती ॥२२३॥

सा चैवं- गंगा सिन्धुरक्तवती रक्ताः प्रत्येक मीरिता ।
पन्चशीतिस्तथा शीता शीतोदारूप्य कूलिकाः ॥२२४॥

स्वर्ण कूला नरकान्ता नारीकान्ता च रोहिता ।
रोहितांशा हरिकान्ता, हर्यादि सलिलापि च ॥२२५॥

द्वादशन्तरनद्यश्च पन्चपन्चाखिला इमाः ।
परिच्छदापगास्त्वासां, ज्ञेयाः पूर्वोक्तया दिशा ॥२२६॥

एवंद्वि सप्ततिर्लक्षा, अशीतिश्चसहस्रका: ।
भवंति मनुज क्षेत्रे, नद्योऽन्यस्मिन् मते पुन: ॥२२७॥
एकोननवतिर्लक्षा: सहस्रा षष्टिरेव च ।
एतच्चान्तरापगानां, पृथक् तन्त्र विवक्षया ॥२२८॥

भरतादि क्षेत्र में रही महानदियां सत्तर है । महाविदेह क्षेत्र के विजय में नदियां तीन सौ बीस है और आन्तर नदियां साठ है। इस तरह विभाग करते सर्व मिलाकर चार सौ पचास मुख्य नदियां है । वह इस तरह ८५ गंगा नदी, ८५ सिंधुनदी ८५ रक्तानदी और ८५ रक्तावती नदियां है । तथा पांच शीता नदी, पांच शीतोदा नदी पांच रूप्कूला नदी, पांच स्वर्णकूला नदी, पांच नरकान्ता नदी, पांच नारीकान्ता नदी, पांच रोहिता नदी, पांच रोहितांशा नदी, पांच हरिकान्ता नदी, पांच हरिसलिला नदी और बाह्य अन्तर नदियां भी पांच-पांच है (१२×५ = ६० अन्तर नदी है) इस प्रकार कुल चार सौ पचास मुख्य नदियां होती है और इन नदियों के परिवार की जितनी नदियां पूर्व में कह गये है उसके अनुसार जानना । इस तरह से इस मनुष्य क्षेत्र में मुख्य नदियां और उस परिवार की नदियां कुल संख्या एक मतानुसार बहत्तर लाख, अस्सी हजार (७२८००००) होती है, जबकि भिन्न शास्त्र की विवक्षा से तो एक मतानुसार से आन्तर नदियों के परिवार की नदियों की संख्या नवासी लाख साठ हजार (८९६००००) होती है । (२२२-२२८)

"इदं च नदी सर्वाग्रं जम्बू द्वीपगतमहानदीतुल्य परिवाराणां धातकी खण्ड पुष्करार्द्धगत महानदीनां संभावन योक्तं, धातकी खण्ड पुष्करार्द्धयोर्महा नदीनां परिवारे जम्बू द्वीपवर्त्ति महानदी परिवारापेक्षया द्वै गुण्यादि विशेषस्तु बृहत्क्षेत्र विचारादिषु क्वापि न दृष्ट इति नोक्त इति ज्ञेयं ॥"

"जम्बू द्वीप में महानदियों के परिवार के समान ही धातकी खंड और पुष्करार्ध की महानदियों का परिवार होगा ? इस तरह संभावना कल्पना (अनुमान) करके नदियों की यह कुल संख्या कही है । क्योंकि धातकी खंड और पुष्करार्ध क्षेत्र में रही महानदियों का परिवार जम्बूद्वीप में रही महानदियों के परिवार से दो गुणा है ऐसा बृहत्क्षेत्र विचार आदि किसी भी ग्रन्थ साहित्य में नही कहा है, इससे यह नहीं कहा ऐसा जानना ।"

उत्कर्षतो जिना अत्र, स्युः सप्तत्यधिकं शतम् ।
ते द्वितीयार्हतः काले, विहरन्तोऽभवन्निह ॥२२९॥

इस मनुष्य क्षेत्र में उत्कृष्ट एक सौ सत्तर तीर्थंकर परमात्मा होते हैं, वह इस अव सर्पिणी काल में दूसरे तीर्थंकर परमात्मा श्री अजित नाथ भगवान के समय में एक सौ और सत्तर भगवान विचरते थे । (२२९)

केवल ज्ञानि नामेवमुत्कर्षान्नव कोटयः ।
नव कोटि सहस्राणि, तथोत्कर्षेण साधवः ॥२३०॥

उसी तरह केवल ज्ञानी की उत्कृष्ट से नौ करोड़ (९००,००,०००) होते है और साधु भगवन्त श्री उत्कृष्ट से नौ हजार करोड़ (९०००,०००००००) होती है। (२३०)

यह उत्कृष्ट रूप में कहा है । अब जघन्य रूप में कहते है

जघन्य तो विंशतिः स्युर्भगवन्तोऽधुनापि ते ।
विदेहेष्वेब चत्वारश्चत्वारो विहरन्ति हि, ॥२३१॥

जघन्य रूप में बीस तीर्थंकर परमात्मा विचरते है और इस तरह वर्तमान में भी पांच महाविदेह में चार-चार तीर्थंकर परमात्मा विचरते है । वह इस तरह जम्बूद्वीप में चार धातकी खण्ड में आठ पुष्करार्ध में आठ कुल बीस कहे है । (२३१)

ते चामी- सीमंधरं१ स्तौमि युगंधरं२च, बाहुं३ सुबाहुं४ च सुजात देवम ५।
स्वयंप्रभं श्री वृषभाननाख्य ७मनन्तवीर्य ८च विशाल नाथम ९॥२३२॥

(उपजाति)

सूरप्रभं१० वज्रधरं११ च चन्द्राननं१२ नमामि प्रभु भद्रबाहु १३ ।
भुजङ्ग१४ नेमिप्रभ १५ तीर्थ नाथावथेश्वरं १६ श्री जिनवीर सेनम्१७ ॥२३३॥

(उपजाति)

स्तवीमि च महाभद्रं १८ श्री देवयशसं १९ तथा ।
अर्हन्तमजित वीर्यं२० वंदे विंशतिमर्हताम् ॥२३४॥

बीस विहरमान श्री तीर्थंकर परमात्मा के नाम इस तरह है :- १- श्री सीमंधर स्वामी, २- श्री युगमंधर स्वामी, ३- श्री बाहु स्वामी, ४- श्री सुबाहु स्वामी, ५- श्री सुजात स्वामी, ६- श्री स्वयं प्रभस्वामी, ७- वृषभानन स्वामी, ८- श्री अनन्त वीर्य स्वामी, ९- श्री विशाल नाथ, १०- श्री सूरप्रभ स्वामी, ११- श्री वज्रधर स्वामी, १२- श्री चन्द्रानन स्वामी, १३- श्री भद्रबाहु स्वामी, १४- श्री भुजंग स्वामी, १५- नेमि प्रभ स्वामी, १६- श्रीतीर्थ नाथ स्वामी अथवा श्री ईश्वर नाथ स्वामी, १७- श्री वीरसेन स्वामी, १८- श्री महाभद्र स्वामी, १९- देवयश स्वामी और २०- श्री अजित वीर्य स्वामी । इन बीस श्री तीर्थंकर परमात्मा को मैं स्तुति करता हूँ नमन करता हूँ और वंदन करता हूँ । (२३२-२३४)

पन्चस्वपि विदेहेशु, पूर्वापरार्द्धयोः किल ।
एकैकस्य विहरतः संभवाज्जगदीशि तुः ॥२३५॥

दशैव विहरन्तः स्युर्जघन्येन जिनेश्वराः ।
इत्यूचुः सूरयः केचित् तत्वं वेत्ति त्रिकालवित् ॥२३६॥

यहां कई आचार्य भगवन्त कहते हैं कि - पांच महाविदेह में पूर्वार्ध और अपरार्ध (पश्चिम) में विचरने वाले एक-एक तीर्थंकर परमात्माओं की अपेक्षा से जघन्य दस तीर्थंकर परमात्मा विचरते हैं। इस तरह वे संगति करते हैं । इस विषय में तत्वं-सत्यार्थ तो त्रिकाल ज्ञानी केवली भगवन्त ही जान सकते हैं। (२३५-२३६)

तथोक्तं प्रवचन सारोद्धार सूत्रे - "सत्तरिसय मुक्कोसं जहन्नवीसा य दस य विहरंति' इति ॥'

प्रवचन सारोद्वार सूत्र में भी इसी तरह बात करते कहा है कि - 'उत्कृष्ट रूप में एक सौ सत्तर श्री तीर्थंकर परमात्मा विचरते रहते हैं और जघन्य से बीस अथवा दस श्री अरिहंत परमात्मा विचरते रहते है ।'

उक्ताज्जघन्यादूनास्तु, विहरन्तो भवति न ।
ततोऽन्येपि यथा स्थानं, स्युर्गार्हस्थ्याद्यवस्थया ॥२३७॥

विहरमान भगवान की जो जघन्य संख्या बीस अथवा दस कही है, इससे कम संख्या में भगवान विहरमान हो ऐसा बन नहीं सकता । अतः उसके बिना अन्य श्री तीर्थंकर परमात्मा यथायोग स्थान में गृहस्थादि अवस्था में तो हो सकते हैं। केवल विहरमान अवस्था में जघन्य से २० या १० होते है । (२३७)

कोटिद्वयं केवलि नो, द्वे च कोटि सहस्त्रके ।
साधवः स्युर्जघन्येन, न्यूना इतो भवन्ति न ॥२३८॥

केवल ज्ञानी जघन्य से दो करोड मुनि होते है और साधु भगवन्त दो हजार करोड होते है । इससे कम तो होते ही नहीं है । (२३८)

यद्येकः केवली तेभ्यः, सिद्ध येत्साधुर्दिवं व्रजेत् ।
तदाऽवश्यं भवेदन्यः, केवली प्रव्रजेत्परः ॥२३९॥

इन दो करोड केवल ज्ञानी में से किसी समय एक केवल ज्ञानी भगवन्त मोक्ष में जाय तो उसके स्थान पर अन्य किसी भी एक को तो केवल ज्ञान उत्पन्न होता ही है और किसी एक की दीक्षा होती है । तथा दो हजार करोड साधु में से कोई एक साधु देवलोक में जाता है अथवा केवल ज्ञानी बनता है तो उसके स्थान पर किसी एक की नयी दीक्षा अवश्यमेव होती है, अन्यथा केवली और साधुओं की जघन्य संख्या में भी न्यूनता की आपत्ति आती है । (२३९)

चक्रिशार्ङ्गि शीरिणां च, शतं पन्चाशताधिकम् ।
उत्कर्षतो जघन्येन, ते भवन्तीह विंशतिः ॥२४०॥

चक्रवर्ती, वासुदेव और बलदेव उत्कृष्ट एक सौ पचास होते हैं और जघन्य से वे केवल बीस होते हैं। (२४०)

तथोक्तं - प्रवचन सारोद्धारे -

"उक्कोसेणं चक्की सयं दिवड्ढं च कम्भूमीसुं।
वीसं जहंन्नभावे केसव संखावि एमेव ॥२४१॥"

तथा यह बात प्रवचन सारोद्धार में भी कहा है कि - कर्मभूमियों में उत्कृष्ट रूप में चक्रवर्ती एक सौ पचास होते हैं और जघन्य से बीस होते हैं । वासुदेव (बलदेव) की भी संख्या इसी के अनुसार ही कहा है । (२४१)

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्त्या अप्यय मेवाभि प्रायः, श्री समवायांगे तु "धायई संडे णं दीवे अडसट्ठिं चक्कि विजया य अडसट्ठिं रायहाणी ओ, तत्थ णं उक्को सपए अडसट्ठिं अरहंता समुप्पज्जिंसुवा ३, एवं चक्कवट्टी समुप्पज्जिंसु वा ३, एवं बलदेवा वासुदेवा समुप्पज्जिंसु वा ३, पुक्खरवरदीवड्ढेणं अडसट्ठिं विजया, एवं अरिहंता समुप्प ज्जिंसुवा जाव वासुदेवा," इत्युक्तमिति ज्ञेयं ॥

"जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति का भी यही अभिप्राय है। परन्तु श्री समवायांग सूत्र में तो कहा है कि - "धात की खंड द्वीप में अड़सठ चक्रवर्तियों के विजय होते है और उनकी राजधानी भी अड़सठ होती है। वहां उत्कृष्ट रूप में अड़सठ अरिहंत परमात्मा होते है, इसी तरह चक्रवर्ती, बलदेव, और वासुदेव भी उत्कृष्ट रूप में अड़सठ होते हैं, होंगे और हैं। पुष्करार्ध द्वीपार्ध में भी इसी तरह अड़सठ विजय में तीर्थंकर, चक्रवर्ती वासुदेव बलदेव होते हैं, होंगे और हैं। इस प्रकार से कहा है उसे समझना।"

स्यान्निधीनां पन्चदश शती त्रिंशाऽत्र सत्तया ।
जघन्यतश्चक्रि भोग्यं, तेषां शतमशीति युक् ॥२४२॥

इसी मनुष्य क्षेत्र में उत्कृष्ट रूप से निधियों की सत्ता-विद्यमानता पंद्रह सौ तीस (१७०×६ = १५३०) की होती है उसमें जघन्य से चक्रवर्ती को भोग्य निधियां एक सौ अस्सी (२०×६ = १८०) होती है। (२४२)

उत्कर्षतश्चक्रि भोग्य निधीनां पुनरेकदा ।
पन्चाशताधिकानीह, स्युः शतानि त्रयोदश ॥२४३॥

एक समय में चक्रवर्ती को भोग्य निधियां उत्कृष्ट रूप में तेरह सौ पचास (१५०×६ = १३५०) होती है। (२४३)

उत्कर्षतोऽत्र रत्नानां स्युः शतान्येक विंशतिः ।
जघन्यतः पुरस्तेषां द्वि शत्यशीति संयुता ॥२४४॥

पन्चक्षैकाक्ष रत्नानां चत्वारिंशं शतं भवेत् ।
जघन्ये नोत्कर्षतश्च सपन्चाशं सहस्त्रकम् ॥२४५॥

चक्रवर्ती के जो चौदह रत्न होते है वे उत्कृष्ट रूप में इक्कीस सौ (१५०×१४

= २१००) होते हैं और जघन्य से दो सौ अस्सी रत्न (२०×१४ = २८०) होते हैं। इसमें पंचेन्द्रिय रत्न और एकेन्द्रिय रत्न इस तरह दो विभाग करे तो जघन्य से एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रत्न की (प्रत्येक की) संख्या एक सौ चालीस (२०×७ = १४०) की होती है और उत्कर्ष से उस प्रत्येक की संख्या एक हजार पचास (१५०×७ = १०५०) की होती है । (२४४-२४५)

शतं सप्तत्या समेतं, चक्रिजेतव्य भूमयः ।
भरताद्या दशक्षेत्री, विजयाः षष्टियुक् शतम् ॥२४६॥

चक्रवर्तियों के जीतने योग्य षट्खंडमय भूमियों का एक सौ सत्तर हैं। उसमें भरत आदि दसक्षेत्र है (पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्र) और एक सौ साठ विजय है। पांच विजय और प्रत्येक की ३२ विजय (३२×५ = १६०) इस तरह सर्व मिलाकर कुल एक सौ सत्तर चक्रवर्ती के जीतने योग्य भूमि होती है । (२४६)

आभियोगिक विद्याभृच्छ्रेणीनां सर्व संख्यया ।
सा शीतीनि षट् शतानि, विद्याभृतां पुराणि च ॥२४७॥

अष्टादश सहस्राणि, शतानि सप्त चोपरि ।
अयोध्यादि राजधान्यः शतं सप्तति संयुतम् ॥२४८॥

इस मनुष्य क्षेत्र में आभियोगिक देवों की और विद्याधरों की श्रेणियों की संख्या छः सौ अस्सी (१७०×४ = ६८०) होते हैं। (एक वैताढय पर्वत पर दो अभियोगिक देवों की और दो विद्याधरों की इस तरह चार-चार श्रेणियां होती है।) तथा विधाधरों के नगरों की सर्व संख्या अठारह हजार सात सौ (१७०×११० × १८७००) है। एक-एक वैताढय पर्वत पर एक सौ दस नगर है तथा अयोध्यादि राजधानियां एक सौ सत्तर है। (२४७-२४८)

द्वे पंक्ति इह चन्द्रणां, द्वे च पंक्ती विवस्वताम् ।
एकैकान्तरिता एवं, चतस्त्र इह पंक्तयः ॥२४९॥

इस मनुष्य क्षेत्र में एक-एक से अन्तरित चन्द्र की दो और सूर्य की दो-इस तरह कुल चार पंक्तियां होती है । (२४९)

प्रति पंक्ति च षट् षष्टि संख्याकाः शशि भास्कराः।

सूची श्रेण्या स्थिता जम्बू द्वीपेन्दुरविभिः समम् ॥२५०॥

इन प्रत्येक पंक्तियों में छियासठ चन्द्र और सूर्य रहे हैं और ये चन्द्र, सूर्य जम्बू द्वीप में रहे चन्द्र, सूर्य की समश्रेणि में रहे हैं। (२५०)

एवं पंक्तयश्चतस्त्रोऽपि, पर्यटन्ति दीवानिशम्।

मृगयन्त्य इवाशेषवच्चकं कालतस्करम् ॥२५१॥

इस तरह से चन्द्र और सूर्य की ये चारों पंक्तियां रात दिन लगातार पर्यटन कर रही हैं। वह मानो सब को ठगने वाले काल रूपी चोर को खोज करता न हो? इस तरह दिखता है। (२५१)

द्वात्रिंशं शतमित्येवं, नरक्षेत्रे हिमांशवः।

द्वात्रिंशं शतमर्काश्च, शोभंतेऽदभ्रतेजसः ॥२५२॥

इस प्रकार इस मनुष्य क्षेत्र में एक सौ बत्तीस तेजस्वी चन्द्र और एक सौ बत्तीस सूर्य है। (२५२)

नक्षत्राणां पंक्तयश्च षट् पन्चाशद्भवेदिह।

प्रति पंक्ति च षट् षष्टिः षट् षष्टिः स्युरूडून्यपि ॥२५३॥

इस मनुष्य क्षेत्र में नक्षत्रों की छप्पन पंक्तियां है और प्रत्येक पंक्ति में छियासठ-छियासठ नक्षत्र है। जैसे कि अभिर्जित नक्षत्र की एक पंक्ति और उस एक पंक्ति में छियासठ अभिजित नक्षत्र, वैसे अभिजित सदृश छप्पन (२८×२=५६) नक्षत्र उसकी छप्पन पंक्ति और एक-एक पंक्तियों में छियासठ-छियासठ नक्षत्र आते हैं। (२५३)

जम्बू द्वीप स्थत त्तद्‌भैः, पंक्तया चरन्त्यमून्यपि।

जम्बूद्वीपग्रहैः पंक्तया चरन्त्येवं ग्रहा अपि ॥२५४॥

अथवा जम्बूद्वीप में रहे उस-उस नक्षत्रों की पंक्ति में सर्व वे नक्षत्र भ्रमण करते है और उसी तरह जम्बूद्वीप में रहे उन ग्रहों की पंक्ति में वे सर्व ग्रह भी भ्रमण करते है। (२५४)

ग्रहाणां पंक्तयाश्चात्र, षट्सप्तत्यधिकं शतम् ।
प्रतिपंक्ति च षट्षष्टि: स्युर्ग्रहा अपि ॥२५५॥

इस मनुष्य क्षेत्र में ग्रहों की एक सौ छिहत्तर (१७६) पंक्तियां है और प्रत्येक पंक्ति में ६६-६६ ग्रह है । यहां भी अभिजित नक्षत्र के समान जानना । (२५५)

एवं च – भानां शतानि षट् त्रिंशत् षण्णवत्यधिकान्यथ ।
एकादशग्रह सहस्त्रा: शता: षोडशाश्च षट् ॥२५६॥

और इस तरह से मनुष्य क्षेत्र में सर्व मिलाकर छत्तीस सौ छियानवे नक्षत्र है और ग्यारह हजार छ: सौ सोलह (११६१६) ग्रह है । (२५६)

स्युस्तारा: कोटि कोटयोऽत्राष्टा शीत्या लक्षकैर्मिता: ।
सहस्त्रैरपि चत्वारिंशता शतैश्च सप्तभि: ॥२५७॥

इस मनुष्य क्षेत्र में सब मिलाकर अठासी लाख चालीस हजार सात सौ (८८४०७००) कोटा कोटी तारा है । (२५७)

अथात्र यानि चैत्यानि, शाश्वतान्यथ तेषु या: ।
अर्हतां प्रतिमा वन्दे, ता: संख्याय श्रुतोदिता: ॥२५८॥

अब शाश्वत प्रतिमा का वर्णन करते हैं – इस अठाई द्वीप में जो शाश्वत चैत्य मंदिर जिनालय है और उसमें जो शास्त्र में शाश्वती जिन प्रतिमा कही है उसकी संख्या गिनती पूर्वक मैं वंदन करता हूँ । (२५८)

शतस्त्रयोदशैकोनपन्चाशा ये पुरोदिता: ।
गिरिणां तेषु ये पन्च मेरव: प्राग्निरूपिता: ॥२५९॥

मेरौ मेरौ काननेषु, चतुर्षु दिक्चतुष्ट ये ।
चैत्यमेकैकमेकं च, मूर्ध्नि सप्तदशेति च ॥२६०॥

पहले जो तेरह सौ उनचास पर्वत कहे है उसमें से पांच मेरू पर्वत का जो वर्णन किया है उन प्रत्येक मेरूपर्वत के जो चार-चार वन उद्यान है उन प्रत्येक वन की चारो दिशा में एक-एक शिखर पर एक जिनालय है । अत: एक मेरूपर्वत पर सत्रह (४×४=१६+१=१७) जिनालय है । और पांचों मेरू पर्वत के एकत्रित करते पच्चासी (१७×५=८५) चैत्यालय होते हैं । (२५९-२६०)

प्रतिमा प्रति चैत्यं च, विंशं शतमिहोदिताः ।
त्रिद्वारेषु हि चैत्येषु, भवन्तीयत्य एव ताः ॥२६१॥

यहां पचासी जिनालय में प्रत्येक चैत्य-जिनालय में एक सौ बीस जिन प्रतिमा (मूर्ति) होती है । क्योंकि तीन द्वार वाले चैत्य में एक सौ बीस ही जिन प्रतिमा होती है । (२६१)

प्रतिद्वारं शाश्वतेषु, यच्चैत्येष्वखिलेष्वपि ।
स्यु षट् षट् स्थानानि तथा ह्येकः स्यान्मुखमण्डपः ॥२६२॥

ततो रंगमण्डपः स्यात्पीठं मणिमयं ततः ।
स्तूपस्तदुपरि चतुःप्रतिमालङ्कृतोऽमितः ॥२६३॥

ततोऽशोकतरोः पीठं, पीठं केतोस्ततः परम् ।
ततोऽप्यग्रे भवेद्वापी, स्वर्वापीवामलोदका ॥२६४॥

एवं त्रयाणां द्वारणां, प्रतिमा द्वादशा भवन् ।
अष्टोत्तरं शतं गर्भगृहे विंशं शतं ततः ॥२६५॥

सभी शाश्वत चैत्य में प्रत्येक द्वार में छः-छः स्थान होते हैं। उसमें १- मुख मंडप, उसके बाद २- रंग मंडप, फिर ३- मणिमय पीठिका, उसके ऊपर चारो तरफ एक-एक प्रतिमा इस तरह चार प्रतिमाओं से अलंकृत, स्तूप, उसके बाद ४- अशोक वृक्ष की पीठिका, उसके बाद ५- ध्वज की पीठिका और उसके भी आगे ६- स्वर्ग की बावडियां के समान निर्मल जलयुक्त बावडियां, इस तरह तीन द्वारों की बारह प्रतिमाएं प्रत्येक स्तूप ऊपर चार-चार प्रतिमाएं होती है इससे तीनों द्वार की मिलाकर बारह प्रतिमाएं और गभारो में एक सौ आठ प्रतिमाएं होती है । इस तरह से तीन द्वार वाले प्रत्येक चैत्य में (१२+१०८ = १२०) एक सौ बीस प्रतिमा होती है । (२६२-२६५)

चतुर्द्वारणां च तेषामर्चा द्वारेषु षोडश ।
गर्भालये साष्टशतं, चतुर्विंशं शतं ततः ॥२६६॥

जो चार द्वार वाला चैत्य होता है उसमें द्वार सम्बन्धी प्रतिमा सोलह होती है और गर्भगृह (गभारे) में एक सौ आठ होती है । इस तरह कुलजोड करते चार द्वार वाले जिनालय में एक सौ चौबीस जिन प्रतिमा होती है । (२६६)

नंदीश्वरे द्विपन्चाशत्कुण्डले रूचकेऽपि च ।
चत्वारि चत्वारि षष्टरित्येवं सर्व संख्यया ॥२६७॥

चतुर्द्वाराणि चैत्यानि, शेषाणि तु जगत्त्रये ।
त्रिद्वाराण्येव चैत्यानि, विज्ञेयान्यखिलान्यपि ॥२६८॥ *युग्मं* //

नंदीश्वर द्वीप में बावन चैत्य है, कुण्डल द्वीप में चार चैत्य है और रूचक द्वीप में चार चैत्य है, इस तरह सर्व मिलाकर (५२+४+४=६०) साठ चैत्य होते हैं। ये ६० चैत्य चार द्वार वाले हैं । शेष समग्र विश्व में जितने शाश्वत चैत्य है वे सभी ही तीन द्वार वाले हैं । (२६७-२६८)

ज्योतिष्कभवनाधीशव्यन्तरावसथेषु च ।
सभार्चाभिस्सहैषु स्यात्साशीति प्रतिमाशतम् ॥२६९॥

तच्चैवं- उपपाताभिषे काख्ये, अलङ्कारसभापि च ।
व्यवसाय सुधर्माख्ये; भान्ति पन्चाप्यूमः सभाः ॥२७०॥

द्वारै स्त्रिभि स्त्रिभि द्वारे, द्वारेऽर्चाभिश्चतुसृभिः ।
भाति स्तूपः प्रतिसभं द्वादश द्वादशेति ताः ॥२७१॥

षष्टिः पन्चानां समानामिति प्रति सुरालयम् ।
प्राग्वद्विंश शतं चैत्ये, इत्यशीति युतं शंतम् ॥२७२॥

ज्योतिषी के भवनपति के और व्यंतरों के आवास में सभा मंडप में रही शाश्वत प्रतिमा गिनते कुल एक सौ अस्सी (१८०) शाश्वत प्रतिमा होती है । वह इस प्रकार :- यहां देवों की पांच सभा होती है । १-उत्पात सभा, २- अभिषेक सभा, ३- अलंकार सभा, ४- व्यवसाय सभा और ५- सुधर्मासभा । इन पांचों सभाओं के तीन-तीन द्वार होते हैं । और उन प्रत्येक द्वार पर चार-चार प्रतिमाओं से युक्त एक-एक स्तूप होता है । इससे एक-एक सभा में बारह-बारह जिन मूर्तियां होती है । प्रत्येक देवलोक में पांच सभा की मिलाकर साठ (१२×५=६०) शाश्वत प्रतिमा होती है और पहले के समान प्रत्येक चैत्य की एक सौ बीस प्रतिमाएं होती है । इसी तरह उक्त तीनों निकाय देवों के निवास स्थान में एक सौ अस्सी (१२०+६०=१८०) शाश्वती जिनेश्वर भगवान की मूर्तियां होती है । (२६९-२७२)

एवमा द्वादश स्वर्गं, साशीति प्रतिमाशतम् ।
ग्रैवेयकादिषु शतं, विंश चानुत्तरावधि ॥२७३॥

इसी ही तरह पद्धति से बारह देवलोक तक एक सौ अस्सी प्रतिमाएं कही है और नवग्रैवयेक से लेकर अनुत्तर विमान तक एक सौ बीस जिन प्रतिमा जानना चाहिए । (२७१)

अथ प्रकृतं - पन्चानामिति मेरूणां, पन्चा शीति र्जिनालयाः।
जिनार्चानां सहस्राणि, दशोपरि शतद्वयम् ॥२७४॥

अब प्रस्तुत बात कहते हैं कि :- पांच मेरू पर्वत के मिलाकर पचासी शाश्वत जिनालय होते है और वहां शाश्वत जिन प्रतिमा दस हजार दो सौ (८५×१२०=१८२००) मूर्ति होती है । (२७४)

शेषेषु सर्व गिरिषु, स्यादेकैको जिनालयः ।
सहस्रं ते चतुश्चत्वारिंशैस्त्रिभिः शतैयुतम् ॥२७५॥

शेष सभी पर्वतों पर एक-एक शाश्वत जिनालय होता है उसकी संख्या एक हजार तीन सौ चवालीस (१३४४) होती है । (२७५)

सहस्रैरेकषष्टयाढयं लक्षमेकं शतद्वयम् ।
अशीत्याभ्यधिकं चात्र, जिनार्चाः प्रणिदध्महे ॥२७६॥

उक्त एक हजार तीन सौ चवालीस चैत्य में प्रत्येक जिन मंदिर में १२० शाश्वत मूर्तियां होती है। उन शाश्वत मूर्तियों की कुल संख्या एक लाख इकसठ हजार दो सौ अस्सी (१३४४×१२०=१६१२८०) होती है । इन सब जिनेश्वर भगवान की मूर्तियों को हम वंदन करते हैं। (२७६)

यानि दिग्गज कूटानि, चत्वारिंशदिहोचिरे ।
तेष्वेकैकं चैत्यमष्टचत्वारिंशच्छतानि च ॥२७७॥

अर्चनास्तत्र नमस्कुर्मो, भवेच्चैत्यमथैक्कम् ।
दशस्वपि कुरुष्वर्चाशतानि द्वादशात्र च ॥२७८॥

यहां जो चालीस दिग्गज कूट कहे है उसके ऊपर एक-एक जिनालय है और उसमें जिनेश्वर की प्रतिमा की संख्या चार हजार आठ सौ (१२०×४०=४८००)

की होती है । उन शाश्वत प्रतिमाओं को हम नमस्कार करते हैं । अब दस कुरुक्षेत्र के अन्दर भी एक एक जिनालय है और उसमें शाश्वत प्रतिमाएं बारह सौ (१२०×१०=१२००) है । (२७७-२७८)

जम्बू प्रभृतयो येऽत्र, महावृक्षा दशोदिताः ।
शतं सप्तदशं तेषु, प्रत्येकं स्युर्जिनालयाः ॥२७६॥

एकस्तत्र मुख्य वृक्षे, शतमष्टाधिकं पुनः ।
अष्टाधिके वृक्षशते, तत्परिक्षेपवर्तिनि ॥२८०॥

तद्दिग्विदिग्वर्ति कूटेष्वेकैक इति मीलिताः ।
एकादशशती सप्तत्याढया वृक्ष जिनालयाः ॥२८१॥

जम्बू आदि जो दस वृक्ष कहे हैं उन प्रत्येक को एक सौ सत्तर जिनालय है, वह इस तरह मुख्य वृक्ष के ऊपर एक जिनालय है । उस मुख्य वृक्ष की चारों तरफ में एक सौ आठ वृक्ष हैं, उन प्रत्येक पर एक-एक जिनालय है, इसमें एक सौ आठ जिनालय है और मुख्य वृक्ष के चार दिशा में और चार विदिशा में रहे आठ कूट पर प्रत्येक पर जिनालय है । इस तरह सर्व मिलाकर एक सौ सत्तर (१+१०८+८=११७) जिनालय होते है । ये सब वृक्ष के ऊपर के जिनालयों की संख्या एक हजार एक सौ सत्तर (११७×१०=११७०) की होती है । (२७६-२८१)

लक्षमेकं सहस्राणि, चत्वारिंशदथोपरि ।
चतुः शतीं जिनार्चानां, वृक्षेषु दशसु स्तुवे ॥२८२॥

इन दश वृक्षों पर एक लाख चालीस हजार चार सौ (११७०×१२=१४०४००) शाश्वत प्रतिमाओं को मैं स्तवन करता हूं । (२८२)

चतुःशतीह कुण्डानां, या पन्चाशा निरूपिता ।
तत्र प्रासाद एकैकः, प्रतिमास्तत्र चार्हताम् ॥२८३॥

चतुष्पन्चाशत्सहस्रमिता नमस्करोम्यहम् ।
प्राक्तनैस्त्वत्र कुण्डानां, साशीतिस्त्रिशतीरिता ॥२८४॥

पृथग्महानदिचैत्यसप्ततिश्च मया पुनः ।
महानदीष्वपि कुण्डेष्वेव प्रासाद संभवः ॥२८५॥

इत्थं संभाव्य पन्चाश, चतु:शती यदीरिता ।
कुण्ड चैत्यानां तदत्र, नदी चैत्य विवक्षया ॥२८६॥
यदि चान्यत्र कुण्डेभ्यो नदीषु चैत्य संभवः ।
तदा वृद्धोक्तिरेवास्तु, प्रमाणं नाग्रहोमम ॥२८७॥

यहां जो चार सौ पचास कुण्ड कहे हैं, उसमें एक-एक जिनालय है और वहां श्री अरिहंत परमात्मा की प्रतिमा चौवन हजार (४५०×१२०=५४०००) है उन सबको मैं नमस्कार करता हूं । पूर्व के महापुरुषों ने इस स्थान पर तीन सौ अस्सी कुंड कहे है । सत्तर महानदियां जो पृथक् कही है, उसके कुण्ड सत्तर होते हैं और उस कुंड में भी चैत्य प्रासाद का संभव है । इस संभावना को आंखों के सामने रखकर ही मैंने नदी के कुण्डों की विवक्षा द्वारा चार सौ पचास कुण्ड कहे हैं । और उसमें एक-एक जिनालय इस तरह चार सौ पचास जिनालय कहे हैं । परन्तु यदि कुण्ड सिवाय नदी में अन्यत्र भी चैत्यालय होने का संभव हो सकता है तो उसमें वृद्ध पुरुषों का वचन अनुसार है, उसमें मेरा कुछ भी आग्रह नहीं है । (२८३-२८७)

अशीतिर्ह्द चैत्यानि, प्रत्येकमेक योगतः ।
अर्चा नव सहस्राणि, तेषु वन्दे शतानि षट् ॥२८८॥

सरोवर अस्सी है और उन प्रत्येक में एक-एक जिनालय होने के कारण सरोवर के जिनालय भी अस्सी है । उसमें शाश्वत प्रतिमा नौ हजार छः सौ (१२०×८०=९६००) है उसको मैं वंदन करता हूं । (२८८)

एवं मनुष्यक्षेत्रेऽस्मिंश्चैत्यानां सर्व संख्यया ।
शतानि सैकोनाशीतीन्येक त्रिंशद्भवन्ति हि ॥२८९॥
लक्षास्तिस्रो जिनार्चानां तथैकाशीतिमेषु च ।
सहस्राणि नमस्यामि, साशीतिं च चतुः शतीम् ॥२९०॥

इस तरह से इस मनुष्य क्षेत्र में चैत्यो की सर्व संख्या तीन हजार एक सौ उनासी (३१७९) होते है तथा शाश्वती जिन प्रतिमा तीन लाख इकासी हजार चार सौ अस्सी (३८१४००) है उसको मैं नमस्कार करता हूँ । (२८९-२९०) वह इस प्रकार :-

चैत्य का स्थान		चैत्य की संख्या
५	मेरू पर्वत	८५
३	वर्षधर पर्वत	३०
१७०	दीर्घ वैताढय पर्वत	१७०
२०	गजदंत पर्वत	२०
२०	यमक पर्वत	२०
८०	वक्षस्कार पर्वत	८०
२०	वृत्त वैताढय पर्वत	२०
४	इषुकार पर्वत	४
१०००	कंचन गिरि	१०००
४०	दिग्गज कूट	४०
१०	उत्तर कुरु देवकुरु	१०
१०	जम्बू आदि वृक्ष	११७०
४५०	कुण्ड (नदी कुंड आदि)	४५०
८०	सरोवर	८०
१६३६		३१७६

३१७६ जिनालय हुए प्रत्येक में १२० प्रतिमा अतः ३१७६×१२० का गुणा करने पर ३८१४८० जिन प्रतिमा कुल होती है ।

नरक्षेत्रात्तु परतुश्चत्वारि मानुषोत्तरे ।
नन्दीश्वरेऽष्यष्टिश्च रूचके कुण्डलेऽपि च ॥२६१॥

चत्वारि चत्वारि चैत्यन्य शीतिरेवमत्र च ।
सहस्राणि नवार्चानां, चत्यारिंशाष्टशत्यपि ॥२६२॥

मनुष्य क्षेत्र के बाहर मानुषोत्तर पर्वत पर चार जिनालय है नंदीश्वर द्वीप में अड़सठ (६८) जिनालय है, रूचक द्वीप में चार जिनालय है और कुंडल द्वीप में

भी चार जिनालय है । इस तरह ४+६८+४+४=८० अस्सी शाश्वत जिनालय मनुष्य लोक (क्षेत्र) से बाहर है । और उसमें शाश्वत जिन प्रतिमाओं की संख्या नौ हजार आठ सौ चालीस (९८४०) होती है । (२६१-२६२) वह इस प्रकार :-

नंदीश्वर द्वीप के बावन, कुंडल के चार रूचक के चार, इन साठ चैत्य में एक-एक के अन्दर एक सौ चौबीस जिन प्रतिमा होती है अत: इन साठ जिन गृह में जिन मूर्तियों की संख्या सात हजार चार सौ चालीस (१२४×६०=७४४०) होती है और शेष नंदीश्वर के जो सोलह चैत्य है और मानुषोत्तर पर्वत के चार चैत्य इस तरह बीस चैत्य में एक-एक के अन्दर एक सौ बीस (१२०) जिनबिम्ब होते हैं, अत: सर्व मिलाकर (१२०×२०=२४००) दो हजार चार सौ जिन प्रतिमा होती हैं। इस प्रकार से अढाई द्वीप के बाहर नौ हजार आठ सौ चालीस (७४४०+२४००=९८४०) जिन बिम्ब होते हैं।

सहस्राण्येकनवतिं, लक्षास्तिस्र: शतत्रयम् ।
विंशमत्र जिनार्चानां, तिर्यग्लोके नमाम्यहम् ॥२९४॥

तिर्च्छा लोक कें अन्दर शाश्वत जिन प्रतिमा की सर्व संख्या तीन लाख इक्कानवे हजार तीन सौ बीस (३९१३२०) होती है । इन सब जिन प्रतिमाओं को मैं नमस्कार करता हूं । (२९४)

ज्योतिष्काणां व्यन्तराणामसंख्येयेष्वसंख्यश: ।
विमानेषु नगरेषु, चैत्यान्यर्चाश्च संस्तुवे ॥२९५॥

इसी तरह ही इस तिर्च्छालोक में ज्योतिषी के असंख्यात विमान है । और व्यन्तरों के असंख्यात नगर है उसमें रहे असंख्यात् शाश्वत जिनालय और असंख्य शाश्वत जिन प्रतिमा है उनकी मैं स्तुति करता हूं । (२९५)

अधोलोकेऽपि भवनाधीशानां सप्तकोटय: ।
लक्षा द्विसप्ततिश्चोक्ता भवनानां पुराऽत्र या: ॥२९६॥

प्रत्येकं चैत्यमेकैकं, तत्रेति सप्त कोटय: ।
लक्षा द्वि सप्ततिश्चाद्योलोके चैत्यानि संख्यया ॥२९७॥

त्रयोदश कोटि शतान्येकोननवतिं तथा ।
कोटी: षष्टि चलक्षाणि, तत्रार्चानां स्मराम्यहम् ॥२६८॥

पहले इस ग्रन्थ में कह गये है उसी तरह- अधोलोक में भवनपति के सात करोड बहत्तर लाख भवन (७७२०००००) है उसमें प्रत्येक में एक-एक चैत्यालय है, इससे अधो लोक में सात करोड बहत्तर लाख शाश्वत चैत्यों की सर्व संख्या कही है और उसमें रहे शाश्वत जिन प्रतिमा की संख्या तेरह सौ नवासी करोड़ और साठ लाख (१३, ८६, ६०,०००००) होता है । उसका मैं बार-बार स्मरण करता हूं। (२६६-२६७)

एक-एक चैत्य में एक सौ अस्सी जिन प्रतिमा है इससे ७७२००००० चैत्य को ×१८० से गुणा करने से चैत्य में जिन बिम्ब = १३, ८६, ६०,००००० सर्वसंख्या आती है ।

उद्धर्वलोकेऽपि सौधर्मात्प्रभृत्यंनुत्तरावधि ।
विमान संख्या चतुर शीतिर्लक्षाणि वक्ष्यते ॥२६६॥

सहस्त्रा: सप्तनवति स्त्रयोविंशतिरेव च ।
तावन्त्येवात्र चैत्यानि, प्रत्येकमेकयोगत: ॥३००॥

ऊर्ध्व लोक में सौधर्म देवलोक से लेकर अनुत्तर विमान तक की सर्व संख्या चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस (८४६७०२३) होती है और उन प्रत्येक में एक-एक शाश्वत जिनालय होने से चैत्य की संख्या भी चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस (८४६७०२३) होती है । (२६६-३००)

एकं कोटिशतं पूर्ण, द्वि पन्चाशच्च कोटय: ।
लक्षैश्चतुर्नवत्याढया सहस्त्रैरपि संयुता: ॥३०१॥

चतुश्चत्वारिंशतैव, षष्टयाढयै: सप्तभि: शतै: ।
अर्चयामो जिनाचार्यानामूद्धर्वलोके सुरार्चिता: ॥३०२॥

ऊर्ध्व लोक में रहे उक्त शाश्वत चैत्य में देवों द्वारा पूजित शाश्वत जिन प्रतिमा एक अरब बावन करोड़ चौरानवे लाख चवालीस हजार सात सौ साठ (१५२६४४४७६०) है उसकी हम भाव भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं । (३०१-३०२)

उक्त स्थान में एक-एक के अन्दर एक सौ अस्सी जिन प्रतिमा होती है परन्तु नौग्रैवेयक में ३१८ और पांच अनुत्तर में पांच चैत्य होते है और उसमें एक सौ बीस जिन प्रतिमा होती है ।

जम्बू द्वीप में	-६३५	शांश्वत चैत्य
धात की खण्ड में	१२७२	'' ''
पुष्करार्ध में	१२७२	'' ''
मानुषोत्तर पर्वत सहित मनुष्यक्षेक बाहर-	८०	'' ''
कुल	३२५९	

ऊर्ध्व लोक में शाश्वत चैत्य का कोष्ठक

	नाम	**स्थान विमान**	**चैत्य**
१-	सौधर्म देवलोक	३२ लाख	३२ लाख
२-	इर्शान ''	२८ लाख	२८ लाख
३-	सनत्कुमार ''	१२ लाख	१२ लाख
४-	सनत्कुमार ''	८ लाख	८ लाख
५-	महेन्द्र ''	४ लाख	४ लाख
६-	लांतक ''	५० हजार	५० हजार
७-	महाशुक्र देवलोक	४० हजार	४० हजार
८-	सहस्रार ''	६ हजार	६ हजार
९+१०-	आनत-प्राणत ''	४००	४००
११+१२	आरण-अच्यूत ''	३००	३००
	नौ ग्रैवेयक	३१८	३१८
	पांच अनुत्तर	५	५
		८४९७०२३	८४९७०२३

अधोलोक में शाश्वत चैत्य का कोष्ठक

	भवनपति के नाम	स्थान (भवन)	चैत्य
१-	असुर कुमार	६४ लाख	६४ लाख
२-	नाग कुमार	८४ लाख	८४ लाख
३-	सुवर्ण कुमार	७२ लाख	७२ लाख
४-	विद्युत्कुमार	७६ लाख	७६ लाख
५-	अग्नि कुमार	७६ लाख	७६ लाख
६-	द्वीप कुमार	७६ लाख	७६ लाख
७-	उदधि कुमार	७६ लाख	७६ लाख
८-	दिशि कुमार	७६ लाख	७६ लाख
९-	पवन कुमार	९६ लाख	९६ लाख
१०-	स्तनीत कुमार	७६ लाख	७६ लाख
	कुल-	७७२०००००	७७२०००००

तीन भवन में रही शाश्वत चैत्य और प्रतिमाओं का कोष्ठक

स्थान	चैत्य	एक चैत्य में प्रतिमा	कुल प्रतिमा
ऊर्ध्व लोक में	८४९७०२३	१८०-१८०	१,५२,९४४७६०
ऊधो लोक में	७७२००००००	१८०-१८०	१३८९६००००००
तिर्च्छा लोक में	६०	१२४-१२४	
	३१९९	१२०-१२०	३९१३२०
व्यंतर में	असंख्य	१८०-१८०	असंख्याती
ज्योतिषी में	असंख्य	१८०-१८०	असंख्याती
कुल	८५७००२८२		१, ५४, २५८३६०८०

लक्षाणि सप्तपन्चाशदित्येवमष्ट कोटयः ।
त्रैलोक्ये नित्य चैत्यानां, सद्वयशीति शतद्वयम् ॥३०३॥

कोटी शतानीह पन्च दशोपरि च कोटयः ।
द्विचत्वारिंशदेवाष्ट पन्चाशल्लक्ष संयुताः ॥३०४॥

सहस्राणि च षट् त्रिंशत्साशीतीनि जगत्त्रये ।
नौमि नित्य जिनार्चानां, करवै सफलं जनुः ॥३०५॥

इस तीन लोक के अन्दर आठ करोड़ सत्तावन लाख दो सौ बयासी (८५७००२८२) जिन मंदिर आये हुए है और पंद्रह सौ बयालीस करोड अठ्ठावन लाख छत्तीस हजार अस्सी (१५४२,५८३६०८०) जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा को मैं हमेशा जन्म सफल करने के लिए नमस्कार करता हूं । (३०३-३०५)

विचार सप्ततिका ग्रंन्थ में ८५६४७५३४ चैत्यालय और १४०५२५५२५५४० जिन प्रतिमा कही है । सत्य केवली भगवन्त जाने ।

उत्सेधाङ्गुलनिष्पन्न सप्तहस्तमिताः खलु ।
शाश्वत्यः प्रतिमा जैन्य, उद्धर्वाधोलोकयोर्मताः ॥३०६॥

तिर्यग्लोके तु निखिलास्ताः पन्चभिर्धनुः शतैः ।
मिता निरूपितास्तत्व परिच्छेद पयोधिभिः ॥३०७॥

ऊर्ध्व लोक में और अधोलोक में रहे भगवान श्री जिनेश्वर भगवान की शाश्वत प्रतिमाएं उत्सेध अंगुल से सात हाथ प्रमाण की है । जबकि तिर्च्छालोक की सब शाश्वती प्रतिमाएं पांच सौ धनुष्य के प्रमाण वाली है । इस तरह तत्वज्ञान के समुद्र समान गंभीर पूर्व महापुरुषों ने कहा है । (३०६-३०७)

तथाहुः - उत्सेहमंगुलेणं अहउड्ढमसेस सत्तरय णीओ ।
तिरिलोए पणधणुसय सासय पडिमा पणिवयामि ॥३०८॥

इसलिए ही कहा है कि अधोलोक में और ऊर्ध्वलोक में सर्व शाश्वत प्रतिमाएं उत्सेध अंगुल से सात हाथ प्रमाण है, और तिर्च्छालोक में पांच सौ धनुष्य के मापवाली शाश्वत-प्रतिमाओं को मैं वंदन करता हूं । (३०८)

"राजप्रश्नीयोपाङ्ग वृत्तौ सूर्याभविमाने तु 'जिणुस्सेहपमाणमेत्ताओं संपलियंकनिसन्नओ' अस्स व्याख्याने जिनेत्सेध प्रमाण मात्राः जिनोत्सेध उत्कर्षतः पन्चधनुः शतानि, जघन्यतः सप्त हस्ताः, इह तु पन्च धनुः शतानि संभाव्यते इत्युक्त मिति ज्ञेयं ॥"

'राजप्रश्नीय उपांग की टीका में सूर्याभ विमान के सम्बन्ध में कहा है कि जिनेश्वर भगवान की उत्सेध प्रमाण वाली और पद्मासन में बैठी (शाश्वत प्रतिमाएं) है और इसकी व्याख्या करते कहा है कि जिनेश्वर उत्सेध प्रमाण मात्र है, जिनेश्वर देव को उत्कृष्ट से उत्सेध प्रमाण द्वारा ऊंचाई से पांच सौ धनुष्य और जघन्य से सात हाथ से होता है । और यहां तो सूर्याभ विमान में पांच सौ धनुष्य की ऊंचाई संभव होती है । ऐसा कहा है ।'

वैमानिक विमानेषु द्वीपे नंदीश्वरेऽपि च ।
कुण्डले रूचक द्वीपे, प्रासादा ये स्युरर्हताम् ॥३०९॥
योजनानां शतं दीर्घाः पन्चाशतं च विस्तृताः ।
उत्तुंङ्गाः कथिताः प्राज्ञैर्योर्जिनानां द्विसप्ततिम् ॥३१०॥

वैमानिक के विमानों में नंदीश्वर द्वीप, कुंडल द्वीप और रूचक द्वीप के अन्दर श्री अरिहंत परमात्मा के जो जिनालय है, वे सौ योजन लम्बे पचास योजन चौडे और बहत्तर योजन ऊंचे हैं ऐसा पंडित पुरुषों ने कहे हैं। (३०९-३१०)

देव कुरुत्तर कुरु सुमेरू काननेषु च ।
वक्षस्कार भूधरेषु, गजदन्ताचलेष्वपि ॥३११॥
इषुकाराद्रिषु वर्षधरेषु मानुषोत्तरे ।
असुराणां निवासेषु, ये प्रागुक्ता जिनालयाः ॥३१२॥
पन्चाशतं योजनानि दीर्घस्तदर्द्ध विस्तृताः ।
षट्त्रिंशतं योजनानि, ते चोत्तुङ्गाः प्रकीर्तिताः ॥३१३॥

देव कुरु-उत्तर कुरु, मेरू पर्वत के वन, वक्षस्कार पर्वत गजदन्त पर्वत, इषुकार पर्वत, वर्षधर पर्वत, मानुषोत्तर पर्वत, और भवनपति में असुर कुमार निकाय के आवास में जो शाश्वत जिनालय पहले कहे हैं वे पचास योजन लम्बे पच्चीस योजन चौड़े और छत्तीस योजन ऊंचे कहे हैं । (३११-३१३)

नागादीनां निकायानां, नवामां भवनेषु ये ।
जिनालया योजनानां, दीर्घासते पन्चविंशतिम् ॥३१४॥

तानिद्वादशा सार्द्धानि, पृथवोऽष्टदशोच्छ्रिता:।
त्रिधाप्येतदर्द्धमाना, व्यन्तराणां जिनालया: ॥३१५॥.

भवन पति के शेष रहे नागकुमार, सुवर्णकुमार आदि नव निकाय के भवनों में जो शाश्वत चैत्य है वे सभी पच्चीस योजन लम्बे, साढ़े बारह योजन चौड़े और अठारह योजन की ऊंचाई वाला है, और व्यन्तरों के निवास स्थान में जो शाश्वत चैत्यों का माप तीनों प्रकार से लम्बाई चौड़ाई, ऊंचाई नव निकाय के चैत्य से आधा-आधा जानना । अर्थात् व्यंतर वास का चैत्य साढे बारह योजन लम्बा, सवा छ: योजन चौड़ा और नौ योजन ऊंचा है । (३१४-३१५)

ज्योतिष्कगतचैत्यानां, न मानमुपलभ्यते ।
प्राय: क्वाप्यागमे तस्माद स्माभिरपि नोदितम् ॥३१६॥

ज्योतिषी देवों के विमान में रहे शाश्वत चैत्यालयों का माप किसी भी आगम में नहीं मिलता है, इसलिए हमने भी नहीं कहा है । उसकी कोई संख्या नहीं है अत: असंख्य कहा गया है । (३१६)

येऽथ मेरूचूलिका सु, तथैव यमकाद्रिषु ।
कान्चनाद्रिदीर्घवृतवैताढयेषु ह्रदेषु च ॥३१७॥

तथा दिग्गज कूटेषु, जम्ब्वादिषु द्रुमेषु च ।
प्रागुक्तेषु च कुण्डेषु निरूपिता जिनालया: ॥३१८॥

क्रोशार्द्ध पृथुला: क्रोशदीर्घाश्चाप तानि च ।
चत्वारिंशानि ते सर्वे, चतुर्दश समुच्छ्रिता: ॥३१९॥

मेरू पर्वत की चूलीका, यमक पर्वत, सर्व कांचन पर्वत, दीर्घ और वृत्त दोनों प्रकार के वैताढय पर्वत, सारे सरोवर में तथा दिग्गज कूट, जम्बू आदि वृक्ष और आगे कहा गया सभी कुंड - इन सभी स्थानों में कहे गये जो शाश्वत चैत्यालय है वे सब एक कोस लम्बे आधा कोस चौड़े और चौदह सौ चालीस (१४४०) धनुष्य ऊंचे हैं । (३१७-३१९)

चैत्यानि यानि रचितानि जिनेश्वराणां ।

मन्यान्यपीह भरत प्रमुखैर्जगत्याम् -

तेष्वार्हती: प्रतिकृती: प्रणमामि भक्त्या,

त्रैकालिकीस्त्रिकरणामलतां विधाय ॥३२०॥

(वसंततिलका)

इस जगत में भरत महाराजा आदि द्वारा अन्य भी जो जिनेश्वर भगवान का चैत्यालय बनाया है और उसमें रही जो अरिहंत परमात्माओं की प्रतिकृति-प्रतिमाएं है उन सबको मनवचन कायारूप त्रिकरण से निर्मलतापूर्वत तीनों काल में भक्ति पूर्वक मैं नमस्कार करता हूं । (३२०)

विश्वाश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रातिष -

द्राज श्रीतनयो ऽतनिष्ट विनय: श्री तेजपालात्मज:,

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्व प्रदीपोपमे ।

सर्गो ऽन्यक्षि मित: समाप्तिमगमत्पीयूष सारोपम: ॥३२१॥

॥ इति श्री लोक प्रकाशे मानुषोत्तर नगनरक्षेत्र निरूपणो नाम त्रयोविंशति तम: सर्ग: समाप्त: ॥ ग्रन्थाग्रं ३४८॥

जिनकी कीर्ति विश्व को आश्चर्य करने वाली है उन महा महोपाध्याय श्री कीर्ति विजय जी महाराजा के शिष्य रत्न और माता राज श्री और पितो तेजपाल का पुत्र श्री विनय विजय जी महाराज ने निश्चित जगत के तत्वों को प्रकाशित करने के लिए दीपक समान जो यह काव्य ग्रन्थ की रचना की है उसका अमृत का सार रूप यह तेईसवां सर्ग समाप्त हुआ । (३२१)

तेईसवां सर्ग समाप्त

चौबीसवां सर्ग

परस्मिन् पुष्करार्द्धेऽथ, मानुषोत्तर शैलतः ।
परतः स्थिरचन्द्रार्कव्यवस्था प्रतिपाद्यते ॥१॥

अब मानुषोतर पर्वत के बाद में रहे शेष पुष्करार्ध में स्थित रहे चन्द्र सूर्य की व्यवस्था का प्रतिपादन किया जाता है । (१)

द्वीपार्णवेषु सर्वेषु मानुषोत्तरतः परम ।
ज्योतिष्काः पन्चधापिस्युः स्थिराश्चन्द्रार्यमादयः ॥२॥

मानुषोत्तर पर्वत के बाद रहे सारे द्वीप और समुद्रों में चन्द्र, सूर्य आदि पांचों प्रकार के ज्योतिषी स्थिर है । (२)

स्थिरत्वादेव नक्षत्र योगोऽप्येषाम वस्थितः ।
चन्द्राः सदाऽभिजिद्युक्ताः सूर्याः पुष्य समन्विताः ॥३॥

चन्द्र और सूर्य स्थिर होने से उनका नक्षत्र के साथ का योग सम्बन्ध भी स्थिर ही है, इससे हमेशा सभी चन्द्र अभिजित् नक्षत्र से युक्त होता है और सभी सूर्य पुष्य नक्षत्रों से युक्त होते हैं । (३)

तथोक्तं जीवाभिगम सूत्रे :-

बहियाउमाणुसनगस्स चन्द्र सूराणऽवट्ठिया जोगा ।
चन्द्रा अभीइजुत्ता सूरा पुण होंति पुस्सेहिं ॥४॥

श्री जीवाभिगम सूत्र में भी कहा है कि - मानुषोत्तर पर्वत से बाहर रहे सभी चन्द्र और सूर्यों का योग स्थिर है, उसमें चन्द्र अभिजित नक्षत्र से युक्त होता है और सूर्य पुष्य नक्षत्र से सहित होता है । (४)

गिरिकूटा वस्थितानामे तेषामन्तरं द्विधा ।
तद्रवीन्द्वोरे कमन्यदिन्द्वोस्तथाऽर्मिथाः ॥५॥

गिरिकूट आदि ऊपर रहे सूर्य चन्द्र आदि का अन्तर दूरी दो प्रकार की है उसमें एक सूर्य से चन्द्र का उपलक्षण से चन्द्र से सूर्य का अन्तर और दूसरा एक सूर्य से दूसरे सूर्य का और एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर । ये दो प्रकार का है । (५)

योजनानां सहस्राणि, पन्चाशत्तत्र चादिमम ।
द्वितीयं तु योजनानां, लक्षं साधिकमन्तरम् ॥६॥

इदमर्थतोजीवाभिगमसूत्रचन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्रादिषु ।'

प्रथम जो सूर्य से चन्द्र का और चन्द्र से सूर्य का अन्तर है वह पचास हजार योजन का है और दूसरा सूर्य से सूर्य का अथवा चन्द्र से चन्द्र का जो अन्तर दूरी है वह एक लाख योजन से कुछ अधिक है । (६) इसी बात का भावार्थ जीवाभिगम सूत्र, चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र आदि में कहा है ।

साधिकत्वं तु पूर्वोक्तं, चन्द्रार्कान्तरमीलने ।
तन्मध्यवर्त्तिसूर्येन्दु बिम्बविष्कम्भ योगतः ॥७॥

सूर्य चन्द्र के अन्तर के माप में पूर्व जो अधिकता कही है उस अन्तर के मध्य में सूर्य चन्द्र के बिम्ब- विमान की चौडाई को मिलाकर समझना, अर्थात् एक सूर्य से दूसरे सूर्य के बीच का अन्तर एक लाख योजन का है, उसके बीच में रहे चन्द्र की चौड़ाई एक लाख योजन से अधिक रूप में गिनना चाहिए । इसी तरह चन्द्र के विमान में भी समझना चाहिए । (७)

तथोक्तं 'ससिससि रविरवि साहिय जो अणलकूखेण अंतर होई' इति शास्त्र में भी कहा है कि - चन्द्र से चन्द्र का और सूर्य से सूर्य का अन्तर दूरी एक लाख योजन से कुछ अधिक है ।

शशिनाऽन्तरितो भानुर्भानुनाऽन्तरितः शशी ।
राकानिशान्तवच्चित्रान्तरास्ते चन्द्रिकातपैः ॥८॥

चन्द्र से अंतरित सूर्य है और सूर्य से अंतरित चन्द्र है अर्थात् एक चन्द्र के बाद सूर्य फिर चन्द्र उसके बाद सूर्य इस तरह रहा है, चन्द्र और सूर्य के ताप से पूर्णिमा की रात्रि में अन्त समय समान विचित्र प्रकार का वह अन्तरा होता है । अर्थात् पुनम की रात्रि के अन्त समय में एक तरफ चन्द्र का अस्त होता है और दूसरी ओर सूर्योदय होता है उस समय में जैसा प्रकाश और ताप आदि होता है, उसी प्रकार का चित्र विचित्र वातावरण वह अन्तरा में होता है । (८)

तत एव चित्रलेश्या:, शैत्यौष्ण्यादन्तरान्तरा ।
वाग्मिनो वाक्यसंदर्भा, इवानुनयकाङ्क्षिण: ॥९॥

पंडितो के वाक्य संदर्भ जिस तरह से अनुसरण नयो की अपेक्षा रखता है उसी तरह बीच-बीच में अंतर में शीतलता और उष्णता होने से विचित्र प्रकार की विचित्र लेश्या वाला उस चन्द्र सूर्य का अन्तर है । (९)

चन्द्रास्तत्र, सुख लेश्या, नात्यन्तं शीतलत्विष: ।
मनुष्यलोके शीतर्तुभाविपीयूष भानुवत् ॥१०॥

मनुष्यलोक में शीतल ऋतु में चन्द्र के जो अत्यंत शीतल किरण होते है वैसे वहां नहीं होते, इससे ही वहां चन्द्र सुख उत्पन्न करने वाली लेश्यायुक्त किरण वाला होता है । (१०)

भानवोऽपि मन्दलेश्या न त्वतीवोष्णकान्तय: ।
नरक्षेत्रे निदाधर्तुभावितिग्मांशुबिम्बवत् ॥११॥

तथा सूर्य भी मन्द उष्ण-गरम किरण वाला होता है । परन्तु मनुष्य लोक में उष्ण काल के अन्दर अति उष्ण किरणों वाला सूर्य के समान नहीं होता, अपितु मन्द कान्ति वाला होता है । (११)

एषां प्रकाश्य क्षेत्राणि, विष्कम्भाल्लक्षमेककम् ।
योजनानामनेकानि, लक्षाण्यायामत: पुन: ॥१२॥

इन सूर्य चन्द्र का प्रकाश क्षेत्र चौडाई में एक लाख योजन का है जबकि लम्बाई में अनेक लाख योजन का विस्तार है । (१२)

पक्वेष्टकाकृतीन्येवं, चतुरस्राणि यद्भवेत् ।
पक्वेष्टका चतुष्कोणा, वह्यायामाऽल्प विस्तृति: ॥१३॥

ये सूर्य-चन्द्र के प्रकाश क्षेत्रों में गरम ईंट का आकार वाले है अर्थात् जैसे पकी हुई ईंट लम्बाई में अधिक होती है और चौडाई में अल्प होती है, वैसे उसके द्वारा वह ईंट चार कोने वाली और लम्ब-चोरस होती है वैसे ही ये सूर्य-चन्द्र का प्रकाश्य क्षेत्र भी चार कोन वाला और लम्ब-चोरस जानना । (१३)

तथाहुर्जम्बु द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे – 'बहिया णं भंते ! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम जाव जारारूवा तं चेव णेयव्वं णाणत्तंणो, विमाणोववण्णगा णो, चारो ववण्णगा णो, चारट्ठिइयाणे, णे, गइरइयां, पक्किट्ठगसंठाणसंठिएहिं जोअणसय साहस्सिएहिं तावखित्तेहिं जाव ओभासंति' इत्थमेतज्जीवाभिगम सूत्र वृत्योरपि, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ त्वेतदेवं भावितं, तथाहिं - ''इय मत्र भावना - मानुषोत्तर पर्वता द्योजन लक्षार्द्धातिक्रमे करण विभावनोक्त करणानुसारेण प्रथमा चन्द्र सूर्य पंक्तिः ततो योजन लक्षातिक्रमे द्वितीया पंक्तिः तेन प्रथम पंक्ति गत चन्द्र सूर्याणा मेता वांस्ता परक्षेत्र स्यायामः विस्तारश्च एक सूर्यादपर सूर्यो लक्ष योजनाति क्रमे तेन लक्षयोजन प्रमाणः इयं च भावना प्रथम पङ्क्तय पेक्षया बोद्धव्या एवमग्रेऽपि भाव्यमित्यादि'' एव चात्र पूर्वोक्तं द्विविधमन्तरं कथं संगच्छते ? तथा ऽऽतपक्षेत्रं भिन्नमतेन अन्तरं च भिन्न मतेन, तदपि कथं युक्तमित्यादि बहुश्रतेभ्यो भावनीयं ।

'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में कहा है कि–मानुषोत्तर पर्वत के बाहर जो चन्द्र से लेकर तारा तक के ज्योतिषी सर्व समान है अर्थात् सभी चन्द्र समान है इस तरह र्स्व सूर्यादि भी समान है और वैमानिक नहीं है, भ्रमण करने वाले नहीं है, इससे गति रहित है, पक्की ईट के संस्थान (आकार) वाले लाख योजन के प्रकाश क्षेत्र से शोभायमान है । यही बात जीवाभिगम सूत्र तथा वृत्ति से भी साबित होता है । जबकि जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की वृत्ति में तो इस तरह कहा है कि मानुषोत्तर पर्वत से पचास हजार योजन जाने के बाद कर्ण विभावना में कहे अनुसार प्रथम चन्द्र सूर्य की पंक्ति आती है उसके बाद एक लाख योजन जाने पर दूसरी पंक्ति आती है । इससे प्रथम पंक्ति जाने के बाद चन्द्र सूर्य के ताप की लम्बाई पचास हजार है । जबकि एक सूर्य से दूसरा सूर्य एक लाख योजन पर आता है इससे चौडाई उतनी जानना । यह विचार प्रथम पंक्ति के आश्रित जानना । और इसी तरह से आगे भी समझना इत्यादि । इस तरह यदि हो तो पूर्वोक्त दो प्रकार का अन्तर किस तरह होता है ? आतप क्षेत्र भिन्न मतानुसार में और अन्तर भिन्न मत में वह भी किस तरह संभव है ? यह सारा बहुश्रुत द्वारा विचारणीय है ।'

अस्मिन्नर्द्धे संख्यया ऽर्काश्चन्द्राश्च स्युर्द्विसप्ततिः।
द्वीपे संपूर्णे ऽत्र चतुश्चत्वारिंश हि ते ॥१४॥

शेष आधे पुष्करार्ध में – मानुषोत्तर पर्वत बाद के पुष्करार्ध में बहत्तर चन्द्र और बहत्तर सूर्य है । इससे पुष्कर नाम के सम्पूर्ण द्वीप के अन्दर एक सौ चवालीस सूर्य और एक सौ चवालीस (१४४) चन्द्र होते हैं । (१४)

तथाहि - कालोदवार्द्धे रारभ्य, संख्यां शीतोष्णरोचिषाम् ।
निश्चेतुमेतत्करणं, पूर्वाचार्यैः प्ररूपितम् ॥१५॥

कालोदधि समुद्र से लेकर आगे सर्वत्र चन्द्र सूर्य की संख्या निश्चय करने के लिए पूर्वाचार्यों ने इस तरह से करण रीति कही है । (१५)

विवक्षित द्वीप वार्द्धौ, ये स्युः शीतोष्णरोचिषः ।
त्रिघ्नास्ते प्राक्तनैर्जम्बू द्वीपादि द्वीप वार्द्धिगैः ॥१६॥

सूर्येन्दुभिर्मीसिताः स्युर्यावन्तः शशि भास्कराः ।
अनन्तरानन्तरे स्युर्द्वीपे तावन्त एव ते ॥१७॥

चतुश्चत्वारिंशमेवं शतं स्युः पुष्करेऽखिले ।
द्वयोस्तदर्द्धयोस्तस्माद् द्विसप्ततिर्द्विसप्ततिः ॥१८॥

एवं शेषेष्वपि द्वीपवार्द्धिष्विन्दु विवस्वताम् ।
अनेनैव करणेन, कार्यः संख्या विनिश्चयः ॥१९॥

वह इस तरह से – विवक्षित द्वीप अथवा समुद्र में जितने चन्द्र या सूर्य है उसे तीन द्वारा गुणा करे और उसमें पूर्व के जम्बू द्वीपादि द्वीप समुद्र के सूर्य-चन्द्र की संख्या मिलाने से आगे से आगे के सूर्य चन्द्र की संख्या आती है । इस गिनती से ही पूरे पुष्कर द्वीप में एक सौ चवालीस सूर्य और चन्द्र आते है । इसी तरह से कालोदधि समुद्र में सूर्य चन्द्र की संख्या बयालीस की है और उसे तीन से गुणा करने से (४२×३=१२६) एक सौ छब्बीस आते हैं और उसमें जम्बूद्वीप के दो, लवण समुद्र के चार, धातकी खण्ड के बारह इस तरह कुल अठारह मिलाने से सम्पूर्ण पुष्कर द्वीप में सूर्यो की संख्या एक सौ चवालीस की होती है । इसी ही तरह चन्द्र में भी समझना चाहिए । और पुष्करार्द्वीप के दूसरे आधे बहत्तर सूर्य-चन्द्र

आते है । आगे के समुद्रों में भी यही करण-रीति अनुसार चन्द्र और सूर्य की संख्या का निर्णय करना चाहिए । (१६-१९)

यतो मूलसंग्रहण्यां, तथा क्षेत्रसमासके ।
सर्वद्वीपोदधिगतार्केन्दु संख्याभिधायकम् ॥२०॥

करणं ह्येतदेवोक्तं जिनभद्रगणीश्वरैः ।
न चोक्तमपर किंचित्करुणावरुणालयै ॥२१॥

करूणा के सागर श्री जिनभद्रगणी श्रमा श्रमण ने मूल संग्रहणी में और क्षेम समास के अन्दर सारे द्वीप और समुद्रों में रहे सूर्य चन्द्र की संख्या को बताने वाला यही करण कहा है अन्य नहीं कहा है । (२०-२१)

तथा च मूल संग्रहणी टीकायां हरिभद्र सूरिः - "एवं ऽणं तराणंतरे खित्ते पुष्कर दीवे चोयालं चंदसयं हवइ, एवं शेषेष्वप्य मुनोपायेन चन्द्रा दिसंख्या विज्ञेयेति" युक्ता चेयं व्याख्या चन्द्र प्रज्ञप्तौ सूर्य प्रज्ञप्तौ जीवाभिगमे च सकल पुष्कर वरद्वीप माश्रित्येत्थमेव चन्द्रादि संख्याभिधानात्, तथाहि तद्ग्रन्थः- "पुक्खरवर दीवे णं भंते ! दीवे केवइया चन्दा पभासिसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा ? गोयम् ! चोयालं चंदसयं पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा, चोयालं सूरियाण सयं तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा ।" इत्यादि ॥

'मूल संग्रहणी की टीका श्री हरिभद्र सूरीश्वर जी महाराज कहते हैं कि इस प्रकार से आगे से आगे के क्षेत्र में पुष्कर वर द्वीप में जैसे एक सौ चवालीस सूर्य कहे है । वैसे इसी ही उपाय से सूर्य-चन्द्र की संख्या जानना चाहिए । चन्द्र प्रज्ञप्ति सूर्य प्रज्ञप्ति औ जीवाभिगम सूत्र के अन्दर सम्पूर्ण पुष्करवर द्वीप के आश्रित के यह संख्या कही है इससे यह व्याख्या संगत होती है । उस ग्रन्थ का पाठ इस तरह से है - 'हे भगवान ! पुष्करवर द्वीप में कितने चन्द्र प्रकाश करते थे ? प्रकाश करते और प्रकाश करेंगे ? तब भगवन्त ने कहा - हे गोतम ! एक सौ चवालीस चंन्द्र प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे । एक सौ चवालीस सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे इत्यादि समझ लेना चाहिए ।"

तथा तस्मिन्नेवार्थे सूर्य प्रज्ञप्ती संग्रहणी गाथा : -

"चोयालं चंद सूयं चोयालं चेव सूरि याण सयं ।
पुकरवर वरंमि दीवे चरंति एएपगासंता ॥२२॥"

चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं चेव होंति नक्खता ।
छच्च सया वावत्तर महागहा बारस सहस्सा ॥२३॥

छन्नउइ सय सहस्सा चोयालीसं भवे सहस्साइं ।
चतारि च सयाइं तारागण कोडि कोडीणं ॥२४॥

इसी ही अर्थ के संदर्भ में सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र में संग्रहणी गाथा है वह इस प्रकार है - एक सौ चवालीस चन्द और एक सौ चवालीस सूर्य पुष्करवर द्वीप को प्रकाशित करते भ्रमण करते है । (२२) समग्र पुष्करवर द्वीप में चार हजार बत्तीस (४०३२) नक्षत्र है, बारह हजार छः सौ बहत्तर (१२६७२) बड़े ग्रह हैं और छियानवे लाख चवालीस हजार चार सौ (९६४४४००) कोडा कोडी तारा समुदाय है । (२३-२४)

ज्योतिष्करण्डकेऽप्याहुः:-

"धायइसंडप्पभिई उद्दिट्ठा तिगुणिया भवे चंदा ।
आइल्ल चंद सहिया ते हुंति अणंतरं परओ ॥२५॥

आइच्चाणंपि भवे एमेव विही अणेण कायव्वा ।
दीवेसु समुद्देसु अएमेव परंपरा जाण ॥२६॥"

ज्योतिषकरंडक में भी कहा है कि - धातकी खंड से आगे से आगे के द्वीप में चन्द्र सूर्य की संख्या जानने के लिए पीछे के द्वीप अथवा समुद्र के चन्द्र सूर्य की संख्या को तीन गुणा करना चाहिए, जम्बूद्वीप से लेकर उस द्वीप अथवा समुद्र के आगे के सर्व चन्द्र सूर्य उसमें मिलाने से उस-उस द्वीप समुद्र के चन्द्र सूर्य की संख्या निश्चित होती है । यह परम्परा पद्धति सर्वत्र समझना चाहिए । (२५-२६)

अनन्तरं नरक्षेत्रात्सूर्य चन्द्राः कथं स्थिताः ।
तदागमेषु गदितं, सांप्रतं नोपलभ्यते ॥२७॥

केवलं चन्द्र सूर्याणां, यत्प्राक्कथितमन्तरम् ।
तदेव सांप्रतं चन्द्र प्रज्ञप्त्या दिषु दृश्यते ॥२८॥

मनुष्य क्षेत्र के बाहर सूर्य चन्द्र किस तरह रहते है । वह आगमोक्त बात वर्तमान काल में कहीं प्राप्त नहीं होता है । केवल चन्द्र सूर्य का अन्तर है जो पूर्व में कह गये हैं वही वर्तमान काल में चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों में देखने को मिलता है। (२७-२८)

तथोक्तं चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्रे जीवाभिगम सूत्रे च -

"चंदाओ सूरस्स य सूरा चंदस्स अंतरं होइ ।
पन्नास सहस्साइं जोयणाणं अणूणाइं ॥२९॥

सूरस्स य सूरस्स य ससिणो ससिणो य अंतरदिट्ठं ।
बहि याउ माणुस नगस्स जोयणाणं सहयसहस्सं ॥३०॥"

चन्द्र प्रज्ञप्ति और जीवाभिगम सूत्र में कहा है कि - 'चन्द्र से सूर्य का और सूर्य से चन्द्र का अन्तर-दूरी सम्पूर्ण रूप में पचास हजार योजन होता है और मानुषोत्तर पर्वत के बाद सूर्य से सूर्य का और चन्द्र से चंन्द्र का अंतर एक लाख योजन का होता है । (२९-३०)'

सूरंतरिया चंदा चंदतरिया य दिणयरा दित्ता ।
चित्तंतरलेसागा सुहलेसा मंदलेसा य ॥३१॥

दो सूर्य के बीच में चन्द्र, और दो चन्द्र के बीच में सूर्य ऐसी स्थिति वहां की है और शुभ-सुन्दर और मन्द सौम्य लेश्या वाले वे चन्द्र सूर्य है एवं बीच में चित्र (मिश्र) लेश्या वाले है, अर्थात सूर्य चन्द दोनों का प्रकाश जहां एकत्रित होता है वहां चित्र लेश्या जानना । (३१)

ततश्च - एषां संभाव्यते चन्द्र प्रज्ञप्त्याद्यनुसारतः।
सूची श्रेण्या स्थिति नैव, श्रेण्या परिरयाख्यया: ॥३२॥

इससे चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों के अनुसार ये चन्द्र सूर्य की सूची श्रेणी समान लाइन नहीं होती परन्तु वलयाकार श्रेणी होती है । (३२)

तथोक्तं जीवाभिगम वृत्तौ सूर्य सूर्यान्तर सूत्र व्याख्यानने - ''एतच्चैवमन्तर परिमाणं सूची श्रेण्या प्रतिपत्तव्यं न वलयाकार श्रेण्ये'' त्ति संग्रहणी लघु वृत्तरप्यय मेवाभिप्रायः ।

यही बात जीवाभिगम सूत्र वृत्ति में सूर्य से सूर्य का अन्तर बताने वाला सूत्र की व्याख्या में कहा है कि - अन्तर का माप सूची श्रेणि से जानना चाहिए, परन्तु वलयाकार से नहीं जानना । और संग्रहणी की लघु वृत्ति में भी यही अभिप्राय है।

यथागमं भावनीयमन्यथा वा बहुश्रुतैः ।
श्रेयसेऽभिनिवेशोऽर्थे, न ह्यागमाविनिश्चते ॥३३॥

आगम द्वारा भी जिसका निश्चय न हो सके ऐसे अनिश्चत पदार्थों में आग्रह नहीं करना यही श्रेयस्कर है इसे समय में आगमानुसार अथवा बहुश्रुतो द्वारा विचार पदार्थों का चिन्तन करना चाहिए । (३३)

चन्द्रार्क पंक्ति विषये, नरक्षेत्राद् बहिः किल ।
मतान्तराणि दृश्यन्ते, भूयांसि तत्रकानिचित् ॥३४॥

अनुग्रहार्थ शिष्याणां दर्श्यन्ते प्रथमं त्विदम् ।
दि गंबराणां तत्कर्म प्रकृत्यादिषु, दर्शनात् ॥३५॥ *युग्मं //*

मनुष्य क्षेत्र के बाहर चन्द्र और सूर्य की पंक्ति के विषय में बहुत मतान्तर दिखते है । उसमें से शिष्यों के उपकार के लिए कई मत कहे है । उसमें प्रथम दिगम्बर का मत उनकी कर्म प्रकृति ग्रन्थ के आधार पर कहा है । (३४-३५)

लक्षार्द्धातिक्रमे मर्त्योत्तरशैलादनन्तरम् ।
वृत्तक्षेत्रस्य विष्कम्भः संपद्यते इयानिह ॥३६॥

षट् चत्वारिंशता लक्षैर्मितोऽस्य परिधिः पुनः ।
कोटयेका पन्त्रचत्वारिंशता लक्षैः समन्विता ॥३७॥

षट्चत्वारिंशत्सहस्राः शतैश्चतुर्भिरन्विताः ।
सप्त सप्तत्यभ्यधिका, योजनानामुदीरिताः ॥३८॥

मानुषोत्तर पर्वत के बाद पचास हजार योजन जाने के बाद गोलाकार क्षेत्र की चौड़ाई छिंयालीस लाख (४६०००००) योजन की होती है और उस क्षेत्र की परिधि एक करोड़ पैंतालीस लाख छियालीस हजार चार सौ सतत्तर (१४५४६४७७) योजन का कहा है । (३६-३८)

प्रति योजन लक्षं चैकेक सूर्येन्दु भावतः ।
प्रत्येक माद्याल्यां पन्चचत्वारिंश शतं तयोः ॥३६॥

प्रत्येक एक-एक लाख योजन में एक चन्द्र और सूर्य होने से एक पंक्ति में एक सौ पैंतालीस चन्द्र सूर्य होते है । (३६)

पूर्वोक्त परिधौ कोटेर्लक्षेभ्यश्चाधिकस्य तु ।
विभक्तस्य नवत्याढय द्विशत्या शशि भास्करैः ॥४०॥

लब्धे क्षिप्ते चन्द्रसूर्यान्तरेषु स्यात्तदन्तरम् ।
लक्षार्द्धं किन्चिदधिक षष्टियुक्तशताधिकम् ॥४१॥

पूर्व में कही परिधि में चन्द्र सूर्य का अन्तर कितना होता है ? उसे कहते हैं कि करोड़ लाख से अधिक (१४५४६४७७) यही परिधि की संख्या कही है उसे दो सौ नब्बे चन्द्र सूर्य की संख्या से भाग देना चाहिए, उसमें जो प्राप्त होता है यही अर्थात् पचास हजार एक सौ साठ (५०१६०) योजन का चन्द्र सूर्य के बीच का अंतर होता है । (४०-४१)

लक्षान्तरे द्वितीयैवं पंङ्क्तिर्लोकान्त सीमया ।
योजन लक्षान्तरालाः, स्युः सर्वा अपि पङ्क्तयः ॥४२॥

इसी तरह से लाख योजन बाद दूसरी पंक्ति आती है । इसी तरह लोक अन्तिम विभाग तक लाख-लाख योजन के अन्तर वाली सर्व पंक्तियां रही हैं । (४२)

तथा - यावल्लक्ष प्रमाणो यो, द्वीपो वाऽप्यथवाऽम्बुधिः ।
स्युस्तावत्यः परिरयश्रेण्यस्तत्रेन्दु भास्वताम् ॥४३॥

जितने लाख योजन प्रमाण द्वीप अथवा समुद्र हो उतने गोलाकार में सूर्य चन्द्र की श्रेणियां है । (४३)

वृद्धिः पंङ्क्तौ द्वितीय स्यामाद्य पंडक्तेरनन्तरम् ।
षण्णां प्रत्येकमर्काणामिन्दूनां च निरूपिता ॥४४॥

तृतीयस्यां तु सप्तानां, वृद्धिः षण्णं ततो द्वयोः ।
पुनः पङ्क्तौ तृतीयस्यां सप्तानां वृद्धिरेव हि ॥४५॥

प्रथम पंक्तिगत चन्द्र सूर्य से दूसरी पंक्ति में छः-छः चन्द्र और सूर्य बढ़ते है और तीसरे में सात-सात की वृद्धि समझना । फिर दो पंक्ति में पुनः छः-छः की वृद्धि समझना । फिर तीसरी आए उसमें सात-सात चंद्र सूर्य की वृद्धि समझना । (४४-४५)

तथाहि- पंङ्क्तयोर्द्वयोर्योजनानां, लक्षमन्तरमेकतः।
परतोऽप्यन्तरं तावत्तो लक्षद्वयाधिके ॥४६॥

विष्कम्भे पूर्व विष्कम्भात्, प्रतिपंक्ति विवर्द्धते ।
लक्षद्वयं योजनानां, तस्यायं परिधिर्भवेत् ॥४७॥

लक्षाणि षड् योजनानां, द्वात्रिंशच्च सहस्त्रकाः ।
पन्च पन्चाशदाढयानि, चत्वार्येव शतानि च ॥४८॥

वह इस तरह - दो पंक्ति का एक दूसरे का अन्तर एक लाख योजन का है और दूसरे तरफ का भी अन्तर एक लाख योजन का है । पूर्व विष्कंभ से दो लाख योजन प्रत्येक पंक्ति में बढ़ती है और उन दो लाख योजन की परिधि छः लाख बत्तीस हजार, चार सौ पचपन (६३२४५५) योजन का होता है । (४६-४८)

पूर्व पूर्व पंङ्क्तिगत परिधिष्वस्य योजनात् ।
अग्रयाग्रयपंक्तिपरिधिः सर्वत्र क्षेप एष वै ॥४९॥

पूर्व-पूर्व पंक्तिगत परिधि में परिधि मिलाने से आगे से आगे की पंक्ति की परिधि आती है । इस तरह सर्वत्र मिलाना चाहिए । (४९)

अथैतस्यादिमपंक्ति परिधौ क्षेपतः किल ।
द्वितीय पंङ्क्ति संबंधी, परिधिः स भवेदियान् ॥५०॥

एक पन्चाशता लक्षैरेका कोटी समन्विता ।
अष्टसप्तत्या सहस्त्रैर्द्वात्रिंशैर्नवभिशतैः ॥५१॥

इस तरह प्रथम पंक्ति की परिधि में उक्त संख्या मिलाने से दूसरे पंक्ति सम्बन्धी परिधि होती है, वह इस तरह-एक करोड इकावन लाख अठत्तर हजार नौ सौ बत्तीस (१,५१,७८,९३२) योजन की दूसरी पंक्तिगत क्षेत्र की परिधि होती है। (५०-५१)

षडेव लक्षाः पूर्वस्मात्परिधेरधिकास्ततः ।
षण्णां वृद्धिः प्रतिलक्षमेकैकार्केंदुवृद्धितः ॥५२॥

पूर्वोक्त परिधि में छः लाख की भी वृद्धि होने से और प्रत्येक लाख योजन को एक-एक चन्द्र सूर्य की वृद्धि होने से छः-छः चन्द्र, सूर्य की वृद्धि होती है। (५२)

एवं पंङ्क्तौ द्वितीयस्यां, संमिता लक्ष संख्यया ।
प्रत्येकमेक पन्चाशं, शतमिन्दु दिवाकराः ॥५३॥

इस तरह दूसरी पंक्ति में एक-एक लाख की संख्या द्वारा एकत्रित करते एक सौ इकावन (१५१) चन्द्र और उतने ही सूर्य होते हैं। (५३)

द्वितीय पंक्ति परिधौ, ततः क्षेपाङ्कयोगतः ।
तृतीया पंक्ति परिधिरेतावानिह जायते ॥५४॥

एका कोटयष्ट पन्चाशल्लक्षाण्येकादशापि च ।
सहस्राणि त्रिशती च सप्ताशीतिसमन्विताः ॥५५॥

दूसरी पंक्ति की परिधि में उक्त छः लाख बत्तीसे हजार, चार सौ पचपन (६३२४५५) की संख्या मिलाते तीसरी पंक्ति की परिधि एक करोड़ अट्ठावन लाख ग्यारह हजार तीन सौ सत्तासी (१५८११३८७) योजन होता है। (५४-५५)

पूर्वस्मात्परिधेः सप्त, लक्षा जाता इहाधिकाः ।
वृद्धिस्तत स्तृतीयास्यां सप्तानामिन्दुभास्वताम् ॥५६॥

पूर्वोक्त जो दूसरी पंक्ति की परिधि की संख्या है, उसमें सात लाख की वृद्धि हो जाने से, यह तीसरी पंक्ति में सात-सात चन्द्र, सूर्य की वृद्धि होती है। (५६)

तुर्यापन्चम्योस्तु पंक्तयोः षण्णषण्णततः परम्।
वृद्धिः षष्ठयां सप्तानां षण्णां षण्णां ततो द्वयोः ॥५७॥

लोकान्तं यावदाधिक्यमेवमिन्दुविवस्वताम् ।
वाच्यमेवं पुष्करोत्तरार्द्धेऽष्टास्वपि पङ्क्ति षु ॥५८॥

चौथी और पांचवी पंक्ति की परिधि में छः-छः लाख की वृद्धि हो जाने से चौथी और पांचवी पंक्ति में छः-छः सूर्य चन्द्र की वृद्धि होती है और फिर भी जो छठी पंक्ति है उसमें सात लाख की वृद्धि हो जाने से वहां सात-सात चन्द्र सूर्य की वृद्धि होती है और फिर आगे की दो पंक्ति में छः-छः चन्द्र सूर्य की वृद्धि होती है, इस तरह लोकांत तक चन्द्र, सूर्य की वृद्धि करते जाना चाहिए । (५७-५८)

सप्तत्रिंशदधिकानि, शतान्येव त्रयोदश ।
प्रत्येकमिन्दु सूर्याणां, भवन्ति सर्व संख्यया ॥५९॥

पुष्करार्ध द्वीप के उत्तरार्ध में आठ पंक्तियों में तेरह सौ सताईस (१३२७) और उतने ही (१३२७) सूर्य की संख्या कही है । (५९)

एतदर्थ संग्राहिकाश्च पूर्वाचार्यकृता एव इमा गाथाः -

"माणुस न गाओ परओ लक्खद्धे होई खेत्त विक्खंभो ।
छायालीसं लक्खा परिही तस्सेग कोडी उ ॥६०॥"

पणयालीसं लक्खा छयालीसं च जोअण सहस्सा ।
चउरो सयाइं तह सत्तहत्तरी जोअणाणं तु ॥६१॥

साहि अ जो अण लक्खद्धंगंतरठिय ससीण सूराणं ।
पंतीए पढमाए पणयालसयं तु पत्तेयं ॥६२॥

तप्परओ पंतीओ जोअण लक्खंत राओ सव्वाओ ।
जों जइलक्ख दीवुदहि तत्थ तावइय पंतीओ ॥६३॥

वुड ढी दुइयगपंतीओ छण्ह तइयाए होइ सत्तण्हं ।
तप्परओ दुदुपंती छग वुड्ढी तइस सग वुड्ढी ॥६४॥

इसी अर्थ का प्रतिपादन करती पूर्वाचार्य कृत गाथाएं इस तरह है:- मानुषोत्तर पर्वत बाद पचास हजार योजन जाने के बाद, वहां के क्षेत्र की चौड़ाई छियालीस लाख योजन की होती है, और उसकी परिधि एक करोड़ पैंतालीस लाख छियालीस हजार चार सौ सत्तात्तर योजन होती है, और साधिक पचास हजार

योजन के अंतर में रहे चन्द्र और सूर्य की प्रथम पंक्ति में एक सौ पैंतालीस चन्द्र और उतने ही सूर्य होते हैं और उसके बाद लाख-लाख योजन के अन्तर में प्रत्येक पंक्ति है और जो-जो द्वीप अथवा समुद्र जितने लाख योजन की चौड़ाई वाले हो वहा उतनी सूर्य चन्द्र की पंक्तियां जानना और दूसरी पंक्ति में छः-छः चन्द्र सूर्य की वृद्धि और तीसरे में सात-सात चन्द्र, सूर्य की वृद्धि होती है, और वहां फिर प्रत्येक दो पंक्ति में छः-छः की वृद्धि और तीसरे में सात-सात की वृद्धि होती है। (६०-६४) इस तरह दिगम्बर का मत पूर्ण होता है।

मतान्तरं करणविभावनायामिदं स्मृतम् ।
लक्षार्द्धातिक्रमे पंक्तिराद्या मर्त्योत्तराचलात् ॥६५॥

दीप समुद्र में चन्द्र, सूर्य की संख्या विषयक करण की विचार करने में इससे दूसरा मत भी कहते हैं कि - मानुषोत्तर पर्वत के बाद पचास हजार योजन जाने के बाद प्रथम पंक्ति चन्द्र, सूर्य की आती है। (६५)

द्विसप्तति: शशभृतां, द्वि सप्ततिश्च भास्वताम् ।
चतुश्चत्वारिंशमाद्य पङ्क्तावेवं शतं भवेत् ॥६६॥

उस प्रथम पंक्ति में बहत्तर (७२) चन्द्र और उतने ही सूर्य होते है इन दोनों को मिलाकर एक सौ चवालीस (१४४) होते है। (६६)

यावद्योजनलक्षाणि, द्वीप: पाथोनिधिश्च य: ।
पङ्क्तयस्तत्र तावत्यो, मतेऽत्रापि समं ह्यद: ॥६७॥

इस मतानुसार भी जितने लाख योजन प्रमाण द्वीप अथवा समुद्र हो उतनी पंक्ति में चन्द्र और सूर्य कहे हैं। यह बात दोनों मतानुसार समान है। (६७)

भान्विन्द्वो: समुदितयोस्तत: शेषासु पंक्तिषु ।
चतुष्कस्य चतुष्कस्य, वृद्धिर्लोकान्तसीमया ॥६८॥

परन्तु इस मत के अनुसार प्रत्येक पंक्ति में दो-दो चन्द्र और सूर्य मिलकर चार-चार की वृद्धि लोकान्त तक जानना। (६८)

एवंच पंक्तावष्टभ्यां द्वीपार्द्धेऽत्रेन्दु भास्वताम् ।
संजातं समुदितानां, द्विसप्तत्यधिकं शतम् ॥६९॥

इसी तरह इस द्वीपार्ध की आठ पंक्ति में चन्द्र, सूर्य का जोड़ करने से एक सौ बहत्तर (१७२) होता है । (६९)

एवं च पुष्करार्द्धेऽस्मिन्, समुदितेन्दु भास्वताम् ।
शतानि द्वादश चतुःषष्टिश्च सर्व संख्यया ॥७०॥

इस मतानुसार शेष पुष्करार्ध में चन्द्र, सूर्य की सब संख्या बारह सौ चौंसठ (१२६४) होता है । (७०)

तत्तत्पंक्तिस्थपरिधौ स्व स्व भान्विन्दुभाजिते ।
लब्धमन्तरमर्केन्द्वो र्द्विघ्नमिन्द्वोस्तथऽर्कयोः ॥७१॥

उस-उस पंक्ति में रहे परिधि की संख्या उस-उस पंक्तिगत चन्द्र, सूर्य की संख्या द्वारा भाग देने से सूर्य, चन्द्र का अन्तर आता है, और चन्द्र से चन्द्र का और सूर्य से सूर्य का अन्तर से दो गुणा करना । (७१)

यथाऽऽद्यपंक्ति संबन्धि पूर्वोक्त परिधौ किल ।
चतुश्चत्वारिंशशताऽर्कैंदु भक्ते भवेदिदम् ॥७२॥

लक्षमेकं सहस्रं च स्फुटं सप्तदशोत्तरम् ।
चतुश्चत्वारिंश शतभक्तस्य, योजनस्य च ॥७३॥

एकोन त्रिंशदंशाश्चा - कैंन्द्वोरेतन्मिथोऽन्तरम् ।
अस्मिंश्च द्वि गुणेऽन्योऽन्यं भान्वोतिरन्द्वोश्चतद्भवेत् ॥७४॥

आद्य पंक्तिगत परिधि की संख्या को एक सौ चवालीस स्वरूप चन्द्र सूर्य की संख्या से भाग देने पर इस तरह चन्द्र सूर्य का अन्तर आता है, वह इस तरह एक लाख एक हजार सत्रह योजन और एक योजन के एक सौ चवालीस अंश करे उसमें से उन्तीस अंश (१०१०१७- २९/१४४) और यही संख्या दुगना करने से चन्द्र से चन्द्र का और सूर्य से सूर्य का अन्तर आता है वह इस तरह - दो लाख दो हजार चौंतीस (२०२०३४ २९१४४) योजन होता है । (७२-७४)

द्वै गुण्यायात्र भागानां, द्वाभ्यां खल्वपवर्त्यते ।
छेदकात् छेदके तष्टे, ह्यंशराशिर्भवेन्महान् ॥७५॥

इस भाग की राशि को दोगुना करने के लिए पहले दो द्वारा गुणा करना, दो से गुणा करने के बाद दो द्वारा १४४ का छेद उडाते भाग में ७२ आता है इससे २६/७२ अंश होता है । २६/१४४×२/१×२६/७२ होता है । (७५)

मतेऽस्मिंश्च प्रतिद्वीप वार्द्धीन्दुतिग्मरोचिषाम् ।

संख्याभिधायि करणं, न प्रोक्तं विस्तृतेर्भिया ॥७६॥

इस मत में प्रत्येक द्वीप समुद्र के सूर्य चन्द्र की संख्या को बताने वाला करण विस्तार के भय से यहां नही कहा । (७६)

तदर्थिभिस्तु करण विभावना विभाव्यताम् ।

पूर्व संग्रहणी टीका, कृता वा मलयर्षिभिः ॥७७॥

उस विस्तृत करण के अर्थी जनों को करण विभावना स्वयं समझ लेना चाहिए, अथवा तो श्री मलयगिरि जी महाराज ने पूर्व समय में संग्रहणी की टीका में कहा हो है । (७७)

एतन्मत संग्राहिके च गाथे इमे -

चोयालसयं पढमिल्लुयाएं पंतीइ चंदसूराणं ।

तेण परं पंतीओ चउउत्तरियाएं बुड्ढीए ॥७८॥

वावत्तरि चंदाणं वावत्तरि सूरियाण पंतीओ ।

पढमाए अंतर पुण चंदा चंदस्स लक्खदुंग ॥७९॥

इस मत का संग्रह करने वाली ये दो गाथा कहते है :- प्रथम पंक्ति में सूर्य चन्द्र एक सौ चवालीस (१४४) है, और उसके बाद चार-चार की वृद्धि से पंक्तिया है । (७८) सूर्य चन्द की बहत्तर बहत्तर पंक्तियां है, एक चन्द से दूसरे चन्द्र का अन्तर दो लाख योजन ही है । (७९)

''अत्र 'लक्खदुगं' ति लक्षद्विकं विंशत्या शतैश्चतुस्त्रिंशैर्योजनस्य द्वि सप्ततिमैरेकोनत्रिंशद्भागैराधिकं बोद्धव्यं ॥''

'यहां पर दो लाख योजन जो कहा है उसमें २०३४- २९/७२ योजन अधिक समझ लेना चाहिए ।'

श्रेणिः परिरयाख्यैव, मतयोरेतयोर्द्वयोः ।
न तु सूचीश्रेणिस्त्र, वेत्ति तत्वं तु केवली ॥८०॥

इन दोनों मत में श्रेणी गोलाकार से समझना–परिरय श्रेणि है परन्तु सूची श्रेणी नहीं है । इस विषय में तत्व तो केवली ज्ञानी जानते है । (८०)

योगशास्त्र चतुर्थ प्रकाशवृत्तावप्युक्तं - मानुषोत्तरात्परतः पन्चाशता योजन सहस्त्रैः परस्पर मन्तरितरिश्चन्द्रान्तरिताः सूर्याः सूर्यान्तरिताश्चन्द्राः मनुष्यक्षेत्रीय चन्द्र सूर्य प्रभाणाद् यथोत्तरं क्षेत्रपरिधेर्वृद्धया संख्येया वर्द्धमानाः शुभ लेश्या ग्रह नक्षत्र तारा परिवारा घंटाकारा असङ्खयेया आस्वयंभूरमणाल्लक्ष–योजनान्तरिताभिः पंक्तिभिस्तिष्ठन्ती" ति, तथा परिशिष्ट पर्वण्यपि श्री हेमचन्द्र सूरिभिः परिरय श्रेणि रेवोपमिता, तथाहि राजगृह वप्रवर्णने-

तत्र राजत सौवणैः, प्राकारः कपिशौर्षकैः ।
भाति चंद्रांशुमद्बिम्बैर्मर्त्योत्तर इवाचलः ॥१॥

इति परिरय श्रेणिः ॥

योगशास्त्र के चौथे प्रकश की टीका में भी कहा है कि - मानुषोत्तर पर्वत से आगे पचास हजार योजन के अन्तर में चन्द्र और पचास हजार योजन के अन्तर में सूर्य रहा है, वह इस तरह - चन्द्र, सूर्यान्तरित है और सूर्यो चन्द्रांतरित है ये चन्द्र सूर्य विमान से ऊंचा है ? उसका वर्णन करते हुए कहते हैं :- मनुष्य क्षेत्र के चन्द्र, सूर्य विमानों के प्रमाण से आगे से आगे क्षेत्र की परिधि की वृद्धि के कारण से संख्यात गुणा, शुभ लेश्या (शुभ कान्ति) वाले ग्रह, नक्षत्र, तारों के परिवार से युक्त घंटा आकार वाले असंख्यात् चन्द्र, सूर्य अन्तिम स्वयं भूरमण समुद्र तक लाख–लाख योजन के अन्तर में पंक्तिबद्ध रहे हैं ।

परम पूज्य कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य भगवन्त श्री हेमचन्द्र सूरीश्वर जी महाराज ने परिशिष्ट पर्व में भी परिरय श्रेणि की ही उपमा दी है, वह इस तरह से राजगृह नगर के वप्र के वर्णन में कहा है कि जैसे चन्द्र सूर्य के बिम्ब द्वारा मानुषोत्तर पर्वत शोभायमान है वैसे रजत सुवर्ण के कांगार से राजगृह नगर शोभता है । (१) यह परिचय श्रेणि है ।

परतः पुष्कर द्वीपात्पुष्करोदः पयोनिधिः ।
समन्ततो द्वीपमेनमवगूह्यप्रतिष्ठितः ॥८१॥

पुष्करवर द्वीप के बाद पुष्करोद नाम का समुद्र आता है यह समुद्र द्वीप के चारों तरफ से लपेटा हुआ है । (८१)

अतिपथ्यमतिस्वच्छं, जात्यं लघु मनोरमम् ।
स्फुटस्फटिकरत्नाभमस्य वारि सुधोपमम् ॥८२॥

इस समुद्र का पानी, अतिपथ्य अति हितकारी, सुन्दर, स्वच्छ, श्रेष्ठ जाति का वजन में लघु, आह्लाद शुद्ध स्फटिक रत्न की प्रभा समान उज्जवल और अमृत समान है । (८२)

सदा सपरिवाराभ्यां, भासुराभ्यां महौजसा ।
श्रीधर श्रीप्रभाभिख्दैवताभ्यामहर्निशम् ॥८३॥

परिवार युक्त महातेज से देदीप्यमांन श्रीधर और श्रीप्रभनाम के दो देवताओं द्वारा यह समुद्र हमेशा शोभायमान है । (८३)

इन्द्वर्काभ्यां पुष्करवद्विभात्यस्योदकं यतः ।
पुष्करोदस्तत एष, भुवि ख्यातः पयोनिधिः ॥८४॥

सूर्य और चन्द्र द्वारा उसका पानी मानो कमलयुक्त हो उस तरह शोभता है, इस से यह समुद्र, पृथ्वी ऊपर पुष्करोद नाम से प्रख्यात है । (८४)

अस्य योजन लक्षाणि, द्वात्रिंशच्चक्रवालतः ।
विस्तारः परिधिस्त्वस्य, भाव्यो व्यासानुसारतः ॥८५॥

इस समुद्र का विस्तार गोलाकार से बत्तीस लाख योजन है और इसकी परिधि व्यास अनुसार से समझ लेना चाहिए । (८५)

परतः पुष्कराम्भोधेर्द्वीपोऽस्ति वारूणीवरः ।
सद्वारूणीव वाप्यादौ, जलमस्येत्यसौ तथा ॥८६॥

देवौ द्वावत्र वरूण वरूणप्रभसंज्ञितौ ।
तत्स्वामिकत्वाद्वरूणवरोऽप्येष निगद्यते ॥८७॥

चतु:षष्ठिर्योजनानां, लक्षाणि चैष विस्तृतः ।
चक्रवालतया ज्ञेयः परिधिस्त्वस्य पूर्ववत् ॥८८॥

इस पुष्करादि समुद्र के बाद वारूणीवर नाम का द्वीप आता है । इस द्वीप की बावडी आदि में पानी, वारूणी मदिरा के स्वाद समान है तथा वरूण और वरूण प्रभ नाम के दो देव इस द्वीप के स्वामी है इस कारण से इस द्वीप को वरूणवर भी कहते है । इस द्वीप का विस्तार गोलकार चौंसठ लाख (६४,००.०००) योजन है और इसकी परिधि पूर्व के समान अर्थात व्यास के आधार पर विचार करना । (८६-८८)

वारूणीवरोदनामा, द्वीपादस्मात्परोऽम्बुधिः ।
मदकारिवरास्वादोदक प्राग्भरभासुरः ॥८९॥

इस द्वीप के आगे वारूणी वरोद नामक समुद्र आता है । जो मादक और स्वादिष्ट पानी के समूह से शोभायमान है । (८९)

सुजातपरमद्रव्य सम्मिश्रमदिरारसात् ।
अति स्वादूदक योगात्, ख्यातो ऽयं तादृशाभिधः ॥९०॥

सुन्दर रूप तैयार किया और श्रेष्ठ द्रव्य से युक्त मदिरा के रस सदृश अति स्वाद वाला पानी से युक्त यह समुद्र वारूणी वरोद नाम से प्रसिद्ध है । (९०)

वारूणि वारूण कान्त स्वामिकयोगतोऽथवा ।
स्याद्वारूण वरोदाख्यो, वरूणोदोऽप्ययं भवेत् ॥९१॥

अथवा वारूणी और वारूणकांत नाम के अधिष्ठायक देव के सम्बन्ध से यह वारूण वरोद नाम से भी प्रसिद्ध है । (९१)

एका योजन कोटयष्टाविंशत्या लक्षकैः सह ।
चक्रवालतयैतस्य, विस्तारो निश्चितो बुधैः ॥९२॥

यह समुद्र गोलाकार है इसका विस्तार बुध पुरुषों ने एक करोड़ अटठाईस लाख (१२८०००००) योजन का कहा है ।

अथ क्षीखरो द्वीपः परतोऽस्मात्पयो निधेः ।
क्षीरोपमं जलं वाप्यादिषु यस्येत्यसौ तथा ॥९३॥

इस समुद्र से आगे क्षीरवर नाम का द्वीप आता है, उसकी वावडी आदि में दूध समान जल होने से इसका नाम क्षीरवर कहलाता है । (६३)

पुण्डरीक पुष्पदन्तौ, यद्वा क्षीरोज्जवलौ सुरौ ।
अत्रेति तत्स्वामिकत्वात्, ख्यातः क्षीरवराभिधः ॥६४॥

अथवा तो दूध समान उज्जवल पुंडरीक और पुष्पदंत नामक देवता इसके स्वामी होने से क्षीरवर नाम से प्रसिद्ध है । (६४)

विष्कम्भो ऽस्य योजनानां, द्वे कोटयौ चक्रवालतः।
षट् पन्चाशल्लक्ष युक्ते, परिधिश्चिन्त्यतां स्वयम् ॥६५॥

इसकी चौड़ाई गोलाकार दो करोड़ छप्पन लाख (२, ५६, ००, ०००) योजन की है इसकी परिधि स्वयं विचार कर लेना चाहिए । (६५)

ततः क्षीरवर द्वीपात्परं क्षीरोदवारिधिः ।
कर्पूरडिण्डीरपिण्डऽम्बरपाण्डुरः ॥६६॥

त्रिभागावर्तित चतुर्भागसच्छर्करान्वितम् ।
स्वादनीयं दीपनीयं, मदनीयं वपुष्मताम् ॥६७॥

बृंहणीयं च सर्वाङ्गेन्द्रियाह्लादकरं परम् ।
वर्णगन्धरसस्पर्शसंपन्नमतिपेशलम् ॥६८॥

ईदृग् यच्चक्रिगोक्षीरं तस्मादपि मनोहरम् ।
अस्य स्वादूदकमिति, क्षीरोदः प्रथितोऽम्बुधिः ॥६९॥

क्षीरवर द्वीप से आगे क्षीरोद समुद्र आता है जो कपूर के समूह समान फेन-झाग के पिंड समान उज्जवल है । इस समुद्र का पानी कैसा है वह कहते हैं कि - अति गरम करने से तीन भाग उसका जल गया है और इससे चौथा भाग शेष रहा स्वच्छ मिसरी से युक्त, स्वादिष्ट, शरीर को प्रदीप करने वाला, लोगों को मद आवेग उत्पन्न करने वाला, शरीर को पुष्ट और उत्तेजित करने वाला, सर्वांग इन्द्रिय को आल्हाद करने वाला, अति सुन्दर वर्ण, गंध, रस स्पर्श से-युक्त, अतिप्रिय, मनोहर जो चक्रवर्ती के लिए गाय का दूध हो उससे भी मनोहर और स्वादिष्ट इसका पानी है, इससे इसका नाम क्षीरोदधि से प्रसिद्ध है । (६६-६९)

तथा च - जीवाभिगम सूत्रे - "खंडमच्छंडि ओववेए रण्णो चाउरंत चक्क वट्टिस्से".त्यादि ।

और जीवाभिगम सूत्र में कहा है कि - चतुरंत चक्रवर्ती राजा की खांड और मत्संडी खांड से विशेष मधुर द्रव्य से युक्त जो द्रव्य हो वैसा यह होता है इत्यादि।

क्षीरोज्जवलाङ्ग विमल विमल प्रभदेव योः ।
सम्बन्धि सलिलं ह्यस्येत्यपि क्षीरोद वारिधिः ॥१००॥

क्षीर समान उज्जवल शरीर वाले विमल और विमलप्रभ इस समुद्र के अधिष्ठायक देव होने से इस समुद्र का दूसरा नाम क्षीरोदवारिधि है । (१००)

जिन जन्मादिषु कृतार्थोदकत्वादिवोल्लसन् ।
समीर लहरी संगरङ्गत्कल्लोलकैतवात् ॥१०१॥

श्री तीर्थंकर भगवान के जन्म कल्याण के उत्सव आदि प्रसंगों पर उस पानी का उपयोग होने के कारण पवन की लहर के संग से उछलते कल्लोल-तरंगों के बहरने से अपने कृतार्थता से वह पानी मानो उल्लास व्यक्त करता है । (१०१)

गुरु श्री कीर्ति विजय यशोभिस्तुलितो बुधैः ।
इत्युद्भूताद् भूतानन्दाद्, द्विगुणश्चैत्यवानिव ॥१०२॥

गुरुदेव श्री कीर्ति विजय जी महाराज के अति उज्जवल यश के साथ में पंडितों द्वारा अपनी तुलना की है । ऐसा जानकर, उस कारण से उत्पन्न हुआ अद्भुत आनंद से मानो यह समुद्र दो गुणा श्वेतता को प्राप्त करता है ।

यहां ग्रन्थकार ने क्षीर समुद्र की धवलता को उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा बताया है पूज्य गुरुदेव श्री कीर्ति विजय जी महाराज की अति उज्जवल यशोराशि के साथ में पंडितों द्वारा अपने यश की तुलना की है, ऐसा जानते उससे अनहद आनंद उत्पन्न हुआ है । और इससे ही क्षीर समुद्र की उज्जवलता द्विगुण बन गयी है ।' यहां केवल गुरुदेव के पक्ष में एक ही अपेक्षा से यह श्लोक रचा हो ऐसा लगता है । उनका गुरु के प्रति भक्तिभाव अनहद था । आगे भी इसी तरह गुरुदेव का स्मरण उन्होंने किया है । (१०२)

जिनस्नात्रार्थकलशैरलङ्कृततटद्वयः ।

गुरुः शुश्रुषुभिः शिष्यैरिव स्वच्छामृतार्थिभिः ॥१०३॥

देवताओं द्वारा जिन स्नात्र के लिए जल भरकर तैयार किये कलशों से जिसके दोनों किनारे शोभ रहे है ऐसा यह समुद्र गुरुसेवा की इच्छा वाले शिष्यों से अलंकृत गुरु के समान शोभता है । (१०३)

दिव्यकुम्भेष्वाहरत्सु प्रणम्य सिरसोदकम् ।

लोलत्कल्लोलनिनदैरनुज्ञां वितरन्निव ॥१०४॥

मस्तक द्वारा नमस्कार करके स्वच्छ अमृत के अर्थी देवों द्वारा दिव्य कुभों में पानी लेते समय तरंग कल्लोल के आवाज-घोष द्वारा मानो यह क्षीर सागर अनुज्ञा दे रहा है । (१०४)

समन्ततस्टोद्भिन्नचलद्बुद्बुददन्तुरः ।

ताटंङ्क इव मेदिन्याः, स्फुरन्मौक्तिक पंङ्क्तिकः ॥१०५॥

इस क्षीर सागर के चारों तरफ किनारे पर उत्पन्न होते चपल बुलबुल मानो उज्जवल दांत वाला हो तथा यशमान मोतियों की पंक्ति से शोभायमान मानो पृथ्वी का हार हो ऐसा आभास होता है । (१०५)

लोलकल्लोल संघट्ओच्छलच्छीकरकैतवात् ।

सिद्धान्नभोगतान् मुक्ता करणैरवकिरन्निव ॥१०६॥

चपल तरंगों के परस्पर टकराने से उछलते पानी के बिन्दु के बहाने से मानो मुक्तागणों द्वारा आकाश में स्थिर रहे सिद्धात्मा को चावल से बधाते (स्वागत करते) हो इस तरह यह समुद्र दिखता है । (१०६)

धृतो निर्णिज्य विधिनातपाय स्थिरभास्वताम् ।

शोभतेऽसौमध्यलोकनिचोलक इवोज्जवलः ॥१०७॥ *सप्तभिः कुलकं ।*

स्थिर सूर्य के आतप के लिए मानो ब्रह्मा द्वारा स्थिर करके धारण किया हो इस प्रकार यह समुद्र मध्यलोक रूपी चंदरवा (चंदोवा-चांदनी) मध्य में लटकते उज्जवल गुच्छा के समान शोभता है । (१०७)

अस्य द्वादश लक्षाढया, विष्कम्भभसः पन्च कोटयः।
योजनानां परिधिस्तु, स्वयं भाव्यो मनीषिभि ॥१०८॥

इस क्षीर सागर की पांच करोड़ और बारह लाख (५, १२, ००, ०००) योजन का चौड़ाई है और परिधि तो स्वयं बुद्धिशालियों जान लेना चाहिए। (१०८)

परतोऽस्मात्पयोराशेर्द्वीपो धृतवराभिधः ।
धृत तुल्यं जलं वाप्यादिषु यस्येत्यसौ तथा ॥१०६॥

धृतावर्णौ च कनक कनक प्रभ नामकौ ।
स्वामिनाविह तद्योगात्, ख्यातो धृत वराभिधः ॥११०॥

इस समुद्र के बाद चारों तरफ फैला घृतवर नाम का द्वीप है, उनकी वावड़ी आदि में घृत (घी) के समान पानी है, इससे वह घृतवर द्वीप कहलाता है अथवा कनक और कनक प्रभ नाम के दो देव जो घृत समान वर्ण वाले हैं। वे इस द्वीप के स्वामी होने से यह द्वीप घृतवर नाम से प्रसिद्ध है। (१०६-११०)

चतुर्विंशति लक्षाढया, दश योजन कोटयः ।
व्यासोऽस्य परिधिर्ज्ञेयः, स्वयं व्यासानुसारतः ॥१११॥

एवमग्रेऽपि ।

इस द्वीप का व्यास, दस करोड़ चौबीस लाख (१०, २४, ००, ०००) योजन है और इस व्यास के अनुसार से परिधि स्वयं समझ लेना। इस तरह से आगे भी समझ लेना। (१०१)

द्वीपादस्मात्परो वार्द्धिघृतोदाख्यो विराजते ।
हैयङ्गवीनसुरभिस्वादुनीरमनोरमः ॥११२॥

अयं कान्त सुकान्ताभ्यां, स्वामिभ्यां परिपालितः।
वाणिजाभ्यां घृतकुतूरिव साधारणी द्वयोः ॥११३॥

इस द्वीप से आगे घृतोद नामक समुद्र शोभायमान है जोकि घी समान सुगंधमय स्वादिष्ट पानी से मनोहर है। दो के बीच में एक साधारण घी के कुंडे को जैसे दो व्यापारी संभाल कर रखते है वैसे कान्त और सुकान्त नामक दो देवों से अधिष्ठित है।

विष्कम्भोऽस्य योजनानां, विंशतिः किल कोटयः ।

अष्टचत्वारिंशताऽऽढ्या, लक्षैर्दक्षैर्निरूपिताः ॥११४॥

पंडित पुरुषों ने इसकी चौड़ाई, बीस करोड़ अड़तालीस लाख (२०, ४८, ००, ०००) योजन प्रमाण कहा है । (११४)

द्वीपः क्षोदवराभिख्यः, परोऽस्मात्तोयराशितः ।

निर्जरौ स्वामिनावस्य, स्तः सुप्रभ महाप्रभौ ॥११५॥

इस समुद्र के बाद क्षोदवर नामक द्वीप है और उसके स्वामी सुप्रभ और महाप्रभ नामक दो देव है । (११५)

क्षोदो नाम क्षोदरसः स इक्षुरस उच्यते ।

तद्रूपमुदकं वाप्यादिषु यस्येत्यसौ तथा ॥११६॥

क्षोद यानि क्षोदरस अर्थात इक्षुरस है । इस द्वीप की वावड़ी कुंए आदि में इक्षुरस समान होने से यह द्वीप क्षोदवर नाम से प्रसिद्ध है । (११६)

चत्वारिंशत्कोटयो ऽस्य विष्कम्भः कथितो जिनैः ।

षण्ण वत्याऽन्विता लक्षैः, सुरलक्ष निषेवितैः ॥११७॥

लाखों देवों द्वारा उपासना किया गया यह द्वीप श्री जिनेश्वर भगवान ने चौड़ाई में चालीस करोड़, छियानवे लाख (४०९६०००००) योजन का कहा है । (११७)

ततः परन्तु क्षोदोदाभिधानः खलु वारिधिः ।

वर्ततेऽत्यंत मधुरधुरन्धरपयोधरः ॥११८॥

उसके बाद क्षोदोद अर्थात् क्षोद = इक्षुरस, उद=पानी नाम का समुद्र है जो अत्यंत मधुर पानी को धारण करता है । (११८)

त्वगेलाकेसरैस्तुल्यं, त्रिसुगन्धि त्रिजातकम् ।

मरिचैश्च समायुक्तं चतुर्जातकमुच्यते ॥११९॥

दालचीनी, इलायची और केशर समान सुगंधी द्रव्यों से युक्त इस समुद्र का पानी सुगन्धमय और त्रिजातक कहलाता है एवम् काली मिर्च से युक्त होने से वह चतुर्जातक भी कहलाता है । (११९)

ततश्च - चतुर्जातकसम्मिश्रात्त्रिभागावर्त्तितादपि।
अति स्वादु वारिरिक्षुरसादप्येष तोयधिः ॥१२०॥

वह इस प्रकार से चतुर्जातक अर्थात उपरोक्त चार प्रकार के द्रव्यों से मिश्रित हो वह और तीन भाग तीन काल, गरम किया हो वह इक्षुरस से अति मधुर इस समुद्र का जल होता है। (१२०)

एवं च लवणाम्भोधिः, कालोदः पुष्करोदधिः।
स्वयंभूर्वारुणीवार्द्धिर्घृतक्षीरपयोनिधी ॥१२१॥

एतान् विहाय सप्ताब्धीन्, सर्वेऽप्यन्ये पयोधयः।
तादृगिक्षुरसोत्कृष्ट स्वादूदकमनोरमाः ॥१२२॥

इस प्रकार लवण समुद्र कालोदधि समुद्र पुष्करोदधि समुद्र, स्वयं भूरमण समुद्र, वारूणीवर समुद्र, घृतवर समुंद्र और क्षीरोदधि समुद्र इन सात समुद्रों को छोड़कर अन्य सब समुद्रों का पानी इक्षुरस के स्वाद से भी उत्कृष्ट सर्वश्रेष्ठ स्वादिष्ट और मनोहर होता है। (१२१-१२२)

एकाशीतीः कोटयोऽथ, लक्षा द्विनवतिस्तथा।
पयोधेरस्य वलय विकम्भः परिकीर्तितः ॥१२३॥

इस समुद्र का वलय चौड़ाई इकासी करोड़ बयानवे लाख (८१९२००००००) योजन कहा गया है। (१२३)

अथ नन्दीश्वरो द्वीपः, क्षोदोदाम्भोनिधेः परः।
प्ररूपितो विष्टपेष्टैरष्टमः कष्टमर्द्दिभिः ॥१२४॥

कष्ट को नाश करने वाला त्रिभुवन पतियों ने क्षोदोद नाम के इस समुद्र के बाद आठवां नंदीश्वर नाम द्वीप कहा है। (१२४)

मधुरेक्षु रस स्वादूदकेषु दीर्घिकादिषु।
जलाश्रयेषु फुल्लाब्जमकरन्द सुगन्धिषु ॥१२५॥

स्फुरत्पुष्प फलोद्दामाभिरामद्रुमशालिषु।
अत्रोत्पात पर्वतेषु, सर्वरत्न मयेषु च ॥१२६॥

आसते शेरते स्वैरं, क्रीडन्ति व्यन्तरामराः ।
व्यन्तरीभिः सह प्राच्य पुण्यानां भुञ्जते फलम् ॥१२७॥

इस नंदीश्वर द्वीप में मधुर इक्षुरस समान स्वादिष्ट तथा सम्पूर्ण विकसित कमलों में से बहते मकरंद से सुगंधित बनी जलवाली वावड़ी आदि जलाशयों में तथा खिले हुए पुष्प और फलों से अत्यन्त सुन्दर शोभायमान सर्वरत्न मय उत्पात पर्वत ऊपर व्यंतरियों के साथ में व्यंतर देवता निवास करते है, आराम करते हैं, इच्छानुसार क्रीड़ा करते हैं और वे इस तरह पूर्व के पुण्य से कर्म भोगते है । (१२४-१२६)

इहत्यमाधिपत्यं द्वौ, कैलासहरिवाहनौ ।
धत्तः समृद्धौ देवौ द्योः, सूर्याचन्दमसाविव ॥१२८॥

जैसे आकाश के स्वामित्व को सूर्य, चन्द्र धारण करते हैं, वैसे इस नंदीश्वर द्वीप का आधिपत्य कैलास और हरिवाहन नामक समृद्ध देव धारण करते हैं । (१२८)

एवं नन्द्या समृद्धयाऽसावीश्वरः स्फातिमानिति ।
नन्दीश्वर इति ख्यातो, द्वीपोऽयं सार्थकाभिधः ॥१२६॥

इस तरह से यह द्वीप आनंद कल्याणकारी, समृद्धि से बढ़कर होने से नंदीश्वर नाम का सार्थक है । (१२६)

त्रिषष्टया कोटिभिर्युक्तमेकं कोटिशतं किल ।
लक्षैश्चतुरशीत्याढयमेतद्वलयविस्तृतिः ॥१३०॥

इस द्वीप का वलय विस्तार एक सौ तिरसठ करोड़ और चौरासी लाख (१६३८४००००००) योजन का है । (१३०)

द्वीपस्यास्य बहुमध्ये, शोभन्ते दिक्चतुष्टये ।
जात्यान्जनरत्नमयाश्चत्वारोऽन्जन पर्वताः ॥१३१॥

इस द्वीप के लगभग मध्यभाग में जातिमानं अंजन रत्नमय चार अंजन गिरि-पर्वत शोभायमान है । (१३१)

पूर्वास्यां देवरमणो, नित्योद्योतस्वयंप्रभौ ।

क्रमादपाक्प्रतीच्यां चोदीच्यां च रमणीयकः ॥१३२॥

पूर्व दिशा में रमण नाम का, दक्षिण दिशा में नित्योद्योत नाम का पश्चिम दिशा में स्वयंप्रभ नाम का उत्तर दिशा में रमणीयक नाम का अंजन गिरि है । (१३२)

वर्णशोभां वर्णयामः किमतेषा स्फुरद्रुचाम् ।

नाम्नैव ये स्वमौज्जवल्यं, प्रथमन्ति यथास्थितम् ॥१३३॥

स्फुरायमान कान्ति वाले इन अंजनाचलो की तेजस्विता का क्या वर्णन करे ? क्योंकि वे अपने नाम से ही यथा स्थित अपनी उज्जवलता को फैलाते हैं । (१३३)

स्फुरद्गवलस ब्रह्मचारितेजोभिरास्तृतैः ।

तेऽमुं द्वीपं सृजन्तीव, कस्तूरीद्रव मण्डितम् ॥१३४॥

अंजन गिरि का स्वरूप कहते है :- तेजस्वी गवल के तेज किरणों के समान विस्तार वाले अपने तेज द्वारा यह पर्वत मानो इस द्वीप को कस्तुरी के द्रव-स्नेह से विलिप्त करता हो इस तरह लगता है । (१३४)

स्वच्छ गोपुच्छ संस्थाना स्थिता रजोमलोज्झिताः।

अभ्रङ्कषोत्तुङ्ग शृङ्गा, मृष्टाः श्लक्ष्णाः प्रभा स्वराः ॥१३५॥

सहस्रांश्चतुरशीतिं भूतलाते समुच्छ्रिताः ।

सहस्रं च योजनानावमगाढाभवोऽन्तरे ॥१३६॥

योजनानां सहस्राणि, पृथवो भूतले दश ।

योजनानां सहस्रं च विस्तीर्णास्ते शिरस्तले ॥१३७॥

मतान्तरे शतान्येते, चतुर्णवति मातताः ।

स्युर्भूतले योजनानां, सहस्रं मूर्ध्नि विस्तृताः ॥१३८॥ *चतुर्भिः कलापकं ॥*

स्वच्छ गोपुच्छ के आकार से रहे रज और मल से रहित गगनोत्तुंग शिखरों को धारण करते और अति तेजस्वी ये पर्वत पृथ्वी से चौरासी हजार योजन ऊंचे हैं, जबकि पृथ्वी के अन्दर एक हजार योजन अवगाह हुआ है, पृथ्वी की सपाटी ऊपर

दस हजार योजन विस्तृत और शिखर ऊपर एक हजार योजन चौड़ा है । तथा मतांतर से यह अंजनगिरि पर्वत पृथ्वीतल ऊपर नौ हजार चार सौ (९४००) योजन चौड़ा है और ऊपर एक हजार योजन चौड़ा है । (१३५ से १३८)

''तथोक्तं स्थानाङ्गवृत्तौ - इहांञ्जन का मूले दश योजन सहस्त्राणि विष्कम्भेणेत्युक्तं द्वीप सागर प्रज्ञप्ति संग्रहण्यां तूक्तं -

नव चेव सहस्साई चतारि य होंति जोअणसयाई ।
अंजणग पव्वयाणं धरणि यले होई विक्खंभो ॥१॥ इति ।

तदिदं मतान्तर मित्यवसेयं, एवमन्यत्रापि, मतान्तर बीजानि तु केवलि गम्यानीति ॥''

स्थानांक सूत्र की वृत्ति में इस प्रकार कहा है कि - यह अंजन गिरि पर्वत मूल में दस हजार योजन की चौड़ाई वाला है । द्वीप सागर प्रज्ञप्ति संग्रहणी में कहा है कि -

नौ हजार चार सौ योजन का अंजन पर्वत की धरणीतल के ऊपर का विष्कंभ होता है । (१) इसी प्रकार अन्य स्थान पर भी मन्तांतरों की बातें आती हैं, वह केवली गम्य है, वैसा समझ लेना चाहिए ।

यस्मिन्मते सहस्त्राणि, भूतले दस विस्तृताः ।
वृद्धिक्षयौ मते तस्मिन्, योजनं योजनं प्रति ॥१३९॥

अष्टाविशांशत्रितयमुपर्यारोहणे क्षयः ।
तावत्येवोपरितलाद् वृद्धिः स्यादवरोहणे ॥१४०॥

जिसके मत में पृथ्वी तल ऊपर दस हजार योजन का विस्तार है उनको प्रत्येक योजन में वृद्धि-क्षय होती है वह इसके अनुसार है कि - ऊपर चढ़ते योजन में ३/२८ योजन का क्षय होता है जबकि नीचे उतरते उतनी ही ३/२८ योजन की वृद्धि होती जाती है । (१३९-१४०)

भावना त्वेवं - महीतलगत व्यासात्, सहस्त्रदशकात्मकात्।
सहस्त्राण्यपचीयन्ते, नवोपरितलावधि ॥१४१॥

ततो नव सहस्राणि भाज्यानि नाप्यते परम् ।
सहस्रै श्चतुर शीत्या, भागो भाज्यस्य लाघवात् ॥१४२॥

ततश्च - भाज्य भाजकयो राश्योः कृते शून्यापवर्त्तने।
भाज्यो नवात्मा चतुरशीत्यात्मा स्याच्च भाजकः ॥१४३॥

उभावप्यपवर्त्येते ततोऽंशच्छेदको त्रिभिः ।
योजनांशत्रयं लब्धमष्टाविंशतिजं ततः ॥१४४॥

उसकी भावना इस तरह से – दस हजार योजन का व्यास जो कि पृथ्वी तल में रहा है । उसमें से ऊपर आने तक में नौ हजार योजन कम होता है अतः नौ हजार को चौरासी हजार से भाग देने का रहता है, परन्तु भाजक करते भाज्य संख्या छोटी होने से कुछ नहीं रहता । इसमें भाज्य और भाजक राशि में से शून्य को दूर करना अतः ९×८४=९ भाज्य बनता है और ८४ भाजक बनता है, दोनों को तीन से भाग देने से ३/२८ योजन बनता है ९/८४ ३/२८ । (१४१ से १४४)

यद्वा - अष्टाविंशति गुणितो भाज्योराशिर्नवात्माको भवति ।
द्वे लक्षे द्वापन्चाशता सहस्रैर्युते तेऽंशाः ॥१४५॥

तेषां सहस्रैश्चतुरशीत्या भांगे हृते सति ।
लब्धं विभागत्रितयमष्टाविंशति संभवम् ॥१४६॥

अथवा एक योजन के २८ भाग करके उसमें से ३ भाग समझना या २८ से गुणा करने से राशि अंशात्मक होती है और वे अंश दो लाख बावन हजार (२८×९०००=२५२०००) होते है और उसे ८४००० से भाग देने से ३/२८ अंश होता है । (१४५-१४८)

चतुः शताधिकनवसहस्रयोजनात्मककात् ।
मतान्तरे स्थूलव्यासात्सहस्रोरूशिरोऽवधि ॥१४७॥

मध्ये शतानि चतुरशीतिः क्षीयन्त इत्यतः ।
भज्यन्ते तानि चतुरशीत्या किल सहस्रकैः ॥१४८॥

भागा प्राप्त्या च चतुरशीत्या शतैस्तयोर्द्वयोः ।
कृतेऽपर्वत्तेने लभ्यो, योजनांशो दशोद्भवः ॥१४९॥

मतान्तर में नौ हजार चार सौ (९४००) योजन का जो स्थूल व्यास पृथ्वी तल का है, उसमें से घटते-घटते ऊपर आने तक एक हजार योजन हो जाता है उसमें से शिखर तक नीचे से ऊपर जाते आठ हजार चार सौ (८४००) योजन घटता है और वह चौरासी सौ (८४००) को चौरासी हजार (८४०००) से भाग देना, उन दोनों का भाग प्राप्त नहीं होने से उन दोनों का (८४०० तथा ८४००० के) शून्य का अपवर्तन करने से (८४००/८४००० -१/१०) १/१० योजन प्राप्त होता है । (१४७-१४९)

यद्वा प्राग्वभ्द्राज्यराशिर्दशघ्नः स्याल्लवात्मकः ।
सहस्राश्चतुर शीतस्तेषां भागे च लभ्यते ॥१५०॥

दशमो योजनास्यांशो भाज्यभाजकसाम्यतः ।
क्षय वृद्धौ मानमेतत् स्योदरोहवरोहयोः ॥१५१॥

अथवा पहले के समान भाज्य राशि १/१० होते है, उसे भाग से (८४.००) प्राप्त होता है । भाजक और भाज्य की समानता होने से योजना का दसवां भाग आता है वह आरोह और अवरोह में क्षय और वृद्धि में एक अंश समझना । (१५०-१५१)

एकत्रिंशत्सहस्राणि, योजनानां शतानि षट् ।
त्रयोविंशानि परिधिर्भवत्येषां महीतले ॥१५२॥

इस पर्वत का भूतल ऊपर परिधि इकतीस हजार छः सौ तेईस (३१६२३) योजन की होती है । (१५२)

योजनानां सहस्रानि, त्रीणि द्वाषष्टियुक् शतम् ।
साधिकं मूर्ध्नि परिधिः, प्रज्ञप्तः परमर्षिभिः ॥१५३॥

इस पर्वत के शिखर ऊपर की परिधि ज्ञानी महर्षियों ने तीन हजार एक सौ बासठ (३१६२) योजन से कुछ अधिक कहा है । (१५३)

अथैषामन्जनाद्रीणां, प्रत्येकं च चतुर्दिशं ।
गते लक्षे योजनानां लक्षमायतविस्तृताः ॥१५४॥

पुष्करिण्यश्चतस्रः स्युरूद्विद्धा दशयोजनीम् ।
निर्मत्स्यस्वच्छसलिलोल्लसत्कल्लोलवेल्लिताः ॥१५५॥

अब इन प्रत्येक अंजन पर्वतों की चारों तरफ, एक-एक लाख योजन दूर चार

पुष्करिणी बावडियां है । ये चारों एक लाख योजन लम्बी एक लाख योजन चौड़ी और दस योजन गहरी है । और मत्स्य-मछली आदि के स्वच्छ पानी के उछलते कल्लोल से शोभायमान है । (१५४-१५५)

''जीवाभिगम सूत्र वृत्तौ प्रवचन सारोद्वार वृत्तौ च एता दशयोजनोद्विद्धा उक्ताः नन्दीश्वर स्तोत्रे नदीश्वर कल्पे च सहस्र योजनो द्विद्धा उक्ताः ।''

श्री जीवाभिगम सूत्र की टीका के अन्दर और प्रवचन सारोद्वार की टीका में इस बावड़ियों की गहराई दस योजन की कही है । जब कि श्री नंदीश्वर स्तोत्र में तथा श्री नंदीश्वर कल्प में इन वावड़ियों की गहराई एक हजार योजन की कही है ।'

स्थानाङ्ग सूत्रे ऽपि - ''ताओ णं णंदाओ पुष्करणीओ एगं जोअ ण सयसहस्सं आयामेणं पन्नासं जो अण सहस्साइं विक्खंभेण दस जोअणसयाइं उव्वेहेणं' इत्युक्त मिति ज्ञेयं ।'

श्री स्थानांग सूत्र में भी कहा गया है कि - 'वे नंदा आदि पुष्करिणी एक हजार योजन लम्बी, पचास हजार योजन चौड़ी और हजार योजन गहरी है ।'

चतुर्दिशं त्रिसोपानप्रतिरूपकबन्धुराः ।
चतुर्दिदशं च प्रत्येकं रम्यास्ता रत्नतोरणैः ॥१५६॥

चारो दिशा में मनोहर तीन सौपान की पंक्तियों से तथा रत्न के रमणीय तोरण से ये बावडियाँ सुन्दर श्रेष्ठ दिखती हैं । (१५६)

दलच्छतद्दलश्रेणिगलन्मरन्दलेपतः ।
अन्योऽन्यमितर भ्रान्ति भ्रमद्भृङ्गतदङ्गनाः ॥१५७॥

कमल पत्र तथा शतदल कमलों की श्रेणि में से टपकते मकरंद के रस से लिप्त एक दूसरे की भ्रान्ति से भौरां भ्रमरियां भ्रमण करते है अतः कमल पत्रों में से टपकते मकरंद रस से भ्रमर-भ्रमरी लिप्त हो गयी और उनमें से भी मकरंद रस टपकने लगा तथा इससे अन्य भ्रमर भ्रमरियां उसे भी कमल समझकर उसके आस पास परिभ्रमण करते हैं । (१५७)

अनरालैर्मरालात्तैर्मृणालैर्ललितान्तरा: ।
आमुक्तव्यक्तशृङ्गरहारैरिव मनोहरा: ॥१५८॥

उज्जवल कमल की कली को चोंच में धारण करता हंस इन बावड़ियों के मानो शृंगार का हार हो इस तरह लालित्य पूर्ण मनोहर शोभा को देता है । (१५८)

सोपानावतत्स्व: स्त्रीनूपुरध्वनि बोधितै: ।
मरालैर्मधुरध्वानैर्मुदोपवीणिता इव ॥१५६॥

देवियां सोपान के जीने से उतरती है उस समय पायल की होती आवाज से जागृत हुए हंसों की मधुर ध्वनि से मानो आनंद की वीण बजती हो ऐसा लगता है । (१५६)

कीडद्दिव्याङ्गनोत्तुङ्गवक्षोजास्फालनोर्ज्झितै: ।
आत्तरङ्गै सत्तरङ्गै रिवाङ्गीकृतताण्डवा ॥१६०॥

क्रीड़ा कर रही देवांगनाओं के उत्तुंग वक्षोज-स्तनों के साथ में टकराने से वेगवाली और मस्त बनी बड़ी-बड़ी तरंगों से मानो बावड़ी तांडव नृत्य कर रही हो ऐसा दिखता है । (१६०)

अर्हदर्चार्चनोद्युक्त स्नातस्व: स्त्रीस्तनच्युतै: ।
कस्तूरीचन्द्रघुसृणै: शोभन्ते चित्रिता इव ॥१६१॥ *षड्भि कुलकं //*

श्री अरिहंत की प्रतिमा की पूजा की क्रिया में तत्पर बनी देवांगनाएं स्नान करने के लिए इस बावडी में पड़ती है तब उनको स्तन ऊपर से निकलते कस्तूरी और चन्दन के स्नेह द्रव्य से चित्रित बने हो उस तरह से यह बावड़ी शोभती है । (१६१)

नन्दिषेणा तथाऽमोघा, गोस्तूपा च सुदर्शना ।
स्युर्वाप्यो देव रमणात्पूर्वादिदिक चतुष्टये ॥१६२॥

चार अंजन गिरि पर्वतों में से देव रमण नामक अंजन पर्वत की पूर्वादि चार दिशा में अनुक्रम से नंदिषेणा, अमोघा, गोस्तूपा और सुदर्शना नाम की बावड़ियां है। (१६२)

नन्दोत्तरा तथा नन्दा, सुनन्दा नन्दिवर्द्धना ।
पुष्करिण्यश्चतस्रः स्युर्नित्योद्योताश्चतुर्दिशम् ॥१६३॥

दूसरे नित्योद्योयोत नामक अंजन पर्वत के पूर्वादि चार दिशा में अनुक्रम से नंदोत्तरा, नंदा, सुनंदा और नंदि वर्धना पुंडरिकीणी नामक चार वापिकाएं है । (१६३)

भद्रा विशाला कुमुदा, चतुर्थी पुण्डरीकिणी ।
स्वयं प्रभगिरेः पूर्वादिषु दिक्ष्विति वापिकाः ॥१६४॥

स्वयं प्रभ नाम के तीसरे पश्चिम के अंजन पर्वत की पूर्वादि चार दिशा में अनुक्रम से भद्रा, विशालां, कुमुदा और पुंडरिकीणी नामक वापिका है । (१६४)

विजया वैजयन्ती च ज़यन्ती चापराजिता ।
वाप्यः प्राच्यादिषु दिक्षु रमणीयान्जनागिरेः ॥१६५॥

रमणीय नामक अंजन पर्वत की पूर्वादि चार दिशा में अनुक्रम से विजया (उत्तर) वैजयंती, जंयंति और अपराजिता नाम की चार बावडियां है । (१६५)

अयं नंदीश्वर स्तव नीदश्वर कल्पाभि प्रायेण षोडशा नामपि पुष्करिणी नां नामक्रमः स्थानाङ्ग जीवाभिगमाभि प्रायेंण त्वेवं -

इन बावड़ियों के नाम क्रम विषय में श्री नंदीश्वर स्तव और श्री नदीश्वर कल्प का यह अभिप्रायः है । अब श्री स्थानांग सूत्र और जीवाभिगम सूत्र का अभिप्रायः इस प्रकार कहते हैं :-

नन्दोत्तरा तथा नंदा, चानन्दा नन्दिवर्द्धना ।
चतुर्दिशं पुष्करिण्यः, पौरस्त्यस्याञ्जनागिरेः ॥१६६॥

पूर्व दिशा के अंजन गिरि की चारों दिशा में १- नंदोत्तरा, २- नंदा, ३- आनंदा और ४- नंदिवर्धना नाम की चार बावड़ियां है । (१६६)

भद्रा विशाला कुमुदा, चतुर्थी पुण्डरीकिणी ।
चतुर्दिशं पुष्करिण्यो, दाक्षिणात्यान्जनागिरेः ॥१६७॥

दक्षिण दिशा के अंजन गिरि की चारों दिशा में भद्रा, विंशाला, कुमुदा और पुंडरीकिणी नाम की बावड़ियां है । (१६७)

नन्दिषेणा तथाऽमोघा, गोस्तूपा च सुदर्शना ।

चतुर्दिशं पुष्करिण्यः, प्रतीचीनान्जनागिरे ॥१६८॥

पश्चिम दिशा के अंजन गिरि की चारों दिशा में नंदिषेणा, अमोघा, गोस्तूप और सुदशना नाम की चार बावड़ियां है । (१६८)

उदीच्येतूभयोरपि मतयोस्तुल्यमेव ॥

एकैकस्या पुष्करिण्या, व्यतीत्यदिक्चतुष्टये ।

योजनानां पन्च शतान्येकैकमस्ति काननम् ॥१६६॥

और उत्तर दिशा के अंजन गिरि की बावड़ियां दोनों मत में समान है। इन प्रत्येक बावड़ियों की चारों दिशा में ५०० योजन दूर जाने के बाद एक-एक वन है । (१६६)

अस्त्यशोकवनं प्राच्यां सप्तवर्णवनं ततः ।

याम्यां प्रत्यक् चम्पका नामथाम्रणामुदग् वनम् ॥१७०॥

पूर्व दिशा में अशोक वन है, दक्षिण दिशा में सप्तपर्ण वन है, पश्चिम दिशा में चंपक वन है और उत्तर दिशा में आम्रवन है । (१७०)

योजनानां लक्षमेकमायतान्यखिलान्यपि ।

शतानि पन्च पृथुलान्यद्भुतान्यद्भूतश्रिया ॥१७१॥

प्रत्येक वन का एक लाख योजन का विस्तार है, पांच सौ योजन का घेराव है, और विशिष्य शोभनीय होने से अद्भुत प्रकार से शोभायमान है । (१७१)

सच्छायैः सुमनोरम्यैर्महास्कन्धैः समुन्नतैः ।

विभान्ति तरूभिस्तानि, कुलानीव नरोत्तमैः ॥१७२॥

इस वन में जो वृक्ष है वे सुन्दर छायावाले सुमनोहर, महास्कंध वाले और अति ऊंचे हे और इससे वन की शोभा अति बढ़कर हो रही है । जैसे उत्तम पुरुष कुल को शोभायमान करता है, वैसे ये सुवृक्ष इस वन को शोभायमान करते हैं। (१७२)

सौरभ्याकृष्टमधुपा, लीलानर्तितपल्लवाः ।

उद्बुद्ध कुसुमास्तेषु, लताः पण्याङ्गना इव ॥१७३॥

सुगन्ध से भ्रमरों को आकृष्ट करते लीलापूर्वक पल्लव को नचाते और अति विकसित कुसुम को धारण करती लताएं, उस वन के अन्दर पण्यांगना के समान शोभायमान होती है। अर्थात् वेश्या के पक्ष से अपनी मुखादि की सौरभ से मधुर युवानों को आर्कषण करती लीलापूर्वक वस्त्रांचल रूपी पल्लव को नचाती और विकसित पुष्पों को धारण करती वेश्या के समान लताएं हैं । (१७३)

तेषां कुन्जेषु निश्छिद्र परिच्छदाद्रिभित्तिषु ।
न विशन्तीशगेहेषु, चौरा इव करा रवेः ॥१७४॥

जैसे धनिक के घर में चोर प्रवेश नहीं कर सकता है, वैसे ये गाढ छाया वाले तथा पर्वतरूपी दीवार वाले कुंजों में सूर्य की किरण उस वन में प्रवेश नहीं कर सकती है ।

षोडशशानामप्यमूषां वापिकाना किलोदरे ।
स्यादेकैको दधिमुख स्फारस्फटिकरत्नजः ॥१७५॥

इन सोलह बावड़ियों के मध्य विभाग के अन्दर सुन्दर स्फटिक रत्न बने हुए एक-एक दधिमुख पर्वत है । (१७५)

मुखं शिखरमेतेषां यतो दधिवदुज्ज्वलम् ।
ततो ह्येते दधिमुखा, रौप्यश‍ृङ्गमनोरमाः ॥१७६॥

दधि अर्थात् दही और मुख अर्थात् शिखर इस पर्वत का शिखर दधि समान उज्जवल होने के कारण से दधिमुख नाम से प्रसिद्ध है और इस पर्वत के मनोरम शिखर रूपा (चान्दी) के हैं । (१७६)

धान्यपल्यसमाकाराः, सर्वतः सदृशा इमे ।
उपर्यधो योजनानां, सहस्राणि दशातताः ॥१७७॥

यह दधिमुख पर्वत अनाज के प्याले समान, चारों तरफ से समान ऊपर नीचे दस हजार योजन के विस्तार वाला है । (१७७)

चतुःषष्टिं सहस्राणि, कीर्तितास्ते समुच्छ्रिताः ।
सहस्रं च योजनानामुद्विद्धा वसुधान्तरे ॥१७८॥

यह पर्वत चौंसठ हजार (६४०००) योजन ऊंचा है और पृथ्वी के अन्दर एक हजार योजन अवगाढ वाला है । (१७८)

तथोक्तं जीवाभिगमे - 'दस जोअण सहस्साइं विक्खंभेणं।' श्री समवायाङ्गे तु - "सव्वे वि णं दधि मुह पव्वया पल्लगसं ठाण संठिया सव्वत्थ समा विक्खं भुस्सेहेणं चउसट्ठि जोअणसहस्साइं पण्णत्तां" इत्युक्त मिति ज्ञेयं ॥

श्री जीवाभिगम सूत्र के अन्दर कहा है कि - इस पर्वत की चौड़ाई दस हजार योजन की है । तथा समवायांग सूत्र में तो कहा है कि सभी दधि मुख पर्वत प्याले के संस्थान वाले हैं चारों तरफ समान है और चौड़ाई तथा लम्बाई दोनों में चौंसठ हजार योजन है ।'

पुष्करिण्यः समस्तास्तास्तेनैकैकेन भूभृता ।
विभान्ति प्रौढ महिला, इव क्रोडी कृतार्भकाः ॥१७९॥

ये सभी ही दधि मुख पर्वत, पूर्व वर्णित बावडियों में रहे है, इससे ही बावडियों में एक-एक पर्वत से गोद में बालक को लेकर बैठी हुई प्रौढ़ महिलाओं के समान शोभता है । (१७९)

चतुर्णामन्जनाद्रीणां, धनाधनधनत्विषाम् ।
षोडशानां दधिमुख गिरीणामुपरिस्फुरत्त ॥१८०॥

जिनायतनमेकैकमेवं स्युः सर्व सङ्ख्यया ।
तृतीयाङ्गादि सिद्धन्तेषूक्तान्येतानि विंशतिः ॥१८१॥

गाढ मेघ सदृश श्याम कान्ति वाले चार अंजन पर्वत और सोलह दधिमुख पर्वत ऊपर स्फुरामान एक-एक जिनायतन - जिनमंदिर है । जिसकी सर्व संख्या बीस होती है । यह बात तीसरे अंग श्री स्थानांग सूत्र आदि आगम में कहा है । (१८०-१८१)

जीवाभिगम वृत्यादि ग्रन्थेषु च निरूपितो ।
वापीचतुष्कान्तरेषु, द्वो द्वो रतिकराचलौ ॥१८२॥

श्री जीवाभिगम सूत्र की टीका आदि ग्रन्थों में कहा है कि चार बावडियों के अन्तर में दो-दो रतिकर पर्वत होते हैं । (१८२)

षोडशानां वापिकानां षोडशस्वन्तरेष्वमी ।
द्वात्रिंशद् द्विद्विभावेन् पद्मरागनिभाः ॥१८३॥

इन सोलह बावड़ियों के सोलह अन्तर में दो-दो रतिकर पर्वत हैं इससे कुल बत्तीस रतिकर पर्वत होते हैं । ये बत्तीस पर्वत पद्म राग की कान्ति वाले और सब एक समान है । (१८३)

"इति प्रवचन सारोद्धार सूत्र वृत्यभि प्रायेण एते पद्मरागमयाः । स्थानाङ्ग वृत्यभि प्रायेण तु सौवर्णा इति ।"

'प्रवचन सारोद्धार की वृत्ति के अनुसार ये सभी पर्वत पद्मराग रत्नमय है । जब स्थानांग वृत्ति के अभिप्राय से ये पर्वत सुवर्ण जैसी कान्ति वाले है ।'

उपर्येकैकमेतेषां, सर्वेषामपि भूभृताम् ।
चैत्यं नित्यार्हतां चारू चलाचलध्वजान्चलम् ॥१८४॥

इन प्रत्येक पर्वत के ऊपर पवन-वायु से लहराती ध्वजा से शोभता शाश्वत प्रतिमा का एक-एक चैत्यालय है । (१८४)

चत्वारो दधि-मुखस्था, एकैकोन्जन भूमृत ।
अष्टानां च रतिकराद्रीणामष्टौ जिनालयाः ॥१८५॥

इत्येवमेकैक दिशि, त्रयोदश त्रयोदश ।
एव संकलताश्चैते, द्विपन्चाशज्जिनालयाः ॥१८६॥

चार दधिमुख पर्वत के ऊपर चार मंदिर, एक अंजन गिरि पर एक और आठ रतिकर पर्वतों पर आठ जिनालय । इस प्रकार एक-एक दिशा में तेरह-तेरह जिन मंदिर हैं । और सब मिलाकर कुल बावन जिनालय होते हैं । (१३×४=५२) । (१८५-१८६)

स्थानांग वृत्तावप्युक्तं -

"सोलस दहि मुह सेला, कुंदामल संख चंद संकासा ।
कणयनिभा बत्तीसं रइकरगिरिबाहिरा तेसिं ॥१८७॥"

श्री स्थानांग सूत्र की वृत्ति में भी कहा है कि - मचकुंद का फूल निर्मल शंख और चन्द्र समान दधि पर्वत सोलह है, इससे थोड़े दूर सुवर्ण वर्णीय बत्तीस रतिकर पर्वत है । (१८७)

अंजणगाइ गिरीणं नाणामणिपज्जलंतसिहरेसु ।

बावन्नं जिणणिलया मणि रयण सहस्स कूड वरा ॥१८८॥

अंजन गिरि पर्वत के सभी गिरिवर के विविध प्रकार के मणि रत्न कान्ति से युक्त देदिप्यमान शिखरों पर बावन श्री जिनेश्वर भगवान के मंदिर है जो कि - मणि रत्न के सहस्रकूटों से शोभायमान है । (१८८)

प्रासादास्ते योजनानां, भवन्ति शतमायताः ।

पन्चाशतं ततास्तुङ्ग, योजनानि द्विसप्ततिम् ॥१८९॥

वे जिन मंदिर सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और बहत्तर योजन ऊंचे हैं। (१८९)

हाव भावाद्यभिनय विलासोल्लासिपुत्रिका ।

दिदृक्षानिश्चलैर्दिव्याङ्गनावृन्दैरिवान्चिताः ॥१९०॥

अब यहां छः श्लोक के कुलक द्वारा इन मंदिरों की रमणीयता का संकेत रूप दिया है, पाषाण से बनी पुतलियों में ऐसी आकार बनायी गई है मानो हावभावादि अभिनय को देखने की इच्छा से खंडी हुई दिवांगनाए न हो इस तरह भ्रान्ति-भ्रम होता है । (१९०)

चित्रोत्कीर्णैर्हयगजसुरदानवमानवैः ।

अद्भुतालोकनरसस्थितत्रिभुवना इव ॥१९१॥

इन जिन मंदिरों में घोड़ा, हाथी, देव, दानव, मानव के ऐसे हूबहू वैसा ही चित्र नक्कासी करने में आए है कि जो मानो मंदिर की अद्भुत देखने के लिए तीन भवन एकत्रित हुए न हो ? इस तरह लगता है । (१९१)

अष्टभिर्मङ्गलैः स्पष्टं, विशिष्टा अपि देहिनाम् ।

सेवाजुषां वितन्वानाः कोटिशो मङ्गलावलीः ॥१९२॥

स्पष्ट अष्ट मंगल द्वारा विशिष्ट दिखता इन मंदिरों की सेवा करने वाले प्राणियों की कई करोड मंगल श्रेणी को विस्तार वाले है । (१६२)

प्रीत्योन्नतपद प्राप्तेर्नृत्यद्भिरिव केतुभिः ।
त्वरितं प्रोल्लसभ्दक्तीनाह्वन्त इवाङ्गिनः ॥१६३॥

उन मंदिरों पर लहराती ध्वजाओं का उत्प्रेक्षा रूप में वर्णन करते कहते हैं कि - इन मंदिरों के शिखर पर उत्तंग-स्थान की प्राप्ति होने से प्रीति द्वारा मानो नृत्य कर रही हो, ऐसी ध्वजाएं उछलती भक्तिवाले लोगों को सत्वर बोल रही है। (१६३)

स्थिताः सिंह निषदनाकाराः स्फारामलत्विषः ।
भव्याघघोरमातङ्गघटामिव जिघांसवः ॥१६४॥ *षड्भि कुलकं //*

बैठे सिंह के आकार वाले सुविशाल और निर्मल तेज वाले उस जिनेश्वर भगवान के मंदिर मानो भव्य पुरुषों के पापरूपी भंयकर गज घटा को मारने की इच्छा वाला हो इस प्रकार दिखता है । (१६४)

तथाहु :- ''अजंणगपव्वयाणं सिहरतलेसुं हवंति पत्तेयं ।
अरिहंतायथणाइं सीहणिसायाइं तुंगाइं ॥१६५॥''

इस विषय में शास्त्र में कहा है कि - प्रत्येक अंजन पर्वत के शिखर ऊपर सिंह निषधाकार में उतुंग अरहिंत परमात्मा का आयतन (मंदिर) है । (१६५)

द्वारैश्चतुर्भिः प्रत्येकं ते विभान्ति सुकान्तिभिः ।
चतुर्गतित्रस्तलोकत्राण दुर्गाइवोभ्दटाः ॥१६६॥

सुशोभित कान्तिवाले ये जिन मन्दिर चार द्वार से शोभायमान है वह चारगति से त्रस्त-डरे हुए लोगों का रक्षण करने के लिए किले समान शोभते है। (१६६)

प्राच्यां देवाभिधं द्वारं, तद्भवेद्देवदैवतम् ।
असुराख्यं दक्षिणस्यां, द्वारं चासुरदैवतम् ॥१६७॥

पश्चिमायां च नागाख्यं, तन्नागामररक्षितम् ।
उत्तरस्यां सुवर्णाख्यं सुवर्ण सुररक्षितम् ॥१६८॥

पूर्व दिशा में देव नाम का द्वार है, जिसके अधिष्ठाता देव नाम का देव है दक्षिण दिशा में असुर नाम का द्वार है उसका अधिष्ठाता असुर नामक देव है। पश्चिम दिशा में नागनामक द्वार है उसका अधिष्ठायक रक्षण हार नाग नामक देव है, और उत्तर दिशा में सुवर्ण नामक द्वार है जिसका रक्षक अधिष्ठायक सुवर्णदेव है। (१६७-१६८)

योजनानि षोडशैतदेकैकं द्वारमुच्छ्रितम् ।
योजनान्यष्ट विस्तीर्ण, प्रवेशे तावदेव च ॥१६६॥

इनमें प्रत्येक द्वार सोलह योजन ऊंचा आठ योजन विस्तृत और प्रवेश भाग के उतना ही आठ योजन है। (१६८)

प्रतिद्वारमथैकैकः पुरतो मुखमण्डपः ।
चैत्यस्य यो मुखे द्वारे पट्टशालासमो मतः ॥२००॥

अब इस प्रतिद्वार के आगे विभाम में एक-एक मुख मंडप है, जो कि चैत्य के मुख रूप द्वार में पट्टशाला समान दिखता है। (२००)

तस्यापि पुरतः प्रेक्षामण्डपः श्रीभिरद्भुतः ।
प्रेक्षा प्रक्षेणकं तस्मै, गृहरूपः स मण्डपः ॥२०१॥

इस मुख मंडप के आगे भी प्रेक्षा मंडप है जो शोभा से अद्भुत है इसे प्रेक्षा मंडप क्यों कहते हैं ? उसे कहते हैं प्रेक्षण करना अर्थात् अच्छी तरह चारों तरफ का देखना वह प्रेक्षा कहलाता है। उसके लिए मानों यह गृह आश्रय रूप होने से यह प्रेक्षा मंडप कहलाता है। (२०१)

योजनानां शतं दीर्घौ, पन्चाशत्तानि विस्तृतौ ।
योजनानि षोडशोच्चो, त्रिभिद्वारैर्मनोरमौ ॥२०२॥

ये मुख मण्डप और प्रेक्षामण्डप दोनों एक सौ योजन लम्बे है पचास योजन विस्तार वाले हैं सोलह योजन ऊंचे है और तीन द्वार से मनोहर है। (२०२)

तथोक्तं जीवाभिगम वृत्तौ - "मुख मण्डपमानां प्रत्येक्र प्रत्येक त्रिदिशं-तिसृषु दिक्षु एकैक भावेन त्रीणिद्वारणि" जीवाभिगम सूत्रादर्शे तु 'तेसिणं मुह मंडवाणं चउद्दिसिं चत्तारि दाग पण्णत्ता' इति दृश्यते ।'

श्री जीवाभिगम की वृत्ति में तीनों दिशा में एक-एक द्वार होने से तीन द्वार कहे हैं, जबकि जीवाभिगम सूत्र में वह मुख मंडप की चारों दिशा में चार द्वार कहे है । इस तरह बतलाया है ।

प्रेक्षामण्डपमध्ये च, वज्ररत्न विनिर्मितः ।
एकैको ऽक्षाटक स्तस्य, मध्ये ऽस्ति मणि पीठिका ॥२०३॥

योजनान्यष्ट विस्तीर्णयता चत्वारि चोच्छ्रिता ।
उपर्यस्याश्चेन्द्रयोग्यं, सिंहासनमनुत्तरम् ॥२०४॥

प्रेक्षा मंडप की मध्य में वज्ररत्न निर्मित एक-एक अक्ष पाटक है और उसके मध्य विभाग में मणि पीठिका है । ये मणि पीठिकायें आठ योजन लम्बी चार योजन चौड़ी तथा इसके ऊपर इन्द्र के योग्य अनुपम सिंहासन है । (२०३-२०४)

सिंहासनस्य तस्योर्ध्वं दूष्यं विजयनामकम् ।
वितान रूपं तद्रत्नवस्त्रमत्यन्तनिर्मलम् ॥२०५॥

इस सिंहासन को आच्छादित करने वाला (ढकने वाला) विजय नाम का सुन्दर वस्त्र है । जोकि अत्यन्त निर्मल और वस्त्रों में रत्न समान है । (२०५)

मुक्तादामालम्बनाय, मध्येऽस्य वज्रिकोऽङ्कुरः ।
तस्मिन्मुक्ता दाम कुम्भ प्रमाण मौक्तिकान्वितम् ॥२०६॥

उसमें मोतियों की मालाएं लटकाने के लिए उस सिंहासन में मध्य भाग में वज्र के अंकुश है उसमें कुंभ अनुसार मोती से युक्त मोती की माला लटकती है । (२०६)

तच्चस्वार्द्धोच्चत्वमानैर्मुक्तकान्वितम् ।
चतुर्दिशमर्द्धकुम्भप्रमाणमौक्तिकान्वितैः ॥२०७॥

इस कुंभ के अनुसार मोती से बनी हुई मुक्तामाला मध्य विभाग में लटकती है । जबकि चारों दिशा में अर्धकुंभ अनुसार मोतियों से बनी मालाएं चारों दिशाओं में लटकती है । (२०७)

तथा ऽऽह स्थानाङ्गे = 'तेसु णं वइरामएसु अंकुसेसु चत्तारि कुंभिक्का मुत्तादामा प०, ते णं कुंभक्का मुत्तादामा पत्तेयं पत्तेयं तदद्धुच्चत्तप्प माण

मित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामे हिं सव्व तो समंता सपरिक्खित्ता' एतट्टीकापि - ''कुंभो मुक्ता फलानां परिमाण तथा विद्यते, येषु तानि कुंभिकानि मुक्ता दामानि - मुक्ता माला:, कुंभ प्रमाणं च - 'दो असती पसई, दो पसइउ सेतियां, चत्तारि सेतियाओ कुलओ, चत्तारि कुलवा। पत्थो, चत्तारि पत्था आढयं, चत्तारि आढया दोणो, सट्ठी आढयाइं जहन्नौ कुंभो असीइं मज्झिमो, सयमुक्को सो' त्ति तदद्ध त्ति तेषामेव मुक्ता दाम्ना मर्द्ध मुच्चत्वस्य प्रमाणं येषा तानि तदर्द्धो च्चत्व प्रमाणानि तान्येव तन्मात्राणि तैः 'अद्ध कुंभिक्केहिं' ति मुक्ता फलार्द्ध कुम्भ वद्धिरिति ॥''

श्री स्थानांग सूत्र में भी इसी ही तरह कहा है - 'वह वज्रमय अंकुश ऊपर कुंभ प्रमाण मोती वाली चार मुक्ता माला कही है, वह कुंभिका माला (कुंभ प्रमाण मोतियों से निष्पन्न माला) की चारों तरफ प्रत्येक दिशा में ऊंचाई और प्रमाण से अर्ध मान वाली अर्ध कुंभ प्रमाण मोतियों से युक्त मालाएं है।' इस स्थानांग सूत्र की टीका में भी कहा है कि :- जिस माला के मोतियों के परिमाण में कुंभ का माप होता हो उन मालाओं को कुंभिका मुक्ता माला कहते है, तो वह अब कुंभ का माप इस प्रकार से है :-

२- असती	= १ पसली	४ आढव	= १ द्रोण
२- पसली	= १ सेतिका	६० आठव	= १ जघन्य कुंभ
४- सेतिका	= कुलक	८० आठव	= १ मध्यम ''
४- कुलक	= प्रस्थ	१० ''	= १ उत्कृष्ट कुंभ
४- प्रस्थ	= आढय		

वह कुंभ प्रमाण मोतियों की माला से ऊंचाई में आधे प्रमाण वाली अर्ध कुंभिका कहलाती है ।

ततः पेक्षामण्डपाग्रे, प्रत्येकं मणीपीठिका ।
उच्छ्रिता योजनान्यष्टौ षोडशायत विस्तृता ॥२०८॥

उसके बाद प्रत्येक प्रेक्षा मंडप के आगे मणि पीठिका होती है उसकी ऊंचाई आठ योजन और लम्बाई चौड़ाई सोलह योजन है । (२०८)

चैत्यस्तूपस्तदुपरि, स योजनानि षोडशा ।
आयतो विस्तृतस्तुङ्गः सातिरेकाणि षोडश ॥२०६॥

उसके ऊपर चैत्य स्वरूप है जो लम्बी-चौड़ी सोलह योजन और ऊंचाई सोलह योजन से कुछ अधिक है । (२०६)

मणि पीठिका श्चतस्त्रः स्तूपस्यास्य चतुर्दिशम् ।
योजनाष्टाष्ट विस्तीर्णा यताश्चत्वारि चोच्छ्रिताः ॥२१०॥

इति जीवाभिगम वृत्तौ ॥

इस स्तूप के चारों तरफ चार मणि पीठिका है जो आठ योजन लम्बी चौड़ी और चार योजन ऊंची है । यह बात श्री जीवाभिगम सूत्र की वृत्ति में कही है । (२१०)

तासामुपरि च स्तूपाभिमुख्याः श्री मदर्हताम् ।
जयन्ति प्रतिमाश्चन्जन्मरीचिनिचयान्विताः ॥२११॥

इस मणि स्तूप के ऊपर रहे स्तूप के सन्मुख श्री अरिहंत भगवान की देदीप्यमान प्रतिभा विजयी हो रही है । (२११)

चैत्यस्तूपात्परा तस्माद्विभाति मणि पीठिका ।
विष्कम्भायामतः स्तूपपीठिका सन्निभैव सा ॥२१२॥

उस चैत्य स्तूप के आगे मणि पीठिका शोभते है जो लम्बाई चौड़ाई में स्तूप की पीठिका समान है । (२१२)

उपर्यस्याः पीठिकायाश्चैत्यवृक्षो विराजते ।
विजया राजधान्युक्त चैत्यवृक्षसहोदरः ॥२१३॥

वीक्ष्य चैत्य श्रियं रम्यां, विश्व लक्ष्मी विजित्वरीम्।
मरूच्चलशिरोव्याजादाश्चर्यं व्यञ्जन्निव ॥२१४॥

विश्व की लक्ष्मी को जीतने वाली सुन्दर इन चैत्य लक्ष्मी को देख कर, पवन से चलाय मान उर्ध्व शाखा रूपी सिर विभाग के बहाने से मानो आश्चर्य को व्यक्त करता हो ऐसा यह चैत्य वृक्ष इस पीठिका के ऊपर के विभाग में शोभायमान

हो रहा है । विजय देव की राजधानी में वर्णन किए चैत्य वृक्ष सद्दश ही इस चैत्य वृक्ष का स्वरूप समझना । (२१३-२१४)

योजनान्यष्ट विस्तीर्णा यता चत्वारि मेदुरा ।
तदग्रे पीठिका तस्यां, महेन्द्र ध्वज उज्जवलः ॥२१५॥

तुङ्गः षष्टिं योजनानि, विस्तीर्ण श्चैक योजनम् ।
एतावदेव चोद्विद्धः, शुद्ध रत्न विनिर्मतः ॥२१६॥

इस चैत्य वृक्ष के आगे आठ योजन लम्बा चौड़ा और चार योजन ऊंचे पीठिका के ऊपर उज्जवल और शुद्ध रत्नमय महेन्द्र ध्वज है जो कि साठ योजन ऊंचा है, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा है । (२१५-२१६)

ततो नन्दा पुष्करिणी, योजनान्यायता शतम् ।
पन्चांश विस्तृता सा च, दशो द्वि द्धा प्रकीर्तिका ॥२१७॥

द्वि सप्ततिं योजनानामुद्विद्धालुब्ध षट्पदैः ।
अब्जैरत्यन्तसुरभि मरन्दैर्वासितोदकाः ॥२१८॥ युग्मं ॥

महेन्द्र ध्वज के बाद नंदा नामक बावडी है, जो सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और दस योजन गहरी है । (२१७) अत्यंत सुरभि मकरंद वाले और उसके ऊपर भौंरे लुब्ध बन गये है, ऐसे कमलों से उस बावडी का पानी सुवासित बन गया है वह पुष्करिणी ७२ योजन गहरी है । (२१८) पहले 10 योजन गहरी कही है फिर यहां ७२ योजन की गहराई कही, वह विचारणीय है ?

अशोक सप्तपर्णाख्य चम्पकाम्रबनैः क्रमात् ।
पूर्वादिषु मनोज्ञेयं ककुप्सु चतसृष्वपि ॥२१९॥

इस बावडी के पूर्वादि चार दिशा में क्रमशः अशोक, सप्तपर्ण, चंपक और आम्रवन नाम के उद्यान है उसके कारण यह वापिका मनोहर दिखती है । (२१९)

तथोक्तं स्थानाङ्गे :-

"पुव्वेण असोगवणं दाहिण ओ होई सत्त वण्ण वणं।
अवरेण चपंगवणं चूअवणं उत्तरे पासे ॥२२०॥"

श्री स्थानाङ्ग सूत्र में कहा है कि – 'पूर्व दिशा में अशोक वन, दक्षिण दिशा में सप्त वर्ण, पश्चिम में चंपक वन और उत्तर दिशा में आम्रवन होते है । (२२०)'

द्वौ मण्डपौ स्तूप एकश्चैत्यवृक्षो महाध्वजः ।
वापी वनाढ्या वस्तूनि प्रतिद्वारममूनि षट् ॥२२१॥

प्रत्येक द्वार के छः वस्तुएं होती है । १– २ दो मंडप ३– स्तूप, ४– एक चैत्य वृक्ष, ५– महाध्वज, ६– वनयुक्त बावडी । इस तरह छः वस्तु होती है । (२२१)

प्रति प्रसादमेवं च चत्वारो मुख मण्डपाः ।
अभ्रङ्क षोत्तुङ्गाश्चत्वारो रङ्गमण्डपाः ॥२२२॥

स्तूपाश्चत्वारस्तथैव चैत्यवृक्षेन्द्र केतवः ।
चतस्त्रः पुष्करिण्यश्च, तद्वनानि च षोडश ॥२२३॥

प्रत्येक प्रासाद के चार मुख मंडप, गगन गामी ऊंचे शिखर वाले चार रंग मंडप, चार स्तूप, इस तरह चार चैत्य वृक्ष, चार महेन्द्र ध्वज, चार पुष्करिणी और उसके सोलह वन होते हैं। (२२२–२२३)

प्रासादानामथो मध्येऽस्त्येकैका मणि पीठिका ।
विष्कम्भायामतः सा च योजनानीह षोडश ॥२२४॥

प्रत्येक मंदिर के मध्य में एक मणि पीठिका होती है जोकि लम्बी चौड़ी सोलह योजन है और ऊंची आठ योजन है । (२२४)

अष्टोच्छ्रितातदुपरि, स्याद् देवच्छन्दकः स च ।
ततायतः पीठिकावत्तुङ्गोऽधिकानि षोडश ॥२२५॥

इस मणि पीठिका के ऊपर एक देव छंदक है, वह लम्बाई चौड़ाई में पीठिका के सदृश ही सोलह योजन है, और ऊंचाई सोलह योजन से अधिक है । (२२५)

चतुर्दिर्दशं तत्र भान्ति, रत्नसिंहासनस्थिताः ।
अर्हतां प्रतिमा नित्याः, प्रत्येक सप्तविंशतिः ॥२२६॥

प्रति प्रासादमित्येवं, तासामष्टोत्तरं शतम् ।
द्वारस्थाः षोडशेत्येवं, चतुर्विंशं शतं स्तुवे ॥२२७॥

वहां चारों दिशा में रत्नमय सिंहासन पर श्री अरिहंत परमात्मा की सत्ताईस शाश्वत प्रतिमाएं विराजमान है अतः एक दिशा के अन्दर सत्ताईस सत्ताईस इस तरह प्रत्येक मंदिर के अन्दर एक सौ आठ प्रतिमा है और द्वार में सोलह प्रतिमा होती है । इस प्रकार श्री जिनेश्वर भगवान की एक सौ चौबीस प्रतिमाओं की स्तवना करता हूं । (२२६-२२७)

ऋषभो वर्द्धमानश्च, चन्द्रानन जिनेश्वरः ।
वारिषेणश्चेति नाम्ना, पर्यङ्कासन संस्थिताः ॥२२८॥

श्री ऋषभदेव श्री वर्धमान स्वामी, श्री चन्द्रानन स्वामी तथा श्री वारिषेण स्वामी इन नाम की पर्यंकासन से विराजमान चार-चार प्रतिमाएं हैं । (२२८)

द्वे द्वे च नाग प्रतिमे, जिनार्चापुरतः स्थिते ।
द्वे द्वे च यक्षभूतार्चे आज्ञाभृत्प्रतिमे अपि ॥२२६॥

विनयेन संमुखीनघटितान्जलि संपुटे ।
भक्तया पर्युपासमाने, स्थित किन्चिन्नते इव ॥२३०॥ *युग्मं ॥*

श्री जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा के आगे दो-दो नाग प्रतिमाएं हैं, उसके आगे के विभाग में आज्ञा को धारण करने वाली दो-दो यक्ष और भूत की प्रतिमाएं हैं, जो विनयपूर्वक सामने अंजलि जोड़कर स्थित रही नम्रतापूर्वक भक्ति से मानो सेवा करती हो इस तररह सेवक प्रतिमा समान है । (२२६-२३०)

एकैका चामरधर प्रतिमा पार्श्वयोर्द्वयोः ।
पृष्ठतश्च छत्रधर प्रतिमैकाऽत्र निश्चिता ॥२१३॥

दोनों तरफ एक-एक चमर धारक प्रतिमा है और पीछे एक छत्रधारक प्रतिमा निश्चित रूप में रही है । (२३१)

तथोक्तमावश्यक चूर्णौ - 'जिण पडिमाणं पुरओ दो दो नाम पडिमाओ, दो दो जक्खपडिमाओ, दो दो भूअपडिमाओ, दौ दो कुंडधर पडिमाओ' इत्यादि ।

'श्री आवश्यक चूर्णि में कहा है कि श्री जिन प्रतिमा के आगे विभाग में दो दो नाग प्रतिमा है, दो यक्ष प्रतिमा, दो-दो भूत प्रतिमा और दो-दो कुंडधर (सेवक) रूप प्रतिमाएं है । इत्यादि'

दामानि धूपघटयोष्टौ, मङ्गलानि ध्वजास्तथा ।
भान्ति षोडश कुम्भादीन्येष्वलङ्करणानि च ॥२३२॥

घण्टा वन्दन-मालाश्च, भृङ्गाराश्चात्मदर्शकाः ।
सु प्रतिष्ठकचङ्गेर्यश्छवैः पटलकैर्युताः ॥२३३॥ *युग्मं ॥*

यहां मालाएं धूप घटी-धूपदानी, अष्ट मंगल, ध्वजा सोलह कुंभादि तथा अलंकार तथा घंटा, तोरण कलश-भृंगार दर्पण, बडे थाल (सुप्रतिष्ठान छाष-टोकरी छत्र पट्टे आदि से युक्त सेवक प्रतिमा शोभायमान हो रही है। (२३२-२३३)

स्वर्ण वर्ण चारू रजोवालुकाभिर्मनोरमाः ।
भूमयस्तेपु राजन्ते, मूर्त्तैः शोभालवैरिव ॥२३४॥

सुवर्ण वर्णा तथा सुचारु रज्ज और वालुका द्वारा मनोहर-शोभायमान वहां की भूमियां मानो मूर्तिमान शोभति न हो इस तरह शोभती है । (२३४)

अथ कैश्चित्कृत स्नानैः सद्ध यानैर्धृतधौति कैः।
अन्तर्बहिश्चावदातैः, शरत्कालहृदैरिव ॥२३५॥

कैश्चित्कृतोत्तरासङ्गैर्मुखकोशावृताननैः ।
तत्काल नष्टान्तः पापपरावृत्तिभयादिव ॥२३६॥

मर्द्दयद्भिश्चन्दनेन कैश्चित्कर्पूरकुङ्कुमे ।
मोह प्रताप यशसी, चूर्णयद्भिरिवोर्जिते ॥२३७॥

कैश्चिद् घृसृण निर्यासोल्लासिकच्चोलकच्छलात् ।
हृद्यमान्तं भक्तिरागं दधद्भिः प्रकटं बहिः ॥२३८॥

कैश्चिन्नाना वर्ण पुष्पोद्दामदामौघदम्भतः ।
श्रयद्भिरद्भुतश्रेयः श्रेणी मिव करे कृताम् ॥२३९॥

वन्द मानैः पर्युपासमानैः पूजापरायणैः ।
प्रासादास्तेऽभितो भान्ति सुरा सुरनभ श्चरैः ॥२४०॥ *षड्भि कुलकं ।*

अब इस नदीश्वर के भव्य मंदिर में चारों तरफ से आते पूजा के अर्थी भव्यात्या उन मंदिरों की शोभा में कैसी वृद्धि करते थे उसे कहते है - वंदन करते कितनेक लोगों ने स्नान करके सद्ध्यान द्वारा और धोये उज्जवल धोती आदि वस्त्र

धारण करते है उससे बाह्य अभ्यन्तर उज्जवलता के द्वारा शरद् ऋतु के सरोवर का अनुकरण किया था अर्थात् जैसे शरदकाल के अन्दर सरोवर में पानी ऊपर नीचे निर्मल उज्जवल होता है और ऊपर के बगल आदि बैठे हुए होने से त्रिधा-तीन प्रकार दिखते है, वैसे यहां लोग भी तीन प्रकार की उज्जवलता धारण करते थे। तत्काल नाश हुए अंतर के पापों की परा वृत्ति न हो जाय ऐसे प्रकार के भय से ही मानो उत्तरासंग धारी-दुपट्टाखेस कई जनो द्वारा मुख कोश से मुख ढाकने में आता था। महा मोह राजा के प्रताप और यश को चूर्णित करने के लिए ही मानो सजे-तैयार न हुए हो। ऐसे कई पूजा के अर्थियों के द्वार चंदन की साथ में कर्पूर और कुंकुम (रोली) घोंटने में आया था। घिसने वाले घिस घिस कर तैयार किया विलेपन रस से लबालब भरा हुआ कचुले को कई ने हृदय स्थान पर धारण कर रखा था, क्योंकि हृदय में नहीं समाते भक्तिराग ही मानो कठोर रूप में बाहर प्रकाशित हो रहा था, तथा कोई विविध प्रकार के वर्ण वाले पुष्पों की बड़ी-बड़ी मालाओं के समूह के बहाने से हाथ में ली हुई अद्भुत कल्याण की श्रेणि का आश्रय करते थे।

इस तरह अनेक चेष्टायें प्रवृत्तियों में लगे हुए, वंदन कर रहे थे, पर्युपासना कर रहे थे, पूजा में परायण पूजा के अर्थी सुर, असुर, विद्याधरों द्वारा यह प्रासाद मंदिर चारों तरफ से शोभायमान हो रहा है। (२३५-२४०)

अर्हत्कल्याणकमहचिकीर्षयाऽऽगताः सुराः ।
इह विश्रम्य संक्षिप्तयाना यान्ति यथेप्सितम् ॥२४१॥

श्री अरिहंत परमात्मा के कल्याणक महोत्सवों का करने की इच्छा से आए हुए देवता यहां नंदीश्वर द्वीप के अन्दर विश्राम कर के वाहन-विमानादि को संक्षेप करके इच्छित स्थान में जाते हैं। (२४१)

ततः प्रत्यावर्त्तमानाः कृत कृत्या इहागताः ।
रचयन्त्यष्ट दिवसान् यावदुत्सवमुच्चकैः ॥२४२॥

वहां से वापिस जाकर कल्याणक महोत्सव भव्याति भव्य रूप में मनाकर कृत कृत्य बने वे देवता यहां पर आकर आठ दिन का श्री जिनेन्द्र भक्ति का महा उत्सव करते हैं। (२४२)

प्रतिवर्ष पर्युषणा चतुर्मासकपर्वसु ।
इहाष्टौ दिवसान् यावदुत्सवं कुर्वते सुराः ॥२४३॥

इसी तरह से प्रति वर्ष पर्युषणों के दिनों और चातुर्मासिक आदि पर्वों में देवता यहां पर आठ दिनों का श्री जिन भक्ति का महोत्सव करते हैं । (२४३)

तथोक्तं जीवाभिगम सूत्रे - ''तत्थ बहवे भवनवइवाणमंतरजोइस वेमाणिया देवाचउमासियापाडिवएसु संवच्छरिएसु वा अण्णे सु बहुसु जिण जम्मणणिक्खमणणाणुप्पत्ति-परिणिव्वाणमादिएसु देव कुज्जेसु य यावत् अट्ठाहितारू वाओ महा महिमाओ कारेमाणा पाले माणा सुहंसुहेणं विहरंति॥''

श्री जीवाभिगम सूत्र में कहा है कि - ''वहां बहुत भवनपति, वाण व्यन्तर, ज्योतिष्क वैमानिक देव, चातुर्मासिक एकम तथा संवच्छरी में भी और अन्य भी बहुत श्री जिनेश्वर भगवान के जन्म, दीक्षा, केवल ज्ञान, निर्वाण आदि और अपने देव कार्यों में आठ दिनों का महा महोत्सव महा महिमा करते पालन करते सुखपूर्वक विचरण करते हैं ।''

तत्रापि नियत स्व स्व स्थानेषु सुर नायकाः ।
उत्सवान्सपरीवाराः कुर्वन्ति भक्तिभासुराः ॥२४४॥

नंदीश्वर द्वीप में भी अपने-अपने नियत स्थान में देवता और देवेन्द्र भक्ति पूर्वक देदीप्यमान बनकर सपरिवार अट्ठाई महोत्सव करते हैं । (२४४)

तथाह नन्दीश्वकल्पः -

प्राच्ये ऽन्जनगिरौ शक्रः कुरुते ऽष्टाह्निकोत्सवम्।
प्रतिमानां शाश्वतीनां, चर्तुद्वारे जिनालये ॥२४५॥

तस्य चाद्रेश्चतुर्दिक्स्थमहावापीविवर्त्तिषु ।
स्फाटिकेषु दधिमुखपर्वतेषु चतुर्ष्वपि ॥२४६॥

चैत्येष्वर्हत्प्रतिमानां, शाश्वतीनां यथाविधि ।
चत्वारः शक्रदिक्शालाः कुर्वतो ऽष्टाहिकोत्सवम् ॥२४७॥

नन्दीश्वर कल्प में कहा है कि - पूर्व दिशा के अंजन गिरि पर्वत पर शाश्वती प्रतिमा के चार द्वार वाले जिनालय में, सौधर्मेन्द्र महाराज अष्टाह्निका

महोत्सव करते है और इसकी जो चार दिशा की महा वापिकाओं में स्थित स्फटिक के चार दधि मुख पर्वत है उस पर रहे चैत्य में शक्रेन्द्र के चार दिक्पाल वहां की रही शाश्वती अरिहंत प्रतिमाओं भी विधिपूर्वक अष्टाह्निक महोत्सव करते है। (२४५-२४७)

ईशानेन्द्र स्त्वौत्तराहेऽन्जनाद्रौ विदधाति तम् ।
तल्लोकपालास्तद्वापीदध्याधद्रिषु कुर्वते ॥२४८॥

उत्तर दिशा के अंजन गिरि पर्वत ऊपर इशानेन्द्र तथा उस पर्वत की बावडी के दधि मुख पर्वत ऊपर उसके चार दिग्पाल अट्ठाई महोत्सव करते हैं। (२४८)

चमरेन्द्रो दाक्षिणात्यन्चनाद्रावुत्सवं सृजेत् ।
तद्वाप्यन्तर्दधिमुखेष्वस्य दिक्पतयः पुनः ॥२४९॥

दक्षिण दिशा के अंजन गिरि पर्वत ऊपर चमरेन्द्र तथा उसकी बावडी के दधि मुख पर्वत पर उसके दिग्पाल अट्ठाई महोत्सव करते है। (२४९)

पश्चिमऽन्जनशैले तु, वलीन्द्रः कुरुते महम् ।
तद्दिक्पालास्तु तद्वाप्यन्तर्भागदधिमुखाद्रिषु ॥२५०॥

पश्चिम दिशा के अंजन गिरि पर्वत पर बलीन्द्र तथा उसकी बावडी के दधिमुख पर्वत ऊपर उसके लोकपाल अट्ठाई महोत्सव करते है। (२५०)

एतत्सर्वमर्थतो जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रेद्ध ऽपि -

तत्र गायन्ति गन्धर्वा, मधुरैर्नादविभ्रमैः ।
समान ताल विविधातोद्य निर्घोषबन्धुरैः ॥२५१॥

मृदङ्गवेणु वीणा दितूर्याणि संगतैः स्वैरः ।
कौशलं दर्शयन्तीव, तस्यां विबुधपर्षदि ॥२५२॥

इन सब बातों का अर्थपूर्वक श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में भी कहा है - श्री नंदीश्वर द्वीप के महाकाय जिनालयों में गंधर्व देव मधुर नाद और विभ्रम से युक्त और समान ताल का तथा विविध वाजिंत (बाजे) स्वर, शब्द सहित सुन्दर गान करते हैं ढोलक बांसुरी वीणा आदि बाजे, अपने संगत युक्त सुन्दर स्वर से मानो कि वह सुर परिषद में अपनी कौशल का प्रदर्शन करा रहे थे। (२५१-२५२)

नृत्यद्देवनर्त्तकीनां, रणन्तो मणिनूपुराः ।
वदन्तीव निर्दयांहि पातैर्मृद्वंहृपीडनम ॥२५३॥

नृत्य करती देव नर्तकियों के रण रणार करते मणिमय नूपुर मानो कि निर्दयतापूर्वक पाद निपात से कोमल चरण की पीड़ा को फरियाद करते थे । (२५३)

तासां तिर्यग् भ्रमन्ती नामुच्छलन्तः स्तनोपरि ।
मुक्ताहारा रमावेशाद् नृव्यन्तीवाप्यचेतनाः ॥२५४॥

तिरछी भ्रमण करती फिरती उन नर्तकियों के घूमने के कारण मोती की मालाएं उछला करती थी, मानो कि अचेतन भी वे मालाएं स्तन स्पर्शजन्य काम रस के आवेश से नृत्य करती थी । (२५४)

धिद्धिधिद्धिधिमि धिमि थेई तिनि स्वनाः ।
तासां मुखोद्गताश्चेतः सुख यान्ति सुध भुजाम् ॥२५५॥

नृत्य के ताल के धि...द्धि,...धि द्धि...धिमि...धिमि...थेइ...थेइ... इस तरह से उन नर्तकियों के मुख में से उच्चारण करते,शब्द उन देवों के चित्त को प्रमोद करती थी । (२५५)

पूर्वं हासां प्रहासाभ्यां स्वर्ण कृत् स्वपतीकृतः ।
कृत्रिमैर्विभ्रमैर्विप्रलोभ्य यः स्त्रीषु लम्पटः ॥२५६॥
सौऽत्र कण्ठान्निराकुर्वन्निपतन्तं बलाद्गले ।
मृदङ्ग भङ्गुर ग्रीवो, विलक्षोऽहासयत्सुरान् ॥२५७॥
अच्युतत्रिदशीभूत प्राग्जन्मसुहृदा कृतः ।
नागिलेनाप्तसम्यक्त्वः प्राप्तेनामरपर्षदि ॥२५८॥ *त्रिभि विशेषकं ।*

इस सम्बन्ध में कुमार नदी सोनी का उदाहरण कहते है - पूर्व जन्म में स्त्रियों में अति लंपट सोनी था, उसे हासा-प्रहासा नाम की व्यंतर देवियां ने कृत्रिम कटाक्ष विभ्रमो द्वारा प्रलोभित करके अग्नि में प्रवेश करवा कर अपना पतिदेव बनाया था । यहां नंदीश्वर द्वीप की यात्रार्थे निकालते सौ धर्मेन्द्र के हुकम से उस देव के गले में बजाने के लिए ढोल आकर पडा, वह काम मंजुर न होने से उस

सोनी देव ने ढोल को निकाल दिया, तब जबरदस्ती भी गले में आ गया, इस तरह बारम्बार चेष्टा करने से उसकी गरदन खण्डित हो गई इससे वह दुःखी बना अन्य देवों को भी हास्य का कारण बना था । उस समय में उसके पूर्व जन्म का मित्र नागिल श्रावक जोकि उस समय में अच्युत देव लोक में देव था वह अमर पर्षदा में आकर उस मित्रदेव के बोध देकर सम्यकत्व दर्शन प्राप्त कराया था । यह दृष्टान्त श्री नंदीश्वर की यात्रा के साथ में जुड़ा हुआ होने से इतना यहां दिया है । (२५६-२५८)

जंघाविद्याचारणानां, समुदायो महात्मानाम् ।
इह चैत्यनमस्यार्थं श्रद्धोत्कर्षादुपेयुषाम् ॥२५६॥

ददात्युपदिशन् धर्मं, युगपद्भावशालिनाम् ।
सज्जङ्गमस्थावरयोस्तीर्थयोः सेवनाफलम् ॥२६०॥

जंघा चारण, विद्या चारण महात्माओं के समुदाय जो श्रद्धा के उत्कर्ष भावना से यहां नंदीश्वर द्वीप में चैत्य को वंदन के लिए आते हैं। ये महात्मा जंगम तीर्थ स्वरूप होते है, जबकि यह तीर्थ स्थावर है । इस तरह स्थावर व जंगम तीर्थों के युगपद भाव से शोभते और धर्मोपदेश प्रदान करते उन मुनिवरों का समुदाय स्थावर-जगम तीर्थ की सेवा का फल यात्रिक को देते हैं । (२५६-२६०)

द्वीपस्य मध्यभागेऽस्य, चतुष्के विदिशां स्थिताः।
चत्वारोऽन्ये रतिकरा, गिरयः सर्वरत्नजाः ॥२६१॥

इस द्वीप के मध्य विभाग में चार विदिशाओं में सर्व रत्न मय चार रतिकार पर्वत रहे हुए है । (२६१)

योजनानां सहस्राणि, ते दशायतविस्तृताः ।
सहस्रमेकमुत्तुङ्गा, आकृत्या झल्लरी निभाः ॥२६२॥

सार्द्धे द्वे योजन शते, भूमग्नाः परिवेषतः ।
एकत्रिंशत्सहस्राणि, त्रयोविंशा च षट्शती ॥२६३॥

ये चार रतिकर पर्वत दस हजार योजन लम्बे, दस हजार योजन चौड़े, एक हजार योजन ऊंचे और आकृति में झंल्लरी बाजे के समान है वे भूमि में दो सौ

पचास योजन अवगाढ है और परिधि इक्तीस हजार छः सौ तेईस (३१६२३) योजन है । (२६२-२६३)

तेभ्यो लक्षं योजनानामतिक्रम्य चतुर्दिशम् ।
जम्बूद्वीपसमा राजधान्यः प्रत्येकमीरिताः ॥२६४॥

इस पर्वत के चारों दिशा में एक लाख योजन जाने के बाद चार राजधानियां हैं जो कि प्रत्येक राजधानी जम्बू द्वीप के समान है । (२६४)

तत्र दक्षिण पूर्वस्यां, स्थिताद्रतिकरा चलात् ।
प्राच्यां पद्मानामदेव्या, प्रज्ञप्ता सुमनाः पुरी ॥२६५॥

शिवा देव्या दक्षिणस्यां, पुरी सौमनसाभिधा ।
अर्चिमाली प्रतीच्यां स्याच्छचीदेव्या महापुरी ॥२६६॥

उसमें अग्नि कोने में रहे रतिकर पर्वत से पूर्व दिशा में पद्मानाम की देवी की सुमना नाम की नगरी कहीं है । दक्षिण दिशा में शिवा नाम की देवी की सौमनसा नाम की नगरी कही है । पश्चिम दिशा में शची नाम की देवी की अर्चिमाली नाम की नगरी कही है। (२६५-२६६)

उत्तरस्यां मञ्जु नाम्न्या, राजधानी मनोरमा ।
दक्षिण पश्चिमायां च स्थिताद्रतिकरादय ॥२६७॥

पूर्वस्याममलादेव्या, भूत नाम महापुरी ।
भूतवतंसका याम्यामप्सरोऽभिधर्तृका ॥२६८॥

प्रतीच्यां नवमिकाया, गोस्तूपाख्या महापुरी ।
स्यादुत्तरस्यां रोहिण्या, राजधानी सुर्दशना ॥२६९॥

उत्तर दिशा में मंजू नाम की देवी की मनोरम नाम की नगरी है। दक्षिण और पश्चिम दिशा के बीच नैऋत्य कोन में रहा रतिकर पर्वत से पूर्व दिशा में, अमला देवी की भूत नाम की नगरी है, दक्षिण दिशा में अप्सरा नाम की देवी की भूतावतंसका नाम की नगरी है, पश्चिम दिशा में नवभिकायां नाम की देवी की गोस्तूप नाम की महानगरी है, और उत्तर दिशा में रोहिणी नाम की देवी की सुर्दशना नाम की नगरी है । (२६७-२६९)

अष्टाप्येवं राजधान्योऽनयो दिशां चतुष्टये ।
अष्टानां मुख्य देवीनां वज्र पाणेः सुरेशितुः ॥२७०॥

इन दो रतिकर पर्वत की चारों दिशा में रही आठ राजधानियां सौधर्मेन्द्र की आठ अग्रमहिषियां (इन्द्राणी) की है । (२७०)

अथचोत्तर पूर्वस्यां योऽसौ रतिकराचलः ।
कृष्णा देव्यास्ततः प्राच्यां, पुरी नन्दोत्तराभिधा ॥२७१॥

दक्षिणस्यां कृष्ण राज्यादेव्या नन्दाभिधा पुरी ।
पश्चिमायां तु रामायाः पुर्युत्तरकुराभिधा ॥२७२॥

उदग्रामरक्षितायाः पुरी देवकुराभिधा ।
योऽप्युत्तर पश्चिमायां शैलो रतिकरस्ततः ॥२७३॥

अब उत्तर पूर्व के बीच ईशान कोने के रतिकर पर्वत की पूर्व दिशा में कृष्णा देवी की नंदोत्तरा नाम की नगरी है, दक्षिण दिशा में कृष्णराजी देवी की नंदा नाम की नगरी है, पश्चिम दिशा में राम देवी की उत्तरा कुरु नाम की नगरी है और उत्तर दिशा में रामरक्षिता देवी की देवकुरु नाम की नगरी है। (२७१-२७३)

वसुदेव्या राजधानी, प्राच्यां रत्नाभिधा भवेत् ।
याम्यां तु वसुगुप्तायाः रत्नोच्चयाभिधा पुरी ॥२७४॥

प्रतीच्यां वसुमित्रायाः सर्व रत्नाभिधा पुरी ।
वसुन्धरायाश्चोदीच्यां नगरी रत्नसंचया ॥२७५॥

उत्तर और पश्चिम के मध्य दिशा वायव्य कोन में जो रतिकर पर्वत है उसकी पूर्व दिशा में वसुदेवी की रत्न नाम की राजधानी है, दक्षिणा दिशा में वसुगुप्ता देवी की रत्नोच्चया नाम की नगरी है, पश्चिम दिशा में वसु मित्रा देवी की सर्वरत्ना नाम की नगरी है, और उत्तर दिशा में वसुन्धरा देवी की रत्न संचया नाम की नगरी है । (२७४-२७५)

एता ईशानेन्द्र देवीराज धान्योऽष्ट पूर्ववत् ।
एकैकार्हच्चैत्यलब्धसुषमाः षोडशाप्यम् ॥२७६॥

सौ धर्मेन्द्र की अग्रमहिषियों के समान ये आठ राजधानियां ईशानेन्द्र की आठ अग्रमन्षियों की है, और इन सोलह राजधानियों में एक-एक आर्हत चैत्य से शोभा को धारण की है । (२७६)

इत्यर्थता: स्थानाङ्गदिषु :-

मतान्तरे तूत्तराशासंबद्धौ यावुभौ गिरी ।
तयोः प्रत्येकमष्टासु दिक्ष्वीशान सुरेशितु ॥२७७॥

महिषीणां राजधान्योऽष्टनामष्टाष्ट निश्चिता: ।
एवं च याम्य दिक्संबद्ध यो रतिकराद्रयो: ॥२७८॥

प्रत्येकमष्टासु दिक्षु वज्रपाणेर्विडौजस: ।
इन्द्राणीनां राजधान्योऽष्टनामष्टाष्ट निश्चिता: ॥२७९॥

इस विषय में श्री स्थानांग सूत्र आदि में कहा है कि – मतान्तर में तो उत्तर दिशा सम्बन्धी जो दो पर्वत है, उस सम्बन्धी आठ दिशा में ईशान इन्द्र की आठ अग्रमहिषी की आठ-आठ राजधानी कही है । इस तरह से दक्षिण दिशा सम्बन्धी रतिकर पर्वत की प्रत्येक आठ दिशा में सौधर्मेन्द्र की आठ अग्रमहिषयों की आठ राजधानी निश्चित है । (२७७-२७९)

तथोक्तं श्री जिनप्रभसूरि कृते नन्दीश्वर कल्पे –

तत्र द्वयो रतिकराचलयोर्दक्षिणस्थयो: ।
शक्रस्येशानस्य पुनरूत्तरस्थितयो: पृथक् ॥२८०॥

अष्टानां महादेवीनां राजधान्योऽष्ट दिक्षुता: ।
लक्षाबाधा लक्षमाना, जिनायतनभूषिता: ॥२८१॥

सुजाता च सौमनसा, चार्चिर्माली प्रभाकरा ।
पद्मा शिवा शच्यंजने, भूता भूतावतंसिका ॥२८२॥

गोस्तूपा सुदर्शने अप्यमलाप्सरसौ तथा ।
रोहिणी नवमी चाथ, रत्ना रत्नोच्चयापि च ॥२८३॥

सर्वरत्ना रत्नसंचया वसुर्वसुमित्रिका ।
वसु भागापि च वसुन्धरानन्दोत्तरे अपि ॥२८४॥

नन्दोत्तरकुरुर्देवकुरुः कृष्णा ततोऽपि च ।

कृष्णराजीरामारामरक्षिताः प्राक्क्रमादभूः ॥२८५॥

आचार्य श्री जिनप्रभ सूरिकृत श्री नंदीश्वर कल्प में इस तरह कहा है - दक्षिण दिशा में रहे रतिकर पर्वत की आठ दिशा में शक्र की और उत्तर दिशा में रहे रतिकर पर्वत की आठ दिशा में ईशानेन्द्र की आठ महादेवियों की आठ राजधानियां कही है । इन प्रत्येक राजधानियों का लाख-लाख योजन का अन्तर हैं, लाख योजन के प्रमाणवाली है और श्री जिन भवन मंदिर से भूषित है । तथा सुजाता, सौमनसा, अर्चिमाली, प्रभाकरा पद्माशिवा, शची, अंजना, भूता, भूतावतंसिका, गोस्तूप सुदर्शना, अमला, अप्सरा, रोहिणी, नवमी, रत्नोच्चया, सर्वरत्ना, रत्न संचया, वसु वसुमित्रि का, वसु भागा, वसुन्धरा, नन्दोत्तरा, नंदा, उत्तर कुरु, देव कुरु, कृष्णा, कृष्णराजी, रामा राम रक्षित, इस तरह से पूर्व दिशा के क्रमानुसार नगरियां है इत्यादि । (२८०-२८५)

षोडशैवं राजधानी चैत्यानि प्राक्तने मते ।

मतान्तरे पुनर्द्वात्रिंशदेतानीति निर्णयः ॥२८६॥

इस राजधानी के चैत्यालय पूर्व मतानुसार सोलह है और मतान्तर अनुसार बत्तीस चैत्य है । (२८६)

तथाह नन्दीश्वर स्तोत्र कार -

इ अ वीसं बावन्नं च जिणहरे गिरि ह्सिरेसु संथुणिमो ।

इंदाणिरायहाणिसु बत्तीसं सोलह व वंदे ॥२८७॥

श्री नन्दीश्वर स्तोत्रकार ने कहा है कि - गिरि के शिखर ऊपर बीस और बावन मंदिरों की स्तवना करता हूं । और इन्द्राणी की राजधानी में और सोलह जिन चैत्य-मंदिरों को वंदन करता हूं (२८७)

"एतत्सर्वमप्यर्थतो नन्दीश्वर स्तोत्रं सर्व सूत्रतोऽपि योग शास्त्र वृत्ता वप्यस्ति ।"

यह सारे अर्थ से और नंदीश्वर स्तोत्र में सूत्र से तथा श्री योगशास्त्र की वृत्ति में भी कहा है ।

दीपोत्सवामावास्याया, आरभ्भ प्रत्यमादिनम् ।
अपोषणं वितन्वाना, वर्षं यावन्निरन्तरम् ॥२८८॥

भक्तया श्री जिन चैत्यानांकुर्वन्तो वन्दनार्चनम् ।
नदीश्वरस्तुतिस्तोत्रपाठपावितमानसा: ॥२८९॥

भव्या नन्दीश्वरद्वीपमेवमाराधयन्ति ये ।
तेऽर्जयन्त्यार्जवोपेता: श्रेयसीं श्रायसीं श्रियम् ॥२९०॥

दिवाली की अमावस्या से लेकर प्रत्येक अमावस्या में उपवास करके एक वर्ष तक भक्तिपूर्वक जिन चैत्यों को वंदना पूजा करता है श्री नन्दीश्वर की स्तुति स्तोत्र पाठ से भावित मन वाला जो सरल भव्यजीव श्री नंदीश्वर द्वीप की आराधना करता है, वह कल्याणकारी मोक्ष की लक्ष्मी को प्राप्त करता है । (२८८-२९०)

इत्थं व्यावर्णितरूपं द्वीपं नंदीश्वराभिधम् ।
तिष्ठत्यावेष्टय परितो, नंदीश्वरोदवारिधि: ॥२९१॥

इस प्रकार उसका वर्णन किया है उस नंदीश्वर द्वीप के चारों तरफ से लिप्त हुआ नंदीश्वरोद नाम का समुद्र रहा हुआ है । (२९१)

सुमन: सुमनोभद्रो, सुरौ समृद्धिमत्तया ।
नंदीश्वरौ तत्संबंधि, जलमस्येत्यसौ तथा ॥२९२॥

सुमना और सुमनोभद्र नाम के दो देव समृद्धिशाली होने से नंदीश्वर कहलाते हैं । नंदी का अर्थ समृद्धि-ईश्वर अर्थात् स्वामी, उसके सम्बन्धी जल होने से नंदीश्वरोद समुद्र कहलाता है । (२९२)

लग्नं नंदीश्वरे द्वीपे जलं वाऽस्यत्यसौ तथा ।
असौ नंदीश्वरद्वीपाद्वार्द्धिर्द्विगुणविस्तृत: ॥२९३॥

अथवा इस समुद्र का जल नंदीश्वर द्वीप का संलग्न होने से भी यह समुद्र नंदीश्वरोद कहलाता है । यह समुद्र नंदीश्वर द्वीप से दो गुणा (डबल) चौड़ा है । (२९३)

एनमावेष्टय परितः स्थितो द्वीपऽरूणाभिधः ।

नंदीश्वराब्धेर्द्विगुणविष्कम्भोऽसौ निरूपितः ॥२६४॥

नंदीश्वर समुद्र के चारों तरफ वेष्टन - लिटा हुआ अरुण नाम का द्वीप आता है । अरुण द्वीप नंदीश्वरोद समुद्र से दो गुणा चौड़ा है । (२६४)

असौ निजाधीश्वरयोरशोकवीतशोकयोः ।

सुरयोः प्रभया रक्तकान्तित्वादरूणाभिधः ॥२६५॥

यह द्वीप अपने अधीश्वर अशोक और वीतशोक देवों की प्रभा से रक्त कान्ति वाला होने से अरुण नाम वाला है । (२६५)

यद्वैतत्पर्वतादीनां, सद्वज्ररत्नजन्मनाम् ।

प्रसरद्भिः प्रभाजालैररूणत्वात्तथाभिधः ॥२६६॥

अथवा इस द्वीप के पर्वत आदि में वज्र आदि रत्न उत्पन्न होते है, उसे रत्नों की फैलती प्रभा से अरूण (लाल) होने से अरूण द्वीप नाम पड़ा है । (२६६)

अरूणोदाभिधो वार्द्धिरेनमावृत्य तिष्ठति ।

विस्तारतोऽरुणाद्वीपद्विगुणः परितोऽप्यसौ ॥२६७॥

अरूण द्वीप के चारों तरफ से लिपटा हुआ अरूणोद नाम का समुद्र है इस समुद्र का विस्तार अरूण द्वीप से दो गुणा है । (२६७)

सुभद्र सुमनोभद्राभिधयोरेतदीशयोः ।

भूषणाभाभिररूणं, जलं यस्येत्यसौ तथा ॥२६८॥

इस समुद्र के अधिष्ठाता सुभद्र और सुमन भद्र नामक देवों के आभूषणों की आभा से समुद्र का जल अरूण (लाल) होने से इसका नाम अरूणोद कहा गया है । (२६८)

यद्वाऽरूणद्वीपपरिक्षेप्यमुष्योदकं स्फुरत् ।

ततोऽरूणोदाभिधानः प्रसिद्धोऽयं पयोनिधिः ॥२६९॥

अथवा तो इस समुद्र का स्फुरायमान जल अरूण द्वीप की चारों तरफ गोलाकार होने से यह समुद्र अरूणोद नाम से प्रसिद्ध है । (२६९)

एवमन्येष्वपि ज्ञेया, निःशेषद्वीपवार्द्धिषु ।

व्यास द्वैगुण्यनामार्थौ, स्वामिनश्च स्वयंश्रुतात् ॥३००॥

इस तरह शेष सभी समुद्र विस्तार से दोगुने है अर्थ गर्भित नाम तथा उसके स्वामी के नाम से सब जानकारी श्रुत से स्वयं जान लेना चाहिए । (३००)

ततोऽरूणवरो द्वीपस्तमप्याश्रित्य तिष्ठति ।

पारावारोऽरूणवरो, महा भोगीव सेवधिम् ॥३०१॥

अरूणोद समुद्र के आश्रय से अरूणवर नाम का द्वीप है और सर्प जैसे निधि के आश्रय से रहता है, उसी तरह अरूणवर नाम का समुद्र द्वीप के आश्रय रहा है । (३०१)

एनं द्वीपोऽरूणवरावभासः परिषेवते ।

आलिङ्गत्यरूणवरावभासस्तं च वारिधिः ॥३०२॥

अरूण वर समुद्र को लिपटा हुआ अरूणवरवभास नाम द्वीप है उसे लिपटकर अरूणावरावभास नाम का समुद्र है । (३०२)

ततश्च कुण्डल द्वीपो, मेदिन्या इव कुण्डलम् ।

अयं त्रिप्रत्यवतारापेक्षयाद्वादशो भवेत् ॥३०३॥

उसके बाद पृथ्वी के कुंडल समान कुंडल द्वीप है जो त्रिप्रत्यवतार की अपेक्षा से बारहवाँ है । (३०३)

स्थानाङ्ग तृतीय स्थान वृत्तौ च अरूणादीनां त्रि,प्रत्यवतार मनाश्रित्याय मेकादशोऽभिहितः तथाहि :-

स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थान की वृत्ति में अरूण आदि की त्रिप्रत्यवतार अपेक्षा बिना कुंडल द्वीप ग्यारहवां कहा है । वह इस प्रकार :-

"जम्बू दीवो१ धायइ२ पुक्खरदीवो३ अवारूणिवरो४ य ।

खीर वरोवि य दीवो५ धयवर दीवो य६ खोदवरो७ ॥३०४॥'

नंदीसरोअ८ अरूणो९ अरूणोवाओ य१० कुंडलवरो य११।

तह संख१२ रूअग१३ भुअवर१४ कुस१५ कुंचवरो यतो१६ दीवो ॥३०५॥

१- जम्बूद्वीप, २- धात की खंड ३- पुष्कर द्वीप, ४- वारूणिवर, ५- क्षीरवर द्वीप, ६- घृतवर द्वीप, ७- क्षोदवर, ८- नंदीश्वर द्वीप, ९- अरूण, १०- अरूणोपात, ११- कुंडलवर द्वीप, १२- शंख द्वीप, १३- रूचक, १४- भुजवर, १५- कुंचवर आदि अनेक द्वीप है । (३०४-३०५)

इति क्रमापेक्षायै कादशे कुण्डलद्वीपे" इत्युक्त एवं भगवती शतक चतुर्थोद्देशक वृत्तावप्ययमे का दशोऽभिहित, इति, तत्वं बहुश्रुता विदन्ति ।

इसी क्रम की अपेक्षा से ग्यारहवां कुंडल द्वीप कहा है । इस प्रकार से श्री भगवती सूत्र शतक चौथे उद्देश की टीका में भी ग्यारहवां कहा है । इसलिए तत्व तो ज्ञानी भगवन्त ही जानते हैं ।

अस्मिंश्च कुण्डलगिरिर्मानुषोतरवत्स्थितः ।
योजनानां द्विचत्वारिंशतं तुङ्ग सहस्त्र कान् ॥३०६॥

सहस्त्रमेकं भूमग्नो, मूले मध्ये तथोपरि ।
विस्तीर्णोऽयं भवेच्छैलो, मानुषोत्तर शैलवत् ॥३०७॥

इस द्वीप के अन्दर कुंडल गिरि नाम का पर्वत है जो कि मानुषोत्तर पर्वत के समान रहा है वह बयालीस हजार योजन ऊंचा है और एक हजार योजन भूमि के अन्दर रहा है । मूल मध्य और ऊपर में यह पर्वत मानुषोत्तर पर्वत के समान विस्तार वाला है । (३०६-३०७)

चतुर्दिशं चतुर्द्वाराश्चत्वारोऽत्र जिनालयाः ।
चतुर्गतिभवारण्यभ्रान्ताङ्गि विश्रमा इव ॥३०८॥

सर्वमेषां स्वरूपं तु, नन्दीश्वराद्रि चैत्यवत् ।
पार्श्वेऽथाभ्यन्तरेऽस्याद्रेर्दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः ॥३०९॥

इस कुंडल गिरि पर्वत के ऊपर चारों दिशा में चार द्वार वाले चार जिनालय है जो चतुर्गति संसार रूप अरण्य में व्याकुल बने जीवात्मा का विश्राम स्थान समान है । इन सभी चैत्यों का स्वरूप नंदीश्वर द्वीप के अन्दर रहे पर्वत के ऊपर मन्दिरों के समान है । (३०८)

चत्वारश्चत्वार एव, प्रत्येकं सन्ति भूधराः ।
सोमयमवैश्रमणवरूणप्रभसंज्ञकाः ॥३१०॥

अष्टाप्येते रतिकरपर्वताकृतयो मताः ।
उद्वेधोच्चत्वविष्कम्भैरुद्दामरामणीयकाः ॥३११॥

इस पर्वत से दक्षिण और उत्तर दिशा में नजदीक तथा अभ्यंतर चार-चार पर्वत है उसके नाम सोमप्रभ, यमप्रभ, वैश्रमण प्रभ, और वरूण प्रभ है इन आठ पर्वतों की आकृति रति कर पर्वत के समान है तथा ऊंचाई गहराई चौड़ाई से अत्यंत रमणीय लगते हैं । (३१०-३११)

एकैकस्याथ तस्याद्रे, राजधान्यश्चतुर्दिशम् ।
जम्बू द्वीप इव द्वात्रिंशदेता विस्तृतायताः ॥३१२॥

इन एक-एक पर्वत की चारों दिशा में बत्तीस राजधानियां हैं जो कि जम्बूद्वीप के समान लम्बी चौड़ी हैं । (३१२)

सोमा सोमप्रभा शिव प्राकारा नलिनापि च ।
राजधान्यो गिरेः सोमप्रभात्प्राच्यादिषु स्थिताः ॥३१३॥

बिशालाऽति विशाला च, शय्याप्रभा तथाऽमृता।
यमप्रभगिरेरेता, राजधान्यश्चतुर्दिशम् ॥३१४॥

भवत्यचलन द्वाख्या, समवसा कुबेरि का ।
धनप्रभा वैश्रमणप्रभशैलाच्चतुर्दिशम् ॥३१५॥

वरूण प्रभ शैलाच्च, वरूणा वरूणप्रभा ।
पुर्यपाच्यादिषु दिक्षु कुमुदा पुण्डरीकिणी ॥३१६॥

दक्षिणस्यां च या एता, नगर्यः षोडशोदिताः ।
चतुर्णां लोकपालानां ताः सौधर्मेन्द्र सेविनाम् ॥३१७॥

उत्तरस्यां पुनरिमा, याः षोडश निरूपिताः ।
चतुर्णां लोकपालानां ताः ईशानेन्द्रसेविनाम् ॥३१८॥

तथोक्तं द्वीप सागर प्रज्ञप्ति संग्रहण्यां -

इस पर्वत में से सोमप्रभ पर्वत की पूर्वादि चार दिशा में रहे सोम, सोमप्रभा'

शिव प्राकारा और नलिना नाम की राजधानियां है । यम प्रभ पर्वत की चारों दिशा में विशाला, अति विशाला, शय्या प्रभा तथा अमृता नाम की चार राजधानियां हैं । वैश्रमण प्रभ पर्वत की चार दिशा में अचलनद्धा, समक्वसा कुबेरिका और धनप्रभा नाम की चार राजधानियां हैं । और वरूण प्रभ पर्वत की पूर्व-पश्चिमादि दिशा में वरूण, वरुणप्रभा, कुमुदा और पुण्डरीकिणी नाम की चार राजधानियां है दक्षिण दिशा की ओर रही जो यह सोलह नगरियां है वे ईशानेन्द्र के चार लोकपाल सम्बन्धी हैं। इस तरह से द्वीप सागर प्रज्ञप्ति की संग्रह श्रेणी में कहा है। (३१३-३१८)

कुण्ड लनगस्स अब्भंतर पासे हुंति राय हाणी ओ।
सोलस दक्खिणपासे सोलस पुण उत्तरे पासे ॥३१९॥

इत्यादि भगवती तृतीय शताष्ट मोद्देशक वृत्तौ ।

'कुण्डल द्वीप के अभ्यन्तर में दक्षिण दिशा में सोलह और उत्तर दिशा में सोलह राजधानियां हैं ।' इत्यादि श्री भगवती सूत्र के तृतीय शतक के आठवें उद्देश की वृत्ति के अन्दर कहा है । (३१९)

एवं च परितो भाति, कुण्डलोदः पयोनिधिः ।
तं कुण्डलवरो द्वीपः परिक्षिप्याभितः स्थितः ॥३२०॥

स्यात्कुण्डल वरोदाब्धि स्ततो द्वीपः स्थितोऽभितः ।
कुण्डलवराव भासस्तन्नामाग्रे पयोनिधिः ॥३२१॥

इस तरह कुंडल द्वीप को लिपटा हुआ 'कुंडलोद' नामक समुद्र शोभता है, उसके चारों तरफ लिपटा हुआ कुंडलवर द्वीप रहा है उसके बाद चारों तरफ कुंडलवर नाम का समुद्र है, उसके बाद कुंडलवरा व भास नाम का द्वीप है और उसके बाद आगे कुंडलवरा व भास समुद्र होता है । (३२०-३२१)

अग्रे शंखाभिधो द्वीपः शंखवार्द्धिपरिष्कृतः ।
ततः शंखवरो द्वीपस्ततः शंख वरोऽवुधिः ॥३२२॥

द्वीपस्ततः शंखवरावभास इति विश्रुतः ।
स विष्वगन्वितः शंखवरावभासवार्धिना ॥३२३॥

ततोऽग्रे रूचक द्वीप, एष चाष्टादशो भवेत् ।
त्रिप्रत्यवतारमतेऽन्यथा, द्वीपस्त्रयोदशः ॥३२४॥

इसके आगे शंख नामक समुद्रसे लिपटा हुआ शंख नामक द्वीप आता है । और उसके बाद शंखवर द्वीप उसके बाद में शंखवर समुद्र आता है, उसके बाद शंखवरावभास नामक समुद्र के चारों तरफ से लिपटा हुआ शंखवरावभास नाम का प्रख्यात द्वीप है, उसके आगे रूचक नामक द्वीप है । जोकि त्रिपत्यवतार के मतानुसार अठारहवां है और सामान्य रूप में तेरहवां है । (३२२-३२४)

अरूणादीनां द्वीप समुद्राणां त्रिप्रत्यवतारश्च जीवाभिगमसूत्रवृत्यादौ सविस्तारं स्पष्ट, एव, जीवाभिगम चूर्णावपि - 'अरूण दीया दीव समुद्दा तिपडोयारा यावत्सूर्यवरावभांस' इत्युक्तमिति ज्ञेयं ।

अरूणादि द्वीप-समुद्रों का त्रिप्रत्यवतार श्री जीवाभिगम सूत्र की वृत्ति आदि में विस्तार पूर्वक स्पष्ट है । श्री जीवाभिगम की चूर्णि में भी कहा है कि - अरूणादि द्वीप-समुद्र त्रिप्रत्यवतार है यह यावत् सूर्यवरावभास तक समझना ।'

संग्रहणी लघुवृत्यभिप्रायेण त्वयं रूचक द्वीपोऽनिश्चित संख्या कोऽपि जंबूधायइ पुक्खरे त्यादि संग्रहणीगाथायां 'रूणवायत्ति' पदे नारूणा दीनां त्रिप्रत्यवतारस्य सूचित्तत्वात्, कुंडलवरावभासात्परं संख्या क्रमेणा नभिधानाच्च, तथा च तद्ग्रन्थ :- "एतानि च जम्बू द्वीपादारम्य क्रमेण द्वीपानां नामानि, अतः ऊर्ध्वं तु शंखादि नामानि यथा कथंचित् । परं तान्यपि त्रिप्रत्यवताराणी" त्यादि जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ तु एकेनादेशे न एकादशे द्वितीयादेशेन त्रयोदशे तृतीयादेशेन एकविंशे रूचक द्वीपे इत्युक्तमिति ज्ञेयं ॥'

संग्रहणी की लघु वृति के अभिप्राय से तो यह रूचक द्वीप का क्रम नम्बर अनिश्चित होने पर भी "जम्बू धायइ पुक्खर" त्यादि संग्रहणी गाथा में "रूणवायति" पद से अरूणादि का त्रिप्रत्यवतार सूचित है तथा कुंडलवरावभास से आगे की संख्या क्रमानुसार नहीं कहा । उसके अनुसार से जम्बू द्वीप से लेकर क्रमशः इन द्वीपों का नाम है, उसके बाद शंखादि नाम आगे पीछे है, परन्तु वह भी त्रिप्रत्यावतार है ।' इत्यादि । जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति की टीका में तो एक

मतानुसार ग्यारहवां है दूसरे मतानुसार तेरहवां है और तीसरे मतानुसार इक्कीसवां रूचक द्वीप कहा है ।

जीवा समासवृत्तौ तु ईक्षुरस समुद्रादनन्तरं नंदीश्वरो द्वीपः ८ अरूणवरः ९ अरूण वासः १० कुण्डलवरः ११, शंखवरः १२ रूचकवर : १३ इति, अनुयोग द्वार चूर्ण्यभि प्रायेण त्रयोदशो रूचकवरः अनुयोग द्वार सूत्रे त्वरूणवास शंखवर द्वीपौ लिखितौ न दृश्येते, अत स्तदभि प्रायेणैकादशो रूचकवरः परमार्थ तु योगिनो विदन्तीति । तथा जीव समास वृत्यभिप्रायेण जम्बू द्वीपादयो रूचक वरपर्यन्ता द्वीप समुद्रा नैरन्तर्येणावस्थिता नामतः प्रतिपादिताः अतः ऊर्ध्व तु भुजंगवरकुशवर क्रौंचवरा असंख्येयेतमा असंख्येयतमा इति ध्येयं ॥'

श्री जीव समास की वृत्ति में इक्षुरस समुद्र के बाद आठवां नंदीश्वर द्वीप नौवा, अरूणवर, दसवा अरूणवास, ग्यारहवां कुंड़लवर, बारहवां शंखवर और तेरहवां रूचकवर द्वीप कहा है । श्री अनुयोगद्वार की चूर्णि की अभिप्राय से रूचकवर द्वीप तेरहवां है । और अनुयोग द्वार के सूत्र में तो अरूणावास और शंखवर द्वीप का उल्लेख नहीं किया उसके अभिप्राय से रूचकवर द्वीप ग्यारहवां है। परमार्थ तो ज्ञानी भगवन्त जानते हैं । तथा श्री जीव समास वृत्ति के अभिप्राय से जम्बू द्वीप से लेकर रूचकवर द्वीप तक के निरंतर रहे द्वीप समुद्र नाम से कहे है उसके बाद भुजंगवर, कुशवर, कांचवर, नाम के असंख्य असंख्या है । ऐसा समझना ।

द्वीप स्यास्य बहुमध्ये, वर्त्तते वलयाकृत्तिः ।
पर्वतों रूचकाभिख्यः स्फाटो हार इवोल्लसन् ॥३२५॥

इस द्वीप के ठीक मध्यविभाग में रूचक नाम का वलयाकार पर्वत है जो विस्तृत उल्लसता प्रसन्नता का हार के समान शोभायमान है । (३२५)

योजनानां सहस्राणि, चतुरशीतिमुच्छ्रितः ।
मूले दश सहस्राणि द्वाविंशानि स विस्तृतः ॥३२६॥

मध्ये सप्त सहस्राणि त्रयोविंशानि विस्तृतः ।
चतुर्विंशाश्च चतुरः सहस्रान् मूर्ध्नि विस्तृतः ॥३२७॥

यह रूचक पर्वत ऊंचाई में चौरासी हजार योजन है उसमें मूल में विस्तार दस हजार बाईस (१००२२) योजन है मध्य भाग में सात हजार तेईस (७०२३) योजन, ऊपर के विभाग में चार हजार चौबीस (४०२४) योजन का है। (३२६-३२७)

एवं महापर्वताः स्युः कुण्डला कृतयस्त्रयः ।
मर्त्योत्तरः कुण्डलश्च, तथाऽयं रूचकाचलः ॥३२८॥

इस तरह कुंडलाकृति (गोलाकार) से तीन महापर्वत है १- मानुषोत्तर पर्वत २- कुंडलपर्वत और यह ३- रूचक पर्वत है । (३२८)

तथोक्तं स्थानाङ्गे - ''ततो मंडलिय पव्वता पं० तं० माणु सुत्तरे कुडलवरे रूअगवरे ।''

श्री स्थानांग सूत्र में भी कहा है, तीन मंडलिक पर्वत कहे है - मानुषोत्तर, कुंडलवर और रूचक पर्वत ।'

तुर्ये सहस्त्रे मूध्नर्यस्य, मध्ये चतसृणां दिशाम् ।
अस्ति प्रत्येकमेकैकं सुन्दरं सिद्धमन्दिरम् ॥३२६॥

इस पर्वत के चार हजार योजन से चार दिशा में एक-एक सुन्दर आकृति वाले सिद्ध मंदिर है । (३२६)

तानि चत्वारि चैत्यानि, नंदीश्वराद्रि चैत्यवत् ।
स्वरूपतश्चतसृणां, तिलकानीव दिक् श्रियाम् ॥३३०॥

इन चारों सिद्ध मंदिरों का स्वरूप नंदीश्वर पर्वत के चैत्यालय के समान है और वह चार-दिशा रूपी लक्ष्मी के तिलक के समान शोभायमान है । (३३०)

चैत्यस्य तस्यैकैकस्य, प्रत्येकं पार्श्वर्द्वयोः ।
सन्ति चत्वारि, चत्वारि, कूटान्यभ्रङ्कषाणि वै ॥३३१॥

इन एक-एक चैत्यालय के दोनों तरफ चार-चार अत्यन्त ऊंचे शिखर हैं । (३३१)

विदिक्षु तस्यैव मूर्ध्नि, स्याच्चतुर्थे सहस्त्रके ।
एकैकं कूटमुत्रङ्गमभङ्गरश्रियाऽन्चितम् ॥३३२॥

रूचक पर्वत के चौथे हजार योजन में चार विदिशाओं में अत्यन्त शोभायुक्त अत्यन्त ऊंचा एक-एक शिखर है । (३३२)

षट् त्रिंशत्येषु कूटेषु, तावत्यो दिक्कुमारिकाः ।
वसंति ताश्चतस्रस्तु, द्वीपस्याभ्यन्तरार्धके ॥३३३॥

इन छत्तीस कूटों में छत्तीस दिक्कुमारियां निवास करती है उसमें की चार दिक्कुमारी रुचक पर्वत के अभ्यान्तर आधे भाग में रहती है । (३३३)

तथोक्तं षष्ठाङ्गे मल्लयध्ययन वृत्तौ - ''मज्झिमरू अवगवत्थव्वा इत्यत्र रूचक द्वीप स्याभ्यरार्द्ध वासिन्य'' इति एवमावश्यक वृत्यादिष्वपि जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ तु चतुर्विंशत्यधिक चतुः सहस्र प्रमाणे रूचक गिरि विस्तारे द्वितीय सहस्रे चतुर्दिग्वर्तिषु कूटेषु पूर्वादि दिक्क्रमेण चतस्रो वसन्ती'' त्युक्तमिति ज्ञेयं ।

छठे अंग के मल्ली अध्ययन की टीका में कहा है कि 'मध्यम रूचक की वास्तव्य' अर्थात् रूचक द्वीप के अभ्यंतरार्ध में रहने वाली दिक्कुमारियां है इसी तरह से आवश्यक वृत्ति में भी कहा है । श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति की वृत्ति में तो चार हजार चौबीस (४०२४) प्रमाण विस्तार वाले रूचक द्वीप के विस्तार में दूसरा हजार योजन पूर्वादि चार दिशा में रहे कूट ऊपर अनुक्रम से चार दिक्कुमारियां रहती है इस प्रकार से कहा है।'

अयं च रूचकद्वीपो रूचकाब्धिपरिष्कृतः ।
द्वीपोऽग्रे रूचकवरस्तादृक् पाथोधि संयुतः ॥३३४॥

यह रूचक द्वीप रूचक समुद्र से लिपटा हुआ है, उसके आगे रूचकवर द्वीप रूचकवर समुद्र से युक्त है । (३३४)

ततोऽग्रे रूचकवराव भास द्वीप इष्यते ।
परिष्कृतोऽसौ रूचकावरावभासवार्द्धिना ॥३३५॥

उससे आगे रूचक वरावभास नाम के समुद्र से लिपटा हुआ रूचक वराव भास नामक द्वीप है । (३३५)

एवमब्धिः सूर्यवरावभासोऽन्ते ततः परम् ।
देवद्वीपः स्थितो देववार्द्धि श्चावेष्टय तं स्थितः ॥३३६॥

नाग द्वीपस्तमभितो, नागाब्धिश्चत ततः परम् ।
यक्ष द्वीपस्तदग्रे च, यक्षोदवारिधिस्ततः ॥३३७॥

भूताभिधस्ततो द्वीपस्ततो भूतोदवारिधिः ।
स्वयं भूरमण द्वीपः स्वयंभूरणाम्बुधिः ॥३३८॥

अन्ते स्थितः सर्व गुरुः, कोडी कृत्याखिलानपि ।
पितामह इवोत्सङ्ग कीडत्पुत्रपरम्परः ॥३३९॥

इस तरह से सूर्यवराभास समुद्र तक समझना । उसके बाद देव द्वीप है उससे लिपटा हुआ देव समुद्र रहा है, उसके बाद नाग नाम का द्वीप है, फिर नाग समुद्र है उसके बाद यक्ष द्वीप है और यक्षो दवारिधि = (समुद्र) है उसके बाद भूतनाम का द्वीप और भूतोदवारिधि आता है उसके बाद स्वयंभू रमण द्वीप आता है और अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र आता है । यह अन्तिम रहा स्वयंभूरमण समुद्र मानो सबका गुरु हो अथवा तो सर्व द्वीप समुद्र को अपने गोद में लेकर उत्संग में क्रीड़ा कर रहे पुत्रों की परम्परा वाले पितामह दादा के समान शोभता है। (३३६-३३९)

आसेवितोऽसौ जलधिर्जगत्या, वृद्धपतिः सत्कुलभार्ययेव ।
बलीपिनद्धः पलितावदातस, तरङ्गलेखाब्धिकफच्छलेन ॥३४०॥

जैसे कुलीन भार्या द्वारा वृद्ध पति भी आसेवित होता है, वैसे जगति से यह समुद्र भी लिप्त हुआ-आसेवित है । समुद्र को दी हुई वृद्धपति की उपमा घटाते है समुद्र के पानी के कल्लोल रूपी वलय आता है और फेन रूपी कफ आता है । (३४०)

लोकं परीत्यायमलोकमाप्तु मिवोत्सुकोलोलतरोर्भिरचक्रैः ।
तस्थो च रूद्धःप्रिययाजगत्या, लोकस्थितिच्छेदकलङ्कभीतेः ॥३४१॥(इन्द्रवज्रा)

सम्पूर्ण लोक को घेराव कर रखने वाला स्वयंभूरमण समुद्र आप्त गिना जाता है वह अलोक को मिलने लोल तरंगों की श्रेणी द्वारा उत्सुक बना दिखता है

परन्तु लोक स्थिति भंग हो जाने के कलंक के भय से प्रिया जगती द्वारा वह रूका हुआ रहता है । (३४१)

तस्याः पुरस्त्वविलया बलयाघनाब्धि, मुख्यामिथःसमुदिताऽदिताधैः।
ये रक्षयन्ति पर तोऽलमलोकसङ्गाद्, रत्नप्रभांकुलवधूं स्थविराइवोच्चैः ॥३४२॥
वसंत तिलका ।

जिसने पापों को पीस दिया है ऐसे भगवान फरमाते है कि उस स्वयंभूरमण समुद्र की आगे अन्तर रहित और परस्पर मिले हुए धनोंदधि, धनवात और तनवात के वलय रहे है । जिस प्रकार वृद्ध स्थविर कुलवधू का रक्षण करता है वैसे ही यह वलय आलोक के संसर्ग से चारों तरफ से रत्न प्रभा का सम्यक् प्रकार से रक्षण करता है । (३४१)

विश्वाश्चर्यदकीर्त्तिकीर्त्तिविजयश्रीवाचकेन्द्रान्तिष-
द्राज श्री तनयोत निष्ट विनयो श्रीतेजपालात्मजः।
काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जंगत्तत्व प्रदीपोप मे-
सर्गः पूर्ति मियाय संप्रति चतुर्विंशो नि सर्गोज्जवलः ॥३४३॥

॥ इति श्री लोक प्रकाशे चतुर्विंशति तमः सर्गः ॥

ग्रंथाग्रं ४२७

विश्व को आश्चर्य करने वाले कीर्ति बढ़ाने वाले श्री कीर्ति विजय जी उपाध्याय के अंते वासी तथा पिता तेजपाल और माता राज श्री के पुत्र श्री श्री विनय विजय जी उपाध्याय ने जगत के निश्चित तत्व की रचना की है, उसके जानकारी के लिए प्रदीप समान इस काव्य की असलियत उज्जवल लोक प्रकाश का चौबीसवां सर्ग सम्पूर्ण हुआ है । (३४३)

卐 इति चौबीसवां सर्ग समाप्त 卐

पच्चीसवां सर्ग

अथैतस्मिन्नेव तिर्यग्लोके सदा प्रतिष्ठतम् ।
वक्ष्ये चराचरं ज्योति श्चक्रंगुरुपदेशतः ॥१॥

अब इस तिर्यग् लोक में हमेशा प्रतिष्ठित होकर रहने वाले चराचर ज्योतिष चक्र का वर्णन गुरु के उपदेश द्वारा मैं करता हूं । (१)

मेरूमध्याष्टप्रदेशस्वरूपात् समभूतलात् ।
सप्तोत्पत्य योजनानां, शतानि नवतिं तथा ॥२॥

ज्योतिश्चक्रोप क्रमः स्यादती त्योद्धर्व ततः परम् ।
दशाढयं योजनशतमेति सम्पूर्णतामिदम् ॥३॥

मेरू पर्वत के मध्य आठ प्रदेश स्वरूप समभूतल से ऊंचे, सात सौ नव्वे योजन के बाद ज्योतिष चक्र प्रारम्भ होता है । और वहां से ऊपर एक सौ दस योजन में सम्पूर्ण होता है । अर्थात् नीचे से ९०० योजन है । (२-३)

एकादशैकविंशानि, योजनानां शतान्यथ ।
ज्योतिश्चक्रं भ्रमत्यर्वाक्, चक्रवालेन मेरूतः ॥४॥

मेरू पर्वत से ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) दूर रहा सम्पूर्ण ज्योतिष चक्र गोलाकार रूप में परिभ्रमण करता है ।

तिष्ठत्य लोकतश्चार्वाग्, ज्योतिश्चक्रंस्थिरात्मकम् ।
एकदशैर्योजनानां, नन्वेकादशभिः शतैः ॥५॥

इसी तरह अलोक से अन्दर (अलोक से आगे) ग्यारह सौ ग्यारह योजन दूर ज्योतिष चक्र स्थिर रहा है । (५)

एवं तत् सर्वतो मेरोर्न्यूनार्द्धरज्जुविस्तृतम् ।
दशाढयं यौजनशतं, स्यात् सर्वत्रापि मेदुरम् ॥६॥

इसी प्रकार वह ज्योति चक्र मेरू पर्वत से सर्व दिशा से कुछ कम अर्ध राज लोक और एक सौ दस योजन का विस्तार वाला सर्वत्र शोभायमान होता है। (६)

अन्यान्य काष्टा श्रयणादावृत्ताभिर्निरन्तरम् ।
घटिकाभिर्हरन्तीभिर्जनजीवातुजीवनम् ॥७॥

लब्धात्मलाभां दिवसनिशामालांसुबिभ्रतम् ।
कुर्वन्तं फलनिष्पत्तिं, विष्वक् क्षेत्रानुसारिणीम् ॥८॥

नानारकस्थितियुतं, नरक्षेत्रोरूकूपके ।
कालारघट्टं भ्रमयन्त्यर्कचन्द्रादिधूर्वहाः ॥६॥ *त्रिभि विशेषकं ॥*

सूर्य चन्द्रादि वृषभ अन्य-अन्य दिशा के आश्रय से गोलाकार और निरन्तर लोगों के जीवन रूपी पानी का हरण करते घड़ी द्वारा प्राप्त किया है, अपना लाभ उन्होंने सार्थकता अनुभव करते दिन रात की हारमाला को अच्छी तरह धारण करते अलग-अलग क्षेत्रों को अनुसरण फल निष्पत्ति को करते और अलग-अलग आरा की स्थिति से युक्त काल रूपी अरघट्ट-रहट को मनुष्य क्षेत्र रूपी विशाल कुए में प्ररिभ्रमण करता रहता है । (७-६)

ज्योतिश्चक्रस्यास्य तारापटलं स्याधस्तनम् ।
योजनानां सप्तशत्या सनवत्या समक्षितैः ॥१०॥

ज्योतिष चक्र में सबसे नीचे तारा मंडल होता है जो कि समतल भूमि से सात सौ नव्वे (७६०) योजन ऊंचा होता है । (१०)

योजनैर्दशभिस्तस्मादूद्ध्वै स्यात्सूरमण्डलम् ।
अष्टभिर्योजनशतैरेतच्च समभूतलात् ॥११॥

इससे दस योजन ऊपर सूर्य मंडल है, वह समतल भूमि से आठ सौ योजन ऊंचे होता है । (११)

अशीत्या योजनैः सूर मण्डलाच्चन्द्र मण्डलम् ।
अष्टशत्या योजनानां, साशीत्येदं समक्षितेः ॥१२॥

सूर्य मंडल से अस्सी योजन ऊंचाई पर चन्द्र मंउल आता है जो समतल भूमि से आठ सौ अस्सी योजन ऊंचा है । (१२)

नवत्या च योजनैस्तत्तारावृन्दादधस्तनात् ।
विंशत्या योजनैश्चन्द्रात्तारावृन्दं तथोद्धर्वगम् ॥१३॥

नीचे के तारा मंडल से नब्बे योजन ऊपर चन्द्र मंडल है और उससे बीस योजन ऊपर, ऊपर का तारा मंडल है । (१३)

नवभिर्योजनशतैः, समक्षितेरधस्तनात् ।
तारावृन्दाद्दशोपेतशतेन च भवेदिदम् ॥१४॥

ये ऊंचे तारा मण्डल समतल भूमि से नौ सौ योजन है और नीचे तारा मंडल से एक सौ दस योजन में है । (१४)

अत्र संग्रहणीवृत्यादावयं विशेष :-

चत्वारि योजनानीन्दोर्गत्वा नक्षत्रमण्डलम् ।
चतुर्भियौजनैस्तस्माद बुधानां पटल स्थितम् ॥१५॥

त्रिभिश्च योजनैः शुक्र मण्डलं बुध मण्डलात् ।
योजनैस्त्रिभिरेतस्मात् स्याद्वाचस्पति मण्डलम् ॥१६॥

गुरुणां पटलाद्भौभ मण्डलं योजनै स्त्रिभिः ।
त्रिभिश्च योजनैर्भौमात्, स्याच्छनैश्वर मण्डलम् ॥१७॥

इस विषय में संग्रहणी की वृत्ति आदि में इसके अनुसार विशेषता है :- चन्द्र से चार योजन दूर नक्षत्र मंडल है, उससे चार योजन दूर बुध का मंडल है, उससे तीन योजन पर शुक्र मंडल है, उससे तीन योजन दूर में गुरु मंडल है । इस गुरु मंडल से तीन योजन में मंगल मंडल है और इससे तीन योजन में शनि का मंडल है । (१५-१७)

विंशत्यायोजनैरेतत् स्थितं शशाङ्क मण्डलात् ।
नवभिर्योजन शतैः, स्थितं च समभूतलात् ॥१८॥

यह ऊपर के मंडल चन्द्र मण्डल से बीस योजन में रहा है और समतल भूमि से नौ सौ योजन रहा है ।

तथाऽऽह संग्रहणी -

"ताररवि चंद रिक्खा वुहसुक्का जीवमंगलसणीया ।
सगसय नउअ दस असीइ चउ चउ कमसो तिआ चउसु ॥१९॥"

संग्रहणी की मूलगाथा में कहा है - तारा, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, बुध, शुक्र, गुरु, मंगल, शनैश्चर अनुक्रम से समतल भूमि से ७९०, १०, ८०, ४, ४, ३, ३, ३ और तीन योजन के अन्तर में रहे है । (१९)

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तावपि :-

श तानि सप्त गत्वोर्द्धर्व, योजनानां भुवस्तलात् ।
नवतिं च स्थितास्तारा: सर्वाधस्तान्नभस्तले ॥२०॥

तारकापटलाद्गत्वा, योजनानि दशोपरि ।
सूराणां पटलं तस्मादशीतिं शीतरोचिषाम् ॥२१॥

चत्वारि तु ततो गत्वा, नक्षत्र पटलं स्थितम् ।
गत्वा ततोऽपि चत्वारि, बुधानां पटलं भवेत् ॥२२॥

शुक्राणां च गुरुणां च, भौमानां मन्द संज्ञिनाम् ।
त्रीणि त्रीणि च गत्वोर्द्धर्व क्रमेण पटलं स्थितम् ॥२३॥ इति ।

श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की वृत्ति में भी कहा है कि - 'समतल भूमि से सात सौ नब्बे योजन ऊंचे जाने के बाद आकाश में नीचे के विभाग में तारा मंडल आता है, तारा पटल से दस योजन में सूर्य का मंडल आता है उसके बाद अस्सी योजन में चन्द्र मंडल आता है वहां से चार योजन नक्षत्र मंड़ल आता है, वहां से चार योजन पर बुध का मंडल आता है, वहां से क्रमश: तीन योजन पर शुक्र तीन योजन में गुरु, तीन योजन पर मंगल और तीन योजन पर शनैश्वर का मंडल आता है ।' (२०-२३)

गन्ध हस्ती त्वाह - ''सूर्याणामधस्तान्मंगलाश्चरन्ती'' इति ॥

श्री आचार्य सिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वर जी रचित टीका गन्ध हस्ती में कहा है कि - 'सूर्य की नीचे मंगल चलता है' ।

हरिभद्र सूरि: पुनरध स्तने भरण्यादिकं नक्षत्रमुपरित्तने च स्वात्यादिक मस्तीत्याह तथा च तट्टीका - ''सत्तहिं नउएहिं उप्पिं हेट्ठिल्लो होइ तलोत्ति भरणि माइ जोइसपरो भवतीत्यर्थः तथोपरितलः स्वत्युत्तरो ज्योतिषां प्रतर इति तत्वं पुन: केवलिनो विदन्तीति संग्रहणी वृत्तौ ।''

पूज्य आचार्य श्री हरिभद्र सूरि जी ने कहा है कि नीचे विभाग में भरणी आदि नक्षत्र है और ऊपर विभाग में स्वाति आदि नक्षत्र होता है ।' तथा उसकी टीका में कहा है कि – सात सौ नब्बे (७९०) योजन जाने के बाद प्रथम नीचे का पट है और वहां भरणी आदि ज्योतिष का पटल आता है तथा ऊपर विभाग में स्वाति का पटल आता है जो कि अन्तिम है । इस बात का तत्व तो केवली भगवान जाने ! इस तरह संग्रहणी वृत्ति में कहा है ।

योगशास्त्र चतुर्थ प्रकाश वृत्तावपि, अत्र सर्वोपरि किल स्वाति नक्षत्रं सर्वेषामधो भरणीनक्षत्रं सर्वदक्षिणो मूलः सर्वोत्तरश्चाभीचिरित्युक्त मिति ज्ञेयम्॥

आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरी जी ने योगशास्त्र के चौथे प्रकाश की वृत्ति में भी सर्व से ऊपर स्वाति नक्षत्र और सर्व से नीचे भरणी नक्षत्र है सर्व से दक्षिण दिशा में मूल नक्षत्र और सर्व से उत्तर दिशा में अभीजित नक्षत्र कहा है ।

नक्षत्र पटले सर्वान्तरङ्गमभिजिद्भवेत् ।
यद्यप्यभिजिदादीनि, द्वादशान्तर मण्डले ॥२४॥

नक्षत्र पटल के बीच में अभिजित् नक्षत्र होता है जो कि अभिजित् आदि नक्षत्र बारहवां मंडल में है । (२४)

चरन्ति चारमृक्षाणि, मेरोर्दिशि तथाप्यदः ।
शेषैकादशनक्षत्रापेक्षायाऽन्तः प्रवर्त्तते ॥२५॥

तद्वन्मूलं सर्वबाह्यं यद्यप्यष्टममण्डले ।
बहिश्चराण्युडूनिस्युर्मृगशीर्षादिकानि षट् ॥२६॥

तथाप्यपरबाह्यर्क्षापेक्षयाऽम्भोनिधेर्दिशि ।
किन्चिद्बहिस्ताच्चरतिततस्तादृशमीरितम् ॥२७॥

नक्षत्र अपना चलन मेरू पर्वत की दिशा करते है, फिर भी यह अभिजित नक्षत्र शेष ग्यारह नक्षत्र की अपेक्षा से अन्दर भ्रमण करते है, तथा उसी तरह मूल नक्षत्र आठवां मंडल में सर्व से बाह्य है, फिर भी मृगशीर्ष आदि छः नक्षत्र बाहर भ्रमण करने वाले है, इस तरह अनेक नक्षत्र बाहर भ्रमण करने वाले है फिर भी

मूल नक्षत्र को बाहर भ्रमण करने वाले दूसरे नक्षत्रों की अपेक्षा से समुद्र की दि
में कुछ बाहर भ्रमण करने से उसे बाह्य वाले कहलाते हैं। (२५-२७)

ज्योतिश्चके दशोपेतशतयोजनमेदुरे ।
नक्षत्र पटलांशो यश्चतुर्योजनमेदुरः ॥२८॥

ज्योतिष चक्र के भ्रमण को विस्तार एक सौ दस योजन का है, उसमें नक्ष
पटल का अंश चार योजन का है । (२८)

तस्योपरितले स्वातिर्भरणी स्यादधस्तले ।
एवं नक्षत्रपटलं चिह्नैश्चतुर्भिरङ्कितम् ॥२९।

इस नक्षत्र पटल में ऊपर विभाग में स्वाति, अधतल में भरणी, इसी तर
नक्षत्र पटल चार चिह्न से युक्त है । (२९)

इदमर्थतोजम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्तौ -

चर ज्योतिश्चक्रगता, अपि प्रोक्ता ध्रुवा स्थिराः ।
तत्पार्श्ववर्तिनस्तारास्तानेवानु भ्रमन्ति च ॥३०॥

इस बात के अर्थ से श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति की वृत्ति में कहा है कि चल
वाले ज्योतिष चक्र में रहे भी जो ध्रुव तारा है वह स्थिर है और उसमें जो नजदीव
तारा है उसके ही आस पास में भ्रमण करते हैं । (३०)

ज्योतिश्चक्रे चरन्त्यस्मिन्, ज्योतिष्काः पन्चधा सुराः ।
विमानैः स्वैश्चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारकाः ॥३१॥

इस ज्योतिष चक्र में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा - ये पांच प्रकार के
ज्योतिष देवता अपने-अपने विमान में भ्रमण करते है । (३१)

पन्चानामप्यथै तेषां, विमानान्यनुकुर्वते ।
संस्थानेन कपित्थस्य, फलमुत्तानमर्द्धितम् ॥३२॥

ये पांच प्रकार के ज्योतिष्क के विमान उर्ध्व मुखी कोठ के आधे फल के
समान आकार वाले होते हैं । (३२)

ननु ज्योतिर्विमानानि, कपित्थार्द्धा कृतीनि चेत् ।
सूर्य चन्द्र विमानानां, स्थूला नामपि तादृशाम् ॥३३॥

बाढमस्तु दूरतया मस्तकोपरिवर्तिनाम् ।
वर्तुत्यत्व प्रति भासोऽधोवर्त्तिषु जनेष्वयम् ॥३४॥

यत्कपित्थ फलार्द्ध स्याप्यूर्द्धवं दूरं कृत स्थिते: ।
परभागादर्शनतो वर्तुलत्मवेक्ष्यते ॥३५॥

किन्तूदयास्तसमये, तिर्यक् चङ्क्रमणे कथम् ।
न तथा तानि दृश्यन्ते, तिर्यक् क्षेत्र स्थितान्यपि ? ॥३६॥

यहां शंका करते हैं कि - ज्योतिष्क के विमान आधा कोठा की आकृति वाले कहते है उसमें जैसे कपित्थ (कैथ वृक्ष का फल) का आधा फल ऊंचा दूर रखने में आये तो ऊपर का भाग नहीं दिखने से अधोवर्ती लोगों को गोलाकार दिखता हे, वैसे अति स्थूल भी सूर्य-चन्द्र के विमान जब मस्तक के ऊपर भाग में आते है तब दूर और अधोवर्ती लोगों को गोलाकार दिखता है, वह सम्यक् प्रकार से है, परन्तु उदय और अस्त के समय में तो उसका संक्रमण तिर्च्छा होता है तो उस समय क्यों गोलाकार दिखता है ? (३३-३६)

अत्रोच्यते :-

समास्त्येन कपित्थार्द्ध फलाकाराण्यमूनि न ।
किन्त्वमीषां विमानानां, पीठानि तादृशान्यथ ॥३७॥

प्रासादाश्चैतदुपरि, तथा कथंचन स्थिता: ।
यथा पीठै: सहाकारो, भूम्ना वर्त्तुलतां श्रयेत् ॥३८॥

एकान्तत: समवृत्त तया तु दूरभावत: ।
चन्द्रादिमण्डलाकारो, जनानां प्रतिभासते ॥३९॥

यहां शंका का समाधान करते हैं - ये सूर्य-चन्द्र के विमान सम्पूर्ण रूप में अर्ध कपित्थ (कैथ) फलाकार से है ऐसा नहीं है, परन्तु इन विमानों की पीठ उस आकार से होती है । इन पीठ ऊपर रहे जो प्रासाद-देव विमान है वह इस तरह रहे है जिसके कारण से भूमि ऊपर से देखते पीठ साथ में वे प्रासाद गोलाकार दिखते है अनुभव होते है । अत: दूर रहने वाले लोगों चन्द्रादि के मंडल के आकार एकान्त में गोल दिखता है । (३७-३९)

तथाहु : विशेषणवती काराः -

"अद्धक विट्ठा गारा उदयत्थमणम्मि कहं न दीसंति।

ससि सूराण विमाणाइं तिरिय खेत्तट्ठियाइं च ॥१॥"

विशेषणवती में भी प्रश्न किया है कि - तिर्यग् क्षेत्र में रहे चन्द्र सूर्य के विमान उदय और अस्त समय अर्ध कपित्थ आकार वाला क्यों नहीं दिखता ? (१)

उत्ताणद्धक विट्ठागारं पीठं तदवरि पासाओ ।

वट्टालेखेण तओ समवट्टं दूरभावाओ ॥२॥

इसका उत्तर देते हैं - खड़ा अर्ध कपित्थ के आकार वाली पीठ होती है उस के ऊपर अर्ध गोलाकार प्रासाद होते है, इसके कारण दूर से गोलाकार दिखता है ।(२)

विशेषश्चात्र प्रज्ञापना सूत्रे - 'जे य गहा जोइसम्मि चारं चरंति केऊ अगतिरतिया अट्ठावीस तिविहा णक्खत्तदेव गणा (ते) णाणा संढाण संढियाय'

श्री प्रज्ञापन सूत्र में विशेष रूप में कहा है कि - ज्योतिष्क चक्र के अन्दर जो ग्रह करते है, वे तीन प्रकार के होते हैं । १- केतु २- स्थिर ३- अट्ठाईस नक्षत्र ये तीनों प्रकार के नक्षत्र रूपी देवगण अलग-अलग संस्थान में रहते हैं।

जीवाभिगम वृत्तावपि - तथा ये ग्रहा ज्योतिश्चक्रं चार चरन्ति केतवो ये च बाह्य द्वीप समुद्रेष्वगतिरतिका ये चाष्टष विंशतिदेव नक्षत्र गणास्ते सर्वेऽपि नाना विध संस्थान संस्थिताः, च शब्दात्ततपनीय वर्णाश्च ॥

श्री जीवाभिगम सूत्र की वृत्ति में कहा है कि - जो ग्रह ज्योतिष चक्र में भ्रमण करता है, उसमें जो केतु, बाह्य द्वीप समुद्र में रहे स्थिर ग्रह तथा अट्ठाईस देव नक्षत्र गण है वे सभी अलग-अलग संस्थानों में रहते है और 'च' शब्द सर्व तप्त सुवर्ण के वर्ण वाला है ।'

एकस्य योजनस्यांशानेकषष्टिसमुद्भवान् ।

षट्पन्चाशतमिन्दोः स्याद्विमानं विस्तृतायतम् ॥४०॥

अंशानेतादृशानष्टाविंशतिं तत् समुच्छ्रितम् ।
सर्वे ज्योति र्विमाना हिं, निज व्यासार्द्ध मुच्छ्रिताः ॥४१॥

एक योजन का ६१ अंश विभाग करके और उसमें से ५६ अंश प्रमाण चन्द्र का विमान लम्बा चौड़ा है और २८ अंश ऊंचा है । क्योंकि सर्व ज्योतिष्क विमान अपनी चौड़ाई से आधा ऊंचाई वाला होता है । (४०-४१)

अष्टचत्वारिंशतं प्रागुक्तां शान् विस्तृतायतम् ।
विवस्वन्मण्डलं भागाँश्चतुर्विंशतिमुच्छ्रितम् ॥४२॥

पहले कहे अनुसार योजन के ६१ अंश में से ४८ अंश प्रमाण लम्बा चौड़ा सूर्य विमान है और चौबीस अंश ऊंचा है । (४२)

विशेष तस्तु - चतुर्दश शतान्यष्ट षष्टिः क्रोशास्तथोपरि ।
धनुः शताः सप्तदश चतुर्युक्ताः करत्रयम् ॥४३॥

अंगुलाः पन्चदश च चत्वारः साधिका यवाः ।
ततायतं चन्द्र बिम्बमुत्सेधाङ्गुलमानतः ॥४४॥

विशेष रूप उत्सेध अंगुल के अनुसार गिनती की जाय तो चौदह सो अडसठ (१४६८) सत्तरह सौ चार (१७०४) धनुष्य, तीन हाथ, पंद्रह अंगुल और साधिक चार यव लम्बा चौड़ा चन्द्र का बिम्ब है यह उत्सेध अंगुल का प्रमाण कहलाता है । (४३-४४)

शतानि द्वादशैकोनषष्टिः क्रोशास्तथोपरि ।
चापा द्वात्रिंशस्त्रि हस्ती, त्रयोऽङ्गुलाश्च साधिकाः ॥४५॥

ततायतं सूर्य बिम्बमुत्सेधाऽगुलमानतः ।
परिक्षेपस्तु विज्ञेयः स्वयमेवानयोर्द्वयोः ॥४६॥

उत्सेध अंगुल के प्रमाण से १२५६ कोस, ३२ धनुष्य, तीन हाथ साधिक तीन अंगुल, लम्बा चौड़ा सूर्य का बिम्ब होता है । जबकि ये चन्द्र, सूर्य बिम्ब का उत्सेध अंगुल जन्य परिधि स्वयमेव जान जेना चाहिए । (४५-४६)

प्रमाणाङ्गुलजक्रोशद्वयमायत विस्तृताः ।
स्युर्ग्रहाणां विमानास्ते, क्रोशमेकं समुच्छ्रिताः ॥४७॥

प्रमाण अंगुल के अनुसार दो कोस लम्बा-चौड़ा और एक कोस ऊंचा ग्रहों के विमान होते हैं । (४७)

नक्षत्राणां विमानश्च, क्रोशमायत विस्तृताः ।
क्रोशार्द्ध मुच्छ्रिताः प्रोक्ताः प्रमाणाङ्गुल मानतः ॥४८॥

प्रमाण अंगुल के अनुसार नक्षत्र के विमानों की लम्बाई चौड़ाई एक कोस होती है जबकि ऊंचाई आधे कोस की होती है । (४८)

प्रामाणाङ्गुलजेष्वाससहस्त्रायत विस्तृताः ।
तारा विमानः स्युः पन्चशतचापसमुच्छ्रिताः ॥४९॥

एतच्च तारा देवानामुत्कृष्ट स्थिति शालिनाम् ।
परिमाणं विमानानां, जघन्यायुर्जुषां पुनः ॥५०॥

विमाना धनुषां पन्च, शतान्यायत विस्तृताः ।
तेषामर्द्ध तृतीयानि, शतानि पुनरूच्छ्रिताः ॥५१॥

प्रमाण अंगुल के अनुसार तारा के विमान एक हजार धनुष्य लम्बा-चौड़ा होता है और पांच सौ धनुष्य ऊंचा होता है । यह परिमाण उत्कृष्ट आयुष्य वाले तारा देवताओं के विमानों को जानना । जब जघन्य आयुष्य वाले तारा देवों का विमान पांच सौ धनुष्य लम्बा-चौड़ा और २५० धनुष्य ऊंचा होता है । (४९-५१)

तथा च तत्वार्थ भाष्यम् - "सर्वोत्कृष्टायास्ताराया अर्द्धक्रोशो जघन्यायाः पन्च धनुः शतानि विष्कम्भार्द्ध बाहल्याश्च भवन्ति सर्वे ।"

और तत्वार्थ भाष्य में कहा है कि - उत्कृष्ट आयुष्य वाले ताराओं का विमान आधा कोस का होता है और जघन्य आयु वाले ताराओं का विमान पांच सौ धनुष्य प्रमाण होता है । सर्वत्र विमानों में विस्तार करते अर्धप्रमाण मोटाई होती है ।

नरक्षेत्रात परतो, मानमेषां यथाक्रमम् ।
एतदर्द्धप्रमाणेन, विज्ञेयं स्थायिनां सदा ॥५२॥

नर-मनुष्य क्षेत्र से बाहर सदा स्थिर ज्योतिष्क चक्र विमानों का प्रमाण आधा जानना चाहिए । (५२)

तथोक्तम् - "नरखेत्ताउ बहिं पुण अद्ध पमाणा ठिया निच्चं ।"

'कहा है कि – नर-मनुष्य क्षेत्र के बाहर ज्योतिष्क के विमान अर्ध प्रमाण वाले और नित्य स्थिर रूप होते है ।'

योग शास्त्रे चतुर्थ प्रकाशवृत्तौ तु - "मानुषोत्तरात्परतश्चन्द्रसूर्या मनुष्य क्षेत्री य चन्द्र सूर्य प्रमाणा" इत्युक्त मिति ज्ञेयम् ।

जबकि योगशास्त्र के चौथे प्रकाश की वृत्ति में कहा है कि – 'मानुषोत्तर पर्वत के आगे रहे चन्द्र और सूर्य मनुष्य क्षेत्रीय चन्द्र और सूर्य के प्रमाण अनुसार ही जानना ।' इस तरह भिन्न-भिन्न मत है ।

निरालम्बान्यनाधाराण्यविश्रामाणि यद्यपि ।
चन्द्रादीनां विमानानि, चरन्ति स्वयमेव हि ॥५३॥

तथापी दृक्षाभियोग्यनामकर्म्मानुभावतः ।
स्फारितस्कन्धशिरसः सिंहाद्याकारधारिणः ॥५४॥

अपरेषु सजातीय हीनं जातीयनाकिषु ।
निजस्फातिप्रकटनादत्यन्तं प्रीतचेतसः ॥५५॥

स्थित्वा स्थित्वाऽधो वहन्ते, निर्जरा अभियोगिकाः ।
तदेक कर्म्माधिकृताः सर्वदाऽखिन्न मानसाः ॥५६॥ *त्रिभि विशेषकं ॥*

ये चन्द्रादि विमान आलम्बन रहित-आधार रहित और विश्राम रहित रूप स्वयंमेव लगातार चलते है । फिर भी इस प्रकार के अभियोग्य नामकर्म के प्रभाव से स्कंध-मस्तक के विस्तार को सिंहादि आकार को धारण करने वाले, अपने सजातीय और हीन जाति देवताओं में अपनी विशेषता प्रगट करने से अत्यन्त खुश हुए विमानों के नीचे-नीचे रहकर अभियोगिक देवता हमेशा इन विमानों को वहन-उठाया करते है । और अपना यह कार्य करने का अधिकार है, इससे व सर्वदा प्रसन्न मन वाले रहते हैं । (५३-५६)

प्रत्यक्षं वीक्ष्यमाणत्वान्न चैतन्नोपपद्यते ।
अस्मिन्मनुष्य लोकेऽपि, केचिद्यथा ऽऽभियोगिकाः ॥५७॥

ताद्दक्ककर्मानु भावेनानुभवन्तोऽपि दासताम् ।
स जातीयेतरेपूच्चैर्दर्शयिन्तः स्ववैभवम् ॥५८॥

ख्यातस्य नेतुरस्य स्मः संमता इति सम्मदात् ।
रथादिलग्ना धावन्तः सेवन्ते स्वमधीश्वरम् ॥५६॥ *त्रिभिविशेषकं ॥*

ऐसा अनुभव प्रत्यक्ष रूप में दिखता है इसलिए असंगत नहीं है जैसे कि इस मनुष्य जगत में भी किसी का ऐसा नौकर तथा उस प्रकार के कर्माधीन दासत्व करता है फिर भी अपने सजातीय अन्य लोग में अपना सुख वैभव आदि का दिखावा करता है कि 'ऐसा विख्यात् और बड़े मनुष्यों का स्वामी है और यह इसका माननीय है ।' ऐसा प्रभाव डालकर आनंदित बना नोकर रथ आदि वाहनों में जोड़कर, उसके मालिक की सेवा करता है । फिर भी गौरव और आनंद का अनुभव करता है । (५७-५६)

नीचोत्तमानि कृत्यानि, प्रोक्तानिस्वामिना मनाक् ।
धावन्तः पन्चषा एक पदे कुर्वन्ति हर्षिताः ॥६०॥

स्वामी द्वारा दिखाया गया सामान्य अथवा बड़े काम को एक साथ में पांच छः जन दौड़ते हुए हर्ष पूर्वक करते हैं । (६०)

तथाह तत्वार्थ भाष्यम् - "अमूनि च ज्योतिष्क विमानानि लोक स्थित्या प्रसक्ता व स्थितगतीन्यपि ऋद्धि विशेष दर्शनार्थमाभियोग्यनाम कर्म्मोदयाच्च नित्यं गतिरतयो देववहन्ती ।" ति ॥

और तत्वार्थ भाष्य में कहा है कि "इस ज्योतिष्क के विमान और तथा प्रकार की लोक स्थिति के कारण से लगातार नियत गति वाले हैं, फिर भी ऋद्धि विशेष दिखाने के लिए और अभियोगिक नाम कर्म के उदय से अभियोगिक देवता हमेशा गति की रूचि वाले बनकर विमानों का वहन करते हैं ।" इति ।

तत्रापीन्दु विमानस्य, पूर्वस्यां सुभगाग्रिमाः ।
गोक्षीरफेनशीतांशुदधिशंख तलोज्जवलाः ॥६१॥

तीक्ष्णवृत्तस्थिरस्थलंदंष्ट्राङ्कुरवराननाः ।
रक्तोत्पलदलाकारलोला ललिततालवः ॥६२॥

क्षौद्र पिण्ड पिंग लाक्षाः पूर्णौरूस्कन्धबन्धुरा ।
सल्लक्षण स्वच्छ सटाः पुच्छा तुच्छ श्रियोद्धटाः ॥६३॥

तपनीयमयप्रौढ़चित्रयोक्त्रकयन्त्रिताः ।
सलीलगतयः स्फारबलवीर्यपराक्रमः ॥६४॥

सिंहनादैः कृताह्लादैः पूरयन्तो दिशो दश ।
चतःसहस्रप्रमिता, वहन्ति सिंहनिर्ज्जराः ॥६५॥ *पन्चभि कुलकं* //

सुभग अग्रभाग वाले, गाय का दूध, फेन, चन्द्र, दही शंख आदि पदार्थों के समान अत्यन्त उज्जवल, तीक्ष्ण-गोलाकार स्थिर स्थापित दाढाओं से अंकुरित मुख वाले, रक्त कमल दल के आकार वाली जीभ वाले, लालित्य-समर तालु प्रदेश वाले, मधु का पिंड, समान पीली आंखों वाले, पूर्ण पुष्ट स्कंध से शोभते, सुलक्षणोपेत स्वच्छ केशरावालें दीर्घ पूंछ की शोभा से युक्त, सुवर्णमय विशिष्ट जुड़ा हुआ, लीला सहित गति करने वाला उछलते बलवीर्य-पराक्रम वाले, आनंद दायक सिंहनाद द्वारा दसों दिशा को भरने वाले सिंह रूपी चार हजार देवता पूर्व दिशा में चन्द्र विमान का वहन् (उठाने का) कार्य कर रहे हैं । (६१-६५)

दक्षिणस्यां स्थूल वज्रमय कुम्भस्थलोद्धुराः ।
स्वैरं कुण्डलितो द्दण्ड शुण्डा मण्डल मण्डिताः ॥६६॥

तपनीयमयश्रोत्रान्चलचान्चल्यचन्चवः ।
सुवर्णखचितप्रान्तसद्दन्तमुशलद्वयाः ॥६७॥

भूरिसिन्दूरशिरसश्चलच्चामरचाखः ।
सुवर्णकीङ्किणीकीर्णमणिग्रैवेयकोग्रभाः ॥६८॥

रूप्यरज्जुलसद्घण्टायुगलध्वनिमञ्जुलाः ।
वैडूर्यदण्डोद्दण्डांशु तीव्रवज्रमयाङ्कुशाः ॥६९॥

पुनः पुनः परावृत्तपुच्छाः पुष्टा महोन्नताः ।
कूर्माकारक्रमा वल्गुगतयः स्फारविक्रमाः ॥७०॥

विमानानि शशाङ्कानां वहन्ति गजनिर्जराः ।
धनवन्मञ्जु गर्जन्तश्चतुःसहस्रसम्मिताः ॥७१॥ *षड्भिः कुलकं* //

विशाल वज्रमय कुंभस्थल से बहुत शोभायमान इच्छानुसार कुंडलाकार से मरोडी हुई ऊंची सूंढ से मंडित, सुवर्ण विभूषित कर्ण के प्रांत विभाग से सुशोभित, कांचन-स्वर्ण से सजाया हुआ दंत शूल के अंत विभाग से शोभायमान, अति सिंदूर से जिसका कपाल विभाग रंगा गया है ऐसे चलायमान चमर से शोभा वाले सुवर्ण की घुंघरु युक्त मणिमय कंठ-भूषण से शोभायमान, चान्दी की रस्सी में लटकते घंटा युगल के ध्वनि से सुन्दर दिखते, वैडूर्यमय दंड ऊपर स्थापित हुए अत्यंत तेजस्वी वज्र रत्नमय अंकुश धारण करने वाले, बारम्बार चलती फिरती पूछडी से शोभते, पुष्ट, महा-उन्नत कछुए के समान पैर वाले, लालित्य पूर्ण गति वाले चमचमाना पराक्रम से सहित चार हजार की संख्या में गजस्वरूपी देवता मेघ के समान गर्जना करते दक्षिण दिशा में रहकर चन्द्र के विमान को वहन करते हैं। (६६-७१)

प्रतीच्यां सुभगाः श्वेता, दृप्यत्ककुदसुन्दराः ।
अयोधनधनस्थूलतनवः पूर्णलक्षणाः ॥७२॥

अत्यन्तकमनीयौष्ठाः, कम्रेषन्नम्रिताननाः ।
सुस्निग्धलोमद्युतयः पीनवृत्यकटीतटाः ॥७३॥

सुपार्श्वा मासंलस्कन्धाः, प्रलम्ब पुच्छ पेशलाः ।
तुल्यातितीक्ष्णशृङ्गाग्रा, नानागति विशारदाः ॥७४॥

तपनीयोद्‌भूतजिह्वातालवो वज्रजित्खुराः ।
स्फाटिक स्फार दशना, गम्भीरोर्ज्जितगर्जिताः ॥७५॥

सौ वर्ण भूषणा रत्नकिङ्किणीमालभारिणः ।
चतुः सहस्त्र सङ्ख्यास्तान्युद्वहन्ति वृषामरा ॥७६॥ *पंचभिः कुलकं ॥*

पश्चिम दिशा में वृषभ रूपी देवता चन्द्र के विमान को वहन करते है जो सुभग है, मजबूत स्कंध से सुन्दर है तथा लोहे के घन समान स्थूल शरीर वाले हैं, पूर्ण लक्षण युक्त है, अत्यन्त सुन्दर होठ धारण किये है । कमनीय और कुछ नमा हुआ मुख वाला है, उसकी रोमराजी अत्यन्त स्निग्ध और तेजस्वी है उसकी कमर पुष्ट और गोलाकृति है उसकी कटी प्रदेश देखने योग्य है उसका स्कंध मास युक्त है, लम्बे पूच्छ से दर्शनीय है, उसके सींग के अग्रभाग एक समान और अति तीक्ष्ण

हैं अनेक तरह की गति में विशारद है । सुवर्ण सदृश जीभ और तालुवाले हैं, वज्र को भी जीते ऐसे कठोर खुर वाले हे, अनेक दांत स्फटिक समान उज्जवल है गंभीर और भेदन करने वाली गर्जना है, सोने के आभूषण तथा रत्न की घुंघरु की माला उन्होंने धारण किए है ऐसे चार हजार बृषभ (बैलरूप) देवता होते हैं । (७२-७६)

उदीच्यां सुप्रभाः श्वेताः, युवानः पीवरोन्नताः ।
मल्लिका पुष्प शुभ्राक्षाः, साक्षात्ताक्ष्याग्रजा इव ॥७७॥

अभ्यस्तनानागमना, जवनाः पवना इव ।
धावनोल्लङ्घनक्रीडाकूर्दनादिजितश्रमाः ॥७८॥

लक्षणोपेतसर्वाङ्गाः शस्तविस्तीर्णकेसराः ।
व्यञ्जयन्तश्चलत्पुच्छचामरेणाश्वराजताम् ॥७९॥

तपनीयखुराजिह्वातालवः स्थासकादिभिः ।
रम्या रत्नमयैर्वक्रललाटादि विभूषणैः ॥८०॥

हरिमेलकगुच्छेन, मूर्ध्निनिर्मित शेखराः ।
हर्षहेषितहेलाभिः, पूरयन्तोऽभितोऽम्बरम् ॥८१॥

चत्वार्येव सहस्राणि, हयरूपभृतः सुराः ।
सुधांशूनां विमानानि, वहन्ति मुदिताः सदाः ॥८२॥ *षड्भिः कुलकं ॥*

चन्द्र के विमान की उत्तर दिशा की ओर चार हजार अश्व रूप में धारण करते देवता विमान को वहन करते हैं । जो अत्यंत प्रभा युक्त है, श्वेत वर्णनीय है, युवान देह वाले हैं, पुष्ट और उन्नत हैं मल्लिका (एक प्रकार की चमेली) के पुष्प के समान शुभ आंखे वाले, साक्षात् मानो गरूड के बड़े भाई समान विशालकाय और बलिष्ठ है । अलग-अलग प्रकार की गति के अभ्यास वाले है, तथा पवन जैसी वेग गति वाले है, दौड़ना कूदना उल्लंघन करना-क्रीड़ा करना आदि में श्रम को जीते गये हैं, उनके सर्व अंग लक्षणों से युक्त है, उनकी केसर प्रशस्त और चौड़ी है, चलते पूच्छ रूपी चमर से घोड़े में अपने राजरूप-अग्निमता-विशिष्टता को दिखाता है, उनका खुर, जीभ और तालु स्वर्णमय है, रत्नमय अलंकार और मुख के ललाट के आभूषण द्वारा वे रमणीय है, मस्तक में रही कलगी को गुच्छा से मानो

शिखर वाला हो ऐसा आभास होता है, और हर्षपूर्वक किया हुआ हिन हिनाहट शब्द द्वारा चारों तरफ आकाश को पूर्ण भरते उत्तर दिशा के अश्वरूप देवता होते हैं। (७७-८२)

सूर्योदयाङ्किता प्राची, यथाऽन्यदेहिनां तथा ।
ज्योतिष्काणां निश्चितैवं, न सम्भवति यद्यपि ॥८३॥

चन्द्रादीनां तथाऽप्येषां या दिग्गन्तुमभीप्सिता ।
सा प्राची स्यान्निमित्तज्ञैः क्षुतादौ कल्प्यते यथा ॥८४॥

ततस्तदनुसारेण, दिशोऽन्या दक्षिणादिकाः ।
विमानवाहिनामेवं सूक्तः प्राग्दिग्विनिश्चयः ॥८५॥

जिस तरह अन्य प्राणियों के लिए पूर्वादि दिशा अर्थात् सूर्योदय होता है वह पूर्व दिशा ऐसा निश्चित रूप है उसी तरह ज्योतिष्क के लिए निश्चित नहीं है । फिर भी चन्द्रादि को जाने के लिए जो दिशा इच्छित हो, उसे पूर्व दिशा समझना चाहिए । जैसे निमित्त शास्त्र वेत्ता छींक आदि में दिशा की कल्पना करते हैं उसी के अनुसार यह ज्योतिष्क के लिए निर्णित हुई एक पूर्व दिशा के आधार से अन्य दक्षिणादि दिशा निश्चय होता है । विमान वाही देव के विषय में भी कही गयी दिशाओं का निश्चय इस तरह कहना । (८३-८५)

षोडशैवं सहस्राणि, कृतसिंहादिमूर्त्तयः ।
विमानान्यमृतांशूनां, वहन्ति त्रिदशाः सदा ॥८६॥

इस तरह से सिंहादि की आकृति सोलह हजार देव हमेशा चन्द्र के विमानों को वहन (उठाते) करते हैं। (८६)

अनेनैव दिक्क्रमेण, विमानान् भास्वतामपि ।
वहन्त्येतावन्त एव, सिंहाद्याकृतयः सुराः ॥८७॥

इसी दिशाओं के क्रम से सिंहादिआकृति को धारण करने वाले उतने ही सोलह हजार देव सूर्य के विमान को वहन करते हैं । (८७)

वहन्ति च विमानानि, ग्रहाणां तादृशाः सुराः ।
द्वे द्वे सहस्रे प्रत्याशं, सहस्राण्यष्टतेऽखिलाः ॥८८॥

ग्रह के विमानों को उस प्रकार के आकृति वाले देवता प्रत्येक दिशा में दो दो हजार, कुल मिलाकर आठ हजार देवता वहन करते हैं । (८८)

उद्वहन्ति च नक्षत्र विमानांस्तादृशाः सुराः ।
स्थिताः प्रत्येशमेकैकं, सहस्त्र प्रतिमाः सदा ॥८६॥

नक्षत्रों के विमानों को भी उसी प्रकार के आकृति वाले प्रत्येक दिशा में एक-एक हजार देवता वहन करते हैं, इस तरह कुल मिलाकर चार दिशा में चार हजार देवता वहन करते हैं । (८६)

समुद्वहन्ति प्रत्याशं पन्चपन्चशताः स्थिताः ।
तारा काणां विमानानि, सिंहद्याकृतयोऽमराः ॥६०॥

प्रत्येक दिशा में सिंहादि आकृति वाले पांच सौ, पांच सौ देवता तारा विमानों को वहन करते हैं । चारों दिशा में कुल दो हजार देवता होते हैं । (६०)

सर्वेभ्यो मन्दगतयः शशाङ्कः शीघ्रगास्ततः ।
तिग्मत्विषो ग्रहास्तेभ्यः ख्याताः सत्वरगामिनः ॥६१॥

विशेषस्त्वेष तत्रापि, सर्वाल्पगतयो बुधाः ।
तेभ्यः शुक्राः शीघ्रतरास्तेभ्योऽपि क्षितिसूनवः ॥६२॥

प्रकृष्टगतयस्तेभ्यः, सुराचार्यास्ततोऽपि हि ।
ख्याताः शनैश्चराः क्षिप्रगतयस्तत्व वेदिभिः ॥६३॥

तेभ्य स्त्वरितयायीनि, नक्षत्राणि ततोऽपि च ।
तारकाः क्षिप्रगतयो, निर्दिष्टाः स्पष्ट दृष्टिभिः ॥६४॥

सर्वेभ्योऽप्येवमल्पिष्ठ गतयोऽमृतमानवः ।
सर्वेभ्यः क्षिप्रगतय स्तारकाः परिकीर्तिताः ॥६५॥

ज्योतिष्क में सबसे मंदगति वाला चन्द्र का विमान है, उससे शीघ्र गति वाला सूर्य का विमान है । इससे ग्रह के विमान तेज गति वाला है । उसमें विशेष यह है कि ग्रहों में बुध सर्व से अल्पगति वाला है उससे शीघ्र गति शुक्र की है, उससे शीघ्रगति मंगल की है और इससे शीघ्रगति बृहस्पति की है। और इससे शीघ्रगति शैनश्चर की तत्वज्ञानियों ने कहा है । इससे नक्षत्र के विमानों की गति

अधिक वेग वाले हैं और उससे ताराओं के विमान की गति सर्वज्ञ भगवन्तों ने सबसे तीव्र कहा है। इस तरह से सर्व से अल्प गति वाले चन्द्र और सूर्य के विमान हैं और सबसे सत्वर-तेज गति वाले तारा के विमान कहे हैं। (९१-९५)

जम्बू द्वीपऽथ ताराणा मेषां द्वेधा मिथोऽन्तरम् ।
निर्व्याधातिकमित्येकं परं व्याघात सम्भवम् ॥९६॥

तत्र मध्यस्थ शैलादि व्यवधायक निर्मितम् ।
व्याधातिकमन्तर स्याद्वितीयं तु स्वभावजम् ॥९७॥

स्याद् द्विधैकैकमप्येतज्जधन्योत्कृष्ट भेदतः ।
एवं चतुर्विधं तारा विमानानां मिथोऽन्तरम् ॥९८॥

जम्बू द्वीप के ताराओं का अन्तर दो प्रकार का है - १- व्याधातिक और २- निर्व्याधातिक, उसमें मध्य में रहे पर्वतादि के कारण से जो अंतर रहता है वह व्याधातिक अन्तर कहलाता है, जबकि दूसरा स्वाभाविक अंतर है। ये दोनों प्रकार के अन्तर भी जघन्य और उत्कृष्ट दो प्रकार से इस प्रकार तारा विमानों का परस्पर अंतर चार प्रकार से होता है। (९६-९८)

तत्र च - शतानि पन्च धनुषां स्वाभाविकं जघन्यतः ।
उत्कर्षतो द्वे गव्यूते, जगत्स्वाभाव्यतस्तथा ॥९९॥

इसमें स्वाभाविक-निर्व्याधात अन्तर में जघन्य अन्तर पांच सौ धनुष्य का है और उत्कृष्ट अन्तर दो कोस (४००० धनुष्य) का है। जगत का स्वभाव ही इसी प्रकार का है। (९९)

जघन्यतो योजनानां, सषटषष्टिशतद्वयम् ।
व्याधातिकमन्तरं स्याद्भावना तत्र दर्श्यते ॥१००॥

चत्वारि योजन शतान्युत्तुङ्गो निषधाचलः ।
कूटान्यस्यापरि पन्चशततुङ्गानि तानि च ॥१०१॥

विष्कम्भायामतः पन्च, योजनानां शतान्यधः ।
मध्यदेशे पुनः पन्च सप्तत्याढयं शतत्रयम् ॥१०२॥

उपर्यर्द्ध तृतीयानि, शतान्यथ स्वभावतः ।

विमुच्य योजनान्यष्टाष्टै तेषां पार्श्वयोर्द्वयो ॥१०३॥

परिभ्रमन्ति ताराणां, विमानानि भवेत्ततः ।

तेषां प्रागुदितं व्याधातिकं जघन्यमन्तरम् ॥१०४॥

व्याधातिक अंतर जघन्य से दो सौ छियासठ (२६६) योजन है और उसकी भावना-सम्बन्ध इस प्रकार है। निषध पर्वत चार सौ योजन ऊंचा है उसके ऊपर पांच सौ उत्तुंग शिखर है। ये शिखर अधस्तले में विष्कंभ (चौड़ाई) लम्बाई में पांच सौ योजन है और मध्य भाग में चौड़ाई-लम्बाई से तीन सौ पचहत्तर *(३७५) योजन है और ऊपर अढ़ाई (२५०) योजन है । अब इन शिखरों के दोनों* तरफ स्वाभाविक रूप में ही आठ-आठ योजन छोड़कर तारा के विमान भ्रमण करते हैं, इससे प्रथम कहा है वह दो सौ छियासठ (२६६) योजन का है वह व्याधातिक जघन्य अंतर होता है । (१००-१०४)

योजनानां सहस्राणि, द्वादश द्वे शते तथा ।

द्विचत्वारिंशदधिके, ज्येष्ठं व्यधातिकान्तरम् ॥१०५॥

ताराओं का अरस परस (एक दूसरे से) ज्येष्ठ व्याघातिक अंतर बारह हजार दो सौ बयालीस (१२२४२) योजन का होता है । (१०५)

एतत्तारा विमानानां स्यान्मेरौ व्यवधायके ।

यद्योजन सहस्राणि, दशासौ विस्तृतायतः ॥१०६॥

ताराओं का ज्येष्ठ व्याघातिक अंतर मेरुपर्वत का व्यवधान से होता है, क्योंकि मेरु पर्वत की लम्बाई-चौड़ाई दस हजार योजन है । (१०६)

एकादश शतान्येक विंशान्यस्माच्च दूरतः ।

भ्रमन्त्युभयतस्तारास्ततः स्यादुक्तमन्तरम् ॥१०७॥

मेरु पर्वत भी दोनों तरफ ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) योजन दूर ताराओं का विमान परिभ्रमण करता है । इससे उक्त (१२२४२) योजन का उत्कृष्ट व्याघातिक अंतर होता है । (१०६)

यद्यप्यूर्ध्वं सनवतेः सप्तशत्या व्यतिक्रमे ।
मेरौ यथोक्तौ न व्यासायामौ सम्भवतो यतः ॥१०८॥

नवैकादशजा अंशा, योजनान्येकसप्ततिः ।
इयद् भूनिष्ठ विष्कम्भायामादत्रास्य हीयते ॥१०९॥

परमुक्तमिदं स्वल्पोनताया अविवक्षया ।
अन्यथा प्रत्यवस्थानं, ज्ञेयं वाऽस्य बहुश्रुतात् ॥११०॥

यद्यपि समतल भूमि से सात सौ नब्बे (७९०) योजन ऊंचे मेरुपर्वत की लम्बाई चौड़ाई पहले कह गये है अर्थात् दस हजार योजन नहीं रहता क्योंकि भूमिगत चौड़ाई लम्बाई में से ७१- ९/११ योजन कम होती है परन्तु यह कमी (घट-जाना) थोड़ा अकिंचित् होने से उसकी विवक्षा किये बिना यह बात कही है, शेष तो बहुश्रुत ज्ञानी पुरुष के पास से इस बात का सम्पूर्ण रूप निर्णय करना चाहिए। (१०८-११०)

एवं जम्बू द्वीप एव, विज्ञेयं तारकान्तरम् ।
लवणाब्धि प्रभृतिषु, त्वेतदुक्तं न दृश्यते ॥१११॥

ताराओं का पारस्परिक कहा जाता यह अंतर जम्बू द्वीप में ही जानना । शेष लवण समुद्रादि में उक्त अंतर देखने को नहीं मिलता । (१११)

तथोक्तं संग्रहणी सूत्रे - ''तारस्स य तारस्स यं जम्बू द्वीवम्मि अंतर गुरुयं ।'' जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रेऽपि - ''जम्बू द्वीपे णं दीवे ताराय २ केवइए अबा हाए अंतरे पण्णत्ते ?'' इत्यादि ।

तथा साक्षीरूप में संग्रहणी सूत्र में इस तरह से कहा है - 'जम्बूद्वीप के अन्दर एक तारा से दूसरे तारा का उत्कृष्ट अंतर इत्यादि' तथा जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में भी कहा है - 'जम्बू द्वीप के अन्दर एक तारा से दूसरे तारा का अबाधा अंतर कितना है ? इत्यादि ।·(इसके अनुसार जम्बूद्वीप में ताराओं का अन्तर कहा है, इससे अन्य द्वीपादि से जम्बूद्वीप के तारा की व्यवस्था भिन्न है यह प्रतीत होता है ।)'

अमी विमानाः सर्वेऽपि समन्ततः प्रसृत्वरैः ।
अत्युज्जवलाः प्रभापूरैर्दूरीकृततमोऽङ्कुशः ॥११२॥

आश्चर्य कृन्नूल रत्न स्वर्ण विच्छि त्ति शालिनः ।
वातोद्धत वैजयन्ती पताका कान्तमौलयः ॥११३॥

छत्रातिच्छत्रकोपेताः स्वर्ण रत्नविनिर्मितैः ।
स्तूपि काशिखरैः शस्ताः, सुख स्पर्शाः समन्ततः ॥११४॥

विकस्वरैः शतपत्रै, पुण्डरीकैश्च पुण्ड्कैः ।
रत्नार्द्धचन्द्रै रम्याश्च, विविधैर्मणिदाभमिः ॥११५॥

अन्तर्वहिस्तपनीयवालुकाप्रस्तटोद्भटः ।
रत्नस्तम्भशतोद्च्चन्मरीचिचक चारवः ॥११६॥

तारा के विमानों का विस्तृत वर्णन करते हैं :- तारा के ये सब विमान अति उज्जवल है । चारों तरफ फैलती प्रभा के पुंज से अंधकार के अंकुर, दूर करने वाले हैं । आश्चर्यकारक अति सुन्दर नूतन रत्न और सुवर्ण कान्ति प्रभा से शोभते है, वायु से लहराती ध्वजा-पताका से उसका उपरित भाग सुन्दर लगता है। उसके ऊपर छत्र इस तरह छत्राति छतों से युक्त सुवर्ण और रत्न निर्मित्त स्तूप के शिखरों से सुन्दर-प्रशस्त दिखते हैं और सर्वतः सुखकारी स्पर्शवाले हैं । विकस्वर शतपत्र कमल-पुंडरीक कमल-श्वेत कमल तथा रत्न के अर्ध चन्द्र से और विविध मणिमय पुष्प मालाओं द्वारा अत्यन्त रमणीय लगता है । अन्दर-बाह्य दोनों तरफ सुवर्णमय रेती के प्रस्तरों से सुन्दर दिखते हैं । और रत्न के सैंकडों स्थंभ से निकलती ज्योत्पना के समूह से सुशोभित लगता है । (११२-११६)

तत्र स्वस्व विमानेषु, स्वस्वोत्पादास्पदेषु च ।
उत्पद्यन्ते ज्योतिषिकाः स्वस्व पुण्यानुसारतः ॥११७॥

वहां अपने-अपने विमानों के, अपने-अपने उत्पत्ति के स्थान में अपने-अपने पुण्यानुसार से ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होता है । (११७)

ज्योतिश्चक्राधिपौ तत्र, महान्तौ शशि भास्करौ ।
सामानिकं सहस्राणां, चतुर्णामात्मरक्षिणाम् ॥११८॥

षोडशानां सहस्राणां पर्षदा तिसृणामपि ।
सेनापतीनां सप्तानां, सैन्यानामपि तावताम् ॥११९॥

तथा सपरिवाराणं, महिषीणां चतसृणाम् ।
ज्योतिर्विमान कोटीनामीशाते पुण्य शालिनौ ॥१२०॥ *त्रिभिर्विशेषकम् ॥*

ज्योतिष चक्र के अधिपति चन्द्र और सूर्य नामक बड़े पुण्यशाली दो देवता है । उनके चार हजार सामानिक देव, सोलह हजार आत्मरक्षक देव है तीन प्रकार की पर्षदा होती है, सात प्रकार की सेना और सात सेनापति, परिवारयुक्त चार अग्र महिषियां और ज्योतिषी के करोड़ विमानों का अनुशासन करते हैं । (११८-१२०)

सभायामभ्यन्तरायामेतयोः सन्ति नाकिनाम् ।
अष्टौ सहस्राणि पल्योपमार्द्ध स्थिति शालिनाम् ॥१२१॥

निर्ज्जराणां सहस्राणि, दश मध्यमपर्षदि ।
न्यून पल्योपमार्द्धायुः शालिनां गुण मालिनाम् ॥१२२॥

द्वादशाथ सहस्राणि देवानां बाह्य पर्षदि ।
सातिरेक पल्यचतुर्विभाग स्थितिं धारिणाम् ॥१२३॥

इन चन्द्र और सूर्य को जो बाह्य, मध्यम और अभ्यन्तर पर्षदा है उसमें अभ्यन्तर पर्षदा में आठ हजार देव है । जो आधे पल्योपम आयुष्य की स्थिति वाले हैं मध्यम पर्षदा में दस हजार देव रहते हैं, जो कुछ कम पल्योपम स्थिति वाले होते है और बाह्य पर्षदा में बारह हजार देव होते है वे साधिक ४१- १/४ पल्योपम की स्थिति वाले होते है । (१२१-१२३)

देवीनां शतमेकैकं पर्षत्स्वस्ति तिसृष्वपि ।
तासां स्थितिः क्रमात्पल्योपमतुर्यलवोऽधिकः ॥१२४॥

एष एव परिपूर्णो, देशन्यूनोऽयमेव च ।
इयं च जीवाभिगमाति दिष्टाऽऽसां स्थितिः किल ॥१२५॥

इन तीनों पर्षदा में सौ-सौ देवियां है उनकी आयुष्य क्रमशः एक लव से अधिक १/४ पल्योपम अभ्यन्तर पर्षदा की देवियों का है, १/४ पल्योपम मध्य पर्षदा की देवियों का है, कुछ कम १/४ पल्योपम बाह्य पर्षदा देवियों का होता है। देवियों की स्थिति का इस तरह का वर्णन श्री जीवाभिगम सूत्र के आधार पर किया है । (१२४-१२५)

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र संग्रहण्या द्यमि प्रायेण तु चन्द्र सूर्य विमानेषु जघन्यतो ऽपि पल्योपम चतुर्थ भाग एव स्थितिः किल उक्तेति ज्ञेयम् ॥

श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र तथा संग्रहणी आदि ग्रन्थों के अभिप्राय से तो सूर्य और चन्द्र के विमानों में जघन्य स्थिति भी पल्योपम के चौथे विभाग ही कही है ।'

तुम्बा च त्रुटिता पर्वाभिधा एता भवन्त्यथ ।
सूर्येन्द्वोः सामानिकानां, स्त्रीणामपि सभा इमाः ॥१२६॥

इन तीनोंपर्षदा (सभा) के नाम अनुक्रम से १- तुम्बा २- त्रुटिता ३- पर्वा है । सूर्य और चन्द्र के सामानिक देवताओं की स्त्रियां-देवियों की भी यही सभा (पर्षदा) होती है । (१२६)

ननु पर्षत्त्रयं सर्व सुरेन्द्राणां निरूप्यते ।
विशेषस्तत्र क इवान्तर्मध्यबाह्यपर्षदाम् ? ॥१२७॥

यहां शंका करते हैं कि - सर्व इन्द्रों की तीन पर्षदा का निरूपण तो होता है परन्तु बाह्य मध्यम और अभ्यंतर पर्षदा में विशेषता क्या है ? (१२७)

अत्र ब्रुम :- शीघ्र मस्यन्तरा पर्षदाहूतोपैति नान्यथा ।
प्रभाराकारणा रूपं, गौरवं सा यतोऽर्हति ॥१२८॥

मध्यमा पर्षदाहूताऽनाहूताऽप्यूपसर्पति ।
सा मध्यम प्रतिपत्ति विषयायदधीशितुः ॥१२९॥

अनाहूतैव बाह्यातु, पर्षदायाति सत्वरम् ।
कदापि नायकाह्वान गौरवं साहि नार्हति ॥१३०॥

इसका समाधान करते हैं - अभ्यन्तर पर्षदा इन्द्र महाराज के बुलाने के बाद आती है, इतना ही उन्हें भी 'आवश्यकता पड़ने पर स्वामी ने उसे बुलाना पड़ता है' इसके अनुसार का गौरव-महत्व को चाहते हैं । मध्यम पर्षदा बुलाने पर आती है और बुलाये बिना भी आती है वह पर्षदा अपने स्वामी की ओर से मध्यम गौरव को चाहते है, और बाह्य पर्षदा तो बिना बुलाये ही आती है, वह पर्षदा अपने स्वामी के आमंत्रण रूप गौरव को कभी भी नहीं चाहते है । (१२८-१३०)

यद्वोत्पन्ने कार्यजाते प्रागालोचयति प्रभुः ।
यया स्फीतधिया संसत् साऽभ्यन्तरा सगौरवा ॥१३१॥

अथवा इन तीन सभा का दूसरे प्रकार से वर्णन होता है - कोई विशेष कार्य आ जाये उस समय इन्द्र महाराज जिस सभा के साथ में शुद्ध रूप में गहरा-गंभीर मंत्रणा-विचार करते हैं, वह गौरव संपन्न सभा अभ्यंतर कहलाती है। (१३१)

निर्णीतमेतदस्माभि, कृते चास्मिन्नयं गुणः ।
एतच्चवं नैव कर्त्तव्यं, दोषोऽस्मिन् विहिते ह्ययम् ॥१३२॥

इत्थमालोचित्तं यया सह प्रपन्चयेत् ।
गुण दोषोद्धावनात्सा, मध्यमा नातिगौरवा ॥१३३॥

जो मध्यम पर्षदा होती है वह बहुत गौरवशाली नहीं होती, उसके साथ में इन्द्र महाराज ने जो मध्यान्तर पर्षदा साथ में निर्णय किया हो, उसे कहकर यह कार्य करने से यह गुण है । यह कार्य करने योग्य न हो, यह कार्य करने से नुकसान है इस तरह पूर्व में विचार की हुई बातों की विचारणा गुण-दोष को प्रगटाना, उसका विचार करना वह मध्यम पर्षदा है । (१३२-१३३)

आलोचनागौरवात्तु, बाह्या बाह्या भवेत्सभा ।
कर्त्तव्यमेतद्युष्माभिरित्याज्ञामेवसाऽर्हति ॥१३४॥

विचारणा और गौरव से दूर रहने वाली बाह्य सभा कहलाती है जिसे इन्द्र महाराज तुम्हें ऐसा करना है - इस तरह आज्ञा ही करता है । इस प्रकार से भिन्न रूप में भी तीन सभा का स्वरूप समझना चाहिए । (१३४)

च्युतेचन्द्रेऽथवा भानौ यावन्नौत्पद्यतेऽपरः ।
तावदिन्द्र विरहिते, कालेतत्स्थानकस्थितिम् ॥१३५॥

सामानिकाः समुदिता श्चत्वारः पन्च चोत्तमाः ।
पालयन्ति राज्यमिव, शून्यं प्रधान पुरुषाः ॥१३६॥

जब चन्द्र (इन्द्र) अथवा सूर्य (इन्द्र) का च्यवन हो जाय और दूसरा इन्द्र उत्पन्न न हो वहां तक इन्द्र रहित समय में उस स्थान की स्थिति को जैसे राजा से शून्य-रहित राज्य होता है उस समय मन्त्री राज्य चलाता है, उसी तरह

उत्तम चार से पांच सामानिक देवता मिलकर उसका कार्यभार संभालते हैं। (१३५-१३६)

इंन्द्र शून्यश्च कालः स्याज्जघन्यः समयावधिः ।
उत्कर्षतश्च षण्मासा नित्युक्तं सर्वदर्शिभिः ॥१३७॥

इन्द्र से शून्य काल जघन्य से एक समय और आकृष्ट से छः महीने का है ऐसा सर्वदर्शी ज्ञानी महापुरुषों ने कहा है । (१३७)

तथोक्तं जीवाभिगम सूत्रे जम्बू द्वीप प्रज्ञन्ति सूत्रे ऽपि - ''तेसि णं भंते ! देवाणं इंदे चुए से कहमियाणिं पकरेंति ?'' इत्यादि ।

श्री जीवाभिगम सूत्र तथा श्री जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में भी उसी तरह कहा है - हे भगवान ! इन देवताओं के स्वामी-इन्द्र का च्यवन होने के बाद हमेशा क्या करते हैं ? इत्यादि प्रश्न किया और भगवान ने उत्तर दिया है ।

ज्योतिष्काः पन्चधा ऽप्येते, देवाश्चन्द्रार्यमादयः ।
विशिष्ट वस्त्राभरण किरणोज्जवल भूधनाः ॥१३८॥

नानानूत्नरत्न शालिमौलिमण्डितमौलयः ।
सौन्दर्य लक्ष्मी कलिता, द्योतन्ते ललितद्युतः ॥१३९॥

चन्द्र सूर्यादि पांच प्रकार के ज्योतिषी देव विशिष्ट वस्त्र और आभूषण के तेज से उज्जवल शरीर वाले, विविध प्रकार के नौ रत्न से शोभते मुकुट से देदीप्यमान मस्तक वाले, सौंदर्य की लक्ष्मी से युक्त और ललित कान्ति से शोभायमान है । (१३८-१३९)

तत्र चन्द्रमसः सर्वे, प्रभामण्डला सन्निभम् ।
मुकुटाग्रे दधत्यङ्क सच्चन्द्रमण्डलाकृतिम् ॥१४०॥

सुन्दर चन्द्र मंडल की आकृति वाले प्रभा मंडल रूप चिह्न को मुकुट के अग्रभाग में सभी चन्द्र (इन्द्र) धारण करते हैं । (१४०)

सूर्यास्तु चिह्नं दधति, मुकुटाग्र प्रतिष्ठितम् ।
विवस्वन्मण्डलाकारं, प्रभाया इव मण्डलम् ॥१४१॥

तेज मंडल स्वरूप सूर्य के आकार वाले चिह्न को मुगट के अग्रभाग में सूर्य इन्द्र धारण करता है ।

एवं स्व स्वमण्डलानु कारि चिह्नाढय मौलयः ।
शीतोग्रभानुवज्ज्ञेया, ग्रहनक्षतारकाः ॥१४२॥

इस तरह से अपने-अपने आकार के अनुसार चिह्न से युक्त मुकुट वाले चन्द्र सूर्य समान ग्रह-नक्षत्र-तारा के देवता जानना चाहिए । (१४२)

तथा च तत्वार्थ भाष्यम् - ''मुकुटेषु शिरोमुकुटोपगूहिभिः प्रभा मण्डल कल्पैरूज्ज्वलैः सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र तारा मण्डलैर्यथास्वं चिहनैर्विराजमाना द्युतिमन्तो ज्योतिष्का भवन्ती'' ति, अत्र शिरो मुकुटोपगूहिभिरिति ॥

और श्री तत्वार्थ भाष्य में कहा है कि - मुकुट के अग्रभाग ऊपर रहे प्रभा मंडल स्वरूप, उज्जवल सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र तारा रूपी अपने-अपने चिह्नो से शोभायमान द्युतिमान ज्योतिषी होते है ।' यहां जो सिर पर मुकुट होता है उसके अग्रभाग में चिह्न होता है ।

ग्रन्थान्तरे पुनरूक्तमेते चन्द्रार्यमादयः ।
स्वनामाङ्क प्रकटितं, मुकुटं मूर्ध्नि विभ्राति ॥१४३॥

ग्रन्थान्तर में इस तरह से कहा है कि - 'चन्द्र-सूर्य आदि अपने-अपने नाम के चिह्न से अंकित मुकुट को मस्तक पर धारण करते हैं ।' (१४३)

तथोक्तं जीवाभिगम वृत्तौ - ''सर्वेऽपि प्रत्येकं नामाङ्केन प्रकटितं चिह्नं मुकुटे येषां ते तथा, किमुक्तं भवति ? चन्द्रस्य मुकुटे चन्द्र मण्डलं लच्छनं स्वनामाङ्क प्रकटितं, सूर्यस्य सूर्यमण्डलं, ग्रहस्य ग्रहमण्डल'' मित्यादि, प्रज्ञापनाया मपि 'पत्तेयनामंक पायडिय चिंधमउडा' इति ।

श्री जीवाभिगम सूत्र की वृत्ति में कहा है कि - 'सभी अपने नाम से युक्त मुकुट को धारण करने वाले हैं । अर्थात् चन्द्र के मुकुट में चन्द्र का चिह्न और अपना नाम होता है सूर्य के मुकुट में सूर्य का चिहन और उनका नाम अंकित होता है । ग्रह के मुकुट में ग्रह का नाम और चिह्न अंकित होता है ।' इत्यादि इस तरह समझ लेना । श्री प्रज्ञापना में भी कहा है कि - 'प्रत्येक नाम से अंकित प्रगट चिह्न युक्त मुकुट वाले ज्योतिष्क देव होते हैं ।'

उत्तप्तस्वर्णवर्णाङ्गा, सर्वे ज्योतिषिकामराः ।
पन्च वर्णाः पुनरमी, तारकाः परिकीर्त्तिताः ॥१४४॥

तपे हुए सुवर्ण वाले सर्व ज्योतिषी देव होते है जबकि तारा समुदाय पांचों वर्ण वाले कहे गये हैं । (१४४)

सर्वेभ्योऽल्पर्द्धयस्तारास्तेभ्यो नक्षत्र निर्जराः ।
महर्द्धिका ग्रहास्तेभ्यो, भवन्ति प्रचुरर्द्धयः ॥१४५॥

ग्रहेभ्योऽपि विवस्वन्तो, महर्द्धिका स्ततोऽपि च ।
ज्योतिश्चकस्य राजानो, राजानो ऽधिक ऋद्धयः ॥१४६॥

इन पांच प्रकार के ज्योतिषिक् में तारा सर्व से अल्प ऋद्धि वाले होते हैं। नक्षत्र तारा से अधिक ऋद्धि वाले होते हैं, उससे ग्रह अधिक और महान ऋद्धिवाले होते हैं। ग्रह से सूर्य विशेष ऋद्धि वाले होते हैं, और उससे ज्योतिष चक्र का राजा चन्द्र विशाल ऋद्धि वाला होता है । (१४५-१४६)

चत स्त्रोऽग्रमहिष्यः स्युः शीतांशो स्ताश्च नामतः।
चन्द्र प्रभा च ज्योत्स्नाभाऽथार्चिर्माली प्रभङ्करा ॥१४७॥

चन्द्र की चार अग्र महिषी होती है उसके नाम अनुक्रम से १- चन्द्र प्रभा २- ज्योत्सनाभा, ३- अर्चिमाली, और ४- प्रभंकरा है । (१४७)

साम्प्रतं तु- एताः पूर्वभवेऽरक्षु पुर्यां वृद्ध कुमारिकाः।
चन्द्रप्रभा दीस्वाख्यानुरूपाख्यापितृकाः स्मृताः ॥१४८॥

चन्द्र श्री प्रभृति स्वाख्यातुल्याख्या मातृकाः क्रमात् ।
पुष्पचूलार्यिकाशिष्याः श्री पार्श्वात् प्राप्त संयमाः ॥१४९॥

किन्चिद्विराध्य चारित्रम प्रतिक्रम्य पाक्षिकीम् ।
कृत्वा संलेखनां मृत्वा विमाने चन्द्रनामनि ॥१५०॥

चन्द्राग्रमहिषीत्वेनोत्पन्नाः सिंहासनेषु च ।
भान्ति स्वाख्यासमाख्येषु भर्तृ स्थित्यर्द्ध जीविताः ॥१५१॥

वर्तमान काल में चन्द्र की जो इन नाम की अग्रमहिषी है उनका पूर्व जन्म का वृतांत इस प्रकार है । अपने नाम के अनुरुप चन्द्र प्रभ आदि नामवाली पिता की

बड़ी पुत्रियां अरक्षुपुरी में रहती थी । उनके माता का नाम चन्द्र श्री आदि अपने नाम के अनुसार था उन्होंने पुष्प चूला साध्वी जी के पास में और श्री पार्श्वनाथ भगवान के हस्ते दीक्षा ली थी, परन्तु चारित्र की कुछ विराधना कर पाक्षिक आलोचना किए बिना और अन्त में संलेखना करके वहां से मर कर चन्द्र नामक विमान में चन्द्र की अग्रमहिषी रूप में उत्पन्न हुई है । जो अपने नाम के अनुसार नाम वाले सिंहासन पर शोभते है और उनका आयुष्य चन्द्र से आधा होता है। (१४८-१५१)

सूर्याग्रहमहिषीणामप्येवं चरितमूह्यताम् ।
किन्तु ता मथुरापुर्यामभूवन् पूर्वजन्मनि ॥१५२॥

सूर्य की पट्ट देवियों का चरित्र भी इसी ही प्रकार का है, परन्तु पूर्व जन्म में मथुरा पुरी में रहने वाली थी । शेष सब पूर्व के समान है । (१५२)

एकैकस्या पट्टदेव्याः परिवारः पृथक् पृथक् ।
चत्वार्येव सहस्राणि, देवीनामुत्कटत्विषाम् ॥१५३॥

एवमुक्ता प्रकारेण, सपूर्वापरमीलने ।
स्युः पत्नीनां सहस्राणि, षोडशानुष्णरोचिषः ॥१५४॥

ये प्रत्येक पट्ट देवियों का अलग-अलग चार हजार देवियों का परिवार होता है, जो देवियां अति तेजस्विनी होती है । ये पट्टरानी देवियों के चार-चार हजार का कुल जोड़ सोलह हजार होता है । अतः चन्द्र की सोलह हजार देवियां-पत्नियां होती हैं । (१५३-१५४)

तथैकैकाऽग्रमहिषी, प्रागुक्ता शीतरोचिषः ।
भर्त्तुस्तथाविधामिच्छामुपलभ्यरतक्षणे ॥१५५॥

विलासहासललितान् सलीलादभ्रविभ्रमान् ।
देवी सहस्रां श्चतुरः, स्वात्म तुल्यान् विकुर्व्वेत् ॥१५६॥

तथा चन्द्र की पहली जो चार अग्रमहिषी देवियां कही हैं वे एक-एक भी अपने स्वामी की तथा प्रकार की इच्छा को देखकर रत समय में विलास, हास्य के

लालित्य सभर, लीलापूर्वक अत्यंत विभ्रम को धारण करती अपने समान चार हजार देवियां को बनाती है । (१५५-१५६)

तथोक्तं जीवाभिगम सूत्रे - ''पभू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नाइं चतारि देवी सहस्साइं परिवारं विउव्वित्तए ।'' इति । यत्तु जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्रे - 'पभू णं ताओ एग मेगा देवी अन्न देवि सहस्सं विउव्वित्तए ।' इति उक्तं तदिदं मतान्तरं ज्ञेयम् ॥

श्री जीवाभिगम सूत्र में कहा है कि एक-एक देवी चार हजार देवियों का रूप बना सकती है । और जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में कहा है कि - उस चन्द्रमा की एक-एक देवी अन्य एक एक हजार देवियों का परिवार बना सकती है । इस प्रकार दोनों में मतान्तर समझना ।'

तदेतच्चन्द्रदेवस्यान्तःपुरं परिकीर्तितम् ।
सिद्धान्तभाषया चैतत्तुटिकं परिभाषितम् ॥१५७॥

इस प्रकार से चन्द्र देव के अंतःपुर की बात कही है, उसे आगम सिद्धान्त की परिभाषा में त्रुटिक कहलाता है । (१५७).

उक्तच्च जीवाभिगम चूर्णो :- ''त्रुटिकमन्तः पुरमपदिश्यते'' इति ।

श्री जीवाभिगम की चूर्णि में कहा है कि - 'अंतःपुर अर्थात् त्रुटिका कहलाता है ।'

ज्योतिष्केन्द्रस्य सूर्यस्याप्येवमन्तःपुरस्थितिः ।
तावान् द्रेवी परिवारों विकुर्वणाऽपि तावती ॥१५८॥

ज्योतिष्केन्द्र सूर्य के अंतःपुर की स्थिति भी इसी तरह है देवी का परिवार भी उतना है । और रूप बनाने की संख्या भी उतनी ही जानना । (१५८)

नाम्नाऽर्काग्रमहिष्यस्तु, प्रोक्ता स्तीर्थकंरैरिमाः ।
सूर्य प्रभा चातपाभाऽथार्चिर्माली प्रभङ्करा ॥१५९॥

सूर्य की अग्र महिषियों के नाम श्री तीर्थंकर देव ने इसी तरह से कहा है । १- सूर्यप्रभा, २- आत पाभा, ३- अर्चिमाली और ४- प्रभंकरा है । (१५९)

अनेनान्तः पुर परिच्छेदेनेन्दु दिवाकरौ ।
नित्यं परिवृत्तौ स्व स्व विमानान्तर्यथासुखम् ॥१६०॥

सुधर्मायां संसदीन्दुसूर्यसिंहासने स्थितौ ।
ह्यद्यातोद्य नादमिश्रैर्गीतिः स्फीतैश्च नाटकैः ॥१६१॥

भुन्जानौ दिव्य विषयोगभोगान् भाग्य भासुरौ ।
न जानीतो व्यतीतानि संवत्सर शतान्यपि ॥१६२॥

अन्तःपुर तथा उसके परिवार से नित्य घिरा हुआ ये सूर्य और चन्द्र इन्द्र अपने-अपने विमान के अन्दर सुखपूर्वक सुधर्म सभा में सूर्य और चन्द्र नाम के सिंहासन पर बैठकर सुन्दर बाजों की नाद से मिश्रत गीत सुनते हुए और सुन्दर नाटक को देखते हैं इस प्रकार दिव्य विषय उपभोग को भोगते भाग्य से तेजस्वी सैंकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, उसे वे नहीं जान सकते हैं । (१६०-१६२)

न शक्नुतः सुधर्म्मायां परं कर्त्तु रतिक्रियाम् ।
तत्रासन्नजिनसक्थ्याशातनाभयभीरुकौ ॥१६३॥

वहां नजदीक में रहे श्री जिनेश्वर भगवन्त के अस्थि की आशातना के भय से वे सूर्य और चन्द्र इन्द्र सुधर्मा सभा के अन्दर भोग नहीं भोगते हैं । (१६३)

सन्तिह्यत्र माणवक चैत्य स्तम्भे स्वयम्भुवाम् ।
वाज्रिकेषु समुद्रगेषु, सक्थीनि शिवमीयुषाम् ॥१६४॥

यहां इस सुधर्मा सभा के अन्दर माणवक चैत्यस्तंभ में वज्रमय डब्बे में मोक्ष में गये हुए स्वयंभू श्री जिनेश्वरों की हड्डियां होती है । (१६४)

तानिचेन्दोश्च मानोश्च परेषामपि नाकिनाम ।
वन्दनयानि पून्यानि, स्तुत्यानि जिन चैत्यवत् ॥१६५॥

ये मोक्ष गये परमात्मा के अस्थि है, वह सूर्य-चन्द्र और अन्य भी देवताओं की मूर्ति के समान वंदनीय पूजनीय और स्तवनीय होती है । (१६५)

एवं ग्रहाणां नक्षत्र तारकाणामपि स्फुटम् ।
चतुस्त्रोऽग्रमहिष्यः स्युः तासां नामान्यमूनि च ॥१६६॥

विजया वैजयन्ती च, जयन्ती चापराजिता ।
भवन्त्यमीषां सर्वेषामप्येतैरेव नामभिः ॥१६७॥

इसी तरह से ग्रह नक्षत्र और ताराओं के भी चार-चार अग्रमहिषियां होती हैं। उनके नाम इस प्रकार से हैं- १- विजया, २- वैजयन्ती, ३- जयंती और ४- अपराजित। यही नाम की इन सर्व की अग्रमहिषियां होती है । (१६६-१६७)

अथः चन्द्र विमाने ऽस्मिन्, जघन्या नाकिनां स्थितिः ।
पल्योपमस्य तुर्यांश, उत्कृष्टाऽथ निरूप्यते ॥१६८॥

एकं पल्योपमं वर्ष लक्षेणैकेन साधिकम् ।
जघन्याऽर्क्क विमाने ऽपि, स्थितिश्चन्द्रविमानवत् ॥१६९॥

उत्कृष्टाब्द सहस्रेणाधिकं पंल्योपमं भवेत् ।
यद्यपि स्थितिरर्केन्द्वोः कनीयसौ न सम्भवेत् ॥१७०॥

इन चन्द्र के विमानों में रहे देवताओं की जघन्य स्थिति एक चतुर्थांश १/४ पल्योपम होती है, और उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम होती है । सूर्य विमान में भी जघन्य स्थिति चन्द्र विमान के समान होती है । और उत्कृष्ट स्थिति एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है । यद्यपि सूर्य अथवा चन्द्र के स्वयं को जघन्य स्थिति नहीं होती है । (१६८-१७०)

तथाप्येषु विमानेषु, त्रिविधाः सन्ति नाकिनः ।
विमाने नायकाश्चन्द्रादयस्तत्सदृशाः परे ॥१७१॥

परिवार सुराश्चान्ये, स्युरात्मरक्षकादयः ।
तत्राधीश्वरतत्तुल्यापेक्षया परमा स्थिति ॥१७२॥

जघन्यात्मरक्षकादिपरिच्छदव्यपेक्षया ।
एवं ग्रह विमानादिष्वपि भाव्यं स्थिति द्वयम् ॥१७३॥

फिर भी इन विमानों में तीन प्रकार के देवता होते हैं । १- विमान के अधिपति चन्द्र आदि २- उनके सामानिक देवता और आत्मरक्षक आदि दिवता होते हैं । वहां नायक तथा उनके सामानिक देवता की अपेक्षा से परम स्थिति होती है और आत्मरक्षकादि परिवार की अपेक्षा से जघन्य स्थिति होती है अर्थात् उत्कृष्ट

से उतरते मध्यम और जघन्य दोनों होती है । इस तरह से ग्रह के विमान आदि में भी दो प्रकार की स्थिति समझ लेनी चाहिए । (१७१-१७३)

चान्द्रे विमाने देवीनां, स्थितिरूक्ता गरीयसी ।
पल्योपमार्द्ध पन्चाशत्संवत्सर सहस्त्रयुक् ॥१७४॥

चन्द्र विमान में देवियों की उत्कृष्ट स्थिति पचास हजार वर्ष युक्त आधा पल्योपम की कही गयी है । (१७४)

स्थितिः सूर्य विमानेषु, देवीनां परमा भवेत् ।
अर्द्धं पल्योपमस्याब्दशतैः पन्चभिरन्वितम् ॥१७५॥

सूर्य विमान की देवियों की उत्कृष्ट स्थिति पांच सौ वर्ष युक्त आधा पल्योपम की होती है । (१७५)

सूर्य चन्द्र विमानेषु, स्थितिरासां जघन्यतः ।
पल्योपम चतुर्थांशः प्रज्ञप्तो ज्ञानिपुङ्गवैः ॥१७६॥

सूर्य और चन्द्र विमान में देवों की जघन्य स्थिति एक चतुर्थांश १/४ पल्योपम होती है और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की कही है । (१७६)

ग्रहाणां च विमानेषु देवनामल्पिका स्थितिः ।
पल्योपमस्य तुर्यांशो, गुर्व्वी पल्योपमं मतम् ॥१७७॥

ग्रह के विमानों में देवों की जघन्य स्थिति एक चतुर्थांश १/४ पल्योपम की है और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम

स्थितिर्देवीनां तु पल्योपमतुर्यलवो लघुः ।
तेषूत्कृष्टा तु निर्दिष्टा पल्यार्द्ध जगदीश्वरैः ॥१७८॥

ग्रह के विमानों में देवियों की जघन्य स्थिति एक चतुर्थांश १/४ पल्योपम की है और उत्कृष्ट स्थिति आधा १/२ पल्योपम की श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा है । (१७८)

नक्षत्राणां विमानेषु, जघन्या नाकिनां स्थितिः ।
पल्योपम चतुर्थांशः पल्योपमार्द्धमुत्तरा ॥१७९॥

नक्षत्रों के विमानों की जघन्य स्थिति एक चतुर्थांश १/४ पल्योपम की है और उत्कृष्ट स्थिति आधा १/२ पल्योपम की कही गयी है । (१७६)

तेषा पल्यस्य तुर्यांशो देवीनां स्थितिरल्पिका ।
उत्कृष्टा तु भवेत्तासां स एव खलु साधिकः ॥१८०॥

नक्षत्र के विमानों की देवियों की जघन्य स्थिति एक चतुर्थांश १/४ पल्योपम की है और उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक चतुर्थांश १/४ पल्योपम की होती है । (१८०)

स्थितिस्तारा विमानेषु, देवानां स्याल्लधीयसी ।
पल्योपम स्याष्टमोऽशस्तुर्योऽशस्तु गरीयसी ॥१८१॥

स्थितिर्देवीनां तु तेषु, लध्वी दृष्टा जिनेश्वरैः ।
पल्यस्यैवाष्टमो भागो, गुर्वी स एव साधिकः ॥१८२॥

तारा के विमानों के देवों की जघन्य स्थिति पल्योपम के आठवें विभाग १/८ और उत्कृष्ट स्थिति एक चतुर्थांश १/४ पल्योपम की है और देवियों की जघन्य स्थिति एक अष्टमांश १/८ और उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक अष्टमांश पल्योपम श्री जिनेश्वर भगवान ने देखा है । (१८१-१८२)

एषु सूर्याश्चेन्दवश्च, सर्वस्तोका मिथः समाः ।
तेभ्यो भानि ग्रहासतेभ्यस्ताराः संङ्खय गुणाः क्रमात् ॥१८३॥

पंच जातिय ज्योतिष्क में सूर्य चन्द सबसे थोडे संख्या में सबसे अल्प है और परस्पर समान संख्या वाले हैं । उस संख्या में संख्यात गुणा नक्षत्र है, उससे संख्यात गुणा ग्रह है और इससे संख्यात गुणा तारा समुदाय है । (१८३)

एतेचन्द्रादयः प्रायः प्राणीनां प्रसव क्षणे ।
तत्तत्कार्योपक्रमे वा, वर्ष मासाद्युपक्रमे ॥१८४॥

अनुकूलाः सुखं कुर्युस्तत्तद्रा शिमुपागताः ।
प्रतिकूलाः पुनः पीडां, प्रथमन्ति प्रथीयसीम् ॥१८५॥

चन्द्र आदि ये ज्योतिषी प्राणी के जन्म समय में वह उस कार्य के प्रारंभ में अथवा तो वर्ष-मासादि के प्रारंभ में जो अनुकुल हो तो उस-उस राशी में गये

प्राणियों को प्रायः सुख देता है और प्रतिकूल हो तो अत्यन्त पीड़ा का कारण बनता है । (१८४-१८५)

इस प्रसंग पर एक विचारणीय प्रश्न के विषय में ग्रन्थकार ने कहा है । प्राणी को होने वाले सुख दु:ख सब कर्माधीन है, ऐसी श्रेष्ठ मान्यता जैन शासन में है, फिर यहां सुख दु:खादि का निमित्त रूप में ज्योतिषी को क्यों गिनने में आया है ? इस माननीय प्रश्न का उत्तर ग्रन्थकार स्वयं अनेक सुन्दर मार्गदर्शन से देते हैं ।

ननु दुःख सुखानि स्युः, कर्म्मायतानि देहिनाम् ।
ततः किमेभिश्चन्द्राद्यैरनुकूलैरूतेतरैः ॥१८६॥

आनुकूल्यं प्रातिकूल्यमागता अप्यमी किमु ।
शुभाशुभानि कर्म्माणि, व्यतीत्य कर्त्तुमीशते ? ॥१८७॥

ततो मुधाऽऽस्ताम परे, निर्ग्रन्था निः स्पृहा अपि ।
ज्योतिः शास्त्रानुसारेण, मुहूर्त्ते क्षण तत्पराः ॥१८८॥

प्रव्राजनादि कृत्येषु प्रवर्त्तन्ते शुभाशयाः ।
स्वामी मेघकुमारादिदीक्षणे तत् किमैक्षत ? ॥१८९॥ *चतुर्भि कलापकं ॥*

यहां शंका करते हैं कि - प्राणियों को सुख और दु:ख कर्म के कारण से आता है, तो फिर उसकी अनुकूल-प्रतिकूल सूर्य-चन्द्र का क्या प्रयोजन है ? अर्थात् अनुकूल अथवा प्रतिकूल चन्द्रादि सुख-दु:ख के कारण कैसे बन सकता है ? अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता को प्राप्त करने वाला भी चन्द्र आदि से शुभ-अशुभ कर्म को लांघनकर क्यासुख दु:ख देने की शक्ति धारण कर सकता है ? अरे ! दूसरे की बात छोड़ दो, निर्ग्रन्थ और निःस्पृह साधु मुनिराज भी ज्योतिष शास्त्र के अनुसार से मुहूर्त्त देखने में तत्पर बनकर शुभाशय वाले वे दीक्षादि कार्यों में प्रवृत्ति करते है, तो क्या भगवान श्री महावीर प्रभु ने मेघकुमार की दीक्षा देने में मुहूर्त्त देखा था ? (१८६-१८९)

अत्रोच्यतेऽपरिचितश्रुतोपनिषदामयम् ।
अनाघ्रातगुरुपरम्पराणांवाक्यविप्लवः ॥१९०॥

श्रूयतामत्र सिद्धान्तरहस्यामृतशीतलम् ।

अनुत्तरसुराराध्यपराम्पर्याप्तमुत्तरम् ॥१६१॥

विप‌ाक हेतवः पन्च, स्युः शुभाशुभ कर्मणाम् ।

द्रव्यं क्षेत्रं च कालश्च भावो भवश्च पन्चमः ॥१६२॥

यहा शंका का समाधान करते हैं - श्रुत के रहस्य जो नहीं जानता है और गुरु परम्परा की जिसको गंध (जानकारी) न हो ऐसे व्यक्तियों का ही ऐसे विपरीत वाक्य हो सकते हैं । यहां अनुत्तर वासी देवों के भी आराध्य देव श्री जिनेश्वर भगवान् की ऐसी परम्परा से प्राप्त होते अमृत व शीतल रहस्य रूप आगम सिद्धान्त को सुनते-शुभ और अशुभ कर्मों के विपाक-फल के हेतु पांच होते हैं - १- द्रव्य, २- क्षेत्र, ३- काल, ४- भाव और ५- भव (जन्म) है । (१६०-१६२)

तथोक्तम् - "उदयक्खयक्खओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया ।

द्रव्यं खेत्तं कालं भावं च संपप्प ॥१६३॥"

तथा शास्त्र में कहा है कि - कर्म के उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशमये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव (जन्म) को प्राप्त करके ही होता है । (१६३)

यथा विपच्यते सातं, द्रव्यं स्रक्चन्दनादिकम् ।

गृहारामादिकं क्षेत्रमनुकूल गृहादिकम् ॥१६४॥

वर्षा वसन्तादिकं वा, कालं भावं सुखावहम् ।

वर्ण गन्धादिकं प्राप्य, भवं देवनरादिकम् ॥१६५॥ *युग्मं //*

जैसे कि - साता (सुख) द्रव्य के आश्रि‌त है, पुष्पमाला और चन्दन आदि द्रव्य के कारण अनुभव होता है, उसी तरह अनुकूल घर और घर का उद्यान रूप क्षेत्र होता है वर्षा ऋतु, वसंत ऋतु आदि काल होता है । सुख देने वाला वर्ण, गंध आदि भाव होता है एवं देव मनुष्य आदि भव-जन्म को प्राप्त करके साता वेदनीय का विपाक भोगा जाता है । ये दृष्टान्त है । (१६४-१६५)

विपच्यतेऽसातमपि, द्रव्यं खड्‌ग विषादिकम् ।

क्षेत्रं कारादिकं कालं, प्रतिकूलग्रहादिकम् ॥१६६॥

भावप्रशस्तवर्णगन्धस्पर्शरसादिकम् ।
भव च तिर्यङ्नरकादिकं प्राप्येति दृश्यते ॥१९७॥

इसी तरह अशाता वेदनीय (दु:ख) द्रव्यादिक के आश्रित भोगना पड़ता है, उसमें तलवार और विष आदि द्रव्य, जेल-कैदखाना आदि क्षेत्र, प्रतिकूल ग्रह आदि समय रूप काल अप्रशस्त वर्ण गंध रस स्पर्श आदि भाव, और तिर्यंच नरक आदि भव-जन्म के प्राप्त करके अशाता वेदनीय का विपाक दिखता है। (१९६-१९७)

शुभानां कर्म्मण तत्र, द्रव्य क्षेत्रादय: शुभा: ।
विपाक हेतव: प्रायोऽशुभानां च ततोऽन्यथा ॥१९८॥

उसमें शुभ कर्म के विपाक का हेतु शुभ, द्रव्य, क्षेत्र आदि गिने जाते हैं तथा अशुभ कर्मों के विपाक का हेतु भूत अशुभ द्रव्यादि गिने जाते हैं। (१९८)

ततो येषां यदाजन्म नक्षत्रादि विरोधभाक् ।
चार श्चन्द्रार्यमादीनां ज्योति: शास्त्रोदितो भवेत् ॥१९९॥

प्रायस्तेषां तदा कर्म्माण्य शुभानि तथा विधाम् ।
लब्ध्वा विपाक सामग्रीं, विपच्यन्ते तथा तथा ॥२००॥

इसमें जब जिन जीवों का जन्म नक्षत्रादि के विरोधी ज्योतिष शास्त्र में कहे अनुसार सूर्य-चन्द्र गोचर होते हैं तब प्राय: उनका अशुभ कर्म उस प्रकार की सामग्री प्राप्त कर उसके अनुसार फल दिखता है। (१९९-२००)

विपक्वानि च तान्येवं, दु:खं दद्युर्महीस्पृशाम् ।
आधि व्याधि द्रव्य हानिकलहोत्पादनादिभि: ॥२०१॥

और उस विपाक को प्राप्तकर कर्म आधि, व्याधि, द्रव्य हानि, कलह आदि उत्पन्न करके जीवात्मा को दु:ख देता है। (२०१)

यदा तु येषां जनमर्क्षाद्यनुकूलो भवेदयम् ।
ग्रहचारस्तदा तेषां शुभ कर्म्म विपच्यते ॥२०२॥

तथा विपक्वं तद्दत्तेऽङ्गिनां धनाङ्गनादिजम् ।
आरोग्यतुष्टि पुष्ठीष्टसमागमादिजंसुखम् ॥२०३॥

जब प्राणियों के जन्म नक्षत्रादि ग्रहों का ग्रहाचार (गोचर) अनुकूल होता है तब शुभ कर्म उदय में आता है। और वह अनुकूल होना शुभकर्म धन, स्त्री, आरोग्यता, तुष्टि पुष्टि, इष्ट समागम आदि द्वारा सुख को देता है । (२०२-२०३)

एवं कार्यादिलग्नेऽपि, तत्तद्भावगता ग्रहाः ।
सुख दुःख परीपाके, प्राणिनां यान्ति हेतुताम् ॥२०४॥

इस तरह शुभाशुभ कार्य आदि के लग्न मुहूर्त्त में उस-उस भाव को प्राप्त करने वाला ग्रह सुख दुःख के फल में हेतु बनता है । (२०४)

तथा ऽऽह भगवान् जीवाभिगम :-

''रयणियर दिण यराणं नक्ख त्ताणं महग्गहाणं च ।
चार विसेसेण भवे सुह दुक्ख वि ही मणु स्साणं ॥१॥''

तथा श्री भगवान ने जीवाभिगम सूत्र में इस तरह कहा है : - 'चन्द्र सूर्य नक्षत्र और महाग्रह के संचरण विशेष होने से संसार में मनुष्य को सुख दुःख आदि उत्पन्न होते हैं ।' (१)

अतएव महीयांसो, विवेकोज्वल चेतसः ।
प्रयोजनं स्वल्पमपि, रचयन्ति शुभक्षणे ॥२०५॥

इसके लिए विवेक से उज्जवल चित्त वाले महा पुरुष छोटा भी कार्य शुभ समय में करते हैं । (२०५)

ज्योतिःशास्त्रानुसारेण कार्यं प्रव्राजनादिकम् ।
शुभे मुहूर्त्ते कुर्वन्ति, तत् एवर्षयोऽपि हि ॥२०६॥

गृहीत व्रत निर्वाह प्रचयादि शुभेच्छवः ।
अन्यथांगी कृततत्तद्व्रतभंगादि सम्भवः ॥२०७॥

इसी लिए ही ग्रहण किये व्रत के निर्वाह तथा पुष्टि के लिए साधु पुरुष भी दीक्षा आदि कार्य ज्योतिष शास्त्रानुसार शुभ समय में करते है । और यदि इस प्रकार न करे तो स्वीकार किए व्रत आदि का भंग होने का संभव होता है । (२०६-२०७)

इत्थमेवावर्त्तताऽऽज्ञा, स्वामिनामर्हतामपि ।
अधिकृत्य शुभं कृत्यं पाठप्रव्राजनादिकम् ॥२०८॥

सुक्षेत्रे शुभतिथ्यादौ, पूर्वोत्तरादि सम्मुखम् ।
प्रव्राजनव्रतारोपादिकं कार्यं विचलणैः ॥२०६॥

इस तरह ही श्री अर्हन भगवान की आज्ञा होती है कि - पाठ और दीक्षा आदि शुभ कृत्य के आश्रित अच्छे क्षेत्र में अच्छी तिथि में, पूर्व उत्तर दिशा सन्मुख दीक्षा व्रत उच्चारण आदि विचक्षण पुरुषों को करना चाहिए । (२०८-२०६)

तथोक्तं पन्चवस्तुके -

''एस जिणाणं आणां खेत्ताईया उ कम्मुणो भणिआ ।
उदयाइकारणं जं तम्हा सव्वत्थ जइयव्वं ॥२१०॥''

पंच वस्तु ग्रन्थ में भी कहा है - 'श्री जिनेश्वर की भगवान की यह आज्ञा है कि कर्म के उदय आदि में क्षेत्रादि कारण होने से सर्वत्र इस तरह प्रयत्न करना चाहिए । (२१०)

अर्हदाद्याः सातिशयज्ञाना ये तु महाशयाः ।
ते तु ज्ञानबलेनैव, ज्ञात्वा कार्यगतायतिम् ॥२११॥

अविघ्नां वा सविघ्नां वा, प्रवर्त्तन्ते यथा शुभम् ।
नापेक्षन्तेऽन्यजनवन्मुहूर्त्तादिनिरीक्षणम् ॥२१२॥

तद्बुद्धिचिन्त्यापरेषां तु तथा नौचित्यमन्चति ।
मत्तेभस्पर्द्धयाऽवीनामिवाघातो महाद्रुषु ॥२१३॥

इदमर्थ तो जीवाभिगम वृत्तौ ।

अतिशय ज्ञानी अरिहंतादि महापुरुष ज्ञान बल से जिस कार्य सम्बन्धी सफल अथवा निष्फल भविष्य जानकर शुभकार्य में इस तरह से प्रवृत्ति करते हैं। परन्तु सामान्य मनुष्य के समान मुहूर्त्त आदि जानने की अपेक्षा उनको नहीं रहती । इस बात का चिन्तन कर अन्य जीव उस प्रकार करे तो उचित है। मदोन्मत्त हाथी की स्पर्धा से बकरी जैसे किसी महावृक्ष को बाथ भरना (घात करना) आलिंगन करने के समान यह प्रवृत्ति है । इस बात का भावार्थ श्री जीवाभिगम सूत्र की वृत्ति में कहा है । (२११-२१३)

चरं ज्योतिश्चक्रमेव, नरक्षेत्राधि स्मृतम् ।
ततः परं चालोकान्तं, ज्योतिश्चक्रमवस्थितम् ॥२१४॥

स्थापना ।

इस तरह से मनुष्य क्षेत्र तक ज्योतिष चक्र चर है । उसके बाद अलोक तक स्थिर है । (२१४) (अढाई द्वीप के बाहर स्थिर ज्योतिषी वाले द्वीप समुद्र के विषय है ।)

यत्र सन्ति नियताः सुधांश वस्तत्र भूरचल चारु चन्द्रिका ।
यत्र तीव्र रूचयः सनातनास्तत्र चातपवितानचित्रिताः ॥२१५॥

जहां चन्द्रमा स्थिर है, वहां चन्द्र की ज्योत्सना उस पृथ्वी पर स्थिर है और सूर्य स्थिर है वह पृथ्वी सूर्य के स्थिर अताप-विस्तार से चित्रित है । (२१५)

विश्वश्चर्यद कीर्ति कीर्ति विजय श्री वाचकेन्द्रान्तिष -
द्राज श्री तनयोत निष्ट विनयो श्री तेजपालात्मजः ।
काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्व प्रदीपोपमे,
सम्पूर्णः खलु पन्च विंशति तमः सर्गो निसर्गोज्जवलः ॥२१६॥

इति श्री लोक प्रकाशे ज्योतिश्चक वर्णनो माम पन्च विंशति तमः सर्गः ॥

॥ ग्रं० २५७ ॥

विश्व को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले कीर्तिमान श्री कीर्तिविजय जी उपाध्याय के शिष्य और तेजपाल तथा राजश्री के पुत्र विनय विजय जी महाराज से रचित निश्चित जगत के तत्वों को प्रकाशित करने में दीपक समान इस काव्य में स्वाभाविक उज्जवल पच्चीसवां सर्ग पूर्ण हुआ है । (२१६)

छब्बीसवां सर्ग

ऊर्ध्व लोक का वर्णन

जीयात् शङ्खेश्वरः स्वामी गोस्वामीव नभो भुवि।
गावो यस्योर्ध्व लोकेऽपि, चेरूः क्षुण्ण तमोङ्कुराः ॥१॥

जो आकाश रूपी पृथ्वी में सूर्य समान है उनकी वाणी रूपी किरण ऊर्ध्व लोक में अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने वाले श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्वामी की विजय हो । (१)

वैमानिकसुरावासशोभासंभारभासुरम् ।
स्वरूपमूर्ध्वलोकस्य, यथाश्रुतमथब्रुवे ॥२॥

अब मैं वैमानिक देवों के आवास की शोभा के समूह से देदीप्यमान ऊर्ध्वलोक का स्वरूप आगम के अनुसार कहता हूं । (२)

योजनानां नवशत्या, रूचकोर्ध्वमतिक्रमे ।
तिर्यग्लोकान्तः स एव, चोर्ध्वलोकादिरिष्यते ॥३॥

रूचक प्रदेश से नौ सौ योजन ऊपर जाने के बाद तिर्यग लोक का अन्त आता है और वहीं से ऊर्ध्व लोक का प्रारंभ होता है । (३)

ततो न्यूनसप्तरज्जुप्रमाणः कथितः स च ।
ईशत्प्राग्भारोर्ध्वभागे, सिद्धक्षेत्रावधिर्ततः ॥४॥

वह ऊर्ध्व लोक कुछ कम सात राजलोक प्रमाण है और उसकी अवधि इषत् प्राग्भागा ऊपर के भाग में सिद्धक्षेत्र तक है । (४)

ततोर्ध्व च रूचकाद्यरज्जोरन्तेप्रतिष्ठितौ ।
सौधर्मेशाननामानौ, देवलोकौ स्फुरद्रुची ॥५॥

समश्रेण्या स्थितावर्द्धचन्द्रसंस्थानसंस्थितौ ।
चिन्त्येते चेत्समुदितौ, तदा पूर्णेन्दु संस्थितौ ॥६॥

अब रूचक प्रदेश से ऊपर में प्रथम राजलोक के प्रथम विभाग के अन्दर स्फुरायमान कान्ति वाले सौधर्म और ईशान नामक दो देवलोक है, सम श्रेणि से रहे

और अर्ध चन्द्राकार संस्थान में रहे ये दोनों देवलोक यदि साथ में कल्पना करने में आए तो पूर्ण चन्द्र के आकार में लगता है । (५-६)

मेरोर्दक्षिणातस्तत्र, सौधर्माख्यः सुरालयः ।
ईशान देवलोकश्च मेरोत्तरतो भवेत् ॥७॥

मेरू पर्वत के दक्षिण दिशा में सौधर्म नामक देवलोक है और उत्तर दिशा में ईशान देवलोक होता है । (७)

प्राक्प्रत्यगायतावेतावुदग्दक्षिण विस्तृतौ ।
योजनानां कोटि कोटयोऽसंख्येया विसतृतायतौ ॥८॥

पूर्व-पश्चिम लम्बाई धारण करने वाले और उत्तर दक्षिण में विस्तार धारण करने वाले ये दोनों देवलोक असंख्य कोडा कोडी योजन प्रमाण का लम्बाई चौड़ाई वाला है । (८)

निकाय्यंभूमिकाकाराः प्रस्तटाः स्युस्त्रयोदश ।
प्रायः परस्परं तुल्य विमानाद्यन्तयोस्तयोः ॥६॥

लगभग परस्पर तुल्य-विमान की आदि-अन्त वाले इन दोनों देवलोक में निवास भूमि के आकार वाले तेरह प्रतर होते हैं । (६)

प्रत्येकमनयोर्यद्यप्येते सन्ति त्रयोदश ।
तथापि ह्येकवलयस्थित्या यदनयोः स्थितिः ॥१०॥

तत्तयोः समुदितयोस्त्रयोदश विवक्षिताः ।
अन्येष्वप्येकवलयस्थितेष्वेवं विभाव्यताम् ॥११॥

यद्यपि इन दोनों देव लोक के अलग-अलग रहे तेरह प्रतर हैं फिर भी दोनों की स्थिति एक वलयाकार से है । इससे दोनों के साथ में ही तेरह प्रतर की विवक्षा की है । अन्य देवलोकों में भी एक वलय में रहे प्रतरों की स्थिति इस तरह समझ लेना चाहिए । (१०-११)

त्रयोदशानामप्येषां, मध्य एकैकमिन्द्रकम् ।
विमानं मौक्तिकमिव, प्रतरस्वस्तिकोपरि ॥१२॥

प्रतर रूपी स्वस्तिक ऊपर मोती के समान तेरह प्रतर के मध्य में एक-एक इन्द्रक विमान होते हैं । (१२)

उडू१ चन्द्र२ च रजतं३, वज्रं४ वीर्यमथापरम् ५ ।
वरूण६ च तथा ऽऽनन्दं ७ ब्रह्म८ कांच्वन संज्ञकम् ९ ॥१३॥

रूचिरं१० चंच्व संज्ञं ११ चारूणं१२ दिशाभिधान कम्१३ ।
त्रयोदशेन्द्रका एते, सौधर्मेशान नाकयो: ॥१४॥

सौधर्म-ईशान देवलोक में तेरह इंद्रक विमान होते है । उसके नाम इस प्रकार है :- १उडु, २-चन्द्र, ३- रजत, ४- वज्र, ५- वीर्य, ६- वरूण, ७- आनंद, ८- ब्रह्म, ९- कांचन, १०-रूचिर, ११- चंच, १२- अरूण और १३ दिशा है । (१३-१४)

सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गयो: समसंस्थयो: ।
द्वादश प्रस्तटा: षट् ते, ब्रह्म लोके च केवले ॥१५॥

सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक की सम श्रेणि में रहा है । उसमें बारह प्रतर है और ब्रह्म नामक पांचवें देवलोक में छ: प्रतर है । (१५)

लान्तके प्रस्तटा: पन्च, शुक्रे चत्वार एव ते ।
सहस्त्रारेऽपि चत्वार: समश्रेणिस्थयोस्तत: ॥१६॥

किलानतप्राणतयोरारणाच्युतयोरपि ।
चत्वारश्चत्वार एव, प्रस्तटा: परिकीर्त्तिता: ॥१७॥

छठे लातक देव लोक में पांच प्रतर है । सातवें शुक्र देवलोक में चार प्रतर है आठवें सहस्त्रार देव लोक में चार प्रतर होते हैं और उसके बाद समश्रेणी में रहे नौ, दसवें आनत प्राणत तथा ग्यारहवें बारहवें आरण-अच्युत देवलोक में चार-चार प्रतर होते हैं । (१६-१७)

नव ग्रैवेयकाणां ते, पन्च स्वनुत्तरेषु च ।
एको द्वाषष्टिरित्येवमूर्ध्वलोके भवन्त्यमी ॥१८॥

नौ ग्रैवेयक में नौ प्रतर होते है, और पांच अनुत्तर में एक प्रतर इस तरह ऊर्ध्व लोक में कुल बासठ (६२) प्रतर होते हैं । (१८)

सौधर्मेशानयोस्तत्र, प्रथम प्रस्तटस्थितात् ।
उडुनाम्नो विमानेन्द्राच्चतुर्दिशं विनिर्गताः ॥१६॥

पंक्तिरेकैका विमानैर्द्वाषष्ट्या शोभिता ततः ।
द्वितीयादि प्रस्तटेषु, ताश्चतस्त्रोऽपि पडक्तयः ॥२०॥

एकैकेन विमानेन, हीना यावदनुत्तरम् ।
एवं विमानेनकैकं, दिक्षु तत्रावतिष्ठते ॥२१॥

सौधर्म और ईशान देवलोक में प्रथम प्रस्तर (परत-तह) में उडु नामक इन्द्र विमान से चारों दिशा में बासठ विमान से शोभित एक-एक पंक्ति है इस तरह दूसरे आदि प्रत्येक प्रतर में इन्द्र विमान से चारों तरफ एक-एक विमान से कम की पंक्ति होती है, और इसके अनुसार जब अनुत्तर देवलोक तक पहुंचते चार दिशा के अन्दर एक-एक विमान होता है । (१६-२१)

पाङ्क्तेयानां विमानानामाद्यप्रतरवर्त्तिनाम् ।
तिर्यग्लोकानुवादेन, स्थानमेवं स्मृतं श्रुते ॥२२॥

देवद्वीपे तदेकैकं, नागद्वीपे द्वयं द्वयम् ।
ततश्चत्वारि चत्वारि, यक्षद्वीपे जिना जगु : ॥२३॥

अष्टाष्टौ भूत पाथोधौ, तानि षोडश षोडश ।
स्वयं भूरमण द्वीपे, स्वयंभू वारिधौ ततः ॥२४॥

प्रथम पंक्ति में विमानों का स्थान तिर्च्छालोक के आधार पर शास्त्र में इस तरह से कहा है कि देव द्वीप के ऊपर एक-एक विमान है, नागद्वीप ऊपर दो-दो विमान है, यक्षद्वीप के ऊपर चार-चार विमान है, भूत समुद्र ऊपर आठ-आठ विमान है, स्वयं भूरमण द्वीप पर सोलह-सोलह है और स्वयं भूरमण समुद्र के ऊपर इक्तीस-इक्तीस विमान है । (२२-२४)

एकत्रिंशदेक त्रिंशदग्रिमप्रतरेषु च ।
स्युर्विमानानि पाङ्क्ते यान्यधःस्थै पडिक्तगैः सह ॥२५॥

इस प्रकार श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा है और ऊपर के प्रतरों के विमान नीचे के विमानों की समान पंक्तियां ही हैं । (२५)

स्थितान्यूर्ध्वसमश्रेण्या, चरमैकैकहानितः ।
द्वितीय प्रस्तटस्येति, स्वयं भूरमणाम्बुधौ ॥२६॥

त्रिंशत्त्रिशद्विमानानि, प्रतरेऽनुत्तरे त्वतः ।
भवेद्विमानमेकैकं, देव द्वीपे चतुर्दिशम् ॥२७॥

ये सब विमान ऊपर समश्रेणि से रहे है और प्रत्येक श्रेणी में अन्तिम एक-एक विमान कम होता है । इस तरह दूसरे प्रस्तर में स्वयंभूरमण समुद्र के ऊपर के एक-एक विमान कम होता जाय और इस तरह से ३०-३० विमान घटते अनुत्तर देवलोक में चारों तरफ एक एक विमान होता है, वह देव द्वीप के ऊपर जाता हैं । (२६-२७)

एवं पंङ्क्ति विमानानामन्तरं नियमान्मिथः ।
असंख्येयानीरितानि, योजनानि जिनेश्वरैः ॥२८॥

इस तरह पंक्ति में रहे विमानों का अरस-परस एक दूसरे का अन्तर जिनेश्वर भगवान ने असंख्य योजन कहा है । (२८)

पुष्पावकीर्णानां त्वेषां, संख्येययोजनात्मकम् ।
केषांचित्केषांचिदसंख्ये योजनसंमितम् ॥२६॥

दो श्रेणि की बीच की विदिशाओं में रहा पुष्पवकीर्ण विमानों का परस्पर अन्तर किसी का संख्यात योजन है और किसी का अन्तर असंख्यात योजन है । (२६)

विमानमिन्द्रकं यत्तु प्रतरेष्वरिवलेष्वपि ।
मेरोरूर्ध्व समश्रेण्या, तदुपर्युपरि स्थितम् ॥३०॥

प्रत्येक प्रतर के इन्द्रक विमान मेरू पर्वत के ऊपर सम श्रेणि में रहा है । (३०)

प्रतरेषु च सर्वेषु स्युर्विमाना: किलेन्द्रका: ।
वृत्तास्तेभ्योऽनन्तरं च संस्थिता ये चतुर्दिशम् ॥३१॥

ते त्रिकोणाः प्रति पङ्क्ति, त्रिकोणानन्तरं पुनः ।
चतुरस्रा विमानाः स्युस्तेभ्यः पुनरनन्तरम् ॥३२॥

वृत्ता विमानास्तेभ्योऽपि, पुनस्त्र्य स्रास्ततः पुनः।
चतुरस्राः पुनर्वृत्ता पङ्क्तिरेवं समाप्यते ॥३३॥

सर्वप्रतरों में रहे इन्द्रक विमान सभी गोलकार आकृति वाले हैं उसके बाद चारों दिशा में रहे विमान त्रिकोणाकार रूप में है और त्रिकोणाकार के बाद विमान चोरस आकृति में । उसके बाद फिर गोलाकार विमान है, उसके बाद त्रिकोण है, उसके बाद चोरस आकृति के हैं और फिर गोलाकार है । इस तरह सम्पूर्ण पंक्ति पूर्ण होती है । (३१-३३)

वृत्तत्र्यस्त्र चतुरस्रा, अग्रिम प्रतरेष्वपि ।
ज्ञेयाः क्रमेणानेनैवानुत्तर प्रतरावधि ॥३४॥

वृत्त-त्रिकोण और चौरस विमानों का यह क्रम आगे-आगे के प्रतर में भी जानना । और इसी ही क्रम से अनुत्तर विमानों के प्रतर तक विमान जानना । (३४)

यदुक्तं - "सव्वेसु पत्थडेसुं मज्झे वट्ट अणं तरं तंसं ।
तयणंतरं चउरंसं पुणोबि वट्टं तओ तंसं ॥३५॥"

अतः कहा है कि - सर्व प्रस्तरों के मध्य में गोल, उसके बाद त्रिकोण उसके बाद चोरस, फिर गोलाकार और फिर त्रिकोण इत्यादि जानना । (३५)

अधस्तन प्रस्तटेषु, ये ये वृत्तादयः स्थिताः ।
तेषा मूर्ध्व समश्रेण्या, सर्वेषु प्रतरेष्वपि ॥३६॥

वृत्तास्त्र्यस्त्रा श्चतुरस्रा, विमानाः संस्थिताः समे ।
ततः एवानुत्तराख्ये, प्रस्तटे स्युश्चतु र्दिशम् ॥३७॥

विमानानि त्रिकोणानि, वृत्तान्मध्य स्थितेन्द्रकात् ।
त्रिकोणान्येव सर्वासु, यद्भवन्तीह पङ्क्तिषु ॥३८॥

नीचे के प्रस्तरों में जो-जो गोलाकार आदि विमान रहे है उसके ऊपर समश्रेणी से सर्व प्रतरों में गोलाकार, त्रिकोण, चोरस विमान रहे है । और इसके लिए ही अनुत्तर देवलोक के चारों दिशा के विमान त्रिकोण है । क्योंकि सर्व-पंक्ति में मध्यस्थ गोलाकार इन्द्र के विमान के बाद त्रिकोण विमान चारों दिशा में होते हैं । (३६-३८)

यदाह - "वट्टं वट्टस्सुवरिं तंसं तंसस्स उप्परिं होइ ।
चउरंसे चउरंसं उड्ढं च विमाण सेढीओ ॥३६॥"

अत: कहा है कि - गोलाकार के ऊपर गोलाकार, त्रिकोण के ऊपर त्रिकोण, चोरस के ऊपर चोरस इस तरह ऊर्ध्व श्रेणिबद्ध विमान रहे हैं । (३६)

द्वाषष्टि१ रेकषष्टिश्च२, षष्टि३ रेकोनषष्ट कि:४।
तथाष्ट५ सप्त६ षट्७ पन्च८ चतु६ स्त्रि१० ककाधिका: ॥४०॥

पन्चाशदथ पन्चाश१३ त्सोधर्मेशानयो: क्रमात् ।
प्रतरेषु विमानानां, पङ्क्तौ पङ्क्तौ मितिर्मता ॥४१॥

सौधर्म और ईशान देवलोक के तेरह प्रतरों में क्रमश: एक-एक पंक्ति में विमानों की संख्या कही है - वह इस तरह पहले में ६२, दूसरे में ६१, तीसरे में ६०, चौथे में ५६, पांचवे में ५८, छट्ठे में ५७, सातवें में ५६, आठवें में ५५, नौवें में ५४, दसवें में ५३, ग्यारहवें में ५२, बारहवें में ५१, और तेरहवें में ५० विमानों की संख्या होती है। (४०-४१)

स्व स्व पङ्क्ति विमानानि, विभक्तानि त्रिभिस्त्रिभि:।
त्रयस्त्राणि चतुरस्त्राणि, वृत्तानि स्युर्यथाक्रमम् ॥४२॥
त्रिभिर्विभागे शेषं चेदेकमुद्धरितं भवेत् ।
क्षेप्यं त्र्यस्त्रेऽथ शेषे द्वे, ते त्र्यस्त्रचतुरस्त्रयो: ॥४३॥

स्व-स्व पंक्ति के विमान तीन-तीन विभाग में बांट गये है । १- त्रिकोण, २- चोरस तथा ३-गोलाकार । प्रत्येक प्रतर गत विमान संख्या को तीन से भाग देने में यदि एक शेष रहे तो उस शेष त्रिकोन में मिलाना चाहिए । यदि दो शेष रहे तो एक त्रिकोण और एक चोरस में गिनना चाहिए । (४२-४३)

प्रतिपङ्क्तयत्र वक्ष्यन्ते, वृत्तत्रिचतुरसका: ।
चतुर्गुणास्ते प्रतरे सर्वसंख्यया ॥४४॥

एक पंक्ति के त्रिकोण, चतुष्कोण विमानों की संख्या को चार से गुणा करने से प्रत्येक प्रतर-प्रतर के त्रिकोणादि विमानों की सर्व संख्या आती है । (४४) चारों दिशाओं में इन विमानों की श्रेणि है ।

त्र्यस्राणि चतुरस्राणि, प्रति पङ्क्तयेक विंशतिः ।
प्रथम प्रस्तटे वृत्त विमानानि च विंशतिः ॥४५॥
प्रथम प्रतरे पङ्क्ति विमानाः सर्व संख्यया ।
अष्टचत्वारिंशतैवमधिकं शतयोर्द्वयम् ॥४६॥

प्रथम प्रतर में प्रत्येक पंक्ति में त्रिकोण और चोरस इक्कीस-इक्कीस विमान होते हैं और बीस गोलाकार विमान होते है तथा वह प्रथम प्रतर के विमानों की सर्व संख्या दो सौ अडतालीस (२४८) होती है । (४५-४६)

द्वितीय प्रतरे पङ्क्तो पङ्क्तो त्र्यस्रा विमानका ।
एक विंशतिरन्ये च, विंशतिर्विंशतिः पृथक ॥४७॥
चतुश्चत्वारिंशमेव, विमानानां शतद्वयम् ।
द्वितीय प्रतरे पङ्क्तिगतानां सर्व संख्यया ॥४८॥

दूसरे प्रतर के अन्दर प्रत्येक पंक्ति में त्रिकोण विमान इक्कीस है और चतुष्कोण तथा त्रिकोण विमान बीस बीस है और इस तरह दूसरे प्रतर की पंक्तिगत विमानों की सर्व संख्या दो सौ चवालीस (२४४) होती है । (४७-४८)

तार्त्तीयीके प्रस्तटे तु, चतसृष्वपि पङक्तिषु ।
वृतत्र्यस्र चतुरस्रा, विमाना विंशतिः पृथक् ॥४९॥
चत्वारिंशत्समधिके, द्वे शते सर्वसंख्यया ।
प्रतरेऽथ तुरीयेऽपि निखिलास्वपि पङ्क्तिषु ॥५०॥

तीसरे प्रतर के अन्दर चार पंक्ति में त्रिकोण, चतुष्कोण और वृत्त विमान की संख्या बीस-बीस है । अतः तीसरे प्रतर में चारों पंक्ति के सर्व विमानों की संख्या दो सौ चालीस (२४०) होती है । (४९-५०)

एकोनविंशतिर्वृत्तास्त्र्यस्राश्च चतुरस्रकाः ।
विंशतिर्विंशतिः सर्वे, ते षट्त्रिंशं शतद्वयम् ॥५१॥

और चौथे प्रतर के अन्दर चारों पंक्ति में गोलाकार विमान उन्नीस है और त्रिकोण-चोरस विमान बीस बीस है । अतः उस पंक्तिगत विमान की सर्व संख्या दो सौ छत्तीस (२३६) होती है । (५१)

पन्चमे च प्रतिपङ्क्ति, त्रिकोणाः किल विंशतिः।
चतुरस्त्राश्च वृत्ताश्च, पृथगेकोनविंशतिः ॥५२॥
शतद्वयं च द्वात्रिंशमस्मिस्ते सर्व संख्यया ।
षष्ठे च प्रतिपङ्क्तयंते, त्रयेऽप्येकोनविंशतिः ॥५३॥

तथा पांचवे प्रतर के अन्दर चार पंक्ति में त्रिकोण विमान बीस है, और चोरस, गोलाकार विमान उन्नीस-उन्नीस है । और उस पंक्तिगत विमानों की सर्व संख्या दो सौ बत्तीस (२३२) होती है । (५२-५३)

अष्टाविशे द्वे शते चास्मिन्नमी सर्व संख्यया ।
पडक्तौ पङ्क्तौ सप्तमे तु, वृत्ता अष्टादश स्मृताः ॥५४॥

एवं छट्ठे प्रतर के अन्दर प्रत्येक पंक्ति में तीनों तरह के विमान उन्नीस-उन्नीस है और उन सबकी संख्या दो सौ अट्ठाईस (२२८) होती है । (५४)

एकोनविंशतिस्त्र्यस्त्राश्च तत्र च ।
सर्वाग्रेण विमानानां, चतुर्विंशं शतद्वयम् ॥५५॥

सातवें प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में वृत्त-विमान अठारह है और त्रिकोण-चतुष्कोण विमान उन्नीस-उन्नीस हैं । इससे सर्व संख्या मिलाकर दो सौ चौबीस (२२४) होती है । (५५)

प्रति पडक्तयष्टमे त्र्यस्त्राः, प्रोक्ता एकोन विंशतिः।
वृत्ताश्च चतुरस्त्राश्चाष्टादश स्फुटम ॥५६॥
विशं शतद्वयं सर्व संख्ययाऽत्र भवन्ति ते ।
नवमे प्रतिपङ्क्तयेते, त्रिधाप्यष्टादशोदिताः ॥५७॥
अस्मिन् सर्व संख्यया तु, द्वे शते षोडशाधिके ।
दशमे प्रतिपङ्क्तयष्टादश त्रिचतुरस्त्रकाः ॥५८॥
वृत्ताः सप्तदशेत्येवं, विमानाः पङ्क्ति वर्त्तिनः ।
द्विशती द्वादशोपेता, सर्वाग्रेण भवन्त्यमी ॥५९॥

आठवें प्रतर के प्रत्येक पंक्ति के अन्दर त्रिकोण विमान उन्नीस होते हैं । गोलाकार और चोरस विमान अठारह-अठारह है और सर्व संख्या दो सौ बीस

(२२०) होती है। और नौवें प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में तीन प्रकार के विमान अठारह-अठारह होते हैं और सर्व संख्या, दो सौ सोलह विमान होते हैं। तथा दसवें प्रतर की प्रत्येक पंक्ति के अन्दर त्रिकोण और चोरस विमान अठारह-अठारह होते हैं और गोलाकार विमान सत्रह हैं। अतः इस प्रतर के सर्व मिलाकर दो सौ बारह (२१२) विमान होते हैं। (५६-५९)

एकादशेऽथ प्रतरे, त्र्यस्रा अष्टादशोदिताः ।
चतुरस्राः सप्तदश, वृत्तास्तावन्त एव च ॥६०॥

द्विशत्यष्टाधिका सर्व संख्यया द्वादशेऽथ च ।
पङ्क्तौ पङ्क्तौ सप्तदशप्रमितास्त्रिविधा अपि ॥६१॥

द्विशती चतुरधिका स्युस्तत्र सर्व संख्यया ।
त्रयोदशे प्रस्तटेऽथ वृत्ता भवन्ति षोडश ॥६२॥

त्रिचतुष्कोणकाः सप्तदश सर्वे शतद्वयम् ।
सौधर्मेशानयोरेवं, स्वर्गयोः सर्व संख्यया ॥६३॥

ग्यारहवें प्रतर की प्रत्येक पंक्ति के अन्दर त्रिकोण विमान अठारह है, चोरस और गोलाकार विमान सत्रह-सत्रह होते हैं। इस प्रतर के सर्व विमान दो सौ आठ (२०८) होते हैं। तथा बारहवें प्रतर की प्रत्येक पंक्ति के अन्दर प्रत्येक तरह के सत्रह-सत्रह विमान होते हैं। अतः इस प्रतर में विमानों सर्व संख्या दो सौ चार (२०४) होते हैं। और तेरहवें प्रतर के अन्दर गोलाकार विमान सोलह होते हैं तथा त्रिकोण व चोरस विमान सत्रह-सत्रह होते हैं। इस प्रतर के कुल विमानों की संख्या दो सौ होती है। (६०-६३)

द्विपन्चाशदधिकानि, शतानि नव वृत्तकाः ।
त्रिकोणानां नव शतान्यष्टाशीत्यधिकानि च ॥६४॥

चतुष्कोणा द्विसप्तत्याऽधिका नवशतीति च ।
सह संकलिता एते, त्रयोदशभिरिन्द्रकैः ॥६५॥

सर्वसंख्या पङ्क्तिगतविमानानां भवेदिह ।
द्वौ सहस्रौ नवशताधिकौ सपन्चविंशती ॥६६॥

सौधर्म और ईशान देवलोक में नौ सो बावन (९५२) गोलाकार विमान है, नौ सौ अट्ठासी (९८८) त्रिकोण विमान है और नौ सौ बहत्तर (९७२) चोरस विमान है । इन सर्व विमान की तेरह इन्द्रक विमानों के साथ गिनती करते पंक्तिगत विमानों की सर्व संख्या दो हजार नौ सौ पच्चीस (२९२५) होती है । (६४-६६)

चतसृणा च पूर्वोक्त पङ्क्तिनामन्तरेष्विह ।
सर्वेष्वपि प्रस्तटेषु, प्राचीमेकां दिशं विना ॥६७॥

पुष्पावकीर्णाकाः संति विमाना विलसद्रुचः ।
सौधर्मेशानयुगले, भवन्ति सर्वसंख्यया ॥६८॥

एकोनषष्टिर्लक्षाणि, ते सप्तनवतिस्तथा ।
सहस्राणि तदुपरि, केवला पन्चसप्ततिः ॥६९॥

निर्व्यवस्थाः स्थिता एते, विकीर्ण पुष्प पुन्जवत् ।
इतस्ततः पुष्पावकीर्णा इति विश्रुताः ॥७०॥

पहले कही हुई चार पंक्तियों के अन्तर में प्रत्येक प्रतरों में एक पूर्व दिशा को छोडकर अन्य दिशाओं में पुष्पावकीर्ण विमान है । विलसत कान्ति वाले ये विमान सौधर्म-ईशान मिलाकर दोनों देवलोक के सर्व संख्या उनसट लाख सत्तानवे हजार पचहत्तर (५९, ९७००७५) होते हैं । ये सभी विमान अव्यवस्थित रूप में तितर-बितर पुष्प के ढेर के समान अलग-अलग इधर-उधर रहे है, इससे पुष्पावकीर्ण रूप में प्रसिद्ध है । (६७ से ७०)

प्रतिप्रतरमेतेषां, पङक्तिप्राप्तविमानवत् ।
संख्या पुष्पावकीर्णानां न पृथक् क्वापि लभ्यते ॥७१॥

प्रत्येक प्रतरों में रहे पुष्पावकीर्ण विमानों की पृथक् संख्या पंक्ति में रहे विमान के समान कहीं पर भी प्राप्त नहीं होती । (७१)

पङक्ति पुष्पावकीर्णाश्च, सर्व संकलिताः पुनः ।
सौधर्मेशानयोः षष्टिर्लक्षाणि स्युर्विमाना काः ॥७२॥

द्वात्रिंशत्तत्र लक्षाणि, सौधर्मस्य भवन्त्यमी ।
लक्षाण्यष्टाविंशतिश्च, स्युरीशान-त्रिविष्टपे ॥७३॥

पंक्तिगत और पुष्पावकीर्ण विमानों की सर्व संख्या सौधर्म और ईशान देवलोक में साठ लाख (६०,००,०००) कही है उसमें बत्तीस लाख विमान सौधर्म देवलोक के है और अट्ठाईस लाख विमान ईशान देवलोक के हैं । (७२-७३)

अथैतयोर्वासवयोः सम्बन्धीनि पृथक् पृथक् ।
पाङ्क्तेयानि विमानानि, प्रोक्तान्येवं पुरातनैः ॥७४॥

अब इन दोनों सौधर्म और ईशान के इन्द्रों के पंक्तिगत विमान का पृथक-पृथक करण पूर्व महर्षिओं ने इस तरह से कहा है । (७४)

तथाहुस्तपागच्छ पतयः श्री रत्नशेखर सूरयः श्राद्धविधि वृत्तो -

''दक्षिणस्यां विमाना ये, सौधर्मेशस्य तेऽखिलाः ।
उत्तरस्यां तु ते सर्वेऽपीशानेन्द्रस्य सत्तया ॥७५॥

पूर्वस्यामपरस्यां च, वृत्ताः सर्वे विमानकाः ।
त्रयोदशापीन्द्रकाश्च, स्युः सौधर्मसुरेशितुः ॥७६॥

पूर्वापरदिशोस्त्रयस्त्रश्चतुरस्त्राश्च ते पुनः ।
सौधर्माधिपतेरर्द्धा, अर्द्धा ईशानचक्रिणः ॥७७॥''

तपागच्छाधिपति श्री रत्नशेखर सूरिश्वर जी महाराज ने श्राद्धविधि टीका में कहा है कि - 'दक्षिण दिशा में रहे सर्व विमान सौधर्मेन्द्र के है और उत्तर दिशा में रहे सर्व विमान ईशानेन्द्र की सत्ता में है । पूर्व और पश्चिम दिशा के अन्दर पंक्ति में रहे सर्व गोलाकार विमान और तेरह इन्द्रक विमान भी सौधर्म इन्द्र के है । जबकि पूर्व और पश्चिम दिशा की पंक्ति में रहे जो त्रिकोण और चोरस विमान है, उसमें से आधे सौधमेन्द्र के है और आधे ईशान इन्द्र के हैं ।'

संग्रहणी वृत्तावपि -

''जे दाहिणे इंदा दाहिण ओ आवली भवे तेसिं ।
जे पुण उत्तर इंदा उत्तरओ आवली तेसिं ॥७८॥

पुव्वेण पच्छिमेण य सामन्ना आवली भवे तेसिं ।
जे पुण वट्टविमाण मज्झिल्ला दाहिणिल्लाणं ॥७९॥

पव्वेण पच्छिमेण य जे वट्टा तेऽपि दाहिणि ल्लाणं।

तंस चउरंसगा पुण सामन्ना हुंति दुण्हंपि ॥८०॥"

यह बात संग्रहणी की टीका में भी कहा है - "इन्द्रक विमान से दक्षिण दिशा में दक्षिण श्रेणि और इन्द्रक विमान से उत्तर दिशा में उत्तर श्रेणि से सौधर्म और ईशान इन्द्र की है पूर्व और पश्चिम दिशा की श्रेणि दोनों इन्द्रों को समान है। उसमें मध्य के इन्द्रक गोलकार विमान है वह सौधर्मेन्द्र के है। जबकि त्रिकोण और चोरस विमान दोनों इन्द्रों के समान होते हैं। (७८-८०)"

प्रत्येकं त्वथ सौधर्मेशानयोर्देवलोकयोः ।

वृत्तादीनां पंक्तिगानां संख्यैवं गदिता श्रुते ॥८१॥

सौधर्म और ईशान देवलोक के वृत्त आदि पंक्ति गत विमानों की संख्या आगम में इस तरह से कही है। (८१)

सप्तविंशा सप्तशती, वृत्तानां प्रथमे भवेत् ।

त्रिकोणानामथ चतुर्नवत्याढया चतुःशती ॥८२॥

चतुष्कोणानां च चतुः शत्येव षड्शीति युक्त् ।

शतान्येवं सप्तदश, सप्तोत्तराणि पङ्क्तिगाः ॥८३॥

प्रथम देवलोक में गोलाकार विमान सातसौ सत्ताईस (७२७) है त्रिकोण विमान चार सौ चौरानवे है और चतुष्कोण विमान चार सौ छियासी होते है इस तरह सम्पूर्ण पंक्तिगत विमानों की कुल संख्या सत्रह सौ सात (१७०७) विमान की होती है। (८२-८३)

लक्षाण्येकत्रिंदशदष्टानवतिश्च सहस्रकाः ।

द्वे शते त्रिनवत्याढये, इह पुष्पावकीर्णकाः ॥८४॥

एषां योमे तु पूर्वोक्ता लक्षा द्वात्रिंशदेव ते ।

ईशानेऽप्यथ वृत्तानामषष्टत्रिशं शतद्वयम् ॥८५॥

इस देवलोक में पुष्पावकीर्ण विमान इक्तीस लाख, अठानवे हजार दो सौ तिरानवे (३१९८२९३) संख्या में पंक्तिगत विमानों के साथ में इस पुष्पावकीर्णक विमान का कुल जोड़ करने से प्रथम देवलोक के पूर्वोक्त बत्तीस लाख विमान

होते हैं। ईशान देवलोक में गोलाकार विमान दो सो अड़तीस होते हैं। (८४-८५)

त्रिचतुश्कोणसंख्या तु, सौधर्मवद्धवेदिह ।
अष्टादशोत्तराण्येवं शतानि द्वादशाखिला ॥८६॥

पुष्पावकीर्णकानां तु लक्षाणां सप्त विंशतिः ।
सहस्राण्यष्टनवतिर्द्व्यशीतिः सप्तशत्यपि ॥८७॥

लक्षाण्यष्टाविंशतिर्या, सर्व संख्या पुरोदिता ।
एषां योगेन सा प्राज्ञैर्भावनीया बहुश्रुतः ॥८८॥

त्रिकोण और चतुष्कोण विमानों की संख्या सौधर्म देवलोक के समान है सर्व मिलाकर तीन प्रकार के विमान की कुल संख्या बारह सौ अठारह (१२१८) होती है। पुष्पावकीर्ण विमानों की संख्या सत्ताईस लाख अठानवे हजार सात सौ बयासी (२७, ९८, ७८२) है । इस तरह से दोनो प्रकार के विमानों की संख्या का कुल जोड करने से पूर्वोक्त अट्ठाईस लाख विमानों की संख्या बहुश्रुत से जानना चाहिए । १२९८+२७,९८,७८२ = २८००००० होता है । (८६ से ८८)

तत्रापि - सौ धर्मेन्द्र विमानेभ्य ईशानस्य सुरेशितुः।
विमाना उच्छ्रिताः किंचित्प्रमाणतो गुणैरपि ॥८९॥

उसमें भी सौधर्मेन्द्र के विमान से ईशान इन्द्र के विमान प्रमाण और गुण से कुछ ऊंचे है । (८९)

यत्तु पन्चशतोच्चत्वं, प्रासादानां द्वयोरपि ।
स्थूल न्यायात्तदुदित्तं, ततस्तन्न विरूध्यते ॥९०॥

दोनो देवलोक के मंदिरों की ऊंचाई जो पांच सौ योजन की कही है वह सामान्य से कहा है । जिससे उसमें विरोध नहीं है । (९०)

वस्तुतः सौधर्मगत प्रासादोभ्यः समुन्नताः ।
ईशान देवलोकस्य, प्रासादाः सुंदरा अपि ॥९१॥

वस्तुतः तो सौधर्म देवलोक में रहे मंदिरों से ईशान देवलोक के मंदिर ऊंचे तथा सुन्दर भी है । (९१)

यथा करतले कश्चिन्निम्नः कश्चित्तथोन्नतः ।
देशस्तथा विमानानामेनयोर्निम्नतोन्नती ॥९२॥

जैसे हथेली में कोई भाग ऊंचा होता है, कोई भाग नीचा होता है, उसी तरह दोनों देवलोक के विमानों की ऊंचाई-नीचाई समझ लेना । (९२)

तथाऽऽहु - ''सक्कस्स णं भंते ! देविंद स्स देव रण्णो विमाणोहिं तो ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो विमाणो ईसिं उच्चयरा ईसिं उन्नययरा ।'' इत्यादि भगवती सूत्र शतक ३।१ उद्देश वृत्ति ।'

कहा है कि - 'देवता का इन्द्र, देवों का राजा शक्र महाराज के विमानों से ईशानेन्द्र के विमान थोड़े ऊंचे और कुछ विशिष्ट रूप है ।' इत्यादि भगवती सूत्र में शतक ३।१ उद्देश वृत्ति में आया है ।'

इदमेव मनसि विचिंत्य तत्वार्थ भाष्यकारैरूक्तं-''सौधर्मस्य कल्पस्योपरि ऐशानः कल्पः ऐशानस्योपरि सनत्कुमारः, सनत्कुमारस्योपरि माहेन्द्र इत्येवमाव सर्वार्थ सिद्धा'' दिति ।

इसी ही पदार्थ को मन में चिन्तन कर तत्वार्थ भाष्यकार ने कहा है - ''सौधर्म देवलोक के ऊपर-श्रेष्ठ ईशान कल्प है, ईशान देवलोक से श्रेष्ठ सनत्कुमार देवलोक है । सनत्कुमार देवलोक के ऊपर-श्रेष्ठ माहेन्द्र देवलोक है इसी तरह से सर्वार्थ सिद्ध विमान तक समझ लेना चाहिए ।''

वृत्ताः स्युर्व लयाकारास्त्र्यस्त्राः शृङ्गाटकोपमाः ।
भवन्त्यक्षाटकाकाराश्चतुरस्त्रा विमानकाः ॥९३॥

ये तु पुष्पावकीर्णाख्या, विमानका भवन्ति ते ।
नन्द्यावर्त्तानुकृतयः केचिदन्येऽसि संस्थिता ॥९४॥

अपरेस्वस्तिकाकाराः श्रीवत्साकृतयः परे ।
पद्माकाराः केचिदेवं, नानाकाराः स्थिता इति ॥९५॥

गोल विमान वलयाकार वाले होते हैं । त्रिकोण विमान सिंघाडे के समान होता है, और चोरस विमान अक्षारक (पासे) के आकार वाला होता है और जो पुष्पावकीर्ण विमान होता है उसमें से कई नंद्यावर्त के आकार से कई तलवार के

आकार वाले, कई स्वस्तिका आकार से कई श्रीवत्स आकार वाले होते हैं तो कोई पद्म के आकार वाले है । इस तरह विविध प्रकार से पुष्पावकीर्ण विमान रहते हैं । (९३-९५)

प्राकारेण परिक्षिप्ता, वृत्ताः पंक्तिविमानकाः ।
द्वारेणैकेन महता, मण्डिताः पिण्डितश्रिया ॥९६॥

पंक्ति में रहे गोलाकार विमान सुन्दर एक बड़ा द्वार वाला और किले से युक्त होता है । (९६)

त्र्यस्त्राणां तु विमानानां, यस्यां वृत्त विमानकाः ।
तस्यां दिशि वेदिका स्यात्प्राकारः शेषदिक्षु च ॥९७॥

मुण्डप्राकाररूपैव, वेदिका तु भवेदिह ।
द्वाराणि च त्रिकोणेषु, त्रीण्येवेति जिनैर्मतम् ॥९८॥

त्रिकोण विमान की जिस दिशा में वृत्त विमान है, उस दिशा में वेदिका होती है, जबकि शेष दिशा में प्राकार-परकोटा दीवार होती है, और वेदिका भी नीचे किले समान होती है और इन त्रिकोण विमानों में द्वार तीन होते हैं इस तरह श्री जिनेश्वर भगवान ने कहा है । (९७-९८)

चतुर्दिशं वेदिकाभिश्चतुरस्त्रास्तु चारवः ।
स्फारैर्द्वारैश्चतुर्भिश्च, चतुर्दिशमलङ्कृताः ॥९९॥

चोरंस विमान चारों दिशा में वेदिका से सुन्दर होता है और चार दिशा में चमकते चार द्वारों द्वारा शोभायमान होता है । (९९)

स्वरूपं किंचन ब्रूमः सौधर्मेशाननाकयोः ।
विमानानामथो जीवाभिगमादि श्रुतोदितम् ॥१००॥

अब सौधर्म और ईशान प्रथम-दूसरे देवलोक के विमानों का कुछ स्वरूप श्री जीवाभिगम आदि श्रुत में कहे अनुसार वर्णन करता हूं । (१००)

विमानानामत्र पृथ्वी, घनोदधिप्रतिष्ठिता ।
स्त्यानीभूतोदकरूपः ख्यात एव घनोदधि ॥१०१॥

जगत्स्वभावदेवासौ, स्पन्दते न हि कर्हिचित् ।
विमानाअपितत्रस्था, न जीर्यन्ति कदाचन ॥१०२॥

इन विमानों की पृथ्वी धनोदधि ऊपर रही है, जमे हुए पानी का धनोदधि रूप कहलाता है। जगत् स्वभाव से कुदरत रूप में ही यह धनोदधि कभी भी परिवर्तन नहीं है और उसके ऊपर विमान भी कभी भी जीर्ण नहीं होते । (१०१-१०२)

धनोदधिः स चाकाश एवाधार विवर्जितः ।
निरालम्बः स्थितश्चित्रं स्वभावाज्ज्योतिषादिवत् ॥१०३॥

ज्योतिषादि विमानों के समान् स्वभाव से ही यह धनोदधि आधार रहित, निरालम्बन रूप आकाश में ही रहते हैं, वह आश्चर्यकारी है । (१०३)

महानगरकल्पानि, विमानानि भवन्त्यथ ।
प्राकाराश्च तदुपरि, वनखण्ड परिष्कृताः ॥१०४॥

ये विमान महानगर के समान विशाल होते हैं और उसके ऊपर के प्राकार-परकोटा किले, वनखंडों से शोभते हैं । (१०४)

प्राकरास्ते योजनानां, समुत्तुङ्गाः शतत्रयम् ।
शतं तदर्द्धं तत्पादं, मूलमध्योर्ध्व विस्तृताः ॥१०५॥

इसके परकोटे तीन सौ योजन ऊंचे हैं और विस्तार में मूल मध्य और ऊपर के विभाग में क्रमशः सौ, पचास और पच्चीस योजन है । (१०५)

चतुर्द्वारसहस्राढया, द्वारमेकैकमुच्छ्रितम् ।
योजनानां पन्चशतीं, सार्द्धे द्वे च शते ततम् ॥१०६॥

चार हजार द्वार वाला यह परकोट है उसमें एक-एक द्वार पांच सो योजन ऊंचा और दो सौ पचास योजन चौड़ा है । (१०६)

चक्र मृग गरुडर्क्षच्छत्र लसत्पिच्छ शकुनि सिंह वृषाः ।
अपि च चतुर्दन्त गजाः१० आलेख्यै रेभिरति रम्याः ॥१०७॥

१- चक्र, २- मृग, ३- गरुड, ४- भालू ५- छत्र, ६- देदीप्यमान, मोर पख, ७- समडी, ८ सिंह, ९-वृषभ, १० चार दांत वाला हाथी, इस प्रकार के चित्रों से यह द्वार अतीव रमणीय होता है । (१०७)

प्रत्येकं शतमष्टाधिकमेते केतवो विराजन्ते ।
साशीतिसहस्रं ते सर्वेऽप्यत्र प्रतिद्वारम् ॥१०८॥आर्ये॥

इस प्रकार चित्रों से युक्त १०८ ध्वजाएं होती है । इस तरह कुल एक हजार अस्सी ध्वजाएं प्रत्येक द्वार पर शोभायमान होती है । (१०८)

शेषं द्वारवर्णनं च श्रीसूर्याभविमानवत् ।
राजप्रश्नीयतो ज्ञेयं, नात्रोक्तं विस्तृतेर्भयात् ॥१०६॥

द्वारों का शेष वर्णन श्री सुर्याभ विमान के समान है जो राजप्रश्नीय सूत्र से जान लेना चाहिए । यहां विस्तार के भय से नहीं कहा । (१०६)

विस्तृतानि योजनार्द्धमायतान्येकयोजनम् ।
प्राकारकपिशीर्षाणि, नानामणिमयानि च ॥११०॥

उन किलों के अलग-अलग प्रकार के रत्नमय बने कांगडे आधा योजन विस्तृत और एक योजन लम्बे होते हैं । (११०)

प्रासादास्तेषु देवानां, सन्ति रत्नविनिर्मिताः ।
तत्रैतयोस्ताविषयोर्विमानानां वसुन्धरा ॥१११॥

इस विमान के अन्दर देवताओं का रत्न निर्मित प्रसाद है, उसमें ही इस देवलोक की पृथ्वी है, अर्थात स्वर्ग लोक की भूमि वही विमान की भूमि है । (१११)

योजनानां शताः सप्त विंशतिः पिण्डतो भवेत् ।
प्रासादश्च तदुपरि, प्रोक्ताः पन्चशतोन्नताः ॥११२॥

इन विमानों के धरातल की मोटाई सताईस सौ योजन है, और उसके ऊपर पांच सौ योजन ऊंचे प्रासाद है । (११२)

इदमुच्चत्व मानं तु, मूल प्रासाद गोचरम् ।
प्रासादपरिपाटयस्तु, तदर्द्धार्द्धमिता मताः ॥११३॥

यह ऊंचाई का प्रमाण मुख्य प्रासाद का समझना । उसके बाद के प्रासाद श्रेणियों की ऊंचाई आधी-आधी प्रमाण कही है । (११३)

एवं च पृथ्वी पिण्डेन, सह द्वात्रिंशदेव हि ।
शतानि तुङ्गत्वमिह, प्रासाद शिखरावधि ॥११४॥

इस तरह से पृथ्वी के पिंड के साथ में प्रासाद के शिखर तक का उच्चत्व मान बत्तीस सौ योजन का है । (११४)

एवं सर्वत्र भूपीठ प्रासादौन्नत्ययोजनात् ।
द्वात्रिंशद्योजनशता, विमानोच्चत्वमूह्यताम् ॥११५॥

इसी तरह से सर्वत्र पीठ और प्रासाद की ऊंचाई को मिलाकर विमान की ऊंचाई बत्तीस सौ (३२००) योजन समझना चाहिए । (११५)

भूपीठस्य च वाहल्यं प्रासादानां च तुङ्गता ।
पृथक् पृथक् यथा स्थानं, सर्व स्वर्गेषु वक्ष्यते ॥११६॥

पृथ्वी की मोटाई और प्रासादो की ऊंचाई प्रत्येक देवलोक के अन्दर जो अलग-अलग है वह योग स्थान में कहने में आयेगा । (११६)

विष्कम् भायामतस्तत्र, विमानाः कथिता द्विधा ।
संख्येयैर्योजनैः केचिदसंख्येयैर्मिताः परे ॥११७॥

यहां विमान दो प्रकार से कहे हैं । उसमें कई विमान संख्याता योजन के और कई असंख्याता योजनों की लम्बाई विस्तार धारण करते हैं । (११७)

व्यासायाम परिक्षेपाः संख्येयैर्योजनैर्मिताः ।
आद्यानामपरेषां तेऽसंख्येयैर्योजनैर्मिताः ॥११८॥

उसमें प्रथम प्रकार के विमानों की लम्बाई, विस्तार, परिधिं संख्याता योजन प्रमाण है, और दूसरे विमानों का वह लम्बाई विस्तार परिधि असंख्याता योजन प्रमाण का है । (११८)

स्वर्गयोरेनयोस्तत्र, प्रथम प्रतरेऽस्ति यत् ।
उडुनामैन्द्रकं व्यासायामतस्तत्प्रकीर्त्तितम् ॥११६॥

योजनानां पन्च चत्वारिंशल्लक्षाणि सर्वतः ।
परिधिस्त्वस्य मनुज क्षेत्रस्येव विभाव्यतां ॥१२०॥

इन दो देवलोक में जो प्रथम प्रतर है उसमें ऊडु नामक जो ऐन्द्रक-इन्द्रक विमान है, उसकी लम्बाई-चौड़ाई पैंतालीस लाख योजन की कही है । उसकी परिधि मनुष्य क्षेत्र के समान समझ लेना चाहिये। क्योंकि मनुष्य लोक की भी पैंतालीस लाख योजन है । (११६-१२०)

एवं च - सिद्ध क्षेत्रमुडु नामैन्द्रकं नृक्षेत्रमेवच ।
सीमन्तो नरकावासश्चत्वारः सदृशा इमे ॥१२१॥

व्यासायाम परिक्षेपै रूपर्युपरि संस्थिताः ।
दृष्टा केवलिभिर्ज्ञानदृष्टि दृष्टि त्रिविष्टिपैः ॥१२२॥

इसी ही तरह से सिद्ध क्षेत्र-सिद्ध शिला, ऊडु नाम का इन्द्रक विमान है, मनुष्य क्षेत्र और सीमन्त नामक नरक वास, इन चार की लम्बाई-चौड़ाई और परिधि से समानता है । और सब एक ही श्रेणि में एक-एक ऊपर रहे हैं । वह ज्ञान दृष्टि से तीन जगत को देखने वाले केवली भगवन्तों ने कहा है । (१२१-१२२)

अन्येषां तु विमानानां, केषांचिन्नाकायोरिह ।
व्यासायाम परिक्षेप मानमेवं निरूपितम् ॥१२३॥

इन दोनों देवलोक में दूसरे कितने विमानों का आयाम लम्बाई विस्तार परिधि का प्रमाण इसी तरह से कहा है । (१२३)

जम्बूद्वीपं प्रोक्तारूपं यया गत्यैकविंशतिम् ।
वारान् प्रदक्षिणीकुर्यात्सुरश्चप्पुटिकात्रयात् ॥१२४॥

षण्मासान् यावदुत्कर्षात् तया गत्या प्रसर्पति ।
कानि चित्स विमानानि, व्यत्ति व्रजति वा नवा ॥१२५॥

पहले जिसका वर्णन किया है उस जम्बू द्वीप के कई देव तीन चुटकी मात्र के समय में ही जिस गति द्वारा इक्कीस बार प्रदक्षिणा दे सकते हैं, उसी उत्कृष्ट गति से छः महीने तक गमन करने पर कई विमानों का पार प्राप्त कर सकते, और कई तो पार भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं । (१२६)

अथापर प्रकारेण, विमान मानमुच्यते ।
सौधर्मादिषु नाकेषु, यथोक्तं पूर्व सूरिभिः ॥१२६॥

पूर्वाचार्यों ने जिस तरह से सौधर्मादि देवलोक में विमानों का प्रमाण अन्य रूप में कहा है वह अब कहते हैं । (१२६)

कर्क संक्रान्तिधस्त्रे सदुदयास्तानतरं रवे ।
योजनानां सहस्राणि, चतुर्नवतिरीरितम् ॥१२७॥

षड् विंशाश्च पन्चशताः एकस्य योजनस्य च ।
षष्टिभागा द्विचत्वारिंशदस्मिंस्त्रि गुणा कृते ॥१२८॥

लक्षद्वयं योजनानां त्र्यशीतिश्च सहस्रकाः ।
साशीतयः शताः पन्च, षष्टयंशाः षट् सुरक्रमः ॥१२९॥

कर्क संक्रान्ति के दिन सूर्य का उदय और अस्त का अंतर-परिक्रमा चौरानवे हजार पांच सौ छब्बीस योजन और बयालीस में साठ अंश ९४५२६-४२/६० योजन होता है और उसे तीन द्वारा गुणा करने से दो लाख तिरासी हजार पांच सौ अस्सी और साठ छः अंश (२८३५८०-६/६०) योजन होता है । (१२७-१२९)

सूर्योदयास्तान्तरेऽथ, प्रागुक्ते पन्चभिर्हते ।
पूर्वोदितात्क्रमात्प्रौढः, क्रमो दिव्यो भवेत्परः ॥१३०॥

स चायं - चतुर्लक्षी योजनानां, द्वि सप्तितिः सहस्र काः ।
षट्शती च त्रयस्त्रिंशा, षट्यंशास्त्रिंशदेव च ॥१३१॥

पूर्व कहे सूर्य उदय अस्त के अन्तर की संख्या को पांच से गुणा करने पर चार लाख बहत्तर हजार, छः सौ तैंतीस योजन साठ में तीस अंश ४७२६३३- ३०/६० योजन होता है और जो दूसरी बड़ी दिव्यगति है । वह दिव्य कदम पूर्व में कहे है उससे अधिक बढे (प्रौढ़) होते हैं । (१३०-१३१)

उदयास्तान्तरे भानोः, सप्तभिर्गुणिते भवेत् ।
दिव्य : क्रम स्तृतीयोऽयं पौढ : पूर्वोदितद्वयात् ॥१३२॥

षट् लक्षाण्येक षष्टिश्च, सहस्राणि शतानि षट् ।
षडशीतिर्योजनानां, चतुः पन्चाशदंशकाः ॥१३३॥

पूर्व में कहे अनुसार सूर्य के उदय अस्त के आन्तर को सात से गुणा करने से छः लाख इकसठ हजार, छः सौ छियासी योजन और साठ में चौवन अंश

(६६१६८६- ५४/६०) योजन होता है यह माप एक कदम होता है, पूर्वोक्त दोनों प्रकार से भी बड़ा श्रेष्ठ कदम होता है । (१३२-१३३)

अर्कोदयास्तान्तरेऽथ, नवभिर्गुणिते सति ।
एष दिव्यः क्रमस्तुर्यः स्यान्महान् प्राक्तनत्रयात् ॥१३४॥

अर्ध्या र्द्धान्यष्ट लक्षाणि, योजनानां शतानि च ।
सप्तैव चत्वारिंशानि, कलाश्चाष्टा दशोपरि ॥१३५॥

पूर्व कहे अनुसार सूर्य के उदय अस्त के अन्तर को नौ से गुणा करने से आठ लाख पचास हजार सात सौ चालीस योजन और साठ में अठारह अंश (८, ५०७४०- १८/६०) योजन होता है । यह दिव्य कदम पूर्वोक्त तीन कदम से भी बढ़कर होते हैं । (१३४-१३५)

चण्डा चपला जवना; वेगा चेति यथोत्तरम् ।
चतस्रो दिव्यगतयः शीघ्र शीघ्रतराः स्मृताः ॥१३६॥

इस तरह से देव की चंडा-चपला, जवना और वेगा ये चार गतियां क्रमशः वेग वाली, शीघ्र शीघ्रतर कही है । (१३६)

केचिद्वेगाभिधानां तु, तुरीयां मन्वते गतिम् ।
नाम्ना जवनतरिकामभिन्नां च स्वरूपतः ॥१३७॥

कई आचार्य चौथी वेगागति को नाम से जवन तारिका मानते हैं परन्तु स्वरूप में कुछ भी अन्तर नहीं है । (१३७)

कस्याप्यथ विमानस्य, पारं प्राप्तुमुपस्थिताः ।
शास्त्रस्येव प्राप्तरूपाश्चत्वारो युगपत्सुराः ॥१३८॥

एकस्तस्य विमानस्य, मिनोति तत्र विस्तृतिम् ।
आद्य क्रमेणाद्यगत्या, षण्मासान् यावद श्रमम् ॥१३९॥

द्वितीयः पुनरायामं तस्य मातुमुपस्थितः ।
क्रमैर्द्वितीयजातीयैर्गत्याऽपि चपलाख्यया ॥१४०॥

तृतीयो मध्यपरिधि, मिमीते मतिमान् सुराः ।
क्रमैस्तृतीयजातीयैर्गच्छन् गत्या तृतीयया ॥१४१॥

तुर्यस्तु बाह्य परिधिं मिमीषुरन्तिमैः क्रमैः ।
विमानमभितो वंभ्रमीति गत्या तुरीयया ॥१४२॥

मिन्वन्त एवं षण्मासान् येषां पारं न ते गताः ।
सौधर्मादिषु सन्त्येवं विधाः केचिद्विमानकाः ॥१४३॥

मानो कि शास्त्रों के स्वरूप को पार प्राप्त किया हो, ऐसे कोई चार देवता एक ही साथ में किसी एक विमान को पार करने के लिए उपस्थित हुए हो उसमें से एक देव चंडा गति से प्रथम क्रम से विमान के विस्तार को श्रमित बने बिना छः महीने तक मापता है । दूसरा देव चपला नाम की दूसरी गति से दूसरे क्रम से उस विमान की लम्बाई मापता है । दूसरा देव चपला नाम की दूसरी गति से दूसरे क्रम से उस विमान की लम्बाई मापता है । तीसरा बुद्धिमान देव तीसरी गति से तीसरे क्रम से विमान की मध्य परिधि को (अन्दर की लम्बाई-चौड़ाई) को मापता है और चौथा देव चौथी गति से चौथे-चौथे क्रम से विमान की बाह्य परिधि को मापने की इच्छा वाला विमान के चारों तरफ भ्रमण करता है यानि प्रदक्षिणा देता है । इस तरह छः महीने तक मापते वे विमान का पार नहीं प्राप्त करता है । ऐसे कई विमान सौधर्म आदि देवलोक में होते है । (१३८-१४३)

अथ प्रकारान्तरेण, परिमाणं निरूप्यते ।
सौधर्मादि विमानानामनुत्तराश्रयावधि ॥१४४॥

अब सौधर्म देवलोक से लेकर अनुत्तर देवलोक तक के विमानों का माप दूसरे रूप में कहा जाता है । (१४४)

क्रमैः प्रथम जातीयैराद्यस्वर्गचतुष्टये ।
विष्कम्भ चण्डया गत्याऽऽयामं चपलया पुनः ॥१४५॥

जवनयाऽन्तः परिधिं, बाह्यं गत्या च वेगया ।
मिनुयान्निर्जर कश्चिद्विमानमतिकौतुकी ॥१४६॥

प्रथम चार देवलोक के अन्दर कोई अति कौतुकी देव विमान को प्रथम तरह के कदम से मापता है और इस तरह से चंडा गति से चौड़ाई, चपला गति से लम्बाई जवना गति से अन्दर की परिधि और वेगागति से बाह्य परिधि को मापता है । (चार गति में प्रथम तरह का ही कदम है ।) (१४५-१४६)

अच्युतान्तेषु चाष्टासु व्यासादी न्मिनुया त्क्रमात् ।
क्रमैद्वितीय जातीयैरादयादि गतिभिर्युतैः ॥१४७॥

अच्युत देवलोक तक के आठ देवलोक में दूसरी तरह के कदम से क्रमशः व्यास आदि को पूर्व समान मापता है । व्यासादि चार प्रकार में गति क्रमशः चार है, परन्तु कदम दूसरे तरह का है । (१४७)

ग्रैवेयकेषु नवसु, विष्कम्भादीन्मिनोति सः ।
क्रमैस्तृतीय जातीयै श्चतुगर्ति युतैः क्रमात् ॥१४८॥

नौ ग्रैव्येयक के अन्दर तीसरी जाति के कदम से चार गति द्वारा चौड़ाई आदि को मापता है । व्यास, लम्बाई, अंतर परिधि, बाह्य परिधि में क्रमशः चंडादि गति है परन्तु कदम तीसरी जात का है । (१४८)

विजयादि विमानेषु, चतुर्ष्वापिमिनोत्यसौ ।
विष्कम्भादि क्रमैस्तु यैश्चतुर्गति समन्वितैः ॥१४९॥

विजयादि चार विमान में चौथी जाति के कदम से चौड़ाई आदि का माप है वह चतुर्थ गति है । (१४९)

विमानमेकमप्येष, मासैः षड्भिरपि स्फुटम् ।
पूर्ण न गांहते संन्ति विमानानी दृशान्यपि ॥१५०॥

इस तरह के कदम से छः महीने तक भ्रमण करने पर भी एक विमान का अवगाहन नहीं कर सकता है, ऐसे भी विमान है । (१५०)

जीवाभिगम सूत्रे तु भेदांश्चण्डादिकान् गतेः ।
व्यासादि चाविवक्षित्वा, विमान मानमीरितम् ॥१५१॥

श्री जीवाभिगम सूत्र में तो गति चंडा आदि भेदों की और व्यासादि की विवक्षा बिना ही विमान का माप कहा गया है । (१५१)

तणाहि- स्वस्तिकं१ स्वस्तिकावर्तं२ स्वस्तिक प्रभमित्यपि३ ।
तुर्यं स्वस्तिक कान्ताख्यं४, परं स्वस्तिक वर्णकम्५ ॥१५२॥

षष्ठं स्वस्तिकलेश्यारव्यं६, सप्तम स्वस्तिक ध्वजम्७ ।
अष्टमं स्वस्तिकसितं ८, स्वस्तिक कूटमित्यथ ॥१५३॥

ततः स्वस्तिकशि ष्टाख्यं१० विमानं दसमं भवेत् ।
एकादशं स्वस्तिकोत्तरावतंसकमीरितं११ ॥१५४॥

षड् भिर्मासैः क्रमैरधैर्मिन्वानो नावगाहते ।
एषां मध्ये विमानानां, किंचित्किंचित्तु गाहते ॥१५५॥

इस प्रकार से १स्वस्तिक, २- स्वस्तिकावर्त्त, ३- स्वस्तिक प्रभ, ४- स्वस्तिक कान्त, ५- स्वस्तिक वर्णक, ६- स्वस्तिक लेश्या, ७- स्वस्तिक ध्वज, ८- स्वस्तिक सित, ९- स्वस्तिक कूट, १०- स्वस्तिक शिष्ट, ११- स्वस्तिकोंत्तरवंतसक। इन ग्यारह जात के विमान को प्रथम कदम से मापने वाला देव कई विमानों को छह महीने में अवगाही कर सकता है तो कईयों को अवगाही नहीं हो सकता है । (१५२-१५५)

अर्चि२ स्तथा ऽर्चि रावर्त२ मर्चिः प्रभ३ मथापरम्।
अर्चिः कान्त४ मर्चिर्वर्ण५ मर्चिः लेश्यां६ तथा परम् ॥१५६॥

अर्चिर्ध्वज७ मर्चिः सित, ८मर्चिः कूटं९ ततः परम्।
अर्चिः शिष्ट१० मर्चि रूत्तरावतंसक मन्तिमम्११ ॥१५७॥

कि चिद्विमानेष्वेतेषु, भिन्वन्नैवावगाहते ।
क्रमैर्द्वितीयैः षण्मास्या, किंचित्पुनर्विगाहते ॥१५८॥

१- अर्चि, २- अर्चिरावर्त्त, ३- अर्चिःप्रभ, ४- अर्चिकान्त, ५- अर्चिवर्ण, ६- अर्चिलेश्या, ७- अर्चिर्ध्वज, ८-अर्चिः सित, ९- अर्चिः कूट, १०- अर्चिः शिष्ट और ११- अर्चिरूत्तरावतंसक, ये ग्यारह विमानों को दूसरे प्रकार के कदम से मापते कोई देव, कोई विमान छः महीने में अवगाही कर सकते हैं, तो कोई अवगाही नहीं कर सकता है । (१५६-१५८)

कामं कामवर्त्तमेव, कामप्रभमथापरम् ।
कामकान्तं कामवर्णं, कामलेश्यः ततः परम् ॥१५९॥

कामध्वजं कामसितं, कामकूटं भवेत्परम् ।
कामशिष्टं तथा कामोत्तरावतंसकाभिधम् ॥१६०॥

क्किंचिदेषां विमानाना, मध्येमिन्वन् विगाहते ।
क्रमैस्तृतीयैः षण्मास्या, किंचित्तुनावगाहते ॥१६१॥

१- काम, २- कामावर्त्त, ३- काम प्रभ, ४- काम कान्त, ५- कामवर्ण, ६- कामलेश्या, ७- कामध्वज, ८- कामसित, ९- कामकूट १०- कामशिष्ट, ११- कामोत्तरावतंसक, इन ग्यारह विमानों को तीसरे कदम से माप करता कोई देव छः महीने में अवगाही कर सकता है तो कोई उसे अवगाही नहीं कर सकता है। (१५९-१६१)

विजयं वैजयन्तं च, जयन्तमपाजितम् ।
विमानं किंचिदप्येषु, मिन्वन्नैवावगाहते ॥१६२॥

षड्भिर्मासैः क्रमैस्तुर्यैः, सचातुर्यः स निर्जरः ।
मानमेवं विमानानामुक्तं वैमानिकार्चितैः ॥१६३॥ युग्मं ।

विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित इन विमानों को चौथे प्रकार के कदम से माप करते चतुर देव छः महीने में कोई अवगाही नहीं कर सकता है। इस तरह वैमानिक देवों से पूजित श्री जिनेश्वर भगवन्त ने कहा है । (१६२-१६३)

तथा च तद्ग्रंथ : '' अत्थि णं भंते ! विमाणइं सोत्थियाइं जाव सोत्थोत्तर वडिं सयाइं ? हंता अत्थि, ते णं भंते ! विमाणा केमहालया प० ? गोयम ! जावइयं च णं सूरिए उदेइ जावइअं चणं सूरिए अत्थमेइ एवइयाइं तिन्नि ओवासंतराइं अत्थेगइ यस्स देवस्स एगे विक्कमे सिया, से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देव गतीए विई वयमाणे२ जाव एगाहं वा दुयाहं वा उक्कोसेणं छम्मासे व्रीई वएज्जा, अत्थेगइयं विमाणं विईवइज्जा, अत्थे गइयं विमाणं नो विईवइज्जा'' इत्यादि ।

इस सम्बन्धी आगम में कहा है कि - हे भन्ते ! स्वस्तिक से स्वस्तिकोत्त- रावतंसक नाम तक के विमान है ? हा । है। भंते ! विमान कितने बड़े है ? हे गौतम ! जितने में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का जो अन्तर होता है, उससे तीन गुणा करने से देव का एक पराक्रम (एक बड़ा कदम) होता है । वह देव उस प्रकार की उत्कृष्ट अति तेज और दिव्य गति से चलता है एक दिन दो दिन यावत् उत्कृष्ट से

छः महीने तक चलता है तब इतने काल में कोई विमान का पार प्राप्त कर सकता है, तो कोई विमान का पार नहीं कर सकता है ।' इत्यादि -

कस्मिन्नमी देवलोके, विमानाः स्वस्तिकादयः ।
विजयादीन् विना सम्यगेतन्न ज्ञायतेऽधुना ॥१६४॥

विजयादि विमानों को छोडकर कौन से देवलोक में यह स्वस्तिकादि विमान है वह स्पष्ट रूप में दिखता नहीं है । (१६४)

ननु चण्डादि गतिभिः, षण्मास्या तादृशैः क्रमैः ।
न केषांचिद्विमानानां, पारं यान्ति सुरा यदि ॥१६५॥

तद् द्रुतं जिन जन्मादि कल्याणकोत्सवार्थिनः ।
तस्मिन्नेव क्षणे तत्तत्स्थानमायान्त्यमी कथम् ॥१६६॥ *युग्मं. ॥*

यहां प्रश्न करते हैं कि चंडादि गति द्वारा से, उसी प्रकार के कदम द्वारा छह महीने में किसी विमान को देवता पार नहीं हो सकता है, तो फिर श्री जिनेश्वर भगवान के जन्मादि कल्याणक महोत्सव के अर्थी देवता उसी ही समय में उस स्थान में किस तरह आ सकता है ? (१६५-१६६)

अत्रोच्यते – गतिक्रमा विमावुक्तौ, पल्योपमादि पल्यवत् ।
विमानमान ज्ञानाय, कल्पितौ न तु वास्तवौ ॥१६७॥

वास्तवी तु गतिर्दिव्या, दिव्यः क्रमश्च वास्तवः ।
अत्यन्तसत्वरतरौ, तथा भवस्वभावतः ॥१६८॥

इसका उत्तर देते हैं कि - गति और कदम जो कहा है, वह पल्योपम के प्याले की कल्पना के समान विमान का प्रमाण जानने के लिए कल्पना से कहा है परन्तु वह वास्तविक नहीं है । (१६७) इस प्रकार के भव-जन्म स्वभाव से देवों का वास्तविक दिव्यगति और दिव्य कदम अत्यन्त वेग वाले होते हैं । (१६८)

ततश्च जिन जन्मादि प्रमोद प्रचयोत्सुकाः ।
सुरा अचिन्त्य सामार्थ्यादत्यन्तं शीघ्रगामिनः ॥१६९॥

अच्युतादि ककल्पेभ्यो ऽभ्युपेत्य प्रौढ भक्तयः ।
स्वं स्वं कृतार्थयत्यर्हत्कल्याणकोत्सवादिभिः ॥१७०॥

और इससे ही जिनेश्वर भगवान के जन्मादि कल्याणक के आनंद समूह से उत्सुक बने देवता अचिंत्य सामर्थ्य से अत्यंत शीघ्रगामी होने से अत्यंत भक्ति से अच्युता आदि देवलोक में से आकर श्री अरिहंत भगवान के कल्याणक उत्सव मनाकर अपनी आत्मा को कृतार्थ करते हैं । (१६६-१७०)

इदृशानि विमानानि, महान्त्याद्यद्वितीययोः ।
स्वर्गयोः पन्चवर्णानि, विराजन्ते प्रभाभरैः ॥१७१॥

प्रथम दो देवलोक में पांचवर्ण के ऐसे बड़े विमान कान्ति के समूह से जो शोभायमान होते हैं । (१७१)

जात्यान्जनमयानीव, स्युर्मेचकानि कानिचित् ।
इन्द्रनीलरत्नमयानीव नीलानि कानिचित् ॥१७२॥
पद्मरागमयानीव, रक्तवर्णानि कान्यपि ।
स्वर्णपीतरत्नमयानीव पीतानि कानिचित् ॥१७३॥
कानि चिच्छुक्लवर्णानि, क्लृप्तानि स्फटिकैरिव।
सर्वाणि नित्योद्योतानि, भासुराणि प्रभाभरैः ॥१७४॥

कोइ विमान जात्य अंजन रत्नमय होते ऐसा कृष्णवर्णीय होता है, कई इन्द्र नील रत्नमय हो ऐसे नीलवर्णीय है, कई पद्म राग रत्नमय है । इस तरह रक्तवर्ण वाले है, कई सुवर्ण पीले रत्नमय हो ऐसे वर्ण के है और कई मानो स्फटिक के बने हो इस प्रकार शुक्ल वर्ण वाले हैं । इस तरह ये सब विमान नित्य उद्योत वाले और कान्ति से देदीप्यमान है । (१७२-१७४)

यथा निरभ्रनभसि, मध्याह्नेऽनावृत स्थले ।
इह प्रकाशः स्यात्तेषु, ततः स्फुटतरः सदा ॥१७५॥

जैसे बादल बिना के आकाश में मध्याह्न समय में खुले स्थान में अति प्रकाश होता है उससे अधिक स्पष्ट प्रकाश उस देव विमान में होता है । (१७५)

तमःकणेन न कदाप्येषु स्थातुं प्रभूयते ।
संशयेनेव चेतस्सु, केवलज्ञान शालिनाम् ॥१७६॥

केवली ज्ञानी के चित्त में जैसे संशय नहीं टिक सकता है वैसे इन स्थानों में अंधकार भी कण भर नहीं रह सकता है । (१७६)

अहोरात्र व्यवस्थापि, न भवेत्तेषु कर्हिचित् ।
दुरवस्थेव गेहेषु, जाग्रत्पुण्यौघशालिनाम् ॥१७७॥

प्रगर पुण्य प्रभावशाली-पुण्यात्माओं के घर में जैसे दुःखी अवस्था नहीं होती है वैसे इन विमानों में अहोरात्रि की व्यवस्था भी नहीं होती है । (१७७)

व्यवहारस्त्वहोरात्रादिकोऽत्रत्यव्यपेक्षया ।
ततएव च तत्रत्या गतं कालं विदन्ति न ॥१७८॥

अहो रात्रि की व्यवस्था यहां मृत्यु लोक की अपेक्षा से है, शेष वहां यह व्यवस्था न होने के कारण से उस विमान में रहे देव आदि व्यतीत हुए काल को जानते भी नहीं है । (१७८)

चन्दनागुरुचन्द्रैणामदकश्मीरजन्मनाम् ।
यूथिकाचम्पकादीनां, पुष्पाणां च समन्ततः ॥१७९॥
यथा विकीर्यमाणानां, सौरभ्यमिह जृम्भते ।
घ्राणा घ्राणकरं पीयमानमुत्फुल्लनासिकैः ॥१८०॥
ततोऽपीष्ट तरस्तेषां, विमानानां स्वभावतः ।
स्वाभाविकः परिमलः पुष्णाति परमां मुदम् ॥१८१॥ *त्रिभिर्विशेषकं॥*

फैलती चंदन, अगरू, कपूर, कस्तुरी, केशर की सुरभि तथा बिखरे हुए जोई चंपा आदि पुष्पों का परिमल जैसे चारों तरफ फैल जाता है और फूली हुई नासिका वाले लोकद्वारा नाकको सराबोर करने वाले इस सुरभि का पान किया जाता है इससे भी अधिक इष्टतर इन विमानों का स्वाभाविक परिमल-सुगंध होता है जो कि परमानंद को पुष्ट करने वाला है (१७९-१८१)

रूतबूर नवनीत शिरीष कुसुमादितः ।
तेषामति मृदुः स्पर्शः स्वाभाविकः सनातनः ॥१८२॥

रूई, बूर नाम की वनस्पति, मक्खन और शिरीष पुष्प के भी अति कोमल स्पर्श यह इन विमानों का स्वभाविक और सनातन होता है । (१८२)

चतुर्दिशं विमानेभ्यस्तेभ्यः पन्चशतोत्तराः ।
च त्वारो वनखण्डाः स्युर्नाना वृक्षालिमण्डिताः ॥१८३॥

उन विमानों के चारों दिशा में विविध प्रकार की वृक्ष श्रेणि से शोभायमान ५०४ वन खंड होते हैं । (१८३)

प्राच्यामशोक विपिनं, याम्यां सप्तच्छदाभिधम् ।
प्रतीच्यां चम्पक वनमुद गाम्र वणं तथा ॥१८४॥

उसमें पूर्वदिशा में अशोक वन दक्षिण दिशा में सप्तछद वन, पश्चिम दिशा में चंपकवन और उत्तर दिशा में आम्रवन होता है । (१८४)

प्रत्येकं वन खण्डास्ते, प्राकरेण विभूषिताः ।
पन्च वर्ण मणि तृणवरेण्य समभूमयः ॥१८५॥

वह प्रत्येक वन खण्ड परकोटे से परिमंडित होता है और पंचवर्णी मणि एवं श्रेष्ठ घास से युक्त समतल भूमि वाला होता है । (१८५)

सरस्यो वापिकाश्चैषु पुष्करिण्यश्च दीर्घिकाः ।
रूप्य कूलास्तपनीयतलाः सौवर्ण वालुकाः ॥१८६॥

बड़े-बड़े सरोवर, वावडियां जिसमें नीचे उतरने के लिए सौपान होते हैं, कमल सरोवर, बडे कुए उस वन खंड में होते है उसके किनारा और कांठा चान्दी का और फर्श स्वर्णमय तथा रेती सुवर्ण की होती है । (१८६)

जात्यासवधृत क्षीर क्षोद स्वादूदकाश्चिताः ।
क्रीडदप्सरसां वक्त्रैः पुनरूक्ती कृताम्बुजाः ॥१८७॥
चतुर्दिशं त्रिसोपान प्रतिरूप कराजिताः ।
विभान्ति तोरणैश्छत्रातिच्छत्रैश्च ध्वजैरपि ॥१८८॥ (त्रिभि)

उन वावडी आदि में जातिवान आसव, विशेष रस, धी, खीर और सक्कर समान स्वादिष्ट मधुर पानी है और क्रीड़ा करती अप्सराओं के मुंह से दो कमल वाली हो इस तरह लगती है (१८७) इन वावडियों के चारों दिशा में तीन-तीन सोपान की पंक्ति से तथा तोरण छत्र बड़े छत्र और ध्वजाओं से भी शोभायमान हो रही है । (१८२)

तासु तासु पुष्करिण्या दिषु भान्ति पदे पदे ।
क्रीडार्हा मण्डपाः शैला, विविधान्दोलकाअपि ॥१८६॥

उस-उस पुष्करिणी आदि में स्थान-स्थान पर क्रीड़ा योग्य मंडप, पर्वत और विविध प्रकार के झरने भी शोभते हैं । (१८६)

वैमानिका यत्र देवा, देव्यश्च सुखमासते ।
प्रायः सदा भवधारणीयाङ्गेनारमन्ति च ॥१९०॥

जहां वैमानिक देव और देवियां सुखपूर्वक रहते हैं वहां वे प्रायः भवधारणीय शरीर द्वारा हमेशा रमन करते हैं । आनंद का अनुभव करते हैं । (१९०)

तत्र क्रीडामण्डपादौ, हंसासनादि कान्यथ ।
आसनानि भान्ति तेषां भेदा द्वादश ते त्वमी ॥१९१॥

हंसे कोंचे गरुडे ओणय पणए य दीह भद्दे य ।
पक्खी मयरे पउमे सीह दि सासोत्थि बार समे ॥१९२॥

वहां क्रीडा मंडपादि में हंसासन आदि बारह प्रकार के आसन शोभायमान है । वह भेद इस प्रकार से - १- हंसानन, २- कौंच्चासन, ३- गरुडासन, ४- अवनतास न (नमा हुआ आसन), ५- प्रणतासन, ६- दीर्घासन (लम्बासन), ७- भद्रासन, ८- पक्षी आसन, ९- मकरासन, १०- पद्मासन (कमलासन), ११- सिंहासन, १२- दिशास्वस्तिकासन होते हैं । (१९१-१९२)

वनखण्डेषु तेष्वेवं राजन्ते जाति मण्डपाः ।
यूथिकामल्लिका नाग वल्ली द्राक्षादि मण्डपाः ॥१९३॥

उस वन खण्डों के अन्दर जुई चमेली, नागर वेल, दाक्षा तथा जावित्री के श्रेष्ठ मंडप शोभते हैं । (१९३)

आस्थान प्रेक्षण स्नानालङ्कारादि गृहाण्यपि ।
शोभन्ते मोहन गृहाः सुरतार्थं सुधाभुजाम् ॥१९४॥

सभा गृह प्रेक्षक गृह, स्नान गृह, अलंकार गृह तथा सुधा भोजन देवताओं के भोग के लिए मोहन गृह भी शोभायमान है । (१९४)

शिलापट्ट विमान्त्येषु, मण्डपेषु गृहेषु च ।
हंस क्रौंच्वादि संस्थाना, नानारत्नविनिर्मिता: ॥१९५॥

तेषु वैमानिका देवा, देव्यश्च सुखमासते ।
तिष्ठंति शेरतेस्वैरं, विलसन्ति हसन्ति च ॥१९६॥

सुकृतानां प्राक्कृतानां भूयसां भुञ्जते फलम् ।
शमयन्त इव प्राच्यतप:संयमजं श्रयम् ॥१९७॥

इन मंडप और गृहों में विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित्त हंस कौंचादि के आकार वाले शिलापट्ट शोभते हैं । उस-उस स्थानों में वैमानिक देव देवियां सुखपूर्वक बैठते हैं, खड़े रहते हैं, इच्छापूर्वक आराम करते हैं, विलास करते हैं, हंसते हैं और इस तरह मानो पूर्व जन्म के तप-संयम के थकावट को उतारते हो, अपना पूर्वकृत सुकृतों का फल भोगते हैं । (१९५-१९७)

मध्येवनमथैकैक:, प्रासादस्तत्रतिष्ठति ।
वनाधिकारी प्रत्येकं, सुरो वनसमाभिध: ॥१९८॥

प्रत्येक वन के अन्दर एक-एक प्रासाद है और प्रत्येक प्रासाद में वनसम नामक वनाधिकारी देव रहता है । (१९८)

एवमेषां विमानानां, बहिर्भागो निरूपित: ।
अन्तर्भागो विमानाना यथाऽऽम्नायमथोच्यते ॥१९९॥

इस तरह से इन विमानों का बाह्य विभाग का वर्णन किया गया है । अब विभागों में अन्तर विभाग का परम्परा अनुसार वर्णन करता हूं । (१९९)

मध्यदेशे विमानानामुपकार्या विराजते ।
एषा च राजप्रासादवतंसकस्य पीठिका ॥२००॥

विमानों के मध्य विभाग में उपकार्या पीठिका विशेष शोभती है और यह राज प्रासादवतंसक नाम की पीठिका कहलाती है । (२००)

उक्तं च - ''गृह स्थानां स्मृता राज्ञा मुपकार्योप कारिके'' ति ।

उपकार्या - गृहस्थ राजाओं को उपकारक है, कहा है कि ''गृहस्थ राजाओं का उपकारिका हो वह उपकार्या कहलाता है ।'' इसके अनुसार यहां भी समझना।

परितस्तां पद्म वरवेदिका स्याद्वनान्विता ।
गवाक्षजालाकृतिना, रत्नजालेन राजिता ॥२०१॥

उस पीठिका के चारों तरफ वन से युक्त पद्मवर वेदिका है जो कि गवाक्ष जाल की आकृति समान रत्नजालों से शोभायमान है । (२०१)

तथासौ किङ्किणी जालै र्मणि युक्तादि जाल कैः।
घण्टा जालैः स्वर्ण जालैः, परिक्षिप्ता ऽब्जालकैः ॥२०२॥

तथा यह मणीमय पीठिका चारों तरफ से घुंघरी मणि मोती की घंटा, सोना तथा कमल की जालियों से लिप्त हुई है । (२०२)

चतुर्दिशं त्रिसोपान प्रति रूपक मञ्जुला ।
ध्वजतोरण सच्छत्रातिच्छत्राढयानि तान्यपि ॥२०३॥

यह पीठिका चारों दिशा में तीन-तीन सोपान की पंक्ति से शोभते है और उन प्रत्येक सोपान की श्रेणि ध्वज, तोरण छत्र के ऊपर छत्र आदि से युक्त है । (२०३)

मध्ये स्यादुपकार्याया, विमान स्वामिनो महान् ।
योजनानां शतान् पन्चोत्तुग प्रासाद शेखरः ॥२०४॥

उपकार्या इस वेदिका के मध्य विभाग में विमान के स्वामी देव पांच सौ योजन ऊंचे श्रेष्ठ प्रासाद शिखर है । (२०४)

मूल प्रासादात्समन्तात्, स्युः प्रासादावतंसकाः ।
चत्वारो द्वे शते सार्द्धे, योजनानां समुच्छ्रिताः ॥२०५॥

मूल प्रसाद के चारों तरफ चार प्रासादावतंसक है जोकि अढाई सौ योजन ऊंचा है । (२०५)

तेषां चतुर्णां प्रत्येकं, चत्वारो ये चतुर्दिशम् ।
प्रासादास्ते योजनानां, शतं सपादमुच्छ्रिताः ॥२०६॥

उन चार प्रासादवतंसक के चारों दिशा में चार प्रासाद है जो कि सवा सौ- एक सौ पच्चीस योजन ऊंचे हैं । (२०६)

प्रत्येकमेषां चत्वारः प्रासादा ये चतुर्दिशम् ।
द्वाषष्टि ते योजनानामद्वयर्द्धो स्यु समुर्दिशम् ॥२०७॥

और उन प्रत्येक प्रासादों की भी चारों दिशा में चार-चार प्रसाद है वे साढ़े बासठ ६२ १/२ योजन ऊंचे होते हैं । (२०७)

एषामपि परीवार प्रासादस्ते चतुर्दिशम् ।
योजनानां स्युः सपादामेकत्रिंशतमुच्छ्रिताः ॥२०८॥

इन प्रत्येक के भी परिवार प्रासाद के चारों तरफ होते हैं और वे सवा इक्तीस (३१ १/४) योजन ऊंचे होते हैं । (२०८)

तेषामपि परिवार प्रासादाः स्युः समुच्छ्रिताः ।
योजनानि पन्चदश, सार्द्ध क्रोश द्वयं तथा ॥२०९॥

उसके भी चार-चार परिवार वाले प्रासाद है जो कि पंद्रह योजन अढाई कोस ऊंचे होते हैं । (२०९)

सर्वेऽप्यमी स्युः प्रासाद, निजोच्चत्वार्द्ध विस्तृताः ।
एवं च पन्च प्रासाद परिपाट्यः प्रकीर्तिताः ॥२१०॥

ये सभी प्रासाद अपनी ऊंचाई से आधी चौड़ाई वाले हैं इस तरह से प्रासाद की पांच श्रेणियां होने का कहा है । (२१०)

एकैकस्यां च दिश्येकचत्वारिंश शतत्रयम् ।
त्रयोदश शताः पन्चषष्टयाढयाः सर्व संख्य याः ॥२११॥

एक-एक दिशा में तीन सौ इकतालीस (३४१) प्रासाद है और कुल मिलाकर तेरह सौ पैंसठ संख्या होती है । (२११)

राजप्रश्नीय टीका या, अभिप्रायोऽयमीरितः ।
तत्सूत्रे तु तिस्त्र एव, परीपाटयः प्ररूपिताः ॥२१२॥

यह अभिप्राय श्री राज प्रश्नीय सूत्र की टीका का कहा है । इसके सूत्र में तो प्रासाद की तीन श्रेणि ही कही है । (२१२)

पन्चाशीतिरमी सूत्रमते, तु सर्व संख्यया ।
सूत्रवृत्योर्विसंवादे, निदानं वेद तत्ववित् ॥२१३॥

श्री राज प्रश्नीय सूत्र के मतानुसार प्रासादों की सर्व संख्या पचासी (८५) होती है । इस तरह सूत्र और टीका का विसंवाद का कारण है, अतः तत्व तो केवल ज्ञानी भगवन्त ही जान सकते हैं । (२१३)

पन्चमाङ्गे द्वितीयस्य, शतस्योद्देशकेऽष्टमे ।
वृत्तौ चतस्त्रः प्रासाद परिपाटयः प्ररूपिता ॥२१४॥

एवं चात्र मत त्रयं ।

पंचमाग श्री भगवती सूत्र के दूसरे शतक के आठवें उद्देश की टीका में प्रासाद की चार श्रेणि कही है । इस तरह से इस विषय में तीन मत होते हैं ।

विचार सप्ततौ तु महेन्द्र सूरिभिरेव मुक्तं -

''ओआरि अलयणंमी, पहुणो पण सीइ हुंति पासाय ।
तिसय इगचत्त कत्थइ कत्थइ पणसट्टी तेरसयं ॥२१५॥
पण सीईं इगवीसा पणसी पुण एगचत्त तिसईए ।
तेर समय पणसट्ठा तिसई इगचत्त पइककुहं ॥२१६॥''

विचार सप्ततिका में आचार्य श्री महेन्द्र सूरि जी महाराज ने इस तरह कहा है 'उपकारिकालयन (पीठिका) ऊपर स्वामी देव' के ८५ प्रासद है किसी ग्रन्थ में ३४१ और किसी ग्रंथ में १३६५ प्रासाद कहे हैं । (२१५) ८५ की श्रेणि प्रत्येक दिशा में २१ प्रासाद है । ३४१ की श्रेणि में प्रत्येक दिशा में ८५ प्रासाद हैं । और १३६५ की श्रेणि में प्रत्येक दिशा में ३४१ प्रासाद है । (२१६)

''विमानेषु प्रथमं प्राकारसतस्य सर्वमध्ये उपरिकालयनं पीठि के त्यर्थः तस्यां सर्व मध्ये प्रभोः पन्चाशीतिः प्रासादाः, कुत्रापि विमानस्यो परि कालयने एक चत्वारिंशदधिकानि त्रीणि शतानि प्रासादाः, कुत्रापि पन्चषष्टयधिकानि त्रयोदश शतानि प्रासादाः एवं भेदत्रयमवेति'' विचार सप्ततिकावचूरौ ।

विचार सप्ततिका अवचूरी में कहा है कि ''विमान में प्रथम किला होता है उसके ठीक मध्य में उपरिकालयन होता है । अर्थात् पीठिका होती है । उसके ठीक

मध्य में विमान स्वामी के पचासी (८५) प्रासाद होते हैं किसी स्थल में विमान के उपरिकालयन ऊपर तीन सौ इकतालीस प्रासाद होते हैं उसमें कहा है कि किसी स्थान पर तेरह सौ पैंसठ (१३६५) प्रसाद हैं । इस प्रकार से तीन भेद हो होते हैं ।''

एवं च - अन्य स्वर्गेष्वपि मूल प्रासादोन्नत्य पेक्षया ।
अर्द्धार्द्धमानः प्रासाद परिवारों विभाव्यताम् ॥२१७॥

इसी प्रकार अन्य देवलोक में भी मूल प्रासाद की ऊंचाई की अपेक्षा से आधी-आधी ऊंचाई वाले परिवार प्रासाद (परिवार के देवों का प्रासाद) समझना । (२१७)

अमी समग्रा प्रासादा वैडूर्यस्तम्भशोभिताः ।
उत्तुङ्गतोरणा रत्नपीठिकाबन्धबन्धुराः ॥२१८॥

विमानस्वामिसंभोग्यरत्नसिंहसनान्विताः ।
यद्वार्हं तत्परीवार सुरभद्रासनै रपि ॥२१९॥

ये सभी प्रासाद वैडूर्य रत्न के स्तंभ से शोभायमान होते हैं । वे ऊंचे तोरण और रत्न पीठिका बंध से सुन्दर होते हैं । विमान के स्वामी देवता के उपयोग करने योग्य रत्न सिंहासन से युक्त हैं । और योग्यता अनुसार परिवार देवताओं के भद्रासन से भी वह प्रासाद संपन्न होता है । (२१८-२१९)

एवं सामानिका दीनामपि संपत्ति शालिनाम् ।
रम्या भवन्ति प्रासादा स्वर्णरत्नविनिर्मिताः ॥२२०॥

इस तरह से संपत्ति शाली सामानिकादि देवों के भी स्वर्ण रत्न से बने हुए सुंदर प्रासाद होते हैं । (२२०)

पौर स्थानीय देवानामन्येषामप्यनेकशः ।
स्व स्व पुण्यानुसारेण, प्रासादाः सन्ति शोभनाः ॥२२१॥

तत एव विमानास्ते, शृङ्गारकैरलङ्कृताः ।
त्रिकैश्चतुष्कैरपि च चत्वरैश्व चतुष्पथैः ॥२२२॥

चतुर्मुखैरपि महापथैः समन्ततोऽन्विताः ।
प्राकाराट्टालकवरचरिकाद्वारतोरणैः ॥२२३॥

नगर जन के समान दूसरे भी पौरस्थानीय देवताओं के अपने-अपने पुण्य अनुसार अनेक सुन्दर प्रासाद होते हैं, इससे वे विमान चौपलों, तीन रास्तों, चार रास्तों आदि से शोभते हैं । बड़े चार मुख्य रास्तों से चारों तरफ से ये विमान युक्त है तथा किला झरोखा और द्वार तोरणो से ये विमान शोभायमान होते हैं । (२२१ से २२३)

पूर्वोक्त मूल प्रासादादथैशान्यां भवेदिह ।
सभा सुधर्मा तिसृषु दिक्षु द्वारैस्त्रिभिर्युता: ॥२२४॥

प्राच्यां याम्यामुदीच्यां च भान्ति द्वारणि तान्यपि ।
अष्टभिर्मङ्गलैरछत्रैर्विराजन्ते ध्वजादिभि: ॥२२५॥

पूर्वोक्त मूल प्रसादो से ईशान कोने में सुधर्मा सभा होती है जो तीन दिशा में तीन द्वार से युक्त होती है ये द्वार पूर्व दक्षिण और उत्तर दिशा में रहते हैं, और उन तीन द्वारों पर अष्ट मंगल, तीन छत्र और ध्वज आदि शोभायमान हैं । (२२४-२२५)

प्रतिद्वारमथैकैको, विभाति मुखमण्डप: ।
त्रिभिर्द्वारैर्युत: सोऽपि, सभावद् रम्य भूतल: ॥२२६॥

इसके प्रत्येक द्वार पर एक-एक मुख मंडप होता है और उसके भी सभा के समान तीन द्वार और रमणीय भूमिभाग होता है । (२२६)

प्रतिद्वारमथ मुखमण्डपानां पुर: स्फुरन् ।
प्रेक्षागृह मण्डप: स्यात्त्रिद्वार: सोऽपि पूर्ववत् ॥२२७॥

इस मुख मंडप के भी प्रत्येक द्वार के आगे विभाग में प्रेक्षा गृह मंडप होता है और वह भी पूर्व के समान तीन द्वार से युक्त होता है । (२२७)

प्रेक्षागृह मण्डपानां, मध्ये वज्राक्ष पाटक: ।
सिंहासनान्विता तत्र, प्रत्येकं मणिपीठिका ॥२२८॥

प्रेक्षागृह मंडप के मध्य में वज्ररत्न का अक्ष पाटक-पासा रखने का पट्टा होता है और प्रत्येक अक्षपाटक पास में सिंहासन से युक्त मणिपीठिका होती है ।

प्रतिद्वारं तथा प्रेक्षागृह मण्डपत: पुर: ।
मध्ये चैत्यस्तूपयुक्ताश्चतस्रो मणिपीठिका: ॥२२९॥

प्रत्येक द्वार तथा प्रेक्षागृह मंडप के आगे मध्य विभाग में चैत्य स्तूप से युक्त चार मणिपीठिका होती है ।

प्रतिद्वारमथैतेभ्यः, स्तूपेभ्यः स्युश्चतुर्दिशम् ।
एकैका पीठिका स्तूपाभिमुखप्रतिमान्विता ॥२३०॥

प्रत्येक द्वार में इस चैत्य स्तूप की चार दिशा में स्तूप के सन्मुख मुख वाली प्रतिमा से युक्त एक एक पीठिका होती है । (२३०)

तेषां च चैत्यस्तूपानां, पुरतो मणिपीठिका ।
प्रतिद्वारं चैत्यवृक्षस्तत्र नानाद्रुमान्वितः ॥२३१॥

उस चैत्य स्तूपों के आगे मणि पीठिका होती है और वहां प्रत्येक द्वार पर विविध प्रकार के वृक्ष से युक्त चैत्य वृक्ष होते हैं । (२३१)

चैत्य वृक्षेभ्यश्च तेभ्यः, पुरतो मणि पीठिका ।
प्रतिद्वारं भवेत्तत्र, महेन्द्रध्वज उच्छ्रितः ॥२३२॥

पन्चवर्ण ह्रस्वकेतुसहस्रालङ्कृतः स च ।
छत्रातिच्छत्र कलितस्तुङ्गो गगनमुल्लिखन् ॥२३३॥

उन चैत्य वृक्षों के आगे मणि पीठिका होती है और वहां प्रत्येक द्वार पर ऊंची महेन्द्र ध्वज होता है, वह ध्वज पंचवर्ण की छोटी-छोटी हजारों ध्वजाओं से अलंकृत है । छत्र बड़े छत्रों से युक्त है मानो गगन को चुम्बन करता हो ऐसा उत्तुंग-ऊपर उठा है । (२३२-२३३)

तस्यां सौधर्म्या सभायां, स्युर्मनोगुलिकाभिधाः ।
सहस्राण्यष्टचत्वारिंशद्रत्नमयपीठिकाः ॥२२४॥

उस सुधर्मा सभा के अन्दर मनोगुलिका नाम की अड़तालीस हजार रत्नमय पीठिकाएं होती हैं । (३४)

प्राक् प्रतीच्योः सहस्राणि तत्र षोडश षोडश ।
अष्टाष्ट च सहस्राणि, दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः ॥२३५॥

उन पीठिकाओं के पूर्व-पश्चिम दिशा में सोलह हजार और उत्तर दक्षिण दिशा में आठ-आठ हजार होते हैं । (२३५)

स्वर्ण रूप्यमयास्तासु, फलका नागदन्तकैः ।
माल्य दामान्चितैर्युक्ताः स्युर्गोमानसिका अपि ॥२३६॥

वह रत्नमय पीठिका ऊपर स्वर्ण-चान्दीमय तख्ते लगे होते हैं जो हाथी दांत के खूंटे से युक्त होती है । तथा छोटी बड़ी सुन्दर मालाओं से युक्त गोमानसिका (वस्तु विशेष) भी होता है । (२३६)

तथैव तावत्य एव, शय्या रूपास्त्विमा इह ।
फलका नागदन्ताढया, घटयो धूपस्य तेषु च ॥२३७॥

और इसी तरह से जितनी ही शय्या रूप पट्टा हो, वह भी नागदंत-हाथीदांत से युक्त होता है । और उस प्रत्येक शय्या पर धूपवाटिका होती हैं । (२३७)

तस्याः सौधर्म्याः सभायाः मध्ये च मणिपीठिका ।
उपर्यस्या माणवकश्चैत्यस्तम्भो भवेन्महान् ॥२३८॥

तुङ्ग षष्टिं योजनानि, विस्तृतश्चैक योजनम् ।
एकं योजनमुद्विद्धः शुद्ध रत्नप्रभोद्भट ॥२३९॥

उपर्यधो योजनानि द्वादश द्वादश ध्रुवम् ।
वर्जयित्वा मध्यदेशे, रैरूप्यफलकान्चितः ॥२४०॥

फलकास्ते वज्रमय नागदन्तैलङ्कृताः ।
तेषु सिक्यकविन्यस्ता, वज्र जाताः समुद्रकाः ॥२४१॥

एतेषु चार्हत्सक्थीनि, निक्षिपन्त्यसकृत्सुराः ।
प्राच्यानि च विलीयन्ते कालस्य परिपाकत् ॥२४२॥

उस सुधर्मा सभा के मध्य विभाग में मणि पीठिका है और उसके ऊपर माणवक नाम का महान चैत्य स्तंभ है, जो ६० योजन ऊंचा, एक योजन विस्तार वाला एक योजन गहरा है और शुद्ध रत्न की प्रभा से अत्यन्त सुशोभनीय है । इस माणवक चैत्य स्तंभ के ऊपर और नीचे बारह-बारह योजन छोड़कर मध्य प्रदेश में सोने व चांदी के पट्टे हैं वे पट्टे-तख्त वज्ररत्न की खूंटों से अलंकृत हैं उसके ऊपर छीके में रखे वज्रमय डब्बे हैं और डब्बे के अन्दर देवता बारम्बार श्री अरिहंत परमात्माओं

का अस्थियां (हड्डी) रखते हैं और पुरानी अस्थियां काल के परिपाक से विलीन हो जाती हैं । (२३८-२४२)

विमानस्वाभिनामेतान्यन्येषामपि नाकिनाम् ।
दैवतं मङ्गलं चैत्यमिव पूज्यानि भक्तितः ॥२४३॥

इस डब्बे में रही अस्थियां, दिव्य मांगलिक चैत्य के समान विमान वाले देवों के और अन्य भी देवों के लिए भक्तिपूर्वक पूज्य है । (२४३)

एतत्प्रक्षालन जलाभिषेकें ण क्षणादपि ।
क्लेशावेशादिका दोषा, विलीयन्ते सुधाभुजाम् ॥२४४॥

इन अस्थियों के प्रक्षालन के पानी के छींटे मात्र से क्षणभर में देवताओं के क्लेश और आवेश आदि दोष नाश (शान्त) हो जाते हैं । (२४४)

एषामाशातना भीताः सभायामिह निर्जराः ।
न सेवन्ते निधुवन क्रीडां क्रीडां गता इव ॥२४५॥

इन अस्थियों की अशातना से भयभीत बने देवता इस सभा के अन्दर लज्जित बने के समान मैथुन क्रीडा नहीं करते हैं । (२४५)

चैत्य स्तम्भादितः प्राच्यां, स्याद्रत्न पीठिका ऽत्र च।
विमान स्वामिनः सिंहासनं परिच्छदान्वितम् ॥२४६॥

चैत्य स्तंभ से पूर्वदिशा में रत्न पीठिका होती है । यहां पीठिका के ऊपर विमान के स्वामी देव की पर्षदा से युक्त सिंहासन होता है । (२४६)

तस्यैव चैत्यस्तम्भस्य, प्रतीच्यां मणिपीठिका ।
विमान स्वामिनो योग्यं, शयनीयं भवेदिह ॥२४७॥

उसी ही चैत्य स्तंभ की पश्चिम दिशा में मणि पीठिका होती है उसके ऊपर विमान स्वामी देव के योग्य शय्या होती है । (२४७)

चैत्य स्तम्भ पीठिका ऽत्र, षोडशा ऽऽयत विस्तृता।
अष्टोच्चा योजनान्यर्द्ध मानास्ति स्रोऽपरास्ततः ॥२४८॥

इस चैत्य स्तंभ की पीठिका १६ योजन लम्बी-चौड़ी और आठ योजन ऊंची होती है, और दूसरी तीन पीठिका आधे प्रमाण वाली होती है । (२४८)

शयनीयादथैशान्यां महती मणिपीठिका ।
क्षुल्लो महेन्द्र ध्वजो ऽस्थां, चैत्य स्तम्भोक्त मानभृत ॥२४६॥

शय्या से ईशान कोने में बड़ी मणि पीठिका है उसके ऊपर चैत्य स्तंभ में कहे अनुसार वाला छोटा महेन्द्र ध्वज है । अर्थात् साठ योजन ऊंचा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा है । (२४६)

ध्वजादेतस्मात्प्रतीच्यां विमान स्वामिनो भवेत् ।
चौपालख्यः प्रहरणकोशः शस्त्रशतान्वितः ॥२५०॥

इस ध्वज से पश्चिम दिशा में विमान स्वामी देव का चौपाल नामक सैंकड़ों शस्त्रों से युक्त शस्त्रागार होता है । (२५०)

मानमस्या वक्ष्यमाणसभाऽर्हद्वेश्मनामपि ।
तद् द्वार मण्डप स्तूप वृक्षादीनां च तीर्थपैः ॥२५१॥
नंदीश्वर द्वीपगत चैत्यवत् सकलं स्मृतम् ।
पीठिकादौ विशेष सतु प्रोक्तोऽत्राग्रेऽपि वक्ष्यते ॥२५२॥

यह पूर्व में कही मणि पीठिका और आगे कही हुई सभा के अर्हद जिनालयों का, उसके द्वार, उसके मण्डप, स्तूप वृक्षादि इन सबका प्रमाण तीर्थ पतियों ने नंदीश्वर द्वीप के चैत्य के समान कहा है । पीठिका आदि में जो कुछ विशेषता है। वह इस स्थान पर कहा गया है । और आगे भी कहा जायेगा । (२५१-२५२)

एवं सभा सुधर्माख्या, लेशतो वर्णिता मया ।
वैमानिक विमानेषु, सिद्धान्तोक्तानुसारतः ॥२५३॥

इस तरह से विमानिक देवताओं का विमान में रही सुधर्मा सभा का संक्षिप्त वर्णन सिद्धान्त अनुसार से मैंने किया है । (२५३)

तस्याः सौधर्म्याः सभाया, अथैशान्यां भवेदिह ।
अर्हदायतनं नित्यमत्यन्तविततद्युति ॥२५४॥

उस सौधर्म सभा के ईशान कोन के अन्दर अरिहंत परमात्मा का हमेशा अति प्रकाशमान जिनालय होता है । (२५४)

भवेत्सर्वं सुधर्मावदिह द्वारत्रयादिकम् ।
विज्ञेयं तत्स्वरूपं च, पूर्वोक्तमनुवर्त्तते ॥२५५॥

सुधर्मा सभा के समान यहां तीन द्वार आदि सभी प्रकार से जानना और उसका स्वरूप पूर्व कहे अनुसार समझना । (२५५)

यावदभ्यन्तरे भागे, स्युर्मनोगुलिकाः शुभाः ।
तथैव गोमानसिकास्ततश्चैतद्विशिष्यते ॥२५६॥

अन्दर के विभाग में मनोगुलिका नाम की पीठिका और गोमानसिका तक यह सारा वर्णन समान समझना चाहिए । इसके बाद इतना विशेष है । (२५६)

तस्य सिद्धायतनस्य मध्यतो मणिपीठिका ।
उपर्यस्या भवत्येको, देवच्छन्दक उद्भटः ॥२५७॥

अष्टोत्तरशतं तत्र, प्रतिमाः शाश्वतार्हताम् ।
वैमानिका देव देव्यो, भक्तितः पूजयन्ति याः ॥२५८॥

उस सिद्धायतन के मध्य विभाग में मणि पीठिका है । उसके ऊपर सुन्दर देवछंद है, उस देवछंद के अन्दर श्री अरिहंत भगवान की शाश्वती एक सौ आठ प्रतिमा होती है । उसे वैमानिक देव और देवियां भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं । (२५७-२५८)

घण्टा कलश भृङ्गार दर्पणाः सुप्रतिष्ठकाः ।
स्थाल्यो मनोगुलिकाश्च चित्ररत्नकरण्डकाः ॥२५९॥

पात्र्यो वातकरकाश्च, गजाश्वनरकण्ठकाः ।
महोरगकिंपुरुषवृषकिन्नरकण्ठकाः ॥२६०॥

पुष्पमाल्य चूर्ण गंध वस्त्राभरण पूरिताः ।
चङ्गेर्यः सिद्धार्थ लोमहस्तकैरपि ता भृताः ॥२६१॥

पुष्पादीनां पटलानि, च्छत्रचामरकेतवः ।
तैलकोष्ठशतपत्रतगरैलासमुद्रकाः ॥२६२॥

हंसपाद हरिताल मनःशिलाञ्जनैर्भृताः ।
समुद्रकाश्च घण्टाद्यास्तत्राष्टाढ्यं शतं समे ॥२६३॥

अष्टोत्तरं शतं धूपकडुच्छकाश्च रत्नजाः ।
भवन्ति सिद्धायतने, श्री जिनप्रतिमाग्रतः ॥२६४॥

इस सिद्धायतन में जिन प्रतिमा के आगे एक सौ आठ की संख्या में वस्तु होती हैं वह इस प्रकार-घंटा कलश, बड़े कलश, दर्पण सुप्रतिष्ठक, बड़े-बड़े थाल थाली मनोगुलिका, विविध जात के रत्नों की करंडी रकाबी, पंखा, हाथी, घोड़े मनुष्य सर्प किंपुरुष, बैल, किन्नर आदि की मुखाकृतियां, पुष्प की माला, सुगन्ध चूर्ण, वस्त्र और आभूषण से भरी तथा सरसों और मोर पींछ से भरा झाबा, पुष्पादि की सुन्दर रचना छत्र चमर ध्वज, तेल का कोठार, गुलाब, दालचीनी, इलायची डब्बे, तथा हंसपाद हडताल, मन शील, अंजन से भरे डब्बे घंटे तथा रत्नों से बनी धूपदानियां होती हैं । (२५६-२६४)

अथैतस्माज्जिन गृहादैशान्यां महती भवेत् ।
उपपात सभा साऽपि, सुधर्मेव स्वरूपतः ॥२६५॥

यह सारी सामग्री सिद्धायतन में श्री जिन प्रतिमा के आगे होती है इस जिन गृह से ईशान कोने में बडी उपपात नाम की सभा होती है । उसका भी स्वरूप से सुधर्मा सभा के समान ही समझना । (२६५)

चत्वारि योजनान्यत्रोच्छ्रिताऽष्टौ च ततायता ।
पीठिकाऽस्यां विमानेशोपपातशयनीयकम् ॥२६६॥

उपपात सभा में चार योजन ऊंची और आठ योजन लम्बी-चौड़ी पीठिक है। इस पीठिका के ऊपर विमान के स्वामी की उपपात शय्या है । (२६६)

अथैशान्यामुपपात सभायाः स्यान्महाह्रदः ।
शतं दीर्घस्तदर्द्धोरूर्दशोण्डो योजनानि सः ॥२६७॥

इस उपपात सभा से ईशान कोने में बडा सरोवर है, जो सौ योजन लम्बा पचास योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है । (२६७)

ह्रदादस्मादथैशान्यामभिषेकसभा भवेत् ।
त्रिद्वारा स्यात् सापि सर्वात्मना तुल्या सुधर्मया ॥२६८॥

इस सरोवर से ईशान कोने में अभिषेक सभा होती है, उसके तीन द्वार होते हैं और स्वरूप से सर्व प्रकार से सुधर्मा सभा के समान होता है । (२६८)

विभाति मध्यदेशेऽस्या, महती मणिपीठिका ।
विमानेशाभिषेकार्ह, तत्र सिंहासन स्फुरत् ॥२६९॥

इस अभिषेक सभा के मध्य विभाग में एक बड़ी मणिपीठिका होती है और उस स्थान पर विमान के स्वामी देव को अभिषेक करने योग्य देदीप्यमान सिंहासन होती है । (२६९)

सन्ति तत्परिवारार्ह भूरिभद्रासनान्यपि ।
विमानेशाभिषेकार्थस्तत्र सर्वोऽप्युपस्करः ॥२७०॥

वहां उसके परिवार के योग्य बहुत भद्रासन भी होते हैं और विमान नरेश के अभिषेक योग्य सर्व उपकरण भी होते हैं । (२७०)

अमुष्याअप्यथैशान्यां, सुधर्मा सदृशी भवेत् ।
अलङ्कार सभा मध्यद्देशेऽस्या मणि पीठिका ॥२७१॥
तस्यां च सपरीवारं, रत्नसिंहासनं भवेत् ।
विमान स्वामिनः सर्वेऽलङ्कारोपस्करोऽपि ॥२७२॥

अभिषेक सभा के इशानं कोने में भी सर्व प्रकार से सुधर्मा सभा समान अलंकार सभा है । उसके मध्यविभाग में मणि पीठिका है । उसके ऊपर सपरिवार सहित रत्न सिंहासन है और विमान स्वामी के सर्व अलंकार के उपकरण भी हैं । (२७१-२७२)

अलंङ्कार सभाया अप्यैशान्यां भवेत् ।
व्यवसाय सभा सर्वात्मना तुल्या सुधर्मया ॥२७३॥

इन अलंकार सभा से ईशान कोने में एक सुन्दर व्यवसाय रोजगारी सभा है जो सर्व प्रकार से सुधर्मा सभा समान है (२७३)

तस्यां रत्नपीठिकायां रत्न सिंहासनं भवेत् ।
शत्पुस्तकं चाङ्करत्नमयपत्रैरलङ्कृतम् ॥२७४॥

उस सभा में रही रत्न पीठिका ऊपर रत्न सिंहासन होता है, वहां सुन्दर पुस्तक होती है, उसके पत्ते रत्नमय होते हैं । (२७४)

रिष्टरत्नमये तस्य, पृष्टके शिष्टकान्तिनी ।
रूप्योत्पन्नदवरकप्रोता च पत्र संततिः ॥२७५॥

उसकी रिष्ट रत्नमय मुख पृष्ट के पीछे शिष्ट सुशोभज कान्ति वाली और रजत के रस्सी से पिरोये पन्ने की श्रेणि होती है । (२७५)

ग्रन्थिर्दवरकस्यादौ, नानामणिमयो भवेत् ।
न निर्गच्छंति पत्राणि दृढं रूद्धानि येन वै ॥२७६॥

मषीभाजनमेतस्य, वर्यवैडूर्यरत्नजम् ।
तथा मषीभाजनस्य, शृङ्खला तपनीयजा ॥२७७॥

मषीपात्राच्छादनं च, वरिष्टरिष्टरत्नजम् ।
लेखनी स्याद्वज्रमयी मषीरिष्टमयी भवेत् ॥२७८॥

रिष्टरत्नमया वर्णाः सुवाचाः पीन वर्त्तुलाः ।
धार्मिको व्यवसायश्च, लिखितस्तत्र तिष्ठिति ॥२७९॥

इन पन्नों के ऊपर रस्सी आदि में विविध मणिमय गांठ होती है कि जिससे बन्धन की पत्तों की श्रेणि अलग नहीं होती । इस पुस्तक की स्याही दवात श्रेष्ठ वैडूर्य रत्न से बना हुआ होता है । जबकि दवात की जंजीर तपे हुए स्वर्ण की है। दवात के ढंकन श्रेष्ठ रिष्ट रत्न का बना हुआ होता है, उसकी लेखनी कलम वज्रमय रत्न की और मषी-स्याही रिष्ट रत्न मय होती है । अक्षर वर्ण रिष्ट रत्नमय होता है, जो सुवाचा - सुन्दर वाक्य अच्छे मोटे और सुन्दर मरोड वाले होते हैं इस पुस्तक में धार्मिक व्यवहार लिखा हुआ होता है । (२७६-२७९)

व्यवसाय सभायाश्चैशान्यामत्यन्त शोभना ।
नन्दा पुष्करिणी फुल्लाम्भोजकिञ्जल्क पिञ्जरा ॥२८०॥

व्यवहार सभा के ईशान कोने में नन्दा नाम की सुशोभन वावडी है । उसका पानी खिले कमल के पराग से पीला है । (२८०)

उपपात सभावत् स्यात, सभा सूक्ता सु पीठिका ।
पूर्वोक्त ह्रदवन्नन्दापुष्करिण्यपिमानतः ॥२८१॥

उपपात सभा के समान प्रत्येक सभाओं में पीठिकाएं होती हैं, तथा नन्दा पुष्करिणी के प्रमाण अनुसार सरोवर होता है । (२८२)

अस्या नन्दा पुष्करिण्या, ऐसान्यामतिनिर्मलम् ।
बलीपीठं रत्नमयं दीप्यते दीप्रतेजसा ॥२८२॥

इस नन्दा पुष्करिणी के ईशान कोने में रत्नमय अति निर्मल बलिपीठ होते हैं जो अत्यन्त तेजस्वी प्रकाशमय होते हैं । (२८२)

वैमानिक विमानानि, किंचिदेवं स्वरूपतः ।
वर्णितानि विशेषं तु शेषं जानन्ति तीर्थपाः ॥२८३॥

इस तरह वैमानिक विमान का कुछ स्वरूप वर्णन किया है, और विशेष तो श्री तीर्थंकर भगवन्त जानते हैं । (२८३)

एतेषु स्वर्विमानेषु योपपातसभोदिता ।
तत्रोपपात शय्या या, देवं दूष्य, समावृता ॥२८४॥

इन देव विमानों में जो उपपात सभा कही है । और उसमें जो उपपात शय्या कही है वह देवदूष्य से आच्छादित होती है । (२८४)

सूरिश्रीहरिविजयश्रीकीर्तिविजयादिवत् ।
शुद्धं धर्मं समाराध्य, साधितार्थाः समाधिना ॥२८५॥

साधवः श्रावकास्तस्यां, विमानेन्द्रतया क्षणात् ।
उत्पद्यन्तोऽङ्गुलासंख्य भागमात्रावगाहनाः ॥२८६॥ युग्मं //

अब उपपात शय्या में आचार्य श्री हरि सूरीश्वर जी महाराज तथा पूज्य उपाध्याय श्री कीर्ति विजय जी महाराज आदि साधु और श्रावक शुद्धधर्म की आराधना कर समाधि पूर्वक आत्म कल्याण साधकर क्षण में विमान के स्वामी रूप में उत्पन्न हुए हैं और उत्पत्ति के समय में अंगुल के असंख्यात भाग मात्र अवगाहना वाले होते हैं । (२८५-२८६)

ततश्चान्तर्मुहूर्त्तेन, पन्चपर्याप्तिशालिनः ।
द्वात्रिंशद्वर्ष तरुणा, इव भोग प्रभूष्णवः ॥२८७॥

समन्ततो जय जयनन्द ,नन्देतिवादिभिः ।
देवाङ्गनानां निकरैः सुस्नेहमवलोकिताः ॥२८८॥

स्वाम्युत्पत्ति प्रमुदितैः, सुरैः सामानिकादिभिः ।
अष्टाङ्गस्पृष्टभूपीठैर्नम्यन्ते भक्तिपूर्वकम् ॥२८९॥ *त्रिभि विशेषकं* //

उसके बाद अन्तर्मुहूर्त्त में पांच पर्याप्ति से शोभायमान बत्तीस वर्ष के युवान समान भोग में समर्थ बन जाते हैं । और उसे चारों तरफ से जय जय नन्द नन्द इस तरह से बोलते देवांगनाओं के समूह स्नेह पूर्वक देखते हैं । स्वामी की उत्पत्ति से खुश हुए सामानिक आदि देवता भक्ति पूर्वक साष्टांग नमस्कार करते हैं। (२८७-२८९)

पन्च पर्याप्तयस्तेषामुक्तास्तीर्थांकरैरिति ।
यद्भषापाचित्त पर्याप्तयोः समाप्तौ स्तोकमन्तरम् ॥२९०॥

उन देवों को भाषा और मनः पर्याप्ति की समाप्ति का अन्तर बहुत अल्प होने से श्री तीर्थंकर परमात्माओं ने पांच पर्याप्तियां कही हैं । (२९०)

तदुक्तं राजप्रश्नीय वृत्तौ - ''इदं भाषामनः पर्याप्त्योः समाप्ति कालान्तरस्य प्रायः शेष पर्याप्ति समाप्ति कालान्तरा पेक्षया स्तोकत्वादेकत्वेन विवक्षण मिति 'पंचविहाए पन्जत्तीए पन्जत्तिभावं गच्छई'' त्युक्तं ।

राजप्रश्नीय सूत्र की टीका में कहा है कि – 'शेष पर्याप्ति के समाप्ति काल के अन्तर की अपेक्षा से यह भाषा और मनः पर्याप्ति की समाप्ति की काल का अन्तर प्रायः अल्प होने से एक के कारण विवक्षा की है ।' पांच प्रकार की पर्याप्ति से पर्याप्त रूप को प्राप्त करता है । इति ।

एषामुत्पन्न मात्राणां, देहा वस्त्र विवर्जिताः ।
स्वाभाविकस्फाररूपा अलङ्कारोज्झिता अपि ॥२९१॥

ये उत्पन्न हुए देवताओं के देह, वस्त्र तथा अलंकारों से रहित होने पर भी स्वाभाविक रूप में अत्यन्त स्वरूपवान् होते हैं । (२९१)

ततोऽनेनेव देहेनाभिषेक करणादनु ।
वक्ष्यमाणा प्रकारेणालङ्कारान् दधति ध्रुवम् ॥२६२॥

इसके बाद देह द्वारा अभिषेक करने के बाद अलंकारों को धारण करते हैं, उसका वर्णन आगे कहा जाता है । (२६२)

विरच्यन्ते पुनर्ये तु, सुरैरूत्तर वैक्रियाः ।
ते स्युः समयमुत्पन्न वस्त्रालङ्कार भासुराः ॥२६३॥

और देवता जो उत्तर वैक्रिय रूप धारण करते हैं, उस रूप की उत्पत्ति की साथ में ही वस्त्रालंकार से शोभायमान हो जाते हैं । (२६३)

तथोक्तं जीवाभिगम सूत्रे - "सोंहम्मीसाण देवा केरिसया विभूसाए पं०? गोयम ! दुविहा पण्णत्ता, तं० वेउव्विय सरीरा य अवेऊव्वि सरीरा य, तत्थणं जे ते वेउ विवय सरीरप्ते हारविराइयवच्छाजाव दस दिसाओ उज्जोए माणा" इत्यादि । तत्थ णं जे ते अवेउव्विय सरीरा ते णं आभरण वसण रहिया पगतित्था विभूसाए पण्णत्ता ।'

श्री जीवाभिगम सूत्र में कहा है कि - 'सौधर्म-ईशान के देवता वेशभूषा से कैसे होते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर भगवान कहते हैं कि - हे गोतम ! देवता दो प्रकार के होते हैं वह इस प्रकार- १- उत्तर वैक्रिय शरीर वाले और २- वैक्रिय शरीर वाले होते हैं, उसमें उत्तर वैक्रिय शरीर वाले देव हार विराजित वक्ष स्थल वाले होते हैं । यावत् वे उनके द्वारा दसो दिशा को प्रकाशित करते हैं और मूल वैक्रिय शरीर वाले देव अलंकार-वस्त्रादिक से रहित स्वभाव से ही शोभायमान होते हैं ।'

ततः शय्या निविष्टानां तेषां स्वयं भवेत् ।
अभिप्रायः स्फुटः सुप्तोत्थितानामिव धीमताम् ॥२६४॥

कर्त्तव्यं प्राक्किमस्माभिः, किं कर्त्तव्यं ततः परम् ।
किं वाहितं सुखं श्रेयः, प्रारम्पर्यशुभाप्तिकृत ? ॥२६५॥

निद्रा से जागृत हुए बुद्धिमान पुरुषों के समान शय्या में रहे उस देव के मन में आए स्पष्ट अभिप्राय (विचार) होते हैं कि - हमारा प्रथम कर्त्तव्य क्या है?

उसके बाद क्या कर्त्तव्य है ? हमारे हितकर, सुखकर, श्रेयस्कर और परम्परा से शुभ की प्राप्ति करने वाला क्या है ? (२६४-२६५)

ततः स्वस्वामिनामेवमभिप्रायं मनोगतम् ।
ज्ञात्वा सामानिका देवा, वदन्ति विनयानताः ॥२६६॥

जिनानां प्रतिमाः स्वामिन्निह सन्ति जिनालये ।
अष्टोत्तर शतं चैत्य स्तम्भेऽस्थीनि तथाऽर्हताम् ॥२६७॥

पूज्यानि तास्तानि चात्र, युष्माकं चान्य नाकिनाम्।
प्राक् च पश्चाच्च कार्यं च एतान्निःश्रेयसावहम् ॥२६८॥

इह लोके परलोके, हितवाप्तिर्भविष्यति ।
युष्माकमर्हत्प्रतिमा पूजन स्तवनादिभिः ॥२६६॥

उसके बाद अपने स्वामी के मन का ऐसा अभिप्राय जानकर सामानिक देवता विनयपूर्वक कहते हैं कि - हे स्वामिन् ! यहां जिनालय में एक सौ आठ जिन प्रतिमा जी है तथा चैत्य स्तंभों में श्री जिनेश्वर भगवन्त की अस्थियां है । वे प्रतिमा और अस्थियां सर्वप्रथम यहां तुम्हें और अन्य देवताओं को पूज्य है अतः प्रथम अथवा बाद यह कार्य करना चाहिए । यह कार्य कल्याणकारी व हितावह है तथा श्री अरिहंत भगवन्तों की प्रतिमा का पूजन और स्तवन आदि से इस लोक और परलोक सम्बन्धी हितकारी होगा । (२६६-२६६)

वाक्यानि तेषामाकर्ण्येत्युत्थाय शयनीयतः ।
निर्यान्ति पर्वद्वारेणोपपातमन्दिरात्ततः ॥३००॥

उसके बाद उनके वचन सुनकर शय्या में से उठकर पूर्वद्वार से उपपात मंदिर में से वह स्वामी देव बाहर निकलता है । (३००)

ह्रदं पूर्वोक्तमागत्य तत्र कृत्वा प्रदक्षिणाम् ।
प्रविशन्ति च पौरस्त्यत त्रिसोपानकाध्वना ॥३०१॥

फिर पूर्वोक्त सरोवर के पास में आकर वहां प्रदक्षिणा देकर पूर्व दिशा के तीन सोपानक मार्ग द्वारा सरोवर में प्रवेश करता है । (३०१)

तत्राचान्ता: शुचीभूता: सद्योनिर्मितमज्जना: ।
ह्रदान्निर्गत्याभिषेक सभामागत्य लीलया ॥३०२॥

प्रदक्षिणी कृत्य पूर्व द्वारा विशन्ति तामपि ।
तत्र सिंहासने पूर्वाभिमुखास्ते किलासव ॥३०३॥

वहां मुख शुद्धि करके पवित्र होकर, जल्दी स्नान करके सरोवर में से निकलकर अभिषेक सभा में लीलापूर्वक आता है वहां अभिषेक सभा को प्रदक्षिणा देकर पूर्व द्वार से सभा में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठता है । (३०२-३०३)

तत: सामानिकास्तेषामाभियोगिक निर्जसन् ।
आकार्याज्ञापयन्त्येवं, सावधाना भवन्तु भो: ॥३०४॥

उसके बाद सामानिक देवता उनके अभियोगिक देवताओं को बुलाकर इस तरह आज्ञा करते हैं कि हे देवताओं ! तुम सावधान हो जाओ । (३०४)

अस्य न: स्वामिनो योग्यां, गत्वाऽनर्घ्यां महीयसीम् ।
इन्द्राभिषेक सामग्रीमिहानयत् सत्वरम् ॥३०५॥

यह अपने स्वामी के योग्य बड़ी और महामूल्यवान इन्द्र के योग्य अभिषेक सामग्री जल्दी से लेकर आ जाओ । (३०५)

ततस्तेऽपि प्रमुदिता: प्रतिपद्य तथा वच: ।
ऐशान्यामेत्य कुर्वन्ति, समुद्घातं च वैक्रियम् ॥३०६॥

उसके बाद वे देव भी खुश होकर उस वचन को स्वीकार कर ईशान दिशा के कोने में जाकर वैक्रिय समुद्घात करते हैं । (३०६)

द्विस्तं कृत्वा च सौवर्णान् रत्नविनिर्मितान् ।
सुवर्णरुप्यजान् स्वर्णरत्नजान् रुप्यरत्नजान् ॥३०७॥

स्वर्ण रुप्य रत्नमयास्तथा मृत्स्नामयानपि ।
सहस्त्रमष्टाभ्यधिकं, प्रत्येकं कलशानमून् ॥३०८॥

भृङ्गारादर्शकस्थालपात्रिका सुप्रतिष्ठकान् ।
करण्डकान् रत्नमयान् चङ्गेरीर्लोमहस्तकान् ॥३०९॥

छत्राणि चामराण्येवं, तैलादीनां समुद्गकान् ।
सहस्रमष्टाभियुक्त तथा धूपकडुच्छकान् ॥३१०॥

एतत्सर्वं विकुर्व्याथ, सहजान् विकृतांश्च तान् ।
गृहीत्वा कलशादींस्ते, निर्गत्य स्वाविमानतः ॥३११॥

गत्वा च पुष्कर क्षीराम्बुध्योः पद्महृदादिषु ।
गङ्गादिकास्वापगासु, तीर्थेषु मागधादिषु ॥३१२॥

तत्रत्यानि पयोमृत्स्नापुष्पमाल्याम्बुजान्यथ ।
सहस्रशतपत्राणि, सिद्धार्थान् सकलौष धीः ॥३१३॥

भद्रशाल सौमनसादिभ्योऽपि निखिलर्तुजान् ।
फल प्रसून सिद्धार्थान् गोशीर्ष चन्दनानि च ॥३१४॥

समादायाथ संभूय, ते सर्वेऽप्याभियोगिकाः ।
विमान स्वामिनामग्रे ढौकन्ते नतिपूर्वकम् ॥३१५॥

फिर इसी बार वह वैक्रिय समुद्घात करके सोने के चान्दी के रत्न के सौने चान्दी के, सुवर्ण रत्न के, स्वर्ण रत्न रजत के, और मिट्टी के इस तरह प्रत्येक जात के १००८ कलश बनाते हैं तथा रत्नमय विशेष प्रकार के कलश, दर्पण, थाल छोटी रेकबी, बडे थाल, फूल करंडी, चंगेरिया, मोरपीच्छ, छत्र चमर तेल आदि के डब्बे तथा धूपदानियां ये सभी सामग्रियां १००८ की संख्या में बनाकर वह सहज और बनाये गये कलश आदि के ग्रहण करके स्वविमान में से निकल कर पुष्कर समुद्र, क्षीर समुद्र, पद्म सरोवर आदि गंगा आदि नदियों में और मागध आदि तीर्थों में जाकर वहां के पानी मिट्टी, पुष्पमाला, कमल, सहस्र दलकमल, शतदल कमल सरसों सकल औषधियों को एकत्रित करता है । तथा भद्रशाल, सौमनसादि वन में से प्रत्येक ऋतु के फल फूल सरसों तथा गोशीर्ष चन्दन एकत्रित करके वे सभी अभियोगिक देवता एकत्रित होकर विमान के स्वामी के आगे आकर नमस्कारपूर्वक समर्पण करते हैं । (३०७-३१५)

सामानिकादयः सर्वे ततो विमान वासिनः ।
देवा देव्यश्च कलशैः स्वभाविकैविकुर्वितैः ॥३१६॥

अभिषिन्चन्ति तानिन्द्राभिषकेण गरीयसा ।
पुष्पैः सर्वर्त्तुकैः सर्वोषधीभिरर्चयन्ति च ॥३१७॥ *युग्मं* //

उसके बाद विमान वासी सामानिक आदि सब देव और देवियां स्वाभाविक और वैक्रिय शक्ति से बनाये गये कलशों द्वारा वह नये उत्पन्न हुए स्वामी देवों के बड़े इन्द्राभिषेक द्वारा अभिषेक करते हैं और सर्वऋतु के पुष्प और सर्व प्रकार की औषधियों से पूजा करते हैं। (३१६-३१७)

तेषामिन्द्राभिषेकेऽथ, वर्त्तमाने मुदा तदा ।
सुराः सुगन्धाम्बु वृष्ट्या, केचित्प्रशान्तरेणुकम् ॥३१८॥

केचित्संमृष्टोपलिप्तशुच्यध्वापण वीथिकम् ।
मन्चाति मन्च भूत्केचित्, केऽपि नानोच्छ्रितध्वजम् ॥३१९॥

आबद्धतोरणं लम्बि पुष्प दामोच्चयं परे ।
द्वार्न्यस्त चन्दन घटं, दत्तकुङ्कुमहस्तकम् ॥३२०॥

केचित्पन्चवर्ण पुष्पोपचार चारु भूतलम् ।
दग्धकृष्णागुरु धूपधूमैरन्ये: सुगन्धितम् ॥३२१॥

तत्तद्विमानं कुर्वन्ति, परे नृत्यन्ति निर्जराः ।
हसन्ति केचिद् गायन्ति, तूर्याणि वादयन्ति च ॥३२२॥

केचिद्वर्षन्ति रजतस्वर्ण रत्नवराम्बरैः ।
वज्रैः पुष्पैर्माल्यगन्धैर्वासैश्चाभरणैः परे ॥३२३॥

केचिद् गर्जन्ति हेषन्ते, भूमिमास्फोटयन्ति च ।
सिंहनादं विदधते, विद्युद वृष्टि आदि कुर्वन्ते ॥३२४॥

दृक्कारैरथ बूत्कारैर्वल्गनोच्छलनादिभिः ।
स्वाम्युत्पत्ति प्रमुदिताश्चेष्टनते बहुधा सुराः ॥३२५॥ *अष्टभिः कुलकं* //

इसके बाद इस इन्द्राभिषेक की क्रिया के समय में कई देवता आनंद पूर्वक सुगन्धी पानी की वृष्टि से विमान को शान्त रजवाला बनाते हैं, तो कोई देवता अच्छी तरह से सफाई करके और लिपाइकर पवित्र रास्ते वाले बाजार बनाता है, कई देवता छोटे बडे मंच बनाते हैं, तो कोई विविध प्रकार की ध्वजाएं

लगाते हैं । कोई देवता लम्बी पुष्प की मालाओं के समूह वाले तोरण बांधते हैं । तो कोई द्वार पर कुमकुम (कंरार) के हस्तचिन्ह करते हैं । चन्दन के घडे रखते हैं, कई देवता भूमि पर पांच वर्ण के पुष्प की रचना से सुन्दर बनाते हैं तो कोई देवता जलते कृष्ण गरु धूप के धुएं से वातावरण को सुगंधितमय बनाते हैं इस तरह से वे विमान को देवता शोभायमान बनाते हैं, कोई देवता नाचते हैं, कोई हंसता है कोई गाता है तो कोई बाजा बजाता है, कोई रजत स्वर्ण, रत्न श्रेष्ठ वस्त्रादि की वृष्टि करता है, तो कोई वज्ररत्नों के, पुष्पों की माला को, सुगन्ध चूर्ण को और आभूषणों को बरसाता है । कोई देवता हाथी के समान गर्जना करता है । कोई घोडे के समान हिनहिनात् करता है, कोई देवता भूमि को आस्फोटन करता है, कोई देव सिंहनाद-गर्जना करता है कोई बिजली के चमत्कार को करता है, कोई जोर से उत्साह युक्त अनुरोध करता है, कोई जोर कोलाहल करता है, कोई देव कूदता है, कोई उछलता है । इस तरह स्वामी की उत्पत्ति से आनंदित बने देवता बहुत प्रकार से चेष्टा करता है । (३१८-३२५)

अभिषिच्योत्सवैरेवं, सुराः स्तुवन्ति तानिति ।
चिरं जीव चिरं नंद, चिरं पालय नः प्रभो ॥३२६॥

विपक्षपक्षमजितं, जय दिव्येन तेजसा ।
जितानां सुहृदां मध्ये, तिष्ठ कष्टविवर्जितः ॥३२७॥

इस तरह से देवता उत्सवपूर्वक अभिषेक करके वह नये उत्पन्न हुए स्वामी देव की इस प्रकार से स्तुति करते हैं – हे स्वामिन् ! आप चिरकाल जिओ, चिरकाल आनंद करो, चिरकाल तक हमारा पालन करो, नहीं जीतने वाले विपक्ष, पक्ष को दिव्य तेज द्वारा जीत लो, जीते हुए मित्रों के बीच में तुम कष्टरहित विराजमान हो । (२२६-३२७)

सुरेन्द्र इव देवानां, ताराणामिव चन्द्रमाः ।
नराणां चक्रवर्त्तीव, गरुत्मानिव पक्षिणाम् ॥३२८॥

विमानस्यास्य देवानां, देवीनामपि भूरिशः ।
पल्योपम सागरोपम मणि पालय वैभवम् ॥३२६॥

देवताओं में सुरेन्द्र, ताराओं में चन्द्र, मनुष्यों में चक्रवर्ती, पक्षियों में गरुड़ के समान इस विमान के बहुत देवियों के वैभव को बहुत पल्योपम सागरोपम तक आप श्री पालन करो । (३२८-३२९)

इत्येवमभिषिक्तास्ते ऽभिषेकभवनात्ततः ।
निर्गत्य पूर्वद्वारेण, यान्त्यलङ्कारमन्दिरम् ॥३३०॥

प्रदक्षिणीकृत्य पूर्वद्वारेण प्रविशन्ति तत् ।
सिंहासने निषीदन्ति, तत्र ते पूर्वदिग्मुखाः ॥३३१॥

इस तरह से अभिषेक होने के बाद वह नये उत्पन्न हुए मुख्य देवता अभिषेक भवन में से पूर्व के द्वार से निकलकर अलंकार मंदिर में जाता है, वहां प्रदक्षिणा देकर पूर्वद्वार से प्रवेश करते हैं, और वहां पूर्वदिशा के सन्मुख सिंहासन ऊपर विराजमान होता है । (३३०-३३१)

ततः सामानिका देवा, वस्त्रभूषासमुद्गकान् ।
शाश्वतान् ढौकयन्त्यद्य द्रत्नरश्मिमकृताद् भुतान् ॥३३२॥

उसके बाद सामानिक देवता देदीप्यमान रत्नों के किरणों से आश्चर्य उत्पन्न करे इस प्रकार शाश्वत वस्त्राभूषण के डब्बे रखते हैं । (३३२)

ततस्ते प्रथमं चारुवस्त्ररूक्षितविग्रहाः ।
सुवर्णखचितं देवदूष्यं परिदधत्यथ ॥३३३॥

हारमेकावलि रत्नावली मुक्तावलीमपि ।
केयूर कटकस्फाराङ्गदकुण्डलमुद्रिकाः ॥३३४॥

उसके बाद वह देवता सुन्दर वस्त्र से शरीर को पोंछ कर सुवर्ण जड़ित देव दूष्य को धारण करता है, फिर एकावली, रत्नावली, मुक्तावली हार को पहनता है। केयूर (भुजबंध) हाथ में कड़ा, सुन्दर बाजूबंध, कुंडल और अंगूठी को धारण करता है। (३३३-३३४)

ततोऽलङ्कृतसर्वाङ्गा मौलिभ्राजिष्णुमौलयः ।
चारुचन्दनक्लृप्ताङ्गरागास्तिलकशालिनः ॥३३५॥

स्रक्केशवस्त्राभरणैरलङ्कारैश्चतुर्विधैः ।
संपूर्णप्रतिकर्माण, उत्तिष्ठंत्यासनात्ततः ॥३३६॥

इस प्रकार से सर्व अंग से अलंकृत बने, मस्तक ऊपर देदीप्यमान मुकुट वाले, सुन्दर चन्दन लेप से अलंकृत तिलक से शोभायमान, माला केश वस्त्राभूषण अलंकार, इस तरह चार प्रकार की क्रिया से सम्पूर्ण तैयार होकर आसन ऊपर से खड़े होते हैं । (३३५-३३६)

अलङ्कारगृहात्पूर्वद्वारा निर्गत्य पूर्ववत् ।
व्यवसायसभां प्राच्यद्वारेण प्रविशन्त्यमी ॥३३७॥

तत्र सिंहासने स्थित्वा, सामानिकोपढौकितम् ।
पुस्तकं वाचयित्वाऽस्मात् स्थितिं जानन्ति धार्मिकीम् ॥३३८॥

उसके बाद पहले के समान अलंकार सभा के पूर्वद्वार से निकल कर व्यवसाय सभा में पूर्व के द्वार से प्रवेश करते हैं और वहां सिंहासन ऊपर बैठकर सामानिक देवता के सामने रखे पुस्तकों को पढ़कर उसमें से धार्मिक आचार को जानते हैं । (३३७-३३८)

सिंहासनादथोत्थाय, व्यवसाय निकेतनात् ।
निर्गत्य प्राग्दिशा नन्दापुष्करिण्यां विशन्ति च ॥३३९॥

तत्राचान्ताः शुचीभूता, धौतहस्तक्रमाः क्रमात् ।
रौप्यं भृङ्गारमम्भोभिः प्रपूर्य दधतः करे ॥३४०॥

उसके बाद सिंहासन से उठकर व्यवसाय सभा में से पूर्व दिशा से निकल कर पूर्व दिशा से ही नंदा नामक पुष्करिणी में प्रवेश करते हैं, और वहां मुख शुद्धि कर हाथ पैर का प्रक्षालन-धौकर, पवित्र होकर रजत के कलश को पानी से भरकर हाथ में धारण करते हैं । (३३९-३४०)

नानापद्मान्युपादाय, पुष्करिण्या निरीय च ।
सिद्धायतनमायान्ति, सिद्धायतिनवोदयाः ॥३४१॥

पुष्करिणी में से नाना प्रकार के कमलों को ग्रहण करके, वहां से निकल कर सिद्ध-निश्चित किये, भविष्य कालीन नये उदय वह देव सिद्धायतन में प्रवेश करता है । (३४१)

है । (३४७) कहने का मतलब यह है कि देव की पूजा में प्रमार्जन करने का कल्प होता है । ऐसा कह सकते हैं ।

गोशीर्षचन्दननेनाथ, प्रत्यङ्गं पूज्यन्ति ताः ।
प्रत्येकमासां परिघापयन्ति वस्त्रयोर्युगम् ॥३४८॥

उसके बाद देवता उन प्रतिमाओं की प्रत्येक अंग में गोशीर्ष चन्दन से पूजा करते हैं । और प्रत्येक मूर्ति को वस्त्र युगल पहनाते हैं । (३४८)

पुष्पामाल्यैर्गन्धचूर्णैर्वस्त्रैरामरणैरपि ।
पूजयित्वा लम्बयन्ति, पुष्पादामान्यनेकशः ॥३४९॥

ततः करतलक्षिप्तैः पन्चवर्णैर्मणीव कैः ।
चित्रोपचाररुचिरं, रचयन्ति भुवस्तलम् ॥३५०॥

पुष्प की माला सुगन्धी चूर्ण, वस्त्राभूषण से परमात्मा की पूजा कर के अनेक पुष्प मालाएं चारों तरफ लटकाते हैं उसके बाद हस्त तल से पांच वर्ण के मणकाओ को उछालकर वे देव पृथ्वी पर अलग-अलग प्रकार के चित्रों से सजाते हैं । (३४९-३५०)

पुरतोत्थ जिनार्चानामच्छै रजततण्डुलैः ।
लिखित्वा मङ्गलान्यष्टौ, पूजयन्ति जगद्‌गुरुन् ॥३५१॥

ततश्चन्द्रप्रभं वज्रवैडूर्यदण्डमण्डितम् ।
करे कृत्वा मणिस्वर्णचित्रं धूपकडुच्छकम् ॥३५२॥

दह्यमान कुन्दुरुक्क कृष्णागुरुतुरुष्ककै ।
धूपं दत्वा जिनेन्द्राणां, प्रक्रमतेस्तुति क्रियाम् ॥३५३॥

उसके बाद श्री जिनेश्वर भगवन्त की प्रतिमा के आगे स्वच्छ चान्दी के चावल से अष्ट मंगल आलेख-चित्रण कर जगतगुरु की पूजा करते हैं । वज्र रत्न और वैडुर्य रत्न के दण्ड से शोभते चन्द्र की प्रभा समान उज्जवल मणि और स्वर्ग के प्रकाशमय धूपदानी हाथ में लेकर जलते कुंदरुक्क, कृष्णागुरु, तुरुष्क आदि पदार्थ से श्री जिनेश्वरों के आगे धूप करके वे देवता स्तुति प्रारम्भ करते हैं । (३५१-३५३)

है । (३४७) कहने का मतलब यह है कि देव की पूजा में प्रमार्जन करने का कल्प होता है । ऐसा कह सकते हैं ।

गोशीर्षचन्दननेनाथ, प्रत्यङ्गं पूज्यन्ति ताः ।
प्रत्येकमासां परिधापयन्ति वस्त्रयोर्युगम् ॥३४८॥

उसके बाद देवता उन प्रतिमाओं की प्रत्येक अंग में गोशीर्ष चन्दन से पूजा करते हैं । और प्रत्येक मूर्ति को वस्त्र युगल पहनाते हैं । (३४८)

पुष्पामाल्यैर्गन्धचूर्णैर्वस्त्रैरामरणैरपि ।
पूजयित्वा लम्बयन्ति, पुष्पादामान्यनेकशः ॥३४९॥

ततः करतलक्षिप्तैः पन्चवर्णैर्मणीव कैः ।
चित्रोपचाररुचिरं, रचयन्ति भुवस्तलम् ॥३५०॥

पुष्प की माला सुगन्धी चूर्ण, वस्त्राभूषण से परमात्मा की पूजा कर के अनेक पुष्प मालाएं चारों तरफ लटकात्ते हैं उसके बाद हस्त तल से पांच वर्ण के मणकाओ को उछालकर वे देव पृथ्वी पर अलग-अलग प्रकार के चित्रों से सजाते हैं । (३४९-३५०)

पुरतोत्थ जिनार्चानामच्छै रजततण्डुलैः ।
लिखित्वा मङ्गलान्यष्टौ, पूजयन्ति जगद्‌गुरुन् ॥३५१॥

ततश्चन्द्रप्रभं वज्रवैडूर्यदण्डमण्डितम् ।
करे कृत्वा मणिस्वर्णचित्रं धूपकडुच्छकम् ॥३५२॥

दह्यमान कुन्दुरुक्क कृष्णागुरुतुरुष्ककै ।
धूपं दत्वा जिनेन्द्राणां, प्रक्रमतेस्तुति क्रियाम् ॥३५३॥

उसके बाद श्री जिनेश्वर भगवन्त की प्रतिमा के आगे स्वच्छ चान्दी के चावल से अष्ट मंगल आलेख-चित्रण कर जगतगुरु की पूजा करते हैं । वज्र रत्न और वैडुर्य रत्न के दण्ड से शोभते चन्द्र की प्रभा समान उज्जवल मणि और स्वर्ग के प्रकाशमय धूपदानी हाथ में लेकर जलते कुंदरुक्क, कृष्णागुरु, तुरुष्क आदि पदार्थ से श्री जिनेश्वरों के आगे धूप करके वे देवता स्तुति प्रारम्भ करते हैं । (३५१-३५३)

धूपं दत्वा जिनेन्द्राणामित्युक्तं यदिहागमे ।

साक्षाज्जिन प्रतिमयोस्तदभेदविवक्षया ॥३५४॥

श्री जिनेश्वर देवों के आगे धूप करके इस तरह जो आगम में कहा है, वह साक्षात् जिनेश्वर और जिनेश्वर की प्रतिमा की अभेद विवंक्षा से कहा है । (३५४)

सत्यप्येवं न मन्यन्ते, येऽर्चामिर्च्या जगत्पतेः ।

तान् धावतो मुद्रिताक्षानानयामः कथं पथम् ॥३५५॥

इस तरह होने पर इस प्रकार से स्पष्ट आगम वाणी होने पर भी जो जगत पति की पूज्य मूर्ति को स्वीकार नहीं करता है, वे आंख बंद करके दौड़ने वाले के समान किस तरह से मार्ग में ला सकते हैं ? (३५५)

नमस्ते समस्त प्रशस्तर्द्धि धाम्ने, क्रमाश्लेषिनम्रेन्द्र कोटी रदाम्ने ।

भवापारपाथोधिपारप्रदाय, प्रदायाङ्गिनां संपदां निर्मदाय ॥३५६॥

भुजङ्ग प्रयाता ।

वह स्वामी देव जगत्पति की स्तुति क्या करता है उसे कहते हैं - समस्त प्रशस्त ऋद्धि के धाम समान नम्र इन्द्रों के मुगुट की मालाएं जिनके चरणों को स्पर्श कर रही है, भव-जन्म रूपी अपार समुद्र को पार (अंत) कराने वाले, जगत के जीवों को संपत्ति देने वाले और मद रहित हे भगवान् आपको नमस्कार हो । (३५६)

इत्याद्यष्टोत्तर शतं, श्लोकानस्तोकधीधनाः ।

कुर्वन्त्य दोषान् प्रौढार्थ कलितान्, ललितान् पदैः ॥३५७॥

इस प्रकार से महान बुद्धि के धनवाले देवताओं के पद लालित्य से युक्त प्रौढ अर्थ से भरे हुए दोष रहित एक सौ आठ श्लोक से स्तुति करते हैं । (३५७)

नमस्कारैः सुधासारसारैः स्तुत्वा जिननिति ।

शक्रस्तवादिकां चैत्यवन्दनां रचयन्त्यमी ॥३५८॥

उसके बाद देवता अमृत के सार से भी श्रेष्ठ नमस्कार द्वारा श्री जिनेश्वर देवों की इस प्रकार से स्तुति करके शक्रस्तवादि द्वारा चैत्यवंदन करते हैं । (३५८)

वन्दित्वाऽथ नमस्कृत्य, ततः पुनरपि प्रभून् ।
चैत्यस्यास्य मध्य देशं, प्रमृज्याभ्युक्ष्य चाम्बुभिः ॥३५९॥

घृता कल्पं कल्पयन्तश्चारुचन्दनहस्तकैः ।
पुष्पपुन्जोपचारेण, धूपैश्चाभ्यर्चयन्त्यमी ॥३६०॥

उसके बाद देवता वंदन करके प्रभु को पुनः नमस्कार करके इस चैत्य के मध्य विभाग को प्रमार्जन कर पानी से साफ करके आचार को मन में धारण करते हुए आचार का पालन करते हुए वे देव सुन्दर चन्दन के हाथ की चिन्ह स्थापन कर पुष्प पूजा उपचार की क्रिया से और धूप से पूजा करते हैं । (३५९-३६०)

चैत्यस्याथ दाक्षिणात्यं, द्वारमेत्यात्र संस्थिताः ।
द्वारशाखापुत्रिकाश्च, व्यालरूपाणि पूर्ववत् ॥३६१॥

प्रमार्जनाभ्युक्षणाभ्यां, पुष्पमाल्यविभूषणैः ।
स्रग्दामभिश्चार्चयन्ति, धूपधूमान् किरन्ति च ॥३६२॥

इसके बाद चैत्य के दक्षिण दिशा के द्वार के पास में आकर यहां के द्वार की पुत्तलियां तथा व्याल की आकृतियों को पर्व अनुसार पूजा करके पानी से साफ करते हैं फिर पुष्पमाला, आभूषण, फूल की माला से पूजा करते हैं फिर धूप करते हैं । (३६१-३६२)

ततश्च दक्षिणद्वारस्योपेत्य मुखमण्डपम् ।
प्राग्वत्तस्य मध्यदेशे कुर्वन्ति हस्तकादिकम् ॥३६३॥

फिर उसके बाद दक्षिण द्वार के नीचे के विभाग में मुख मंडपको तथा उसके मध्य विभाग में पूर्व के समान हाथ के चिन्ह आदि करते हैं । (३६३)

ततश्चास्य मण्डपस्य, पूर्वद्वारेऽपि पूर्ववत् ।
द्वार शाखाद्यर्चयन्ति स्तम्भांश्च दक्षिणोत्तरान् ॥३६४॥

फिर इस मंडप के पूर्व द्वार में द्वार शाखा आदि तथा दक्षिण और उत्तर दिशा के स्तंभों को पहले के समान पूजा करते हैं । (३६४)

शेषद्वारद्वयेऽप्येवं, ततः प्रेक्षणमण्डपे ।
मध्यं द्वारत्रयं सिंहासनं समणिपीठिकम् ॥३६५॥

शेष दो द्वार में भी उत्तर दक्षिण द्वार शाखा को तथा प्रेक्षा मंडप के मध्य विभाग को उसके तीन द्वार को तथा मणि पीठिका सहित सिंहासन की पूजा करते हैं । (३६५)

निर्गत्यं दक्षिणद्वारा, ततः प्रेक्षणमण्डपात् ।
दाक्षिणात्यं महाचैत्यस्तूपमभ्यर्चयन्तिते ॥३६६॥

उसके बाद प्रेक्षा मंडप में से दक्षिण द्वार से निकल कर दक्षिण दिशा के बडे चैत्य स्तूप की वे देवता पूजा करते हैं । (३६६)

तस्माच्चतुर्दिशं यास्तु, प्रतिमाः श्रीमदर्हताम् ।
तासामालोके प्रणामं कुर्वन्ति पश्चिमादितः ॥३६७॥

फिर चार दिशा में विराजमान श्री अरिहंत की प्रतिमाओं को देखकर पश्चिम दिशा के क्रम से नमस्कार करता है । (३६७)

ताः पूर्ववत्प्रपूज्याष्टौ, मङ्गलानि प्रकल्प्य च ।
साष्टोत्तरशतश्लोकां कुर्वंति चैत्यवन्दनाम् ॥३६८॥

उन प्रतिमाओं की पूर्व के समान पूजाकर अष्ट मंगल की आलेख रचना कर १०८ श्लोक से स्तुति बोलकर चैत्य वंदन करते हैं । (३६८)

दाक्षिणात्यचैत्यवृक्षमहेन्द्रध्वजपूजनम् ।
कृत्वा नन्दापुष्करिणीं, दाक्षिणात्यां वज्रन्ति ते ॥३६९॥

दक्षिण दिशा के चैत्य वृक्ष और महेन्द्र ध्वज की पूजा करके वे दक्षिण दिशा की नन्दा पुष्करिणी में जाते हैं । (३६९)

तत्तोरणत्रिसोपानप्रतिरूपकपुत्रिकाः ।
व्यालरूपाण्यर्चयन्ति, पुष्पधूपादिकैरथ ॥३७०॥

उस नंदा पुष्करिणी के तोरण, तीन सौपान की पंक्ति, प्रतिरूपक पुतलियां और व्याल रूप की पुष्प धूप आदि से पूजा करते हैं । (३७०)

चैत्यं प्रदक्षिणीकृत्यौत्तराहद्वारसंस्थिताम् ।
नन्दापुष्करिणमेत्य कुर्वन्ति प्राग्वदर्चनम् ॥३७१॥

चैत्य को प्रदक्षिणा देकर उत्तर दिशा के द्वार पास रहकर नन्दा पुष्करिणी में आकर पूर्व के समान पूजा करते हैं । (३७१)

उदीच्यान् केतु चैत्य द्रुस्तूपांस्तस्तप्रतिमाः क्रमात् ।
उदक्प्रेक्षामण्डपं चार्चयन्तिमुख मण्डपम् ॥३७२॥

उत्तर दिशा की ध्वजा, चैत्यवृक्ष, स्तूप और प्रतिमा को क्रमशः पूज्य करते है, फिर उत्तर दिशा के प्रेक्षा मंडप को मुख मंडप की पूजा करते हैं । (३७२)

ततो द्वारमौत्तराहं प्राच्यं द्वारं ततः क्रमात् ।
प्राच्यान्मुखमण्डपादीन् प्रपूजयन्ति याम्यवत् ॥३७३॥

उसके बाद उत्तर दिशा के द्वार को पूजा करते हैं, फिर क्रमशः करते हुए पूर्व दिशा के द्वार मुख मंडप आदि दक्षिण दिशा के समान पूजा करते हैं । (३७३)

ततः सभां सुधर्मा ते, प्रविश्य पूर्वया दिशा ।
यत्र माणवकश्चैत्यस्तम्भस्तत्राभ्युपेत्य च ॥३७४॥

आलोके तीर्थ कृत्सक्थ्नां, प्रणता लोम हस्त कैः ।
प्रमार्जितादाददते, तानि वज्र समुद्रकात् ॥३७५॥

ततो लोमहस्तकेन, प्रमृजयोदकधारया ।
प्रक्षाल्याभ्यर्च्य पुष्पाद्यै निक्षिपन्तिसमुद्रके ॥३७६॥

उसके बाद वह नया उत्पन्न हुए स्वामी देवता पूर्व दिशा से सुधर्मा सभा में प्रवेश करके जहां माणवक चैत्य स्तंभ है वहां आकर तीर्थंकर परमात्मा के अस्थि को देखते ही नमस्कार करता है, मोर पिच्छ से वज्रमय डब्बे को प्रमार्जन करते है, उन अस्थियों को ग्रहण करता है मोर पिच्छ से उस अस्थि को प्रमार्जन कर अखण्ड धारा से प्रक्षालन करके पुष्पादि से पूजा करके डब्बे में स्थापना करते हैं । (३७४-३७६)

समुद्रकं यथा स्थानमवलम्ब्यार्चयन्ति च ।
पुष्पमाल्यगन्धवस्त्रैश्चैत्यस्तम्भं ततोऽत्र च ॥३७७॥

डब्बे को यथास्थान पर स्थापन करके पुष्प माला, सुगंधी चूर्ण और वस्त्र से चैत्य स्तंभ की पूजा करते हैं । (३७७)

कृत्वा सिंहासनस्यार्चां, मणिपीठकया सह ।
क्षुल्लकेन्द्र ध्वज स्यार्चां कुर्वते ऽम्भः कुसुमादि भिः ॥३७८॥

उसके बाद मणि पीठिका सहित सिंहासन की पूजा करके छोटे ध्वज को कुसुमादि से उसकी पूजा करते हैं । (३७८)

कोशं प्रहरणस्याथ, समेत्य संप्रमृज्य च ।
खड्गादीनि प्रहरणान्यभ्यर्चयन्ति पूर्ववत् ॥३७९॥

फिर शस्त्र भंडार के पास जाकर उसकी प्रमार्जन कर तलवार आदि शस्त्रों की पूर्व के समान पूजा करते हैं । (३७९)

सुधर्मा मध्यदेशेऽथ प्रकल्प्य, हस्तकादिकम् ।
देवशय्यां पूजयन्ति, मणिपीठिकया सहः ॥३८०॥

सुधर्मा सभा के मध्य भाग में पंजे का थापा (चिन्ह) करके मणिपीठिका सहित देवशय्या को वे देवता पूजा करते हैं । (३८०)

ततश्चैते सुधर्मातो, निर्यान्तो याम्यया दिशा ।
सिद्धायतन्वद् द्वारत्रयमर्चन्ति पूर्ववत् ॥३८१॥

उसके बाद सुधर्मा सभा के दक्षिण दिशा के द्वार से निकलते ये देव सिद्धयतन के समान तीन द्वारों की पूर्व के समान पूजा करते हैं । (३८१)

एवं ह्रदं सभाश्चान्याः स्व स्वोपस्करसंयुताः ।
व्यवसाय सभां चान्ते, पूजयित्वा सपुस्तकाम् ॥३८२॥

इस प्रकार से सरोवर को अपने-अपने परि कर युक्त अन्य सभाओं को और अन्त में पुस्तक सहित व्यवसाय सभा की पूजा करते हैं । (३८२)

व्यवसाय सभावर्ति प्राच्य पुष्करिणी तटात् ।
कुर्वते बलिपीठे ते, गत्वा बलिविसर्जनम् ॥३८३॥

उसके बाद व्यवसाय सभावर्ती पूर्व पुष्करिणी के तट से बलि पीठ ऊपर जाकर वे बलि विसर्जन करते हैं । (३८३)

स्वीय स्वीय विमानानां श्रङ्गाटक त्रिकादिषु ।
उद्यानादौ चार्चनिकां, कारयन्त्याभियोगिकैः ॥३८४॥

उसके बाद अपने-अपने विमान के सिंघाड़े आकार के स्थान, त्रिकोन आकार के स्थान तथा उद्यानादि के स्थानों में अभियोगिक देवताओं द्वारा पूजा करते हैं । (३८४)

अथैवंकृत कृत्यास्ते, ऐशानकोणसंस्थिताम् ।
नन्दा पुष्करिणीमेत्य, तस्याः कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥३८५॥

प्रक्षाल्य हस्तपादादि, विलसन्ति यथा रूचि ।
सभां सुधर्मामेत्यं प्राग्मुखाः सिंहासने स्थिताः ॥३८६॥

इस प्रकार से कार्य पूर्ण करके कृतकृत्य बने देवता ईशान कोन में स्थित नंदा पुष्करिणी जाकर उसकी प्रदक्षिणा देकर हाथ पैर आदि धोकर सुधर्मा सभा में आकर सिंहासन ऊपर पूर्वाभिमुख रहकर इच्छानुसार विलास करता है । (३८५-३८६)

एवमत्रामुत्र लोके, हितावहं जिनार्चनम् ।
इति तत्रालोकमात्रात्प्रणमन्ति पुनः पुनः ॥३८७॥

इस प्रकार इस लोक और परलोक में श्री जिनेश्वर का पूजन हितकारी है, इस भावना से वहां दर्शन मात्र से ही बारम्बार नमस्कार करता है । (३८७)

न नमन्ति न वा तानि स्तुवन्ति च मनागपि ।
लोकस्थित्या धर्मबुद्धय, कृतयोर्ह्यन्तरं महत् ॥३८८॥

वे देव तीर्थंकर परमात्मा को नमन स्तवन आदि करते हैं वह लोक स्थिति से नहीं करते परन्तु धर्मबुद्धि से करते हैं । क्योंकि धर्मबुद्धि से लोक स्थिति से किये कार्य में महान् अंतर होता है । (३८८)

स्तुवन्ति नव्यैः काव्यैश्च, तथा शक्रस्तवादिभिः ।
शेषाणि तु स्थिति कृते, पूजयन्ति कुसुमादिभिः ॥३८९॥

सत्यप्येवं स्थितिमेव, ये वदन्ति जिनार्चनम् ।
कथं ते लुप्तनयना, बोध्या रैताम्रयोर्भिदाम् ॥३९०॥

नये काव्य से तथा शक्र स्तवनादि से वे देवता जिनेश्वर परमात्मा की स्तुति करते हैं और अन्य मूर्तियों को अपने आचार के कारण से पुष्पों से पूजा करते

हैं। इस तरह होने पर भी यदि मनुष्य जिनेश्वर देवा की पूजा को केवल आचार रूप में गिनता है उनको बोध किस तरह करवाना चाहिए ? जैसे चक्षु विहीन अंधजन को रजत और ताम्बे के भेद को बोध नहीं करा सकते हैं, वैसे उन्हें भी बोध नहीं करवा सकते हैं। (३८९-३९०)

राजप्रशनीयसूत्रे यत्सूर्याभस्य सुपर्वण: ।
विमानवर्णनं तस्योत्पत्तिरीतिश्च दर्शिता ॥३९१॥

माया तदनुसारेण, वैमानिकसुपर्वणाम् ।
विमानवर्णनोत्पत्ती, सामान्यतो निरूपिते ॥३९२॥

विशेषमुक्तशेषं तु, जानन्त्यशेषवेदिन: ।
गीतार्था निहितानर्था, यद्वा तद्वाक्यपारगा: ॥३९३॥

श्री राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभदेव के विमान का वर्णन, उसकी उत्पत्ति का तरीका दिखाया है। उसके अनुसार मैंने वैमानिक देवताओं के विमान का वर्णन और उत्पत्ति का तरीका सामान्य रूप से वर्णन किया है। शेष रहा विशेष वर्णन तो सर्वज्ञ भगवन्त जानते हैं। अथवा भगवन्त के वाक्य के पारगामी अनर्थ को दूर करने वाले श्री गीतार्थ महामुनि जानते हैं। (३९१-३९३)

देव्यो देवा: परेऽप्येवं, तत्तद्विमानवासिन: ।
जायन्ते स्वस्व शय्यायां, स्वस्व पुण्यानुसारत: ॥३९४॥

इस प्रकार से उस विमान में निवास करने वाले देव देवियां भी अपने अपने शय्या में अपने-अपने पुण्य अनुसार उत्पन्न होते हैं। (३९४)

येय मुक्ता विमानानां, स्थिति स्तत्स्वामि नामपि ।
अच्युत स्वर्ग पर्यन्तं, सा सर्वाऽप्यनुवर्त्तते ॥३९५॥

विमानों का वर्णन तथा विमानों में स्वामी की स्थिति का वर्णन जो यहां किया है वह अच्युत स्वर्ग तक इस तरह से ही समान समझना चाहिए। (३९५)

परतस्त्वहमिन्द्राणां न स्वामिसेवकादिका ।
स्थिति: काचित्सुमनसां कल्पातीता हि ते यत: ॥३९६॥

अच्युत स्वर्ग के बाद रहे देवता अहमिन्द्र होने से स्वामी सेवकादि स्थिति नहीं होती है, क्योंकि वे कल्पातीत होते हैं । (३६६)

ते प्राग्जन्मो पात्तशस्तनामकर्मानुभावतः ।
न्यक्षसल्लक्षणोपेत सर्वाङ्गोपाङ्गशोभिताः ॥३६७॥

वे देव प्राग्जन्म में उपर्जित किये प्रशस्त नाम कर्म के प्रभाव से सम्पूर्ण सद् लक्षण से युक्त अंगोपांग से शोभित होते हैं । (३६७)

जात्यस्वर्णवर्णदेहा, आद्य संस्थान संस्थिताः ।
अत्यन्त सुन्दराकाराः, सारपुद्गलयोनयः ॥३६८॥

जाति मान सोना के समान कान्तिवान देह वाले, प्रथम संस्थान (समचतुरस्र संस्थान) वाले होते हैं, अत्यन्त सुन्दर आकार वाले और सारभूत पदार्थ में से उत्पन्न हुए होते हैं । (३६८)

असृग्मांसवसामेदः पुरीषमूत्रचर्मभिः ।
अन्त्रास्थिश्मश्रुनखरोमोद्गमैश्च वर्जिताः ॥३६६॥

रूधिर, मांस, चर्बी, मेद वीष्ठा, मूत्र चर्म आतंरडे, हड्डी दाढी-मूंछ के बाल नख और रोम आदि से रहित होते हैं । (३६६)

कुन्देन्दु श्वेतदशनाः प्रवाल जित्वराधराः ।
धनान्जन श्याम केशपाशपेशलमौलयः ॥४००॥

इन देवताओं के दांत मच कुंद और चन्द्रमा के समान श्वेत होते हैं और उनके होठ प्रवाल से भी अधिक लाल वर्ण वाले होते हैं और उनके मस्तक, मेघ और अंजन समान श्याम केश पास से सुन्दर होते हैं । (४००)

तथोक्तमौपपातिके - "पंडुरससिस कल विमल निम्मल संखगोखीर फेण दग रय मणुलिया धवल दंत सेढी, तथा अंजण घण कसिणणिद्धरमणीयणिद्ध केसा" इत्यादि, संग्रहण्यां तु 'केसट्ठिमं सुन हरोम रहिया' इत्युक्तमिति ज्ञेयं ॥

श्री औपपातिक सूत्र में इस तरह कहा है - कला सहित धवल चन्द्रमा, निर्मल शंख, गाय का दूध, फेन, पानी के कण, कमल का कंद के समान सफेद दंत

देवों को समझना । खड्ग अर्थात् गेंडा, जंगली पशु समझना चाहिए । शाश्वत: शब्द कोष में खड्ग अर्थात् गंडक, तलवार सिंघोड़ा और बुद्ध के भेद रूप में कहा है । विडिम शब्द से मृग विशेष रूप में समझना चाहिए तथा देशी शास्त्र में विडिम का अर्थ बालमृग और गंड अर्थ में कहा है ।'

औप पातिके त्वेवं चिह्न विभागो दृश्यते - सोहम्य १ ईसाण, २ सणं कुमार, ३ माहिंद ४ बंभ 5 लतंग ६ महासुक्क, ७ सहस्सार ८ आणय पाणय ६ आरण अच्चुय १० वई पालय १ पुप्फय २ सोमण स, ३ सिरिवच्छ ४ नंदियावत्त, ५ कामगम, ६ पी इगम, ७ मणोरम, ८ विमल, ६ सव्व ओभद्द १० नामधिज्जेहिं विमाणहिं ओइन्ना वंदगा जिणंद मिग १ महिस, २ वराह, ३ छगल, ४ दद्दुर ५ हय, ६ गयवई, ७ भुयग ८ खग्ग ६ उसभं १० कविडिम पाय डिय चिंघम उडा'' इति अत्र मृगादयोऽङ्क - लाच्छनानि विटपेषु-विस्तारेषु येषां मुकुटानां तानि तथा, तानि प्रकटित चिह्ननि रत्नादि दीप्त्या प्रकाशित मृगादि लाच्छनानि, मुकुटानि येषा ते तथा इति तत्वं तु सर्वं विदो विदन्ति॥

औप पातिक सूत्र में चिन्ह के विभाग इस प्रकार से है - १- सौधर्म, २- देव लोक, ३- ईशान, ४- सनत्कुमार, ५- माहेन्द्र, ५- ब्रह्म, ६ लांतक ७- महाशुक्र, ८- सहस्रार, ६- आनत-प्राणत, ११,१२ आरण-अच्युतके इन्द्र महाराज श्री जिनेश्वर भगवन्त को वंदन करने आते हैं उस समय १- पालक, २- पुष्पक, ३- सौमनक, ४- श्रीवत्स, ५- नंधावर्त, ६- कामगम, ७- प्रीतिगम, ८- मनोरम, ६- १० विमल और ११-१२ सर्वतोभद्र नामक विमानों में से नीचे उतरते हैं तब उनके मस्तक पर अनुक्रम से १- मृग, २- भैस, ३- जंगली सूअर, ४- बकरा, ५- मेंढक, ६- घोड़ा, ७- हाथी, ८- सर्प, ६- गेंडा, १० बृषभ-बैल आदि के प्रगट चिन्ह वाले मुकुट होते हैं । तथा वे मुकुट रत्नादि की कान्ति से प्रकाशित प्रकट रूप मृगादि के चिन्ह वाले होते हैं । इस तरह से प्रज्ञापना और औप पातिक सूत्र का चिन्ह के विषय में मत भिन्न होते हैं इस सम्बन्धी तत्व तो सर्वज्ञ भगवन्त ही जाने ।''

विवक्षवस्त्वमी अर्द्धमागध्या रम्यवर्णया ।
भाषन्ते चतुरस्वान्तचमत्कारकिरा गिरा ॥४०४॥

देवों को समझना । खड्ग अर्थात् गेंडा, जंगली पशु समझना चाहिए ।शाश्वत: शब्द कोष में खड्ग अर्थात् गंडक, तलवार सिंघोड़ा और बुद्ध के भेद रूप में कहा है । विडिम शब्द से मृग विशेष रूप में समझना चाहिए तथा देशी शास्त्र में विडिम का अर्थ बालमृग और गंड अर्थ में कहा है ।'

औप पातिके त्वेवं चिह्न विभागो दृश्यते - सोहम्य १ ईसाण, २ सणं कुमार, ३ माहिंद ४ बंभ 5 लतंग ६ महासुक्क, ७ सहस्सार ८ आणय पाणय ९ आरण अच्चुय १० वई पालय १ पुप्फय २ सोमण स, ३ सिरिवच्छ ४ नंदियावत्त, ५ कामगम, ६ पी इगम, ७ मणोरम, ८ विमल, ९ सव्व ओभद्द १० नामधिज्जेहिं विमाणहिं ओइन्ना वंदगा जिणंद मिग १ महिस, २ वराह, ३ छगल, ४ दद्दुर ५ हय, ६ गयवई, ७ भुयग ८ खग्ग ९ उसभं १० कविडिम पाय डिय चिंघम उडा''इति अत्र मृगादयोऽङ्क - लाच्छनानि विटपेषु-विस्तारेषु येषां मुकुटानां तानि तथा, तानि प्रकटित चिह्ननि रत्नादि दीप्त्या प्रकाशित मृगादि लाच्छनानि, मुकुटानि येषा ते तथा इति तत्वं तु सर्व विदो विदन्ति॥

औप पातिक सूत्र में चिन्ह के विभाग इस प्रकार से है - १- सौधर्म, २- देव लोक, ३- ईशान, ४- सनत्कुमार, ५- माहेन्द्र, ५- ब्रह्म, ६ लांतक ७- महाशुक्र, ८- सहस्रार, ९- आनत-प्राणत, ११,१२ आरण-अच्युतके इन्द्र महाराज श्री जिनेश्वर भगवन्त को वंदन करने आते हैं उस समय १- पालक, २- पुष्पक, ३- सौमनक, ४- श्रीवत्स, ५- नंधावर्त, ६- कामगम, ७- प्रीतिगम, ८- मनोरम, ९- १० विमल और ११-१२ सर्वतोभद्र नामक विमानों में से नीचे उतरते हैं तब उनके मस्तक पर अनुक्रम से १- मृग, २- भैस, ३- जंगली सूअर, ४- बकरा, ५- मेंढक, ६- घोड़ा, ७- हाथी, ८- सर्प, ९- गेंडा, १० बृषभ-बैल आदि के प्रगट चिन्ह वाले मुकुट होते हैं । तथा वे मुकुट रत्नादि की कान्ति से प्रकाशित प्रकट रूप मृगादि के चिन्ह वाले होते हैं । इस तरह से प्रज्ञापना और औप पातिक सूत्र का चिन्ह के विषय में मत भिन्न होते हैं इस सम्बन्धी तत्व तो सर्वज्ञ भगवन्त ही जाने ।''

विवक्षवस्त्वमी अर्द्धमागध्या रम्यवर्णया ।
भाषन्ते चतुरस्वान्तचमत्कारकिरा गिरा ॥४०४॥

ये देवता चतुर पुरुषों के अंत करण के चमत्कार कर इस प्रकार की वाणी से सुन्दर शब्दवाली अर्ध मागधी भाषा में अपने भाव कहते हैं । (४०४)

तथाहु :- गोयम ! देवाणं अद्धमागहाए भासाए भासंति' भगवती पन्चमशतक चतुर्थोद्देशके लोके तु 'संस्कृत स्वर्गिणां भाषेत्यादि ।'

भगवान महावीर प्रभु ने इस तरह कहा है - "हे गोतम ! देवता अर्ध मागधी भाषा से बोलते हैं ।" इस तरह श्री भगवती सूत्र के पांचवे शतक के चौथे उद्देश में कहा है । लोक में देवताओं की भाषा संस्कृत कहलाती है यह केवल लोक मान्यता ही है । असलियत नहीं है ।

प्रत्येकमङ्गोपाङ्गेषु रत्नाभ्रणभासुराः ।
अस्पृष्टकासश्वासादिविविधव्याधिवेदनाः ॥४०५॥

देवताओं के प्रत्येक अंगोपांग ऊपर रत्न आभूषणें से प्रकाशमान होते हैं । और उनके श्वास-खांसी आदि विविध प्रकार की व्याधि वेदनाएं स्पर्श भी नहीं कर सकती । (४०५)

पुण्यनैपुण्य लावण्याः संदावस्थायि यौवनाः ।
अभङ्गकामरागार्द्रा, दिव्याङ्गना कटाक्षिताः ॥४०६॥
दिव्याङ्गरागसुरभीकृतसर्वाङ्गशोभनाः ।
कामकेलिकलाभ्यासविलासहासवेदिनः ॥४०७॥
स्वभावतो निर्निमेषविशेषललितेक्षणाः ।
अम्लानपुष्पदामानः स्वैरं गगनगामिनः ॥४०८॥

ये देव पवित्र, चातुर्य युक्त लावण्य वाले सदा स्थिर यौवन वाले अत्यंत काम राग से आर्द्र बने दिव्य अंगनाओं से कटाक्षित वने होते हैं, दिव्य अंगराग विलेपन से सुगंधित और सुन्दर शरीर वाले और काम क्रीडा के कला अभ्यास, विलास और हास्य को जानने वाले होते हैं, स्वभाव से ही निर्निमेष आंखे बंद हुए बिना विशिष्ट और ललित चक्षु वाले, सदा ताजी रही पुष्प की माला वाले और इच्छानुसारी गगन विहारी होते हैं । (४०६-४०८)

मनश्चिन्तितमात्रेण, सर्वाभीष्टार्थसाधकाः ।
वचनातिगसामर्थ्याग्निग्रहानुग्रहक्षमाः ॥४०९॥

प्रयोजन विशेषेण, प्राप्ता अपि भुवस्तलम् ।
तिष्ठन्ति ते व्यवहिताश्चतुर्भिरङ्गुलैर्भुवः ॥४१०॥

मन के चिन्तित करने मात्र से सर्व इच्छित अर्थ (कार्य) को सिद्ध करने वाले होते हैं, वचनातीत सामर्थ्य से निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ होते हैं किसी प्रयोजन विशेष में पृथ्वी ऊपर आते हैं फिर भी पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर रहते हैं । (४०९-४१०)

वायुत्तरेशान दिक्षु, सेव्याः सामानिकैः सुरैः ।
अग्नियाम्यानैर्ऋतीषु, पर्षद्भिस्तिसृभिर्युताः ॥४११॥

देवता की वायव्य, उत्तर और ईशान दिशा में रहने वाले सामानिक देवताओं से सेवा होती है और उनकी आग्नेय कोन, दक्षिण और नैऋत्य दिशा में पर्षदा होती है । (४११)

पुरोऽग्रहमहिषीभिश्च, पृष्ठतोऽनीक नायकैः ।
सेव्याः समन्ताद्विविधायुधाढयैश्चात्मरक्षकैः ॥४१२॥

उन देवता के आगे अग्र महिषियां होती हैं, उनके पीछे सेनापति होते हैं और चारों तरफ विविध आयुध से युक्त आत्मरक्षक देवता सेवा करते हैं । (४१२)

सुस्वरैर्दिव्यगन्धर्वैर्गीतासु पदपङ्क्तिषु ।
दत्तोपयोगाः सत्तालमूर्छनाग्रामचारुषु ॥४१३॥

अप्सरोभिः प्रयुक्तेषु, नाटयेषु दत्तचक्षुषः ।
अज्ञातानेहसः सौख्यैः, समयं गमयन्त्यमी ॥४१४॥ *एकादशभिः कुलकं ॥*

अच्छे स्वरपूर्वक गंधव देवों से गाते जाते, ताल मूर्छ के ग्राम से सुन्दर ऐसी पद पंक्तियां में उपयोग वाले और अप्सराओं के द्वारा नाटक को देखते कितना समय व्यतीत हो गया है उसे वे नहीं जानते उन देवों का सुखपूर्वक समय व्यतीत होता हैं । (४१३-४१४)

जब इन देवों को काम विलास की अभिलाषा उत्पन्न होती है उस समय देव पर्षदा का विसर्जन करके अंत:पुर के साथ में सुधर्मा सभा में से निकल कर, महल रहित उद्यानादि स्थानों में जाकर कामकेलि करते हैं –

कामलीलाभिलाषे तु, विसृज्य देवपर्षदम् ।
सुधर्मायाः सभायाश्च, निर्गत्यान्तः पुरैः सह ॥४१५॥

गत्वोक्तरूपप्रासादोद्यानादिष्वास्पदेषु ते ।
मनोऽनुकूलाः सर्वाङ्गसुभगा दिव्यकामिनीः ॥४१६॥

रम्यालङ्कारनेपथ्या, रूपयोवनशालिनीः ।
कटाक्ष विशिखैर्नर्मोक्तिभिर्द्विगुणितस्पृहाः ॥४१७॥

भर्तृचित्तानुसारेणानेकरूपाणि कुर्वतीः ।
प्रतिरूपैः स्वयमपि, प्रेमतो बहुभिः कृतैः ॥४१८॥

हठात्प्रत्यङ्गमालिङ्गय, वक्त्रमुन्नम्य चुम्बनैः ।
ससीत्कारं सुधाधारमधुराधरखण्डनैः ॥४१९॥

निःशङ्कमङ्कमारोप्य, निर्दयं स्तनमर्द्दनैः ।
मज्जनतो मैथुनरसे, मनुष्यमिथुनादिवत् ॥४२०॥

इत्थं सर्वाङ्गीण कायक्लेशोत्थां स्पर्श निर्वृतिम् ।
आंसादयन्तस्तृप्यन्ति, क्लिष्टपुंवेदवेदनाः ॥४२१॥ *सप्तभिः कुलकं ॥*

मन के अनुकूल सर्व अंग में सौभाग्यशाली दिव्य अप्सरायें जो सुन्दर अलंकार और वस्त्र धारण करती हैं । रूप और यौवन से शोभायमान होती हैं । कटाक्ष रूपी बाल से मखौल भरी प्रेमयुक्त वाणी से प्रेम प्रीति को द्विगुणीत करने वाली होती है, और पति के चित्त के अनुसार अनेक रूपों को बनाने वाली होती है स्त्रियों के साथ में स्वयं भी प्रेम पूर्वक अनेक रूप के बल से अंग-अंग में आलिंगन करके मुख पर चुंबन करके, मुख को अच्छी तरह नमाकर, दबाकर अत्यन्त हर्ष के समय का सी, सी शब्द सीत्कार (सिसकारी) निकले उस तरह सुधा पान सदृश मधुर होठ को चुम्बन करते हुए निःशंकता पूर्वक अप्सराओं को गोद में बैठाकर निर्दयता पूर्वक स्तन को मर्दन करके, मनुष्य के मैथुन के समान मैथुन रस में डूब

जाता है । सर्व अंगों में काय के कलेश की उत्पन्न हुई स्पर्श निवृत्ति को प्राप्त होते, तीव्र पुरुष वेद की वेदना वाला वह देवता तृप्त (शान्त) होता है । (४१५-४२१)

रतामृतास्वादलोलाः, कदाचिन्मदनोन्मदाः ।
मुग्धावत्कम्पनैर्भीतिरूतैर्द्रापसर्पणैः ॥४२२॥

कदाचिच्चारुमध्या वल्लज्जाललित नेष्टितैः ।
कदाचित्प्रौढमहिला, इव वैयात्यवल्गितैः ॥४२३॥

कदाचिद्रोषतोषार्द्रैः, परुषैः पुरुषायितैः ।
प्रत्याश्लेषप्रतिवचःप्रतिचुम्बनवल्गनैः ॥४२४॥

पारापतादिशब्दैश्च, द्वि गुणामुन्मदिष्णुताम् ।
जनयन्त्यश्चिरं भर्तुर्देव्योऽपि सुरतोत्सवैः ॥४२५॥

शुक्रस्य वैक्रियस्याङ्गे संचारादखिलेसुखम् ।
आशादयन्त्यस्तृप्यन्ति, क्लिष्टस्त्रीवेदवेदनाः ॥४२६॥ *पञ्चभिः कुलकं ॥*

मैथुन के अमृत सदृश आस्वाद में चपल बनीं, काम के उन्माद वाली अप्सराएं कभी भोली-मुग्धा स्त्रियों के समान, भय, कंपन आवाज और आगे पीछे खिसकने द्वारा मुग्धा के समान आचरण करती है, तो कभी मध्या स्त्री के समान लज्जा से सुन्दर चेष्टा करके मध्या-नायिका समान आचरण करती है, कभी प्रौढ महिला के समान निःसंकोचता से स्वतन्त्रता से (लिपट जाना) वल्गनादि करती है, कभी पुरुष समान कठोर रोष और तोषार्द्र वर्तन करती है, तो कोई प्रति आलिंगन, प्रति वचन, प्रति चुम्बन और वल्गन-लिपट जाती है, कभी कबूतर आदि जैसे शब्द करती हैं । ऐसी सब सुरत क्रीड़ाएं द्वारा देवियां भी देवों को बहुत काल तक मदोन्मत्तता को बढ़ाती जाती है । इस तरह महोत्सव से वैक्रिय शुक्र को सम्पूर्ण अंग में संचार होने से क्लिष्ट स्त्री वेद की वेदना को तृप्त करते हैं । (४२२-४२६)

ते शुक्रपुद्गला भुज्यमानदिव्यमृगीदृशाम् ।
चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वात्वगिन्द्रियतयाऽसकृत् ॥४२७॥

द्रुतं परिणमन्त्येते, रूपलावण्यवैभवम् ।
परभागं प्रापयन्ति, सौभाग्यं, यौवनम् तथा ॥४२८॥

संगम कराने वाली दिव्य स्त्रियों के शरीर में गये वह शुक्र पुद्गल चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना और स्पर्शन, इन सब इन्द्रिय रूप में बारम्बार और तुरंत परिणाम होते हैं, और परिणाम होने से वह शुक्र पुद्गल देवांगनाओं के रूप लावण्य के वैभव को तथा सौभाग्य और यौवन को उद्दिप्त प्रकृष्ट बनाता है । (४२७-४२८)

तथा च प्रज्ञापना - "अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं सुक्क पुग्गला ? हंता अत्थि, ते णं भंते ! तासिं अच्छराणं कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणभंति ? गोयम ! सोइंदि यत्ताए जाव फासिंदियत्ताए इट्ठत्ताइ कंतत्ताए मणुन्नत्ताए मणामत्ताए सुभत्ताए सोहग्गरुव जोव्वण गुणलायणत्ताए, एयासिं भुज्जो भुज्जो परिणमंति"

और प्रज्ञापना सूत्र में कहा है - हे भगवंत ! देवता को शुक्र पुदगल होते हैं? भगवान ने कहा होता है । हे भगवन्त ! वह पुदगल अप्सराओं को किस तरह बारम्बार उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय से स्पर्शनेन्द्रिय तक पांचों इन्द्रिय रूप में तथा इष्ट रूप में, प्रिय रूप में मनोज्ञ रुप में मन-उन्मत्ता रूप में, शुभ रूप में, सौभाग्य रूप में, यौवन तथा लावण्य रूप में इन अप्सराओं को वह शुक्र पुद्गल बारम्बार उत्पन्न होता है ।'

एवं केचित्सुरास्तीव्रमदनोन्मत्तचेतसः ।
स्वनायिकोपीभोगेनातृप्ताः क्लृप्तापराशयाः ॥४२९॥

वर्यचातुर्य सौन्दर्यपुण्याः पण्याङ्गना इव ।
निजानुरक्ता अपरिगृहीता भुञ्जते सुरीः ॥४३०॥

इस तरह से कोई देवता तीव्र काम की वेदना से उन्मत्त चित्त वाला बन अपनी नायिका को भोगने पर भी अतृप्त रहता है, इससे ही अन्य देवियों को भोगने की इच्छा वाला बना, श्रेष्ठ चतुराई और सौंदर्य से पवित्र बना अपने पर अनुराग वाली वेश्या के समान अपरिग्रहिता देवियों का सेवन करता है । (४२९-४३०)

तथा ह्युनमत्तता द्वेधा, देवानामपि वर्णिता ।
एका यक्षावेशभवा, मोहनीयोद्यात् परा ॥४३१॥

देवताओं की भी उन्मत्तता दो प्रकार की कही है । १- यक्ष के आवेश से उत्पन्न होती है, और २- मोहनीय के उदय से उत्पन्न होती है । (४३१)

अल्पर्द्धिकं तत्र देवं, रुष्टो देवो महर्द्धिकः ।
दुष्टपुद्गलनिक्षेपात् कुर्यात परवशं क्षणात् ॥४३२॥

ततश्च ग्रहिलात्माऽसौ यथा तथा विचेष्ट ते ।
द्वितीया द्विविधा तत्र, मिथ्यात्वात्प्रथमा भवेत् ॥४३३॥

अतत्वं मन्यते तत्वं, तत्वं चातत्वमेतया ।
चारित्र्यमोहनीयोत्था, परा तयाऽपि चेष्टते ॥४३४॥

भूताविष्ट, इवोत्कृष्टमन्मथादिव्यथार्दितः ।
यक्षावेशोत्था सुमोचा दुर्मोचा मोहनीयजा ॥४३५॥

वहां अल्प ऋद्धि वाले देव को महा ऋद्धि वाला देव क्रोध में आकर दुष्ट पुदगल डालकर क्षण में परवश बना देता है, इसके पागल समान बनकर वह देव महा मुश्किल से चेष्टा करता है । दूसरा प्रकार – मोहनीय प्रभा से दो प्रकार से उन्मत्तता होती है । एक मिथ्यां के उदय से दूसरी चारित्र मोहनीय के उदय से होती है । मिथ्यात्व के उदय से उत्पन्न हुई उन्मत्तता के कारण वह देव अतत्व को तत्व मानता है और तत्व को अतत्व मानता है । और चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न हुई उन्मत्तता से भूताविष्ट हुए के समान कामदेव आदि की व्यथा से दुःखित बने चेष्टा करता है । यक्ष के आवेश से उत्पन्न हुई उन्मत्तसा तो सरलता से दूर कर सकते हैं, परन्तु मोहनीय कर्म से उत्पन्न हुई उन्मत्तता से मुश्किल से मुक्त हो सकता है । (४३२-४३५)

तथाहुं - "असुर कुमाराणं भंते ! कइविहे उम्माए पं० ? गोयम दुविहे प० एवं जहेव णेरतियाणं णवरं देवे वा से महिड्ढिय तराए अशुभे पुग्गले पक्खिवेज्जा से णं तेसि असुभाणं पुग्गलाणं पक्खिवणताए, जक्खाएसं उम्मायं पाउणिज्जा, मोहणिज्जस्स वा सेसं तं चेव, वाणमंतर जोति सवेमाणि याणं जहा असुर कुमाराणं" भगवती सूत्रे ।

इस विषय में श्री भगवती सूत्र में कहा है – 'हे भगवन्त ! असुर कुमार देवों को कितने प्रकार का उन्माद होता है इसके उत्तर में भगवान कहते हैं – हे गौतम! वह दो प्रकार से कहा है । जिस तरह से नरक के जीवों को होता है वैसे देवों में महर्द्धिक देव अशुभ पुद्गल को प्रक्षेप करते है, डाले हुए अशुभ पुद्गलों से वह

देव यक्षावेश नामक उन्माद को प्राप्त करता है । और दूसरा मोहनीय के उन्माद से होता है । इस तरह से वाण व्यंतर ज्योतिष और वैमानिक देवताओं का असुर कुमार के समान समझ लेना ।'

पश्यतैवं शक्ति युक्ता, विवेकिनोऽपि नाकिनः ।
हन्तानेनविडम्बयन्ते, सततं सर्वङ्कषः स्मरः ॥४३६॥

देखो इस तरह से शक्तिशाली और विवेकी भी देवता वस्तुतः इस कामदेव से विडम्बित (दुःखी) होता है इसलिए कामदेव सबको खींचने वाला है यह बात सत्य है । (४६६)

योऽखर्वयच्दर्वगर्वसर्वस्वमौर्वदुर्वहः ।
किमपूर्वमखर्वोऽयं, निर्वपुर्यत्सुपर्वजित् ॥४३७॥

सर्व लोक के गर्व का सर्वस्व तिरस्कार करने वाला, पर्वत के समान दुर्वह-वहन न करने योग्य, अखर्व-विशाल कामदेव कोई अपूर्व कोटी का है जोकि शरीर रहित होने पर भी देवों को भी जीतने वाला है । (४३७)

भवनव्यन्तरज्योतिष्काद्यकल्पद्वयावधि ।
विडम्बनैवं कामस्य, ज्ञेया नातः परं तथा ॥४३८॥

भवन पति, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक में दो देवलोक तक इस तरह कामदेव की विडम्बना होती है उसके बाद ऐसा नहीं होता । (४३८)

अथो यथोक्तकालेन, यद्याहारार्थिनः सुराः ।
तदा संकल्प मात्रेणोपस्थिताः सारपुद्गलाः ॥४३६॥
सर्वगात्रेन्द्रिया ह्लादप्रदाः परिणमन्ति हि ।
सर्वाङ्गमाहारतया, शुभकर्मानुभावतः ॥४४०॥

इसके बाद जब शास्त्रोक्त समय में आहार की इच्छा होती है उस समय संकल्प मात्र से उपस्थित हुई सर्व गात्र-शरीर और इन्द्रियों को आह्लाद देने वाले सारभूत पुदगल सर्व उमंग में शुभ कर्म के प्रभाव से आहार रूप में परिणित होता है । (४३६-४४०)

प्राप्नुवन्तः परातृप्तिमाहारेणामुना सुराः ।
विन्दते परमानन्दं, स्वादीयोभोजनादिव ॥४४१॥

इस आहार से देवताओं को परम तृप्ति होती है, स्वादिष्ट भोजन के समान परमानंद को प्राप्त करते हैं । (४४१)

अतएवाभिधीयन्ते, ते मनोभक्षिणः सुराः ।
प्रज्ञापनादिसूत्रेषु, पूर्वर्षिसंप्रदायतः ॥४४२॥

तथाहु :- **''मणोयक्खिणो ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ।''**

इस कारण से ही प्रज्ञापनादि सूत्रों में पूर्वर्षि संप्रदाय से देवताओं को मनोभक्षी कहा है । (४४२) प्रज्ञापना में कहा है कि - हे श्रमणायुष्य वह देव समूह मनोभक्षी कहा है । '

आहार्य पुद्गलांस्तांश्च, विशुद्धावधिलोचनाः ।
अनुत्तरसुरा एव, पश्यति न पुनः परे ॥४४३॥

आहार योग्य पुदगलों को विशुद्ध अवधि रूप लोचन वाले अनुत्तर विमान वासी देवता ही देख सकते हैं । अन्य देवता नहीं देख सकते हैं । (४४३)

सहस्राणि दशाब्दानां, येषामायुर्जघन्यतः ।
भवनेशव्यन्तरास्तेऽहोरात्रसमतिक्रमे ॥४४४॥

इच्छन्ति पुनराहारं, तथा स्तोकैश्च सप्तभिः ।
उच्छ्‌वसन्ति शेषकाले, नोच्छ्‌वासो न मनोऽशनम् ॥४४५॥

जिन देवताओं का आयुष्य जघन्य से १० हजार वर्ष का है, उन भवनपति और व्यन्तर देवता को एक अहोरात्रि के जाने के बाद आहार की इच्छा होती है और सात स्तोक प्रमाण समय व्यतीत होने के बाद श्वास लेते हैं, शेष काल में उन देवों का श्वासोच्छ्‌वास अथवा मनोआहार नहीं होता है । (४४४-४४५)

दशभ्योऽब्दसहस्रेभ्यो, वर्द्धमानैः क्षणादिभिः ।
किंचिदूनसागरान्तं, यावद्येषां स्थितिर्भवेत् ॥४४६॥

तेषां दिन पृथक्तवैः स्याद् वृद्धि भाग् योजनान्तरम् ।
मुहूर्त्तानां पृथक्त वैश्च, श्वासोच्छ्‌वासान्तरं क्रमात् ॥४४७॥

दस हजार वर्ष से एक-एक क्षण बढते यावत् सागरोपम से कम जिसकी स्थिति हो ऐसे देवों को दिवस पृथकत्व में दो से नौ दिन में भोजन की इच्छा होती है और मुहूर्त (दो से नौ मुहूर्त्त) में श्वासोच्छ्वास लेते हैं । दिन पृथकृत्व भोजन अर्थात् इन देवों को दिन पृथकत्व - भोजनानंतर होता है और मुहूर्त्त पृथकत्व श्वासोच्छ्वास होता है । (४४६-४४७)

पृथुक्त्वं तु द्विप्रभृतिन वपर्यन्तमुच्यते ।
पूर्णाम्भोधिस्थितीनां तु ततः सागरसंख्यया ॥४४८॥

आहारोऽब्द सहस्रैः स्यात्पक्षैरूच्छ्वास एव च ।
एव च स्वर्गयोराद्यद्वितीययोः सुधभुजः ॥४४९॥

पृथक्त्व शब्द २ से ९ संख्या का सूचक है । सम्पूर्ण सागरोपम की स्थिति वाले देवों की जितने सागरोपम का आयुष्य होगा उतने हजार वर्ष आहार की अभिलाषा होती है । अर्थात एक सागरोपम के आयुष्यवान् देव को एक हजार वर्ष में आहार होता है और सागरोपम की संख्या अनुसार उतने पाक्षिक में श्वासोच्छ्वास लेते हैं । एक सागरोपम के आयुष्यवान् देव पाक्षिक में श्वासोच्छावास लेता है । इस तरह प्रथम और द्वितीय देवलोक के देवता को हजार वर्ष में आहार और पखवाडिये में श्वासोच्छवास होता है । (४४८-४४९)

जघन्य जीविनो घस्त्रपृथक्त्वेनैवभुज्जते ।
मुहूर्तानां पृथक्त्वेन श्वासोच्छ्वासं च कुर्वते ॥४५०॥

द्वाभ्यां वर्ष सहस्त्राभ्यामश्नन्त्युत्कृष्टजीविनः ।
मासेनचोच्छ्वसन्त्येवं, भाव्या मध्यमजीविनः ॥४५१॥

जघन्य आयुष्य वाले दिन पृथक्त्व में आहार करते हैं और मुहूर्त्त पृथक्त्व में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। उत्कृष्ट आयुष्य वाले दो हजार वर्ष में आहार लेते हैं, और महीने में श्वासोच्छ्वास लेते हैं । मध्यम आयुष्य वाले देवों का मध्यम समझ लेना। (४५०-४५१)

एवमेते कृताहाराः, पुनरप्यप्सरोजनैः ।
उपक्रान्ते नाटकादौ, प्रवर्त्तयन्ति मानसम् ॥४५२॥

इस तरह से आहार करके देवता अप्सराओं द्वारा प्रारंभ किये नाटक आदि में मन को लगा देते हैं । (४५२)

कदाचिच्च जल क्रीडां, कदाचिन्मज्जन क्रियाम् ।
कदाचिच्च सुहृदगोष्ठी सुखान्यनुभवन्त्यमी ॥४५३॥

कदाचिद्यान्ति सुहृदरां, वेश्मसु प्रेमनिर्भराः ।
तेऽपि नानुपसर्पन्ति, कृत्वाऽभ्युत्थानमादरात् ॥४५४॥

आसनं ददते हस्ते, धृत्वोपवेशयन्ति च ।
योजिताञ्जलयः सत्कारयन्त्यम्बरभूषणैः ॥४५५॥

ये देवता किसी समय जल क्रीडा करते हैं तो कभी स्नान-क्रीड़ा को करते हैं, कभी मित्रों के साथ में गोष्ठी बातें सुखपूर्वक करते हैं, तो कभी प्रेम से भरे मित्र देवता के घर जाते हैं, और वह मित्र देवता भी आदर पूर्वक खड़ा होकर उसके सामने आता है, उसके बाद वह देव आसन देकर प्रेमपूर्वक हाथ पकड़ कर बैठता है और अंजलि जोड़कर वस्त्राभूषण से उनका सत्कार करता है । (४५३-४५५)

एवमागच्छतां प्रत्युद्गमनं पर्युपासनम् ।
स्थितानां गच्छतां चानुगमनं रचयन्त्यमी ॥४५६॥

इस तरह आए तब सामने जाना, आने के बाद उचित सेवा करना और जाते समय में वापिस छोडने जाना इत्यादि वे देवता करते हैं । (४५६)

तथोक्तं - "अत्थि णं भन्ते ! असुर कुमाराणं सक्कारेति वा जाव पडिसंसाहणया ? जाव वेमाणि याणं ।"

'यहां प्रश्न किया है - हे भगवन्त ! असुर कुमार देवताओं का सत्कार-प्रति उपासना होती है ? उत्तर-यावत् वैमानिक देव तक यह विधि होते हैं ।'

ततो विनीतैस्तैर्मित्रदेवैः सह कदाचन ।
तेषामेव विमानेषु, क्रीडन्तः सुखमासते ॥४५७॥

इसके बाद कभी विनीत मित्रदेवों के साथ में क्रीड़ा करते सुखपूर्वक उनके विमान में रहते हैं । (४५७)

एकैकस्मिन्नाटयकाम क्रीडा गोष्ठयादि शर्मणि ।
यात्यविज्ञात एवाशु, कालो भूयान्निमेषवत् ॥४५८॥

एकएक नाट्य-काम क्रीड़ा अथवा गोष्ठि आदि सुख के अन्दर खबर नहीं पड़ती है, उनकी आंख के पलकारे के समान बहुत काल व्यतीत हो जाता है। (४५८)

तथाह छुटित गाथा -

"दो वास सहस्साइं उड्ढ अमराण होइ विसय सुहं।
पण सयपण सय हीणं जोइस वण भवण वासीणं ॥४५६॥"

फुटकर मिली गाथा कहते हैं - उर्ध्ववासी देव-विमानिक देवों का एक विषय सुख नाटक आदि एककार्य भी दो हजार वर्ष तक चलता है । इसके बाद ज्योतिष, वाण, व्यंतर, भवनपति का वह एक-एक कार्य पांच सौ वर्ष कम होता है। अर्थात् ज्योतिषी का कार्य १५०० वर्ष, वाण व्यंतर कार्य १००० वर्ष और भवनपति का कार्य ५०० वर्ष तक चलता है । (४५६)

एतं तत्तन्निधुवमसंगीतप्रेक्षणादिभिः ।
सदाप्यसंपूर्णकार्या, न तेऽत्रागन्तुमीशते ॥४६०॥

इस प्रकार से उन काम क्रीड़ा, संगीत और नाटक आदि के कारण हमेशा उनका कार्य अधूरा ही रह जाता है । इससे देवा यहां मृत्यु लोक में नहीं आ सकते हैं और नहीं इच्छा होती है । (४६०)

किंच - ततद्विमाना भरण देवाङ्गनादिवस्तुषु ।
संक्रान्तनव्यप्रेमाणो, नैतेऽत्रागनतुमीशते ॥४६१॥

इसके उपरांत उस विमान के अन्दर आभूषण और देवांगना आदि में नया नया अति गाढ प्रेम उत्पन्न हो जाने से वे देव यहां नहीं आ सकते हैं उन्हें आने की इच्छा ही नहीं होती । (४६१)

कदाचिदुत्सहन्ते चेत्पूर्वजन्मोपकारिणः ।
मातापितृस्निग्ध बन्धु गुरु शिष्य प्रिया ऽङ्गजान् ॥४६२॥

द्रष्टुं दर्शयितुं स्वीयदिव्यसंपत्तिवैभवम् ।
तदागत्यार्गलायन्तेऽनर्गलाः स्वर्गयोषितः ॥४६३॥

किसी समय उनको पूर्व जन्म के उपकारी माता, पिता, स्नेही बन्धु, गुरु शिष्य, प्रिया, पुत्र आदि को देखने के लिए तथा अपनी दिव्य संपत्ति को दिखाने का उत्साह होता है। उस समय निर्बन्ध प्रेम धारण करने वाली अप्सराएं आकर देव को बन्धन रूप होती है । अतः जाने केलिए तैयार होते उस देव को जाते हुए को रोकती है। (४६२-४६३)

किमेतदाद्यकबले, मक्षिकापतनोपमम् ।
आरब्धं क्षणमप्येकं, त्वां विना प्राणिमः कथम् ? ॥४६४॥

अद्यापि तादृशः स्नेहस्तासु पूर्वप्रियासु चेत् ।
तदाऽस्मान् कृत्रिम प्रेम्णा, कदर्थयसि नाथ किम् ? ॥४६५॥

अथः यास्यथ तन्नाट्यमिदमादिममङ्गलं ।
दृष्टवा यथेच्छं गच्छन्तु, किं रूध्याः करिणः करैः ? ॥४६६॥

और वे इस तरह कहती हैं - पहले ही कौर में मक्षिका पात समान यह क्या कर रहे हो ? तुम्हारे बिना हम एक क्षण भी किस तरह जी सकते हैं ? (४६४) यदि अभी भी तुम्हे पूर्व पत्नियों में ऐसा ही स्नेह हो तो हे कृपा नाथ ! कृत्रिम प्रेम द्वारा हमारी कदर्थना (दुर्गति) किसलिए करते हो ? (४६५) फिर भी आप जाते हो तो प्रथम मंगल रूप इस नाटक को देखकर इच्छानुसार जाओ । क्योंकि हाथ से कोई हाथी रूक नहीं सकता है ? (४६६)

इत्यादि प्रेम संदर्भगर्भितैस्तद्वचोगुणैः ।
नियन्त्रितास्तद्दाक्षिण्यात्, तत्रैते ददते मनः ॥४६७॥

इत्यादि प्रेम गर्भित वाणी से फंसा हुआ वह देव उन देवांगनाओं के प्रतिदाक्षिण्याता से वहां मन देता है । (४६७)

तत्ताण्ऽवसमाप्त्या तु पूर्व संबन्धिनां नृणाम् ।
भवा भवन्ति भूयांसः प्रायः स्वल्पायुषामिह ॥४६८॥

उस नाटक की समाप्ति हो, वहां तो पूर्व सम्बन्धी मनुष्यों का बहुत जन्म हो

जाता है । क्योंकि इस मनुष्य लोक में प्रायः कर मनुष्यों का अल्प आयुष्य होता है। (४६८)

किंच, प्राग्भवबन्धूनां ताद्दक्पुण्याद्यभावतः ।
नागन्तुमीशतेऽत्राषाढाचार्याद्य भावतः ॥४६६॥

तथा पूर्व जन्म में सम्बन्धी इस प्रकार के पुण्य प्रभाव के अभाव के कारण वह देव यहां नहीं आ सकता । अषाढा चार्य के आद्य शिष्य के समान समझना । (४६६)

तथोक्तं स्थानाङ्गे - ''तिहिं ठाणेहि अहुणोववन्ने देवे देव लोगेसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वाभागच्छित्तए, अहुणोव वन्ने देवे देवलोए दिव्वेसु काम भोएसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे, से णं माणुस्सए काम भोए नो आढाति नो परि० नो अट्ठं बधइ नो नियाण पक० नो ठितिपगप्पं क० १. अहुणोवन्ने देवे देवलोए सु दिव्वेसु कामभोएसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने तस्स णं माणुस्सए पेम्मे वोच्छिन्ने भवइ दिव्वे पेम्मे संकंते भवइ २. अहुणोव वन्ने देवे देव लोए सु दिव्वेसु काम भोगेसु मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ इयण्हिं गच्छं, मुहूर्त्ता गच्छं तेणं कालेणं अप्पाउया मणुया काल धम्मुणा संजुता भवंति ३'' इत्यादि ।

श्री स्थानांग सूत्र में कहा है कि - देवलोक में नये उत्पन्न हुए देव तीन कारण से मनुष्य लोक में जल्दी आने की इच्छा होने पर भी जल्दी नहीं आ सकते हैं। १- देवलोक में उत्पन्न हुए नये देवालोक में दिव्य कामभोग के विषय में मूर्च्छित-गृद्ध आसक्ति, उसमें फंसा हुआ और इसके ही अध्यवसाय वाला होता है, इससे वह देव मनुष्य सम्बन्धी कामभोग को नहीं चाहता है, मनुष्य सम्बन्धी कामभोग का विचार भी नहीं करता । मनुष्य सम्बन्धी कामवासना का आग्रह नहीं करता, मनुष्य सम्बन्धी कामभोग का नियाण-निदान नहीं करता कि वहां स्थिति प्रकल्प स्थिरता नहीं करता है । २- देवलोक में नया उत्पन्न हुआ देव लोक में दिव्य कामभोग में मूर्च्छित गृद्ध, (लोभी) उसमें फंसा हुआ और उसका ही विचार वाला होने से, उनको मनुष्य सम्बन्धी प्रेम नाश हो जाता है और दिव्य प्रेम संक्रान्त

(आसक्त) हो जाता है ३- देवलोक में नये उत्पन्न हुए देव देवलोक में दिव्य कामभोगी में मुर्च्छित,गृद्ध, फंसा हुआ और वैसे ही अध्यवासित होता है, फिर भी उन देवों को इस तरह होता है कि -मृत्यु (मनुष्य) लोक में मैं अभी जाता हूं, मुहूर्त के बाद जाऊंगा, परन्तु वहां इतने समय में अल्प आयुष्य वाले मनुष्य कालधर्म (मृत्यु) हो जाती है ।' इत्यादि ।

तथाऽस्य नरलोकस्य, दुर्गन्धोऽपि प्रसर्पति ।
नाना मृतक विण्मूत्राद्यशुचिप्रभवो महान् ॥४७०॥

तथा इस मनुष्यलोक के अलग-अलग प्रकार के मुरदे, विष्टा मूत्रादि की अशुचि से उत्पन्न हुई भयंकर दुर्गन्ध ऊपर के विभाग में फैलती है । (४७०)

तत्राप्यजितदेवादिकालेऽति प्रचुरा नराः ।
तथा भवन्ति तिर्यश्चः क्षेत्रेषु निखिलेष्वपि ॥४७१॥

तदा मूत्रपुरीषादिबाहुल्यात्पूति पुद्गलाः ।
ऊर्ध्वं यान्तो वासयन्ति, पुद्गलान परापरान् ॥४७२॥

योजनानां शतान्येवं, पन्च यावत्परैः परैः ।
दूष्यन्ते पुद्गला जीवा, इवोत्सूत्र प्ररूपकैः ॥४७३॥

उसमें भी श्री अजितनाथ भगवान के समय में मनुष्य और तिर्यंच प्रत्येक क्षेत्रों में अति प्रचुर बहुत अधिक प्रमाण में होते हैं । उस समय में मूत्र और विष्टा की अधिक मात्रा होने से दुर्गन्धी पुदगल ऊपर जाता है और अन्य से अन्य पुद्गलों को भी वासित (दुर्गन्धमय) कर देता है। इस तरह से एक दूसरे पुद्गलों को दुर्गन्धमय होते हुए परम्परा से पांच सौ योजन दुर्गन्ध से पुद्गल वासित होते हैं । जिस तरह उत्सूत्र का कथन करने से जीव मित्थात्व होता है और दूसरे को भी वैसा बनाता है वैसे यही पुद्गल की सोहबत दूसरे पुद्गल को दुर्गन्धमय बनाती है । (४७१-४७३)

यदा तु नरतिर्यच्चो, नरक्षेत्रे स्युरल्पकाः ।
तदा पूतिपुद्गलानामल्पत्वादूर्ध्वगामिनाम् ॥४७४॥

चतुः शतीं योजनानां यावत्तैरपरापरैः ।
व्रजद्भिरूर्ध्वं भाव्यन्ते, प्रोक्तयुक्त्यैव पुद्गलाः ॥४७५॥

जब मनुष्य क्षेत्र में नर और तिर्यंच अल्प होते हैं, उस समय ऊर्ध्वगामी दुर्गंधी पुद्‌गल अल्प होने से ऊर्ध्वगामी जाते पुद्‌गल द्वारा चार सौ योजन तक, एक दूसरे पुद्‌गल को पूर्व कहे अनुसार दुर्गन्धमय बना देते हैं । (४७४-४७५)

एवं परं योजनेभ्यो, नवभ्यो गन्ध पुद्‌गलाः ।
कथं स्युर्घ्राण विषया, नैषा शङ्काऽपि संभवेत् ॥४७६॥

नौ योजन से दूर रहे गन्धा पुद्‌गल घ्राणेन्द्रिय के विषय किस तरह बन सकती है ? ऐसी शंका भी संभव नहीं हो सकता है । (४७६)

उक्तं च - ''चत्तारि पंच जोअण सयाइं गधो य मणुअलोअस्स।
उछ्‌ढं वच्चइ जेणं नहु देवां तेण आवंति ॥१॥''

शास्त्र में कहा है - चार सौ अथवा पांच सौ योजन तक ऊपर मनुष्य लोक की दुर्गन्ध पहुंचती है । इसलिए देवता यहां नहीं आते ।

उपदेशमाला कर्णिकायां तु -

''ऊर्ध्वं गत्वा शतान्यष्टौ, सहस्रमपि कर्हिचित् ।
मर्त्यानां याति दुर्गन्धस्तेनेहायान्ति नामराः ॥१॥''

इत्युक्तमिति ज्ञेयं -

श्री नागेन्द्र गच्छीय आचार्य श्री विजय सेन सूरि जी के शिष्य श्री उदय प्रभचार्यकृत उपदेश माला की कर्णिका में तो कहा है - मृत्यु लोक की दुर्गन्ध ऊंची आठ सौ योजन अथवा कभी हजार योजन तक भी जाती है। इसलिए देवता यहां नहीं आते हैं। इस तरह कहा है वह जानना चाहिए । (१)

तथा च - मल मूत्र श्लेष्म पूर्णे मक्षिका कोटि संकटे ।
समन्ततोऽतिचपल कृमिकीटशतावटे ॥४७७॥

पुरीषसदने स्थित्वा मित्रकल्पेन केनचित् ।
एहि मित्र ! क्षणं तिष्ठ, किन्चिद्वच्मीत्यनेकशः ॥४७८॥

आहूयेत जनः कश्चित् सद्यः स्नातः कृताशनः ।
कृतचन्दनकर्पूरकस्तूर्यादि विलेपनः ॥४७९॥

जान्नपि स तत्रेष्टं, यथा गन्तुं न शक्नुयात् ।
तद्दुर्गन्धपराभूति संकोचित विकूणिकः ॥४८०॥

तथा भूयः स्मरन्तोऽपि, नृक्षेत्रे पूर्व बान्धवान् ।
दुर्गन्धाभीभ वादत्र, न तेऽभ्यागन्तुमीशते ॥४८१॥ *पन्चभि कुलकं ॥*

तथा मल मूत्र श्लेष्म से पूर्ण कीड़े मक्खी से उभाडते हैं चारों तरफ अति चलप सैंकड़ों कृमि और कीड़े के कुए समान विष्टा के घर में (संडास-पाख़ाना में) रहकर कोई मित्र सदृश मनुष्य को मित्र कहे कि - तुम यहां आओ, थोड़े समय खडे रहो, मैं कुछ कहता हूं । इस तरह अनेक बार बुलाए फिर भी नये-नये स्नान किए भोजन किया हुए, चंदन, कपूर कस्तूरी से विलेपन किए मनुष्य उस मित्र को इष्ट जानने पर भी दुर्गन्ध के पराभव से संकोच वाले बने और मुख को बिगाड़ते वहां नहीं जा सकते है, वैसे ही मनुष्य क्षेत्र के पूर्व बन्धु जन को बारम्बार याद करने पर भी दुर्गंध के पराभव से वह देव इस मनुष्य लोक में नहीं आ सकते हैं । (४७७-४८१)

सत्यप्येवमति प्रौढपुण्यप्राग्भारशालिनाम् ।
श्रीमतामर्हतां तेषु क्लयाणकेषु पन्चसु ॥४८२॥

मरुताश्वत्थपर्णेभकर्णकम्प्रनिजासनाः ।
स्वश्रद्धातिशयात्केचिद्देवेन्द्रशासनात्परे ॥४८३॥

मित्रानुवर्त्तनात्केचित्पत्नी. प्रेरणया परे ।
स्थितिहेतोः परे देव देवीसंपातकौतुकात् ॥४८४॥

क्षणा देवाति दुर्गन्धमपि लोकं नृणामिमम् ।
अर्हत्पुण्यगुणाकृष्टा, इवायान्त्युत्सुकाः स्वयभू ॥४८५॥ *त्रिभि विशेषकं ॥*

इस तरह होने पर भी अत्यन्त प्रबुद्ध-प्रौढ पुण्य के समूह से शोभते श्री अरिहंत भगवान के पांच कल्याणको में वायु से कम्पायमान पीपल का पत्ता अथवा हाथी कान के समान अपना आसन कम्पायमान होने से इन्द्र कोई देवता अपनी श्रद्धा के अतिशय से किसी देवेन्द्रों की आज्ञा से किसी-किसी मित्र के अनुसरण-अनुकूल आचरण करने से किसी पत्नी की प्रेरणा से किसी आचार धर्म

से किसी देवियों के समूह के कौतुक से मनुष्य की अति दुर्गन्ध युक्त इस मनुष्यलोक में श्री अरिहंत परमात्मा के पुण्य के गुण से आकर्षित होकर उत्सुकतापूर्वक क्षणवार में आते हैं । (४८२-४८५)

महात्मनां महर्षीणां, यद्वोत्कृष्टतपस्विनाम् ।
माहात्म्यमुद्भावयितुमिहायान्ति सुधाभुजः ॥४८६॥

अथवा महात्मा, महान साधु पुरुष और उत्कृष्ट तपस्वियों के महात्म्य के प्रभाव के विस्तार से यहां देवता आते हैं । (४८६)

अश्रद्दधाना यदिवा साधु श्राद्धादिसद्गुणान् ।
सम्यग्वर्णितास्तेऽत्रायान्ति तास्तान् परीक्षि तुम ॥४८७॥

अथवा सम्यग्दृष्टि आत्माओं द्वारा वर्णन करते साधु अथवा श्रावक आदि के सद्गुणों की श्रद्धा नहीं करते वह देवता उन गुणों की परीक्षा करने के लिए यहां मनुष्यलोक में आते हैं । (४८७)

यद्वा तादृक पुण्यशालिशालिभद्रादिवद्भृशम् ।
पुत्रादीनां प्रेमधाम्नां स्नेहोद्रेकैर्वशीकृताः ॥४८८॥
गोभद्रादिवदागत्य, नित्यं नव नवैरिह ।
दिव्यभोगसंविभागैः, स्नेहं सफलयन्ति ते ॥४८९॥

अथवा तो इस प्रकार के पुण्यशाली शालिभद्र समान प्रेम पात्र पुत्रादि के स्नेह की अधिकता से वश हुए गोभद्रादि देव के समान वह देवता यहां आकर नित्य नयी-नयी मांग उपभोग सामग्री देकर पुत्रादि स्नेह को सफल करते हैं । (४८८-४८९)

यद्वा प्रागुक्तवचनस्मरणाद्विस्मृतापराः ।
स्वान् बोधयितु मायान्त्याषाढाचार्यन्त्य शिष्यवत् ॥४९०॥

अथवा तो पहले दिये वचन को याद करके अपने आत्मीय जन को बोध देने के लिए (पूर्व शिष्य भूल जाने नहीं आए परन्तु) अषाढाचार्य का अन्तिम शिष्य जैसे यहां आता है । (४९०)

एवं पूर्वभवस्नेहकार्मणेन वशीकृताः ।
नरकेष्वपि गच्छन्ति, केचिद्वैमानिकामराः ॥४६१॥

इस तरह से पूर्व जन्म के स्नेह रूपी कार्मण से वश हुए कई वैमानिक देवता नरक में भी जाते हैं । (४६१)

तथाहि द्वारकाद्रङ्गभङ्गे जराङ्गजेषुणा ।
मृत्वाऽन्तिमो वासुदेवस्तृतीयं नरकं गतः ॥४६२॥

रामोऽथ मोहात् षण्मासान्, व्यूढभ्रातृ कलेवरः ।
शिलातलाम्भोजवापादिभिर्देवेन बोधितः ॥४६३॥

भ्रातुदेर्हस्य संस्कारः कृत्वा संवेगमागतः ।
प्रव्रज्यनेमिप्रहितचारणश्रमणान्तिके ॥४६४॥

पारणाय व्रजन् क्वापि, स्वरूपव्यग्रया स्त्रिया ।
दृष्ट्रा घटभ्रमात्कूपे, क्षिप्यमाणं निजाङ्गजम् ॥४६५॥

वन एव मया स्थेयमित्यभिग्रहवान्मुनिः ।
तुङ्गिकाद्रौ तपः कुर्वन्, वन्य सत्वान्नि बोधयन् ॥४६६॥

दत्ताहारोरथकृता, हरिणेनानुमोदितः ।
तरु शाखाहतस्ताभ्याम् सह ब्रह्मसुरोऽभवत् ॥४६७॥ *पन्चभि कुलकं* ॥

वह इस द्वारका नगरी का भंग हुआ उसके बाद जरा कुमार के बाण से अन्तिम वासुदेव श्रीकृष्ण महाराज मरकर तीसरी नरक में गये, और कृष्ण के बड़े भाई बलदेव ने भाई का कलेवर शरीर को मोह के कारण छः महीने तक वहन किया और देव ने उनको शिला तल पर कमल बोने की क्रिया आदि द्रष्टान्तों से बोध दिया उसके बाद भाई के देह का अग्नि संस्कार करके संवेग प्राप्त किया । श्री नेमीनाथ भगवान ने चारण ऋषि को वहां भेजा और बलदेव ने उनके पास दीक्षा अंगीकार की, पारणे के लिए किसी स्थान पर जाते थे उस समय बलदेव मुनि के रूप में एकाग्रचित्त होकर कोई स्त्री घडे के भ्रम से अपने बालक को कुएं में डालते देखकर, मेरा रूप अनर्थ का कारण होने से 'मुझे' वन में ही रहना चाहिए ।' इस

प्रकार से अभिग्रह करके तुंगिक पर्वत ऊपर तप करने लगे, और वन के प्राणियों को बोध देते थे । वहां रहते एक समय रथकार ने उनको आहार दिया, हिरण उनकी अनुमोदना करता है इतने में वृक्ष की शाखा उनके ऊपर गिर गयी और तीनों मरकर एक साथ में ब्रह्मलोक में देव रूप में उत्पन्न हुए । (४९२ से ४९७)

बलदेव सुरः सोऽथ, प्रयुक्तावधि लोचनः ।
भ्रातरं नरके दृष्ट्वोत्सुकस्तत्र द्रुतं गतः ॥४९८॥

देवात्मा रूप में उत्पन्न हुए बलदेव जी अवधि ज्ञान रूपी आंख द्वारा अपने भाई कृष्ण वासुदेव को नरक में देखकर, उत्सुक बने जल्दी से वहां गये । (४९८)

तमुद्दिधीर्षुर्नरकादवोचत् केशवः सुरम् ।
भ्रातरेवं भृशं पीड्ये, सूतपातं पतत्तनु ॥४९९॥

मया कृतानि कर्माणि, भोक्तात्यानि मयैव हि ।
वचः किमन्यथा तस्याद्यनेमिस्वामिनोदितम् ॥५००॥

कृष्ण महाराज जी को नरक में से उठाकर बाहर ले जाने की इच्छा वाले बलराम ने केशव वासुदेव ने कहा कि – बन्धु ! इस तरह पारे के समान मेरा शरीर नीचे गिर जाता है । इससे मुझे बहुत पीडा होती है । मेरे किए कर्म मुझे ही भोगने हैं । श्री नेमिनाथ भगवान ने कहा है वह वचन अन्यथा नहीं होता । (४९९-५००)

गच्छ बन्धो ! ततस्तुभ्यं भद्रं स्तात्कर्हिचित्स्मरेः ।
प्रथयोर्महिमानं नो, दुर्यशो यन्निवर्त्तते ॥५०१॥

ततः स बान्धव प्रेम्णा, विमाने श्रीधरं हरिम् ।
पीताम्बरं चक्रपाणिं, विकृत्य हलभृद्युतम् ॥५०२॥

द्वारिकेयमनेनैव, कृताऽनेनैव संहृता ।
कर्त्तुं हर्त्तुं हरिरेव, क्षमोऽसौ जगदीश्वरः ॥५०३॥

तस्माद् भुक्तिं च मुक्तिं च, प्रेप्सुभिः सेव्यतामयम् ।
आगत्य भरतक्षेत्रे, सर्वत्रेत्युदघोषयत् ॥५०४॥

एवं सर्वत्र विस्तार्य, महिमानं महीतले ।
यथास्थानंसुरोऽयासीद्भ्रादुःखेनदुःखितः ॥५०५॥

इसलिए हे बन्धुवर्य ! तुम जाओ, तेरा कल्याण हो । किसी समय याद करना और अपनी महिमा जगत में फैलाना कि जिससे अपयश दूर हो जाय उसके बाद उसके भाई प्रति प्रेम से विमान में लक्ष्मी सहित पीताम्बरी हाथ में चक्र धारण करने वाले और बलदेव जी के साथ में वासुदेव कृष्ण का रूप बनाया था और प्रसिद्ध किया कि इस द्वारिका को कृष्ण ने ही बनायी थी और उन्होंने ही खत्म कर ली है । क्योंकि करने में और हरण करने में जगदीश्वर श्री हरिकृष्ण ही समर्थ हैं । इसलिए संसार भोगने की इच्छा वाले को तथा मोक्ष प्राप्ति की इच्छा वाले को इस कृष्ण वासुदेव की सेवा करनी चाहिए । इस तरह से भरत क्षेत्र में आकर बलभद्र ने सर्वत्र उद्‌घोषणा की । इस प्रकार से पृथ्वी तल पर सर्वत्र कृष्ण जी की महिमा को बढाकर बलभद्र देव अपने स्थान पर गया । (५०१-५०५)

इत्थमेव च सीताया, जीवोऽच्युतसुरेश्वरः ।
गत्वाऽऽशु देवरप्रेम्णा, चतुर्थी नरकावनीम् ॥५०६॥
युद्धयमानौ मिथः पूर्ववैराल्लक्ष्मणरावणौ ।
युद्धान्नयवर्तयुद्धर्मवचनैः प्रतिबोधयन् ॥५०७॥

इसी ही प्रकार से सीता जी के जीव ने जो अच्युतेन्द्र बना था उसने देवर प्रति प्रेम होने से चौथे नरक में शीघ्रमय जाकर परस्पर पूर्व से वैर के कारण से युद्ध करते लक्ष्मण और रावण को रोका और धर्म के वचन कहकर उन्हें प्रतिबोध दिया है । (५०६-५०७)

पन्चमाङ्गेऽपि सप्तमया, अधस्ताद्देवकर्तृकम् ।
ऊंचेऽब्दवर्षणादिनि, तत्राप्येषां गतिः स्मृता ॥५०८॥

पांचवे अंग श्री भगवती सूत्र में भी कहा है कि - सातवीं नरक के नीचे देवकृत वर्षा आदि का वर्णन आया है इससे वहां भी देवताओं की गति कही है । (५०८)

तथाहु :- अत्थि णं भंते ! इमीसे रमणप्पहाए अहे उराला वलाहया संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति ? हंता अत्थि, तिन्निवि पकरेंति देवोऽवि असुरोऽवि नागोऽवि, एवं दोच्चाए पुढवीए माणियव्वं, एवं तच्चाए पुढवीए

भा०, नवरं देवोऽवि प०, असुरोवि प०, नो नागो, एवं चउत्थीएवि, नंवर देवो एक्को प०, असु, नो नाओ, एवं हेट्ठिल्लासु सव्वासु देवो एक्को प० नो० नाओत्ति, नाग कुमारस्य तृतीयाया: पृथिव्या अधोगमनं नास्तीत्यत एवानुमीयते 'नो असुरो नो नाओ' त्ति इहाप्यत एव वचनच्चतुर्थ्यादीनामद्योऽसुरकुमार नाग कुमारयोर्गमनं नास्तीत्यनुमीयते'' भगवती सूत्र वृत्तौ षष्ठशतक अष्टमोद्देशके, तत्वार्थ वृत्तौ तु ''येषां द्वे सागरोपमे जघन्या स्थिति स्ते किल देवा: सप्तमधरा प्रयान्ति, ते च सनत्कुमार कल्पात्प्रभृति लभ्यन्ते, शक्ति मात्रं चैतद्वर्ण्यते, न पुन: कदाचिदप्यगमन्, तिर्यगसंख्येयानि योजन कोटीनां कोटिसहस्त्राणि, तत: परमित्यादि, सागरोपमद्वया दधो जघन्या स्थितिर्येषां न्यूना न्यूनतमा चेति, ते चैकेकहीनां भुवमनु प्रान्नुवन्ति यावत्तृतीया पृथिवी, तां च तृतीयां पूर्वसंगति काद्यंर्थ गता गमिष्यन्ति, परतस्तु सत्यामपि शक्तौ न गतपूर्वा नापि गमिष्यन्ति औदासन्यात् - माध्यस्थद्, उपर्युपरि न गति रतयो देवा जिनाभिवन्दनादीन् मुक्तवे'' ति, पच्चसंग्रहे तु -

सहसारंति अदेवा नायनेहेण जंति तइय भुवं ।
निन्जति अच्चुअं जा अच्चुअदेवेण इयर सुरा ॥१॥

एतट्टीकायामपि श्री मलयगिरि विरचितायां - आनतादयोदेवा: पुनरल्प स्नेहादिभावात् स्नेहादि प्रयोजनेनापि नरकं न गच्छंतोति सहस्त्रारांतग्रहण'' मिति।

आगम में इस तरह कहा है - हे भदंत ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे बडे बादल जल योनिक वात योनिक उत्पन्न होते हैं ? और वर्षा करते हैं इसका उत्तर भगवान देते हैं - हां गौतम ! तीनो वस्तु होती है - अर्थात् जल योनिक वात योनिक उत्पन्न होते हैं और वर्षा होती है । यह भी तीनों देव करते हैं । देव वैमानिक भी, असुर कुमार भी और नागकुमार भी होते हैं, इस तरह से दूसरे नरक पृथ्वी में भी कहा है, इस प्रकार से दो नरक तक जानना, तीसरी नरक पृथ्वी में भी कहा है, केवल तीसरी में देव और असुर कुमार वर्षा आदि करते हैं । नागकुमार नहीं करते हैं । इसी तरह से चौथी नरक पृथ्वी में भी केवल देवता करते हैं । असुर अथवा नाग कुमार नहीं करते । इसी प्रकार से नीचे की सर्व पृथ्वी में वैमानिक देव ही

वर्षादि करते हैं । नागकुमार आदि नहीं करते । नाग कुमार का गमन तीसरी पृथ्वी से आगे (नीचे) नहीं जाते । इसके ऊपर से अनुमान होता है ''नो असुरो, नो नाओ'' शब्दों से चौथी नरक के नीचे असुर कुमार नागकुमार का गमन नहीं होता। ऐसा अनुमान होता है।' यह बात श्री भगवती सूत्र की टीका में छठे शतक के आठवें उद्देश में कहा है ।

तत्वार्थ सूत्र की टीका में तो कहा है कि 'जिन देवताओं की स्थिति जघन्य से दो सागरोपम की होती है वही देवता सातवी नरक तक जा सकता है'। और वह सनत्कुमार कल्पसहित ऊपर के देवता होते हैं । यह वर्णन केवल शक्ति बताने के लिए ही कहा है । किसी दिन कोई गया नहीं है । देवता तिर्च्छे लोक में असंख्य कोडा कोडी हज़ार योजन आता है । जिन देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम से न्यून, न्यूनतम है । वह देव एक न्यून-कम पृथ्वी तक जा सकता है अर्थात् छठी तक, पांचवी तक, चौथी तक यावत् तीसरी पृथ्वी तक है । सातवीं, छठी पंचमी चौथी तक का गमन शक्ति वर्णन मात्र जानना । जबकि तीसरी पृथ्वी में तो पूर्व सम्बन्धी को मिलने आदि के लिए देव गये हैं और जायेंगे । आगे की नरक पृथ्वी में शक्ति होने पर भी देव गये नहीं है, और जायेंगे भी नहीं । क्योंकि वहां उदासीन भाव-माध्यस्थ्यभाव होता है इससे ऊपर से ऊपर के देव श्री जिनेश्वर भगवान को वंदनादि भक्ति के कार्यों को करने के बाद जाने आने में आनंद अनुभव नहीं होता।

पंच सग्रह में तो कहा है कि - 'सहस्रार देवलोक तक के देव नारक जीव के स्नेह से तीसरी पृथ्वी तक जाते हैं और अच्युत देवलोक के देवता की सहायता से अन्य देवता अच्युत देवलोक तक उर्ध्व जा सकता है ।' (१)

श्री मलय गिरि जी विरचित टीका में भी कहा है कि - आनतादि देव अल्प स्नेह वाले होने के कारण से स्नेहादि के प्रयोजन से भी नरक में नहीं जाते । इसलिए यहां पूर्व में सहस्रार तक ही कहा है ।

एवं मित्रादि साहाय्यादिनोर्ध्वं यावदच्युतम् ।
यान्त्यायान्ति च कल्पस्थाः परतस्तु न जातु चित् ॥५०६॥

इस तरह मित्र आदि की सहायता से अच्युत देवलोक तक कलोपन्न देवता जाते हैं और आते हैं । परन्तु आगे नहीं जाते हैं । (५०६)

केचित्वल्पर्द्धिका देवा, यावच्चत्वारि पन्च वा ।
देवावासाननतिक्रम्य, स्वशक्त्या परतस्ततः ॥५१०॥

गन्तुं न शक्नु वन्त्यत्य साहाय्यात् शक्नुवन्त्वपि ।
महर्द्धिकानां मध्येऽपि, नैवामी गन्तुमी शते ॥५११॥

कई अल्प ऋद्धि वाले देवता चार से पांच देवा वास से अधिक स्वशक्ति से नहीं जा सकते हैं । अन्य की सहायता से भी जा सकते हैं । किन्तु महा ऋद्धि वाले देवताओं के पास में नहीं जा सकते हैं । (५१०-५११)

अल्पार्द्धिकानां मध्ये तुं सुखं यान्ति महर्द्धिका ।
समर्द्धिकानां मध्ये चेद्धियासन्ति समर्द्धिकाः ॥५१२॥

तदा विमोह्य महिकाद्यन्धकारविकुर्वणात् ।
अपश्यत् इमान् देवानातिक्रामन्ति नान्यथा ॥५१३॥

अल्प ऋद्धि वाले देवताओं के पास में महर्द्धिक देव सुखपूर्वक जा सकता है । समान ऋद्धि वाले देवता समान ऋद्धि वाले के पास में जाने की इच्छा करते हैं तो धूम्मस (धुंआ) आदि का अंधकार बनाकर वह देवता न देखे इस तरह अतिक्रमण करता है । अन्यथा नहीं करता है । (५१२-५१३)

तथोक्तं - "आतिड्ढीएणं भंते ! देवे जाव चत्तारि पंच देवासं तराइं विइक्कंते तेण परं परिड्ढीएणं" इत्यादि भगवती दशम शतक तृतीयो द्देशके।

तथा कहा है कि - हे भगवान ! अल्प ऋद्धि वाले देवता चार-पांच देवावास (स्वर्गलोक) तक जा सकता है । उसके बाद ऊपर ऋद्धि के बल से जा सकता है । इत्यादि श्री भगवती सूत्र के दसवें शतक के तृतीय उद्देश में कहा है ।

सौधर्मेशानयोर्देवलोकयोरथ नाकिनः ।
उत्कृष्ट स्थितयः शक्रशक्रसामानिकादयः ॥५१४॥

रत्न प्रभायाः सर्वाधोभागं यावदधो दिशि ।
स्वयोग्यं मूर्तिमद् द्रव्यं, पश्यन्त्यवधिचक्षुषा ॥५१५॥

तिर्यग्दिशि त्वसंख्ये यान्, पश्यन्ति द्वीप वारिधीन् ।
ऊर्ध्वं स्वस्व विमानानां चूलिकाग्रध्वजावधि ॥५१६॥

सौधर्म और ईशान देवलोक में इन्द्र और इन्द्र के सामानिक देव आदि जो उत्कृष्ट स्थिति वाले होते हैं, वे अधो दिशा में रत्नप्रभा पृथ्वी के सर्व अधो विभाग तक अपने योग्य रूपी पदार्थ को अवधि लोचन से देखते हैं । तिर्च्छा दिशा में असंख्य द्वीप समुद्र को देखते हैं और ऊर्ध्व दिशा में अपने-अपने विमान के शिखर की ध्वजा तक देख सकते हैं । (५१४-५१६)

अनुत्तरान्ताः सर्वेऽप्यसंख्येयान् द्वीप वारिधीन् ।
तिर्यक् प्रपश्यन्त्यधि काधिकान् किन्तु यथोत्तरम् ॥५१७॥

अनुत्तर विमान तक के सभी देवता तिर्च्छा असंख्य द्वीप समुद्र में जा सकते हैं, परन्तु सौधर्म आदि से आगे देवता अधिक से अधिक देख सकते हैं । (५१७)

वैमानिकानां यद्धोऽवधिर्भूम्ना विजृम्भते ।
भवनेशव्यन्तराणामूर्ध्वं भूम्ना प्रसर्पति ॥५१८॥

ज्योतिषां नारकणां तु तिर्यग् भृशं प्रसर्पति ।
नृतिरश्चामनियतदिक्को नाना विधोऽवधिः ॥५१६॥

वैमानिक देवों के अवधि ज्ञान का विस्तार नीचे नरक पृथ्वी के विषय में बहता है । जब भवनपति व्यंतर को अवधि ज्ञान का विस्तार ऊर्ध्व दिशा में बढ़ता है ज्योतिष्क और नारक का अवधि ज्ञान तिर्च्छा दिशा में विस्तार होता है । मनुष्य और तिर्यंचों का अनियत दिशा का और विविध प्रकार का अवधि ज्ञान होता है । (५१८-५१६)

स्वयंभूरणाम्भोधौ, यथा मत्स्या जगद्गतैः ।
भवन्ति सर्वैराकारैर्नृतिर्यगवधिस्तथा ॥५२०॥

मत्स्यास्तु वलयाकारा, न भवेयुरयं पुनः ।
संभवेद्वलयाकारोऽप्यसौ, नानाकृतिस्ततः ॥५२१॥

स्वयं भूरमण समुद्र के अन्दर रही मछली जैसे जगत के सर्व आकार से होती है । वैसे मनुष्य और तिर्यंच की अवधि भी सर्व आकार से होती है । मत्स्य तो गोलाकार के नहीं होते परन्तु अवधि ज्ञान गोलाकार से भी होता है । इसलिए अवधि ज्ञान विविध प्रकार की आकृति वाला कहा है । (५२०-५२१)

तथोक्तं संग्रहणी वृत्तौ -

"नाणा गारो तिरिय मणु एषु मच्छा सयंभूरमणेव।
तत्थ वलयं निसिद्धं तस्य पुण तयंपि होज्जाहि ॥५२२॥"

संग्रहणी की वृत्ति में कहा है - "तिर्यंच और मनुष्य का अवधि ज्ञान स्वयं भूरमण के मत्स्य के समान विविध प्रकार की आकृति वाला होता है । मछली गोलाकार नहीं होती, जबकि अवधि ज्ञान में वलयाकार भी होता है । (५२२)"

वैमानिकानां सर्वेषां, जघन्योऽवधि गोचरः ।
अङ्गुलासंख्येयभागमानो ज्ञेयो मनस्विभिः ॥५२३॥

वैमानिक सर्व देवताओं का अवधि ज्ञान का जघन्य विषय बुद्धिशाली मनुष्य से अंगुल असंख्यातवे भाग प्रमाण में जानना । (५२३)

ननु सर्व जघन्योऽसौ, नृतिर्यक्ष्वेवं संभवेत् ।
सर्वोत्कृष्टो नरेष्वेव, राद्धान्तोऽयं व्यवस्थितः ॥५२४॥

यहां शंका करते हैं कि अवधि ज्ञान का सर्व जघन्य विषय अंगुल का असंख्यातवां भाग तो मनुष्य और तिर्यंचों में ही होता है और अवधि ज्ञान का सर्वोत्कृष्ट विषय मनुष्यों में ही होता है, यह सुनिश्चित सिद्धांत है । (५२४)

तथोक्तं - "उक्कोसोमणुएसुं मणुस्स तेरिच्छिएसु अ जहन्नो" त्ति ।

आगम में कहा है कि - "उत्कृष्ट अवधि मनुष्य में होता है और जघन्य अवधि ज्ञान मनुष्य और तिर्यंच में होता है ।"

कथं वैमानिकानां तत्, प्रोक्तः सर्वजघन्यकः ।
अङ्गुलासंख्येयभागमात्रोऽथात्र निरुपयते ॥५२५॥

यह सिद्धांत होने से ही प्रश्न उठता है कि - वैमानिक को पूर्व कहे अनुसार सर्व जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग अवधि ज्ञान यहां किस तरह निरुपण करते हैं ? (५२५)

केषांचिदिह देवानमुत्पत्तौ तादृशोऽवधिः ।
भवेत्प्रागभव संबंधी, स जघन्योऽत्र दर्शितः ॥५२६॥

इसका उत्तर देते हैं कि – किसी देवता को उत्पत्ति के समय पूर्वजन्म सम्बन्धी अंगुल का असंख्यातवें भाग प्रमाण अवधिज्ञान होता है, इससे जघन्य अवधिज्ञान कहा है । (५२६)

आगमे तु नैष पारभविकत्वाद्विवक्षितः ।
तथा च भगवानाह, क्षमाश्रमण पुंगवः ॥५२७॥

वेमाणियाणंमगुल भागमसंखं जहन्नओ होइ ।
उववाए परभविओ, तब्भजो होइ तो पच्छा ॥५२८॥

आगम के अन्दर पूर्व जनम की अपेक्षा से जघन्य अवधिज्ञान की विवक्षा नहीं की । यही बात श्री जिनभद्र मणि क्षमाश्रमण कहते हैं कि – वैमानिक देवताओं के उत्पत्ति समय में जो जघन्य अंगुल का असंख्यातवें भाग अवधि ज्ञान होता है, वह पारभविक समझना । तद्भव सम्बन्धी अवधि ज्ञान पीछे से प्रारंभ होता है । (५२७-५२८)

मृदङ्गाकृति रित्येवं वैमानिकावधिर्भवेत् ।
ऊर्ध्वायतो मृदङ्गोहि, विस्तीर्णो ऽधः कृशो मुखे ॥५२९॥

वैमानिक देवताओं का अवधि ज्ञान मृदंग-वाद्य विशेष आकृति के समान होता है । जैसे मृदंग ऊंचाई में लम्बा होता है, मुख के तरफ छोटा और नीचे चौड़ा-विस्तार वाला होता है । (५२९)

स्थितिमानमथ द्वैधं, जघन्योत्कृष्ट भेदतः ।
सौधर्मेशान देवानां, प्रति प्रतरमुच्यते ॥५३०॥

देवों की स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य दो प्रकार से होती है । उसमें सौधर्म और ईशान देवों का आयुष्य प्रत्येक प्रतर का कहने में आता है । (५३०)

एकस्य सागरस्यांशाः, प्रकल्पयन्ते त्र्योदश ।
प्रथम प्रतरे भागौ, तादृशौ द्वौ परा स्थितिः ॥५३१॥

द्विती प्रतरे भागाश्चत्वारस्तादृशाः स्थितिः ।
तृतीये षट् चतुर्थेऽष्टौ, पन्चमे च लवादश ॥५३२॥

षष्ठे द्वादश भागास्ते, सप्तमे सागरोपम ।
... त्र्योदशैनैकभागेनाम्यधिका स्थितिः ॥५३३॥

त्रिभिस्त्रयोदशैर्भागैरधिकं सागरोपम् ।
अष्टमे प्रतरे ज्ञेयं, नवमे पन्चभिश्च तैः ॥५३४॥

दशमे सप्तभि र्भागैरधिकं सागरोपम् ।
एकादशे च नवभिर्द्वादशे प्रतरे पुनः ॥५३५॥

एकादशभिरंशैस्तैः, साधिकं सागरोपम् ।
त्रयोदशे च प्रतरे, पूर्णे द्वे सागरोपमे ॥५३६॥

त्रयोदशस्वपि तथा, प्रतरेषु जघन्यतः ।
स्थितिः पल्योपममेकं, तास्मार्द्धानां भवेदिह ॥५३७॥

एक सागरोपम के तेरह (१३) विभाग कल्पना करना, उसमें २/१३ अंश सागरोपम की प्रथम प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । ४/१३ अंश सागरोपम की दूसरे प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । ६/१३ अंश सागरोपम की तीसरे प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है ।८/१३ अंश सागरोपम की चौथे प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । १०/१३ अंश सागरोपम की पांचवी प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । १२/१३ अंश सागरोपम की छठे प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । १ १/१३ अंश सागरोपम की सातवें प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । १ ३/१३ अंश सागरोपम की आठवें प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । १ ५/१३ अंश सागरोपम की नौवें प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । १ ७/१३ अंश सागरोपम की दसवें प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । १ ९/१३ अंश सागरोपम की ग्यारहवें प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । १ ११/१३ अंश सागरोपम की बारहवें प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । सम्पूर्ण दो सागरोपम की तेरहवें प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति होती है । और तेरह तेरह प्रतरों की अन्दर जघन्य स्थिति तक पल्योपम की होती है । इससे कम स्थिति इस देवलोक में नहीं होती है । (५३१-५३७)

कल्पेषु शेषेष्वप्येवं, या या यत्र जघन्यतः ।
एकरूपैव सा सर्वप्रतरेषु भवस्थितिः ॥५३८॥

नत्वाद्य प्रतरोत्कृष्टा, प्रतरे ह्युत्तरोत्तरे ।
जघन्यतः स्थितिश्चिन्त्या, नरक प्रस्तटादिवत् ॥५३६॥

इस तरह अन्य देवलोक में भी जहां जो-जो जघन्य स्थिति होती है, वह सर्व प्रतर में एक समान होती है । परन्तु प्रारंभ के प्रतर की जो उत्कृष्ट स्थिति होती है वह उसके पीछे के प्रतर की जघन्य स्थिति होती है' ऐसा नरक के प्रतर समान नियम देवलोक के प्रतर में नहीं होता है । (५३८-५३६)

एवमी शानेऽपि भाव्या, स्थितिः सौधर्म वद्बुधैः।
वाच्या किन्त्वधिका किञ्चिज्जधन्या परमापि च ॥५४०॥

इसके अनुसार ईशान देवलोक में भी सौधर्म कल्प के समान ही स्थिति बुद्धिमान पुरुषों ने कही है । अन्तर इतना ही है कि वहां जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार की स्थिति सौधर्म देवलोक से कुछ अधिक होता है । (५४२)

अधिकत्वं तु सामान्यान्निरूपितमपि श्रुते ।
पल्योपमस्यासंख्येयभागेनाहुं मर्षयः ॥५४१॥

संग्रहणी वृत्यभिप्रायोऽसौ ॥

आगम के अन्दर अधित्व, पल्योपम का असंख्यातवे भाग इस तरह सामान्य रूप से महर्षियों ने कहा है । यह अभिप्राय सग्रहणी वृत्ति का है । (५४१)

सप्तहस्तमितं देहमिह स्वाभाविकं भवेत् ।
अङ्गुलासंख्ये भागमानमेतज्जघन्यतः ॥५४२॥

देवों के शरीर का प्रमाण स्वाभाविक रूप में सात हाथ का होता है और जघन्य प्रमाण अंगुल का असंख्यातवां विभाग होता है । (५४२)

कृत्रिम वैक्रियं तत्तु लक्षयोजन संमितम् ।
इदमङ्गुलसंख्येय भागमात्रं जघन्यतः ॥५४३॥

जो कृत्रिम वैक्रिय शरीर होता है, वह लाख योजन प्रमाण होता है, यह उत्तर वैक्रिय, जघन्य से आंगुल के संख्यातवें भाग होता है । (५४३)

जघन्यं द्वैधमप्येतत्प्रभारम्भ समये भवेत् ।
कृत्रिमं वैक्रियं त्वेतत्तुल्यमेवाच्युतावधि ॥५४४॥

ये दोनों प्रकार का कृत्रिम और स्वाभाविक वैक्रिय शरीर जघन्य रूप में प्रारंभ समय के अन्दर होता है । और यह नियम अच्युत देवलोक तक इस तरह से समझना चाहिए । (५४४)

ग्रैवेयकानुत्तरेषु विमानेषु तु नाकिनाम् ।
तादृक् प्रयोजनाभावान्नस्त्येवौत्तरवैक्रियम् ॥५४५॥

ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवताओं के ऐसे प्रकार का प्रयोजन न होने से उत्तर वैक्रिय शरीर नहीं होता । (५४५)

लेश्याऽत्र तेजोलेश्यैव, भवेभ्दवस्वभावतः ।
द्रव्यतो भावतस्त्वेषां, विर्वत्तन्ते षड्प्यमूः ॥५४६॥

देवताओं का भव (जन्म) निमित्तक द्रव्य से तेजो लेश्या होती है, भाव से छह लेश्या हो सकती है ।

गर्भजा नरतिर्यच्च, एवोत्पद्यन्त एतयोः ।
स्वर्ग योर्परेऽत्रत्या, देवा गच्छन्ति पन्चसु ॥५४७॥

गर्भजेषु नृतिर्यक्षु२, संख्यातायुष्क शालिषु ।
पर्याप्तवाद रक्षोणी३ पाथो४ बनस्पतिष्वपि५ ॥५४८॥

गर्भज मनुष्य और तिर्यंच ही ये दो देवलोक (सौधर्म और ईशान देवलोक) में उत्पन्न होते हैं । दूसरे नहीं जब यहां के देवता पांचवे स्थान में उत्पन्न होते हैं १- संख्याता वर्ष के आयुष्य वाले गर्भज मनुष्य, २- संख्याता वर्ष के आयुष्य वाले गर्भज तिर्यंच, ३- पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय, ४- पर्याप्त बादर अप्काय, ५- पर्याप्त बादर वनस्पति काय । (५४७-५४८)

द्वेधा भवन्ति देव्योऽत्र, काश्चित्कुलाङ्गना इव ।
सभर्तृकास्तदन्तयास्तु, स्वतन्त्रता गणिका इव ॥५४९॥

यहां प्रथम और दूसरे देवलोक में देवियां दो प्रकार की होती है कई कुल नारी समान पति सहित होती है, और दूसरी स्वतंत्र वेश्या समान होती है । (५४९)

आद्ये परिगृहीतानां, स्थितिरुत्कर्षतो भवेत् ।
पल्योपमानि सप्तैव, पल्योपमं जघन्यतः ॥५५०॥

पहले देवलोक में पति वाली परिगृहीता देवियों की उत्कृष्ट स्थिति सात पल्योपम की है और जघन्य स्थिति एक पल्योपम की होती है । (५५०)

तासामीशाननाके तु, नवपल्योपमात्मिका ।
गरीयसी लघुः पल्योपमं समधिकं स्थितिः ॥५५१॥

दूसरे ईशान देवलोक की देवियों की उत्कृष्ट स्थिति नौ पल्योपम की है । जबकि जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक होती है । (५५१)

साधारणीनां सौधर्मे, विमानाः सुरयोषिताम् ।
षड् लक्षाणि द्वितीये तुलक्षाश्चतस्त्र एव ते ॥५५२॥

प्रथम सौधर्म देवलोक में अपरिगृहीता देवियों के विमान छह लाख हैं और दूसरे देवलोक में चार लाख होते हैं । (५५२)

साधारणसुरस्त्रीणां, सौधर्मे स्याद्गुरु स्थितिः ।
पल्योपमानि पन्चाशत्, पल्योपमं जघन्यतः ॥५५३॥

सौधर्म देवलोक की अपरिगृहीता देवियों की उत्कृष्ट स्थिति पचास पल्योपम की होती है और जघन्य स्थिति एक पल्योपम की होती है । (५५३)

आसामीशाने तु पन्चपन्चाशत्परमा स्थितिः ।
पल्योपमानि हीना तु, पल्यं किंचन साधिकम् ॥५५४॥

दूसरे ईशान देवलोक में इन अपरिगृहीता देवियों के पचपन पल्योपम् की उत्कृष्ट स्थिति होती है, और साधिक पल्योपम की जघन्य स्थिति होती है । (५५४)

यासां सौधर्मेऽथ साधारणा दिव्यमृगीदृशाम् ।
स्थितिः पल्योपममेकं, ताः स्तोकद्युतिवैभवः ॥५५५॥

सौधर्मनाकिनामेव, तादृक्पण्याङ्गनादिवत् ।
भोग्या नतूपरितनस्वर्गिणां प्रायशः खलु ॥५५६॥

यासां त्वेकदिसमयाधिक पल्योपमादिका ।
स्थितिः क्रमाद्वर्द्धमाना, दशपल्योपमावधि ॥५५७॥

सनत्कुमार देवानां, भोग्यास्ता नोर्ध्ववर्त्तिनाम् ।
दशभ्यश्च परं पल्योपमेभ्यः समयादिभिः ॥५५८॥

स्थितिः समाधिका यावत्पल्योपमानि विंशति ।
यासां ता ब्रह्मदेवानां, भोग्या नोपरिवर्त्तिनाम् ॥५५६॥

समयाद्यधिका पल्योपमेभ्यो विंशते परम् ।
यासां स्थितिः स्याद्देवीनां, त्रिंशत्पल्योपमावधि ॥५६०॥

शुक्र देवोपभोग्यास्तास्त्रिंशतपल्योपमोपरि ।
समयाद्यधिका चत्वारिं शत्पल्योपमावधिः ॥५६१॥

यासां स्थितिस्ता भोग्याः स्युरानतस्वर्ग वासिनाम् ।
पल्योपमेभ्यश्चत्वारिंशश्च समयादिभिः ॥५६२॥

वर्द्धमाना क्रमात्पन्चाशत्पल्यावधिका स्थितिः ।
यासां ताः परिभोग्याः स्युरारणस्वर्गवर्त्तिनाम् ॥५६३॥

सौधर्म देवलोक में अपरिगृहीता देवियां हैं जिसकी स्थिति एक पल्योपम की है । उनकी कान्ति तेज और ऐश्वर्य भी अल्प होता है । ये सब देवियां सौधर्म देवलोक के देवों को ही उस प्रकार की गणिका के समान योग्य होता है । प्रायः ऊपर के देवलोक के देवों के भोग्य नहीं होती है। इन अपरिगृहीता देवियों में जिसकी स्थिति पल्योपम से अधिक एक समय से लेकर दस पल्योपम तक की होती है वह सनत् कुमार देवलोक के देवों के भोग्य बनती है, परन्तु इससे ऊपर नहीं होती हैं । और दस पल्योपम ऊपर एक समय से लेकर क्रमशः बीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां ब्रह्म देवलोक के भोग्य बनती है, ऊपर के देवों की नहीं होती है। बीस पल्योपम ऊपर एक समय से लेकर तीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां शुक्र सातवें देवलोक के देवों के योग्य बनती है । तीस पल्योपम ऊपर एक समय से लेकर चालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां आनत स्वर्गवासी देवों के भोग्य बनती है । चालीस पल्योपम के एक समय से बढ़ते समय पचास पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां आरण स्वर्ग के देवों के भोग्य बनती हैं । (५५५-५६३)

ईशानऽप्येवमधिकपल्योपम स्थिति स्पृशः ।
देव्यस्तद्वासिनावमेव, देवानां यान्ति भोग्यताम् ॥५६४॥

ततः समधिकात्पल्योपमाच्च समयादिभिः ।
वर्धमाना स्थितिः पन्चदशपल्योपमावधिः ॥५६५॥

यासां माहेन्द्रदेवानां, भोग्यास्ताः सुरयोषितः ।
पल्योपमेभ्योऽथ पन्चदशभ्यः समनन्तरम् ॥५६६॥

समयाद्यधिका पल्योपमानि पन्चविंशतिम् ।
यावद्यासां स्थितिर्भोग्यास्ता लान्तक सुधा भुजाम् ॥५६७॥

पल्योपमेभ्योऽथ पंचविंशतिः समन्तरम् ।
समयाद्याधिका पन्चस्त्रिंशत्पल्योपमावधिः ॥५६८॥

यासां स्थिति सहस्त्रार देव भोग्या भवन्ति ताः ।
ततः परं पन्चचत्वारिंशत्पल्योपमावधिः ॥५६९॥

स्थितिर्यासां तास्तु भोग्याः प्राणतस्वर्गसद्मनाम् ।
ततोऽग्रे पन्चपन्चाशत्पल्योपमावधिः 'स्थितिः ॥५७०॥

यासां ता अच्युत स्वर्ग देवानां यान्ति भोग्यताम् ।
नाधस्तनानां निः स्वानां, समृद्धा गणिका इव ॥५७१॥

ईशान देवलोक में पल्योपम से कुछ अधिक आयुष्य वाली देवियां ईशान देवलोक के देवों के योग्य होती है, और समधिक पल्योपम से ऊपर एक समय में लेकर बढते पंद्रह पल्योपम तक जिन देवियों की स्थिति होती है वे देवियां माहेन्द्र देवलोक के देवों के भोग्य बनती हैं । पंद्रह पल्योपम के एक समय से लेकर पच्चीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियां लांतक देवलोक के देवों के भोग्य बनती है । पच्चीस पल्योपम के एक समय से लेकर पैंतीस पल्योपम तक स्थिति वाली जो देवियां हैं वे देवियां सहस्त्रार देवलोक के देवों के भोग्य बनती है, उसके बाद पैंतालीस पल्योपम तक की जिसकी स्थिति है, वे देवियां प्राणत स्वर्ग के देवताओं के भोग्य बनती है, और वहां से आगे पचपन पल्योपम के आयुष्य वाली देवियां अच्युत स्वर्ग के देवों के भोग्य बनती है । नीचे देवों को नहीं होती । जैसे समृद्धशाली गणिका दरिद्र को काम नहीं आती वैसे उन्हें काम नहीं आती । (५६४-६७१)

विमान संख्या नियमो, विशेषश्च, स्थितेरपि ।
प्रतिप्रतरमासां नो, जानीमोऽसंप्रदायतः ॥५७२॥

किंतु संभाव्यत एवमधिकाधिक जीविताः ।
ऊर्वोर्ध्वप्रतरे यावच्चरमे परमायुषः ॥५७३॥

इन अपरिगृहीता देवियों की प्रति प्रतर में विमानों की संख्या का नियम हैं, तथा आयुष्य की विशेषता हमें परम्परा से जानने को नहीं मिलने के कारण हम नहीं कहते हैं, परन्तु इस प्रकार लगता है कि ऊर्ध्व से ऊर्ध्व प्रतर में अधिक-अधिक स्थिति वाली देवियां होती हैं । और अन्तिम प्रतर में उत्कृष्ट स्थिति वाली होती है। यह हमारा अनुमान है । (५७२-५७३)

आहारोच्छ्वास समय देहमानदिकं किल ।
अशेषमुक्तशेषं च, भाव्यमासां सुपर्ववत् ॥५७४॥

आहार-उच्छ्वास के समय का अन्तर, देह का प्रमाण आदि लगभग सारा ही इसी प्रकार यहां कहा है, फिर भी जो शेष रहता हो वह देवों के समान समझ लेना चाहिए । (५७४)

तथा- भवनव्यन्तर ज्योतिष्कादिदेवव्यपेक्षया ।
वैमानिकानां सौख्यानि, बहुन्युग्रशुभोदयात् ॥५७५॥

भवनपति व्यंतर ज्योतिष्क देवों की अपेक्षा से अति उग्र पुण्य कर्म के उदय से वैमानिक देवों का सुख अधिक होता है । (५७५)

तच्चैवं - चतुर्विधानां देवानां, स्यु पुण्यकर्मपुद्गलाः ।
उत्कृष्टोत्कृष्टतरकोत्कृष्टतमानुभागकाः ॥५७६॥

इस प्रकार से चारों प्रकार के देवों का पुण्य कर्म पुद्गल क्रमशः उत्कृष्ट रस, उत्कृष्टतर रस और उत्कृष्टतम रस वाला होता है । (५७६)

आयुः कर्म सहचरा, अनन्तानन्तका अथ ।
तन्मध्याद्यावता कर्म विभागान् व्यन्तरामराः ॥५७७॥

अनन्तानपि तुच्छानुभागानब्दशतेन वै ।
जरयन्तिमितस्नेहभोज्यवत् क्षुधिताजनाः ॥५७८॥

कर्मा शांस्तावत् एवं, जरयन्त्यसुरान् विधा ।
नव नागादयो वर्षशताभ्यां स्निग्धभोज्यवत् ॥५७९॥

आयु कर्म सहचारी पुण्य कर्म के अनंत-अनंत विभाग की कल्पना करना । उसमें जितने तुच्छ रस वाले अनंता विभागों को, भूखे मनुष्य सामान्य घी वाले पदार्थों को जिस तरह है, उसी तरह व्यंतर देव सौ वर्ष से जीर्ण करता है-खतम करता है । अर्थात् सौ वर्ष सुख भोग कर जिस कर्म अंश को आत्म प्रदेश ऊपर से जीर्णकर खतम करता है । उतने ही कर्म के अंशों को असुर देव सिवाय नाग कुमारादि नौ निकाय देव दो सौ वर्ष बहुत स्निग्ध भोजन के समान खतम करते हैं । (५७७ से ५७९)

असुरास्तावतः कर्माणून, वत्सरशतैस्त्रिभिः ।
वत्सराणां चतुःशत्या ग्रहनक्षत्रतारकाः ॥५८०॥

पन्चभिश्च वर्षशतैर्निशाकर दिवाकराः ।
एकेनाब्द सहस्त्रेण, सौधर्मेशाननाकिनः ॥५८१॥

द्वाभ्यां वर्षसहस्त्राभ्यां, तृतीयतुर्यनाकगाः ।
त्रिभिः सहस्त्रैवर्षाणां, ब्रह्मलान्तकवासिनः ॥५८२॥

चतुः सहस्त्रयाऽब्दैः शुक्र सहस्त्रार भवाः सुराः ।
वर्ष पन्चसहस्त्रया चानतादिस्वश्चतुष्कगाः ॥५८३॥

अधोग्रैवेयका वर्षलक्षेण मध्यमास्तु ते ।
द्वाभ्यां वत्सरलक्षाभ्यां, लक्षैस्त्रिभिस्तदूर्ध्वगाः ॥५८४॥

चतुर्भिश्च वर्ष लक्षैर्विजयादिविमानगाः ।
पन्चभि वर्षलक्षैश्च, सर्वार्थसिद्धनाकिनः ॥५८५॥

इतने ही कर्म अंशों को असुर देव तीन सौ वर्ष में खत्म करते हैं । ग्रह नक्षत्र और तारा के देव कर्म अंश को चार सौ वर्ष में पूर्ण करते हैं । सूर्य और चन्द के देव उतने पांच सौ वर्ष में. सौधर्म और ईशान देवलोक के देव एक हजार वर्ष में, तीसरे सनत्कुमार और चौथे माहेन्द्र देवलोक के देव दो हजार वर्ष में, ब्रह्म और लांतक देवलोक के तीन हजार वर्ष में, शुक्र और सहस्त्रार देवलोक के देव चार हजार वर्ष

में, आनत आदि चार देवलोक के देव पांच हजार वर्ष में, नीचे से तीन अधो ग्रैवेयक के देव एक लाख वर्ष में मध्यम तीन ग्रैवेयक के देव दो लाख वर्ष में, उर्ध्व तीन ग्रैवेयक के देव तीन लाख वर्ष में, विजयादि चार विमान के देव चार लाख वर्ष में और सर्वार्थ सिद्ध के देव पांच लाख वर्ष में उतने ही कर्म परमाणुओं को खतम करते हैं । (५८०-५८५)

तुल्य प्रदेशा अप्येवं, क्रमोत्कृष्टानुभागतः ।
कर्मांशाः स्युश्चिरक्षेप्याः, स्निग्धचक्रयादि भोज्यवत् ॥५८६॥

तुल्य संख्या वाले भी यह प्रदेशः कर्माणु स्निग्ध चक्रवर्ती के भोजन समान उत्कृष्ट रस वाले लेने के कारण से लम्बे काल में खतम करता है । (५८६)

तथा च सूत्रं - "अत्थि णं भंते ! देवाणं अणंते कम्मंसे जे जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं तिहिं वा उक्कोसेणं पंचहि वाससएहिं" खवयंति ? हंता अत्थि" इत्यादि भगवती अष्टादशशतक सप्तमोद्देशके ॥

आगम में भी कहा है कि - हे भगवन्त ! देवों को इस प्रकार अनंता कर्म होते हैं कि जो जघन्य से एक, दो, तीन और उत्कृष्ट से पाँच सौ वर्ष के अन्दर खत्म करते हैं ? क्षय होते हैं । यह बात भी भगवती सूत्र के अठारहवें शतक के सातवें उद्देश में कहा है -

ततोऽमीषां शुभोत्कृष्टानुभागकर्मयोगतः ।
चिरस्थायीनि सौख्यानि, पुष्टान्यच्छिद्राणि च ॥५८७॥

इससे पूर्व में कहे अनुसार उन देवों के शुभ तथा उत्कृष्ट रस वाले कर्म के कारण से देवी सुख चिर स्थायी है, पुष्ट है और छिद्र बिना निरन्तर होते हैं । (५८७)

एवं स्वस्वस्थित्यवधिं, देवा देव्यों यथाकृतम् ।
प्रायः सुखं कदाचित्तु, दुःखमप्युपभुञ्जते ॥५८८॥

इस तरह से अपने-अपने आयुष्य तक देव और देवियाँ अपने किए कर्मों के अनुसार प्रायः कर सुख का अनुभव करते हैं । किसी समय दुःख को भी भोगना पड़ता है ।

उक्तं च - "भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिया एंगतसायं वेदणं वेदिंति, आहच्च अस्सायं" भगवती सूत्रे षष्ठशतकदशमोद्देशके ।। तत्त्वार्थचतुर्थाध्यायटीकाय अपि उक्तं - "यदानाम केनचिन्नीमित्तेनाशुभवेदना देवानां प्रादुरस्ति तदुऽन्तमुर्हूत्तमेव स्यात्, ततः परं नानुबध्नाति, सद्वेदनापि सततं षाण्मासिकी भवति, ततः परं विच्छिद्यतेऽर्न्तमुहूर्त्तं ततः पुनरनुवर्त्तते" इति ।।

श्री भगवती सूत्र के छठे शतक के दसवें उद्देश में कहा है कि भवन पति वाण व्यंतर (व्यंतर) ज्योतिष्क और विमानि देवता एकान्त रूप शाता वेदनीय भोगते है और कभी अशाता को भी भोगते हैं ।

तत्त्वार्थ सूत्र के चतुर्थ अध्याय टीका में भी कहा है कि - यदि कभी किसी निमित्त से देवों को अशुभ वेदना प्रगट होता है तो तव अंत मुहुर्त्त ही रहती है उसके बाद वेदना का अन्त नही चलता (हमेशा अशातना होती) शुभ वेदना भी उत्कृष्ट से छः महीने लगातार चलती है । उसके बाद अंत मुहुर्त्त विच्छेद हो जाती है पुनः प्रारम्भ होती है ।

तथा हि तुल्यस्थितिषु, निर्जरेषु परस्परम् ।
प्रागुत्पन्नाः सुराः पश्चादुत्पन्नेभ्याऽल्पतेजसः ।।५८९।।

पश्चादुत्पन्दनाश्च पूर्वोत्पन्नेभ्योऽधिकतेजसः ।
इत्थं कथंचित्स्यात्तेषां, जरा कान्त्यादिहानितः ।।५९०।।

ततस्तेजस्विनो वीक्ष्य, नवोत्पन्नान् परान्सुरान् ।
वृद्धा यून इवोद्वीक्ष्य, ते खिद्यन्तेऽपि केचन ।।५९१।।

तथा परस्पर समान आयुष्य वाले देवताओं में पूर्वोत्पन्न देव फिर से उत्पन्न हुए देवों से अल्प तेज वाले होते हैं और पीछे से उत्पन्न हुए देव पूर्वोत्पन्न देवों से अधिक तेजस्वी होते हैं । इस तरह से - इस अपेक्षा से कुछ उन (पुराने) देवों की कान्ति आदि भीहानि कम होने के कारण से जरा वृद्धावस्था होती है । जैसे युवाओं को देखकर वृद्ध खेद प्राप्त करता है, वैसे नवोत्पन्न वह तेजस्वी देवों को देखकर निस्तेज बनते हुए वह पुराना देव खेद प्राप्त करता है । (५८९-५९१)

युद्धादिषु मिथस्तेषां, प्रतिपक्षादिनिर्मिता ।
शस्त्रादिघातजा जातु, देहपीडाऽपि संभवेत् ।।५६२।।

तथा प्रियादीष्टवस्तुविनाश विप्रयोगजः।
शोको मनःखेदरुपो, मरुतामपि संभवेत् ।।५६३।।

तथा उन देवों को परस्पर युद्धादि में शत्रु आदि द्वारा हुई शस्त्र आदि के घात से देह पीड़ा भी संभव हो सकता है तथा पत्नी आदि इष्ट वस्तु का विनाश तथा वियोग से मन के खेद रूप शोक भी होता है । (५६२-५६३)

यदाहुः - ''जेणं जीवा सारीरं वेदणं वेदंति तेसि णं जीवाणं जरा, जेणं जीवा माणसं वेदणं वेदंति तेसि णं जीवाणं सोगे, से तेणट्ठेणं जाव सोगेऽवि एवं जाव वेमाणियाणं,'' भगवती षोडश शतक द्वितीयोद्देशके ।

श्री भगवती सूत्र के सोलहवें शतक के दूसरे उद्देश में कहा है कि -जो जीव शारीरिक वेदना का अनुभव करता है वह जीवों का जरापना है ऐसा कहलाता है और जो ज़ीव मानसिक वेदना का अनुभव करता है, वह जीवों का शोक है । ऐसा कहने से जरा और शोक विमानिक देवों को भी होता है, ऐसा कहा जाता है ।

तथा प्राक् प्रौढपुण्यानां, केऽपि दृष्टवा परश्रियम्।
मत्सरेणाभिभूयन्ते, निष्पुण्याः सुखलिप्सवः ।।५६४।।

बिना पुण्य के और सुख का लिप्त कोई देव अन्य का विशिष्ट पुण्य से प्राप्त हुए श्रेष्ठ लक्ष्मी वाले को देखकर ईर्ष्या से दुःखी होता है । (५६४)

उक्तं च - ईसाविसाय० ।

किंच माल्यम्लानिकल्पवृक्षप्रकम्पनादिभिः ।
चिह्नैर्जनन्ति तेऽमीभिः षण्मासान्तर्गतां मृतिम् ।।५६५।।

शास्त्र में कहा है कि देवता इर्षा और विषाद के कारण पीड़ित होते हैं इत्यादि।

मुरझाती जाती माला तथा कल्पवृक्ष के कंपन आदि लक्षण से देवता छः महीने के अन्दर अपना मृत्यु को जानते हैं । (५६५)

तथाहि - माल्यमलानिःकल्पवृक्षप्रकम्पः श्रीह्रीनाशो वाससां चोपरागः ।
दैन्यं तन्द्रा कामरागाङ्गभंगी, दृष्टेर्भ्रंशो वेपथुश्चारतिश्च ॥५६६॥

कहा है कि - माला का मुरझाना, कल्पवृक्ष का कंपना, लक्ष्मी, शोभा और लज्जा का नाश होना, कपड़े को दाग लगना, दीनता, तन्द्रा, कामराग में अल्पता, अंग टूटना, नजर बंद होना, शरीर में कम्पन होना और मन में अरति ये सारे चिन्ह देव देवों के मृत्यु नजदीक के समय सूचक होते हैं । (५६६)

स्थानाङ्गसूत्रेऽप्युक्तं - "तिहिं-ठाणेहि देवे चविस्समित्ति जाणइ, विमाणइं णिप्पभाइं पासित्ता १कप्परुक्खगं मिलायमाणं पासित्ता २ अप्पणो तेयलेस्सं परिहायमाणिं जाणित्ता ३ इत्यादि ॥"

श्री स्थानक सूत्र में भी कहा है कि - देवताओं को तीन कारण से मेरा च्यवन होगा इस तरह जानता है - १- विमान की प्रभा घटती देखकर २- कल्पवृक्ष को मलीन होते देखकर ३- अपनी तेजोलेश्या (तेज) घटती देखकर इत्यादि ।

तां समृद्धिं विमानाद्यामासन्नं च्यवनं ततः ।
गर्भोत्पत्यदि दुःखं च, तत्राहारादिवैशसम् ॥५६७॥

चित्ते चिन्तयताम् तेषां, यद्दुःखमुपजायते।
तज्जानन्ति जिना एव, तन्मनो वा परे तु न ॥५६८७॥

विमानादि उस समृद्धि को देखकर और नजदीक का च्यवन गर्भ में उत्पत्ति आदि दुःख और वहां आहारादि विचित्र क्रियाओं को चित्त विचार करते उन देवों को जो दुःख होता है, वह श्री जिनेश्वर जानते हैं और उनका मन जानता है अन्य कोई नहीं जानता है । (५६७-५६८)

उक्तं च - तं सुरविमाणविभवं, चिंतिय चवणं च देवलोयाओ।
अइबलियं जं नवि फुट्टइ सयसक्करं हिययं ॥५६६॥

कहा है कि - ब्रह्मदेव विमान का वैभव और देवलोक से अपना च्यवन होगा। ऐसा विचार करके उनका हृदय अति बलवान होने पर भी सेंकड़ों टुकड़े रुप टूट जाता है, ऐसा लगता है आंतर वेदना तो हृदय द्रावक होते है । (५६६)

तथा - विपाकोदयरुपा च चक्षुनिर्मीलनादिभिः ।

व्यक्तैश्चिह्नैर्भवेद्यक्ता, तेषां निद्रा न यद्यपि ।।६००।।

प्रदेशोदयतस्त्वेषां, स्यात्तथाप्यन्यथा कथम् ।

दर्शनावरणीयस्य, सतोऽप्यनुदयो भवेत् ।।६०१।।

विपाकोदय रूप आंख बंध करना आदि व्यक्त चिह्नों से उनको निद्रा नहीं आती है, फिर भी प्रदेशोदय से तो उनको निद्रा होती है अन्यथा विद्यमान भी दर्शनावरणीय का अनुदय किस तरह होता है । (६००-६०१)

क्षयश्चोपशमश्चास्य, देवानां क्वापि नोदितः ।

श्रुतेऽप्येषां कर्मबन्धहेतुत्वेनेयमीरिता ।।६०२।।

इन देवताओं को आगम में दर्शनावरणीय का क्षय अथवा उपशम नहीं कहा और निद्रा का कर्मबंध के हेतु रूप में वर्णन किया है । (६०२)

तथाहुः - "जीवेणं भंते ? निद्दायमाणे वा पयलायमाणे वा कति कम्मपगडीओ बंधई ।गो० । सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबन्धए वा, एवं जाव वेमाणिए, एवं जीवेणं भंते । हसमाणे वा उस्सुयायमाणे वा कति क० बं०? गो० सत्तविहबं वा, अट्ठविहबं० वा, एवं जाव वेमाणिए" भगवति सूत्रे पंचम- "शतक चतुर्थोद्देशके, इह च पृथिव्यादीनां हासः प्राग्भविकतत्परिणामादवसेय" इत्येतद्वृत्तौ ।

श्री भगवती सूत्र के पाँचवें शतक के चौथे उद्देश में कहा है कि -

प्रश्न - हे भदंत ! निद्रा लेते और प्रचला निद्रा को लेते आत्मा कितने प्रकार की कर्म प्रकृति बन्धन करता है ?

उत्तर - हे गौतम सात अथवा आठ कर्म प्रकृति बन्धन करता है । इस तरह वैमानिक तक समझ लेना ।

प्रश्न - हे भदंत ! इस तरह से हँसते और उत्सुकता करते जीभ कितने प्रकार की कर्म प्रकृति बन्धन करता है ?

उत्तर - हे गौतम सात अथवा आठ कर्म प्रकृति बन्धन करता है । इस तरह वैमानिक तक समझ लेना । यहाँ यह भगवती सूत्र के संदर्भ की बात है । यहाँ पृथ्वी

आदि का हास्य कहा है वह पूर्व जन्म के उनके हास्य की परिणति के आधार पर समझना । इस तरह से श्री भगवती सूत्र की टीका में कहा है -

एवं स्वभावतो निद्रासद्भावेऽपि सुधाभुजाम ।
येयं तन्द्रा मृतेश्चिह्नं, सा तु भिन्नैव भाव्यते ।।६०।।

इस तरह से स्वभाव से निद्रा का उदय (प्रदेशोदय) होने पर भी जो यह मरण के चिह्न रुप तन्द्रा है । वह अलग ही लगती है । (६०३)

किंच - षड्जीविकायारम्भेषु, रता मिथ्यात्वमोहिताः ।
यागादिभिजर्विहिंसापहारैमुर्दिताशयाक ।।६०४।।

शरीरासनशय्यादि, भाण्डोपकरणेष्वपि ।
विमान देवदेवीषु, हर्म्यक्रीडाबनादिषु ।।६०५।।

पूर्वप्रेम्णा स्वीकृतेषु नृतिर्यक्ष्वपि मूर्च्छिता : ।
सचित्ताचित्तमिश्रेषु मग्नाः परिग्रहेष्वि वंति ।।६०६।।

मिथ्यात्वी देव षड्जीव निकाय के आरंभ में रक्त होते हैं, मिथ्यात्व से मोहित होता है, यज्ञ में होने वाली जीव हिंसा रुपी उपहार से आनन्दित मनवाला होता है तथा शरीर, आसन-शैय्या, आदि में वासना उपकरणादि में विमान के देव-देवियों में महल में और क्रीड़ावन आदि में तथा पूर्व प्रेम से स्वीकार किये मनुष्य और तिर्यंचों में मूर्च्छा वाले तथा सचित-अचित और मिश्र परिग्रह में तन्मय होते हैं। (६०४-६०६)

तथाहु : - असुरकुमारा पुढविकायं सभारंभति जाव तसकायं सभारंभति, सरीरा परिग्गहिया भवंति, कम्मा प० भ०, भवणा प० भ०, देवा देवीओ मणूसीओ तिरिक्खजोणिआ तिरिक्खजोणिओ प० भ० आसणसयणभंडमत्तोवगरणा परि० भ० सचित्ताचित्तमीसयाइं दव्वाइं प० भ०, वाणमंतरा जोतिसवेमणिया जहा भवणवासी तहाणेयव्वा ।"

कहा है कि - असुर कुमार देवता- पृथ्वी काय देवता आदि से त्रस काय तक का आरंभ करता है, शरीर ऊपर यज्ञादि कर्म ऊपर भवनादि ऊपर देव-देवी, मनुष्य स्त्री, तिर्यंच, तिर्यंचणी ऊपर, आसन शयन, परतन, उपकरण आदि ऊपर और सचित-

अचित और द्रव्य ऊपर मूर्च्छावाला होता है इस तरह से (भवनपति की तथा) वाणयन्तर ज्योतिष्क् और वैमानिक देवों को भी समझना ।

एवं मिथ्यादृशो यान्ति, सारम्भाः सपरिग्रहाः ।
व्युत्वोपार्जितपाप्मान, एकेन्द्रियादिदुर्गतिम ।।६०७।।

इस तरह से मिथ्यादृष्टिदेवता आरंभ और परिग्रह वाले होने से पाप का उपार्जन करके यहाँ से च्यवन कर एकेन्द्रियादि दुर्गति में जाते हैं । (६०७)

सम्यग्दृशः पुनस्तत्वत्रितये कृतनिश्चयाः ।
जिनादिसेवया यद्वा, पूर्वाधीतश्रुतस्मृते ।।६०८।।

विचारयन्तस्तत्वानि, सिद्धान्तोक्तानि चेतसा ।
शुद्धोपदेशैः सम्यक्त्वं, प्रापयन्तः परानपि ।।६०९।।

उत्सवेस्तु महोत्साहा, अर्हत्कल्याणकादिषु ।
जिनोपदेशान् शृण्वन्तः, सेवमाना जिनेश्वरान् ।।६१०।।

महर्षीणांनृणां सम्यग्दृशामथ तपस्विनाम् ।
हितकामाः कृच्छ्रमग्रसंघसाहाय्यकारिणः ।।६११।।

दृष्टर्षि भावितात्मानं कुर्वन्तोवन्दनादिकम् ।
तन्मध्येन गच्छन्ति, स्तब्धमिथ्यात्विदेववत् ।।६१२।।

सम्यगृदृष्टि देवता तीन तत्वों परनिश्चय वाला होता है । जिनेश्वरादि की सेवा से अथवा पहले पूर्वजन्म में अध्ययन किए श्रुत याद करके सिद्धान्त में कहे तत्व का चित्त में विचार करते शुद्ध उपदेश से अन्य को भी सम्यक्त्व प्राप्त करवाता है । अरिहंतों के कल्याणक उत्सवों में बड़े उत्साह वाले होते हैं श्री जिनेश्वरों के उपदेश को सुनते और श्री जिनेश्वरों की सेवा उपासना करते महर्षि सम्यग् दृष्टि पुरुष तथा तपस्वियों के हित की इच्छा करने वाला, दु:ख में मग्न संघ को सहाय करने वाला यह देवता या पितात्मा को देखकर वंदनादि करता है, परन्तु अभिमानी मिथ्यादृष्टि देव के समान बीच से वंदनादि किए बिना नही चला जाता है । (६०८-६१२)

तथाहु:- "तत्थ जे अमायिसम्मदिट्ठिउववण्णए देवे से णं अणगारं भावियप्पाणं पासति, पासित्ता णं वंदति णमंसति जाव पज्जुवासति, से णं अणगारस्स भावियप्पणो मज्झंमज्झेणं णो वितीवएज्जा" भगवती सूत्रे श० १४३

श्री भगवती सूत्र के चौदहवें शतक तीसरे उद्देश में कहा है कि – वहां यदि सरल और सम्यग् द्दष्टि देव है, वह देव भावितात्मा महात्माओं को देखता है, देखकर वंदन करता है, नमस्कार करता है, वह भाविकात्मा साधु के मध्य भाग में से नहीं निकलता, उन्हीं के बीच रहता है ।

एवंअर्जितंपुण्यास्ते, महर्द्धिभरशालिषु ।
प्रत्यायान्ति कुलेषूच्चेष्वासन्नभवसिद्धिकाः ॥६१३॥

ऐसे देवता पुण्य को प्राप्त करके आसन्न मोक्षगामी होने से अत्यन्त ऋद्धि से शोभायमान उच्च कुल में जन्म लेते हैं । (६१३)

तत्रापिसुभगाः सर्वोत्कृष्टरुपा जनप्रियाः ।
भोगान्भुक्त्वाऽऽत्तचारित्राः क्रमाद्यान्ति परांगतिम् ॥६१४॥

वहां पर भी सौभाग्यशाली, सर्वोत्कृष्ट रूपवाले तथा जनप्रिय बनकर भोग भोग कर चारित्र प्राप्त करके क्रमशः मुक्ति में जाते हैं । (३१४)

नन्वेवमुदिताः सूत्रे, अधर्मे संस्थिता सुराः ।
कथं तदेष भावार्थो, न तेन विघटिष्यते ? ॥६१५॥

यहां प्रश्न करते हैं कि – सूत्र में देवताओं को अधर्म स्थिर कहा है और यहां धर्म करके सद्गति को प्राप्त करता है इस तरह कहा है तो वह भावार्थ आगम पाठ के साथ में कैसे घट सकते हैं ?

तथाहि – "जीवाणं भंते । किं धम्मे ठिया अधम्मे ठिया धम्मा धम्मे ठिया । गो० । जीवा धम्मेवि ठिया, अधम्मे० धम्माधम्मे०, णेरइया णं पुच्छा, गो० । णेरइया नो धम्मे० नो धम्माधम्मे०, अधम्मे ठिया, मणु० जहा जीवा, वाणमंतर० जोइ० वेमा० जहा णेरइया," भगवती सूत्रे सप्तदशशतक - द्वितीयोद्देशके १७-२ ।

श्री भगवती सूत्र के सतरहवें शतक दूसरे उद्देश में कहा है कि हे भगवन् ! जीव धर्म में रहता है ? अधर्म में रहते हैं ? या धर्माधर्म में रहते हैं ? हे गौतम ! जीव धर्म, अधर्म और धर्माधर्म में भी रहते हैं ।

नारकी के प्रश्न के उत्तर में - हे गौतम ! नरकी धर्म में नही है, धर्माधर्म में भी नही है, किन्तु अधर्म में रहे है और मनुष्य जीव के समान समझना अर्थात कि धर्म धर्माधर्म में और अधर्म में भी रहते है और वाणव्यन्तर वैमानिक और ज्योतिष्क नारकी जैसे अधर्म में रहे है । यहां वाणव्यन्तर के साथ में भवनपति देव लेना ।

अत्रोच्यते - एषामुक्तमिदं देशसर्वविरत्यभावतः ।
तथैवात्रोद्देशकादौ, सूत्रेऽपिप्रकटीकृतम् ।।६१६।।

यह बात जो कही है वह देश विरति और सर्व विरति के अभाव के आश्रित कही है और उसी तरह से इस उद्देश में और सूत्र में प्रगट किया है । (६१६)

''से णूणं संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे धम्मे ठिए अस्संजय० अधम्मे ठिए संजयासजए धम्माधम्मे ठिए''

जो संयत अर्थात सत्तरह प्रकार के संयम से युक्त विरत - बारह प्रकार के तप में विशेषासक्त । प्रतिहत प्रत्याख्यात पापकर्मा अर्थात अल्प स्थिति वाला तथा पुनः दीर्घ स्थिति वाले न बंधन हो इस तरह पाप कर्म वाले उस धर्म में स्थित है ऐसा कहा जाता है जो असंयत-अविरत और अप्रतिहत-अप्रत्याख्यान पापकर्मा है वह अधर्म में स्थित है ऐसा कहा जाता है संयत, असंयत है वह धर्मा, धर्म में स्थित है इस तरह कहा जाता है ।

सर्वथा संवराभावापेक्षं नत्वेतदीरितम् ।
संवरद्वाररुपस्य, सम्यक्त्वस्यैषु संभवात् ।।६१७।।

सर्वथा संवर के अभाव के अपेक्षी को यह बात नही कही क्योंकि संवर के द्वार रूप सम्यक्त्व तो इन देवों में होता है । (६१७)

सम्यक्त्वमपि मिथ्यात्व निरोधात्संवरः स्फुटः ।
संवरेष्वत एवेदं, श्रुते पञ्चसु पठ्यते ।।६१८।।

मिथ्यात्व के निरोध से ही प्राप्त होने से सम्यक्त्व की स्पष्ट रूप में संवर है

और इसके लिये ही पाँच प्रकार का सँवर में आगम के अन्दर सम्यक्त्व का संवर रुप में कहा है । (६१८)

तथाहु: - स्थानाङ्गे समवायाङ्गे भगवत्यां च-पंच संवरदारा प०, तं०- सम्मत्तं विरती अपमादो अकसाइत्तं अज्जोमित्तं"।

श्री स्थानांग श्री समवायांग और श्री भगवती सूत्र में कहा है कि - पाँच संवर द्वार कहा है वह इस तरह - १- सम्यकत्व २- विरति ३-अप्रमाद ४- अकषायत्व ५- अयोगित्व ।

एको द्वियादिसंख्येया, असंख्या अपि कर्हिचित् ।
उत्पद्यंते च्यवन्तेऽमी, एकस्मिन् समये सह ॥६१९॥

यह देव एक ही समय में एक ही साथ में एक, दो, तीन से लेकर संख्यात असंख्यात उत्पन्न होते है और च्यवन होता है । (६१९)

उत्पत्तेश्च्यवनस्यापि, विरहो यदि भाव्यते ।
सौधर्मेशानयोर्देवलोकयोरमृताशिनाम् ॥६२०॥

स चतुर्विंशतिं यावन्मुहूर्त्तान् परमो भवेत् ।
जघन्यतस्तु समयं यावदुक्तौ जिनेश्वरैः॥६२१॥

सौधर्म और ईशान इन दो देवलोक के देवों की उत्पत्ति और च्यवन का विरहकाल विचार करने में आता है तो उत्कृष्ट से चौबीस मुहूर्त्त और जघन्य से एक समय जिनेश्वर भगवन्त ने कहा है । (६२०-६२१)

इन्द्रयोरथ सौधर्मेशानस्वर्गाधिकारिणोः ।
स्वरुपमुच्यते किंचिन्मत्वा गुरुपदेशतः ॥६२२॥

पूज्य गुरुदेव के उपदेश से जानकर सौधर्म और ईशान् देवलोक के अधिपति इन्द्रों का कुछ स्वरुप कहता हूं । (६२२)

तत्रादिमे देवलोके, प्रतरे च त्रयोदशे ।
मेरोर्दक्षिणतः पञ्च, स्युर्विमानावतंसका ॥६२३॥

उसमें प्रथम देवलोक के तेरह प्रतर में मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में पाँच अवतंसक विमान होते हैं । (६२३)

प्रथम दिशि पूर्वस्यां, तत्राशोकावतंसकं ।
दक्षिणस्यां सप्तवर्णावतंसकमिति स्मृतम् ।।६२४।।

पश्चिमायां चम्पकावतंसकाख्यं निरुपितम् ।
उत्तरस्यां तथा चूतावतंसकमुदीरितम् ।।६२५।।

तेषां चतुंर्णा मध्येऽथ, स्यात्सौधर्मावतंसकम् ।
महाविमानं यत्राऽऽस्ते, स्वयं शक्रः सुरेश्वरः ।।६२६।।

उसमें पूर्व दिशा में प्रथम अशोकावतंसक, दक्षिण में सप्त पर्णावतं से, पश्चिम दिशा में चपकावतंसक और उत्तर दिशा में चूतावतंसक नामक विमान है और इन चारों के मध्य में सौधर्मावतंसक नामक महाविमान है । जिसमें शकेन्द्र स्वयं निवास करता है । (६२४-६२६)

एमद्योजनलक्षाणि, सार्द्धनि द्वादशायतम् ।
विस्तीर्णं च परिक्षेपो, योजनानां भवेदेहि ।।६२७।।

लक्ष्याण्येकोनचत्वारिंशद् द्विपन्चाशदेव च ।
सहत्राण्यष्टशत्यष्टाचत्वारिंशत्समन्विता ।।६२८।।

यह पाँच विमान साढ़े बारह लाख (१२,५०,०००) योजन लम्बा और चौड़ा होता है और उसकी परिधि उन्तालीस लाख बावन हजार आठ सौ चौवालीस (३६५२८४४) योजन होता है । (६२७-६२८)

समन्ततोऽस्य प्राकारो, वनखण्डाश्चतुर्दिशम् ।
प्रासादशेखरो मध्ये, प्रासादपङ्क्तिवेष्टितः ।।६२६।।

प्रासादात्तत ऐशान्यामुपपातादिकाः सभाः ।
एवं प्रागुक्तमास्थेयं, सर्वं विमानवर्णनम् ।।६३०।।

इन विमानों के चारों तरफ किला होता है, चारों दिशा में वन खंड होता है और विमान के मध्य भाग में चारों तरफ प्रासाद की पंक्ति से घिरा हुआ मुख्य प्रासाद होता है उस प्रासाद के ईशान कोने में उपपातादि सभाए है इस तरह से विमान का वर्णन जो आगे कहने का है उसके अनुसार जान लेना । (६२६-६३०)

अत्रोपपातसदेन, शय्यायां सुकृताञ्चिताः ।
उत्पद्यन्ते शक्रतया, क्रमोऽत्र प्राक् प्रपञ्चितः ॥६३१॥

इसके उपरान्त सभा में शय्या में पुण्यशाली जीव शक्र रुप में उत्पन्न होता है उसका क्रम प्रथम कहा है । (६३१)

यथा हि साम्प्रतीनोऽसौ, सौधर्मनाकनायकः ।
प्रागासीत्कार्त्तिकः श्रेष्ठी, पृथिवीभूषणे पुरे ॥६३२॥

तेन श्राद्धप्रतिमानां, शतं तत्रानुशीलितम् ।
ततः शतक्रतुरिति, लोके प्रसिद्धिमीयिवान् ॥६३३॥

स चैकदा गैरिकेन, मासोपवासभोजिना ।
दृढार्हतत्वरुष्टेन, नुन्नस्य क्ष्मापतेर्गिरा ॥६३४॥

गैरिकं भोजयामास, पारणायां नृपालये।
ततः स दुष्टो धृष्टोऽसीत्यंगुल्यानासिकास्पृशन् ॥६३५॥

जहास श्रेष्ठिनं सोऽपि, गृहे गत्वा विरक्त धीः ।
जग्राहाष्टसहस्रेण, वणिक पुत्रैः समं व्रतम् ॥६३६॥

अधीतद्वादशाङ्गीको, द्वादशाब्दानि संयमम् ।
पालयित्वाऽनशनेन, मृत्वा देवेश वरोऽभवत् ॥६३७॥ *चतुर्भिःकलापकं।*

वर्तमान शक्रेन्द्र का पूर्व वृत्तांत कहते हैं –

जो वर्तमान कालीन सौधर्म देवलोक में इन्द्र है, वह पूर्व जन्म में पृथ्वी भूषण पुर में कार्तिक नाम से सेठ रहता था, उस सेठ ने श्रावक प्रतिमा को एक सौ बार अराधना की थी, इससे उसका नाम 'शतक्रतु' इस तरह लोगों में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था । एक समय अरिहंत मार्ग के देवी गैरिक नामक मासो पवासी तापस की प्रेरणा से राजा की आज्ञा से कार्तिक सेठ ने राज मंदिर में उस तापस को पारणा करवाया, इससे दुष्ट तापस ने अँगुलि से नासिका को कट करके उसे अपमानित किया । इस तरह से उस श्रेष्ठी का मखौल किया, इससे वैराग्य प्राप्त कर उस कार्तिक सेठ ने घर जाकर एक हजार आठ सौ वणिक पुत्रों के साथ दीक्षा स्वीकार की और द्वादशांगी का अध्ययन किया । बारह वर्ष संयम पालकर अंत में

अनशन की आराधना कर काल धर्म प्राप्त कर वह सौधर्मेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ । (६३२-६३७)

गैरिकस्तापसः सोऽपि, कृत्वा बालतपो मृतः ।
अभूदेरावणासुरः, सौधर्मेंद्रस्य वाहनम् ।।६३८।।

भगवती सूत्राभिप्रायस्त्वयं -

वह गैरिकतापस भी ब्राह्यतप करके और मर कर सौधर्मन्द्र के वाहन रूप में ऐरावत हाथी के रूप में उत्पन्न हुआ । (६३८)

यह अभिप्राय श्री कल्पवृत्ति आदि की है ।

हस्तिनागपुरे श्रेष्ठी, कार्तिकोऽभून्महर्द्धिकः ।
सहस्राम्रवणे तत्रामतोऽर्हन्मुनिसुव्रतः ।।६३९।।

कार्तिकाद्यास्तत्र पौरा, जिनं वन्दितुमैयरुः ।
प्रबुद्ध कार्तिकः श्रुत्वा, जिनोपदेशमञ्जसा ।।६४०।।

गृहेगत्वा ज्ञातिमित्रस्वजनान् भोजनादिभिः ।
सन्तोष्य ज्येष्ठतनये, कुटुम्बभारमक्षिपत् ।।६४१।।

स्वस्वज्येष्ठसुते न्यस्तगृहभारैः समन्ततः ।
अष्टाधिक सहस्रेणानुगतो नैगमोत्तमैः ।।६४२।।

सहस्रपुरुषोद्वाह्यामारुह्य शिविकां महैः ।
मुनि सुव्रतपादान्ते, स प्रव्रज्यामुपाददे ।।६४३।।

अधीत्य द्वादशाङ्गानि, द्वादशाब्दानि संयमम् ।
धृत्वा मासमुपोष्यान्ते, सौधर्मनायकोऽभवत् ।।६४४।।

जबकि श्री भगवती सूत्र का अभिप्राय इस तरह है -

हस्तिनागपुर में कार्तिक नामक महान ऋद्धि वाला सेठ रहता था । उस समय श्री मुनि सुव्रत स्वामी 'सहस्राभुवन' में पधारे । कार्तिक सेठ आदि नगर लोग श्री जिनेश्वर को वंदनार्थ गये और श्री जिनेश्वर प्रभु के उपदेश सुनकर कार्तिक सेठ को बोध हुआ । घर में जाकर ज्ञानिजन-मित्र स्वजन आदि को भोजनादि से

संतोषी कर मुख्य पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप दिया, इसी तरह से अन्य भी एक हजार आठ सेठों ने अपना-अपना भार अपने बड़े पुत्र को सौंपा । इस तरह एक हजार आठ सेठों के साथ में कार्तिक सेठ हजार पुरुष उठा सकें ऐसी शिविका में बैठ कर श्री जिनेश्वर भगवान के पास में आए और महोत्सव पूर्वक मुनि सुव्रत स्वामी के चरणों में दीक्षा स्वीकार की और उसके बाद द्वादगांगी का अभ्यास किया । बारह वर्ष का संयम पर्याय पालकर एक महीने का अनशन करके सौधर्मेन्द्र बना । (६३९-६४४)

तथा च सूत्रं - ''इहेव जम्बुद्दीवे भारहेवासे हत्थिणाउरे नामं नयरे होत्था'' इत्यादि ।

भगवती सूत्रे श० १८ उ० २ ।

श्री भगवती सूत्र के अठारहवें शतक के दूसरे उद्देश में कहा है कि - यह जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नामक नगर था । इत्यादि -

एवमुत्पन्नः स शक्रः, प्राग्वत्कृत्वा जिनार्चनम् ।
सुखमास्ते सुधर्मायां, पूर्वामुखो महासने ॥६४५॥

इस तरह से उत्पन्न हुए उस इन्द्र ने पूर्व में की थी उसी तरह जिन पूजा करके सुधर्मा सभा में पूर्वा भिमुख आसन पर सुख पूर्वक बैठता है । (६४५)

तिस्रोऽस्य पर्षदस्तत्राभ्यन्तरा समिताभिधा ।
तस्यां देव सहस्राणि, द्वादशेति जिना जगुः ॥६४६॥

देवीशतानि सप्तास्यां, मध्या चंडाभिधा सभा ।
चतुर्दश सहस्राणि, देवानामिह पर्षदि ॥६४७॥

षटशतानि च देवीनां, बाह्याजातभिधासभा ।
स्युः षोडश सहस्राणि, पर्षदीह सुधाभुजाम् ॥६४८॥

शतानि पंच देवीनां, यथाक्रममथोच्यते ।
आयुः प्रमाणमेतासां, तिसृणामपि पर्षदाम् ॥६४९॥

इन्द्र महाराज की तीन पर्षदा होती हैं उसमें अभ्यन्तर पर्षदा का नाम समिता है और उसमें बारह हजार देवता और सात सौ देवियाँ होती है । दूसरी मध्य पर्षदा

का नाम चंडा है, उस पर्षदा में चौदह हजार देव और छः सौ देवियाँ होती हैं । और बाह्य पर्षदा का नाम जाता है उसमें सोलह हजार देव और पाँच सौ देवियाँ होती हैं। अब तीनों पर्षदाओं का देवों का आयुष्य क्रमशः कहा जाता है । (६४६-६४६)

अन्तः पर्षदि देवानां, पंचपल्योपमात्मिका ।
स्थितिस्तथात्र देवीनां पल्योपमत्रयं भवेत ॥६५०॥

अभ्यंतर पर्षदाओं के देवों का आयुष्य पाँच पल्योपम और देवियों का आयुष्य तीन पल्योपम होता है । (६५०)

पल्योपमानी चत्वारि, मध्यपर्षदि नाकिनाम् ।
स्थितिर्देवीनां तु पल्योपमद्वयं भवेदिह ॥६५१॥

मध्यम पर्षदा के देवों का आयुष्य चार पल्योपम का और देवियों का आयुष्य दो पल्योपम होता है । (६५१)

बाह्यपर्षदि द्वेवानां, पल्योपमत्रयं स्थितिः ।
एकं पल्योपमं चात्र देवीनां कथिता स्थिति ॥६५२॥

बाह्य पर्षदा के देवों का आयुष्य चार पल्योपम का और देवियों का आयुष्य एक पल्योपम होता है । (६५२)

अस्यैवं सामानिकानां, त्रायस्त्रिंशकनाकिनाम् ।
लोकपालानां तथाग्रमहिषीणामपि ध्रुवम् ॥६५३॥

भवन्ति पर्षदस्तिस्त्रः समिताद्या यथाक्रमम् ।
अच्युतान्तेन्द्रसामानिकादीनामेवमेव ताः ॥६५४॥ *इतिस्थानाङ्ग सूत्रे ॥*

इस तरह से इन्द्र महाराज के सामयिक देव, त्रायस्त्रिंश देव, लोकपाल और अग्रमहिषियों की भी समतादि अनुक्रम से तीन-तीन पर्षदा होती है । इस तरह अच्युतेन्द्र तक के इन्द्र तथा सामानिकादि देवों को भी तीन-तीन पर्षदा होती है । यह सारी बात स्थानांग सूत्र में कहा है । (६५३-६५४)

सहस्त्राण्यस्य चतुरशीतिः सामानिकाः सुराः ।
ते चेन्द्रत्वं बिना शेषैः, कान्त्यायुर्वैभवादिभिः ॥६५५॥

समाना: सुरनाथेन, सामानिकास्तत: श्रुता: ।
अमात्यपितृगुर्वादिवत्सम्मान्या बिडौजस: ॥६५६॥

स्वामित्वेन प्रतिपन्ना, एतेऽपि सुरनायकम् ।
भवन्ति वत्सला: सर्वकार्येषु बान्धवा इव ॥६५७॥

इस इन्द्र को सामानिक देवता चौरासी हजार (८४०००) होते हैं । वे इन्द्रत्व बिना कान्ति, आयुष्य और वैभवादि से इन्द्र महाराजा समान होते हैं इससे ही उनको सामनिक देव कहलाते हैं और वे सामनिक देव इन्द्र महाराज के लिये मन्त्री, पिता और गुरु आदि के समान सम्माननीय होते हैं । इन्द्र महाराज को स्वामी रूप में स्वीकार कर ये सामनिक देव उनके सर्व कार्यों में बंधन के समान वात्सल्य वाले होते हैं । (६५५-६५७)

त्रायस्त्रिंशास्त्रयस्त्रिंशद्देवा: स्युर्मन्त्रिसन्निभा: ।
सदा राज्य भारचिन्ताकर्त्तार: शक्रसंमता: ॥६५८॥

पुरोहिता इव हिता:, शान्तिकपौष्टिकादिकम् ।
कुर्वन्तोऽवसरे शक्रं, प्रणियन्ति महाधिय: ॥६५९॥

दोगुन्दकापराह्वाना, महासौख्यान्विता अमी ।
निर्दशनतयोच्यन्ते, श्रुतेऽतिसुखशालिनाम् ॥६६०॥

तेतीस त्राय स्त्रिश देव होते हैं कि जो इन्द्र के मन्त्री समान होते हैं और वे राज्य के भार की चिन्ता को करने वाले - शक्र समंत होते हैं और समय पर शान्तिक और पौष्टिक कर्म करते वे इन्द्र महाराज को खुश करते हैं ये त्रायस्त्रिंश देव (दोगुंदक) ऐसा दूसरा नाम धारण करने वाले और महा सुखशाली होते हैं । शास्त्र में अति सुखशाली जन के दृष्टान्त रूप में उनका उल्लेख किया जाता है । (६५८-६६०)

तथोक्तं मृगापुत्रीयाध्ययने -

नंदणे सौ उ पासाए, कीलए सह इत्थिए ।
देवो दोगुंदगो चेव, निच्चं मुइयमाणसो ॥६६१॥

मृगा पुत्रीय अध्ययन में कहा है कि 'नंदन नामक प्रसाद में नित्य आनंदित मनवाले बनकर दो गुंदक देव के समान स्त्रियों देवियों के साथ में हमेशा क्रीड़ा करते हैं'। (६६१)

त्रायस्त्रिंशा देवा भोग परायणा दोगुंदका इति भण्यन्ते'' इत्युतराध्ययनाव चूर्णौ''।

त्रासस्त्रिश देव भोग करने में परायण होने से दो गुंदक कहलाते हैं । इस तरह श्री उत्तराध्ययन सूत्र की अपचूर्णिका में कहा है ।

साम्प्रतीनास्त्वमी जम्बुद्वीपेऽस्मिन्नेव भारते ।
पालाक सन्निवेशस्थास्त्रयस्त्रिंशन्महर्द्धिका: ॥६६२॥

अभून् गृहपतयः, सहायास्ते परस्परम ।
उग्राचार क्रियासारा:, संसार भयभीरव: ॥६६३॥

प्रपाल्याब्दानि भूयासि, श्रावकाचारमुत्तमम् ।
आलोचित प्रतिक्रान्तातिचाराश्चतुराशया: ॥६६४॥

मासमेकमनशनं, कृत्वा मृत्वा समाधिना ।
त्रायस्त्रिंशा: समभवन्मान्या वृन्दारकेशितु: ॥६६५॥

साम्प्रतीन त्रायस्त्रिंश देव का वर्णन - अभी के त्रायस्त्रिश देव इस जम्बू द्वीप में पालक सन्निवेश के रहने वाले महान ऋद्धिवाले ३३ गृहपति थे । वे परस्पर सहाय करने वाले होते हैं, बहुत वर्षों तक उत्तम श्रावकाचार का पालन करके आलोचना और प्रतिक्रमण करके चतुराशय वाले वे एक महीने का अनशन करके समाधि पूर्वक मृत्यु प्राप्त करके इन्द्र महाराजा के मान्यवर्य त्रायस्त्रिश देवता होते हैं । (६६२-६६५)

नश्चैवमेतेभ्य एव त्रायस्त्रिंशा इति प्रथा ।
नामधेयं नित्यमेतदव्युच्छित्तिनयाश्रयात् ॥६६६॥

ये ततीस गृहपति यहाँ देवलोक में इस स्थान में एक साथ में उत्पन्न होते हैं इससे इन त्राय स्त्रिश का नाम है, ऐसा नही है परन्तु व्युक्षिति नय-नित्यता की अपेक्षा से यह नाम हमेशा का है । (६६६)

शतानि मन्त्रिणः पञ्च, संत्यन्येऽपीन्द्रसंमताः ।
येषांमक्षिसहस्त्रेण सहस्त्राक्षः स गीयते ॥६६७॥

इन्द्र महाराज के अन्य भी मान्यवर पाँच सौ मन्त्री होते हैं उनकी हजार आँख भी अपेक्षा से इन्द्र महाराज का नाम सहसाक्ष भी कहा है। (६६७)

तथोक्तं कल्पसूत्रेक्तौ - "सहस्सक्खे ति मन्त्रि पंचशत्मा लोत्तनानि इन्द्र सम्बन्धीन्येवेति सहस्त्राक्षः"

कल्प की टीका में कहा है कि पाँच सौ मन्त्री की आँखें इन्द्र महाराज की कहलाती है, इसलिए इन्द्र महाराजा सहस्त्राक्ष कहताता है ।

तथा सहस्त्राणि चतुरशीतिरात्मरक्षकाः ।
अमी चात्मानमिन्द्रस्य रक्षन्तीत्यात्मरक्षकाः ॥६६८॥

इन्द्र महाराज के चौरासी हजार आत्मरक्षक देव होते हैं और ये देवता इन्द्र महाराज के आत्मा का रक्षण करने वाले होने से आत्मरक्षक देव कहलाते हैं । (६६८)

ऐतेत्त्वपायाभावेऽपि, प्रीत्युत्पत्यैसुरेशितुः ।
तथास्थितेश्च निचितकवचाः परितः स्थिताः ॥६६९॥

ये देवता कोई उपद्रव न हो तो भी इन्द्र महाराज का प्रेम प्राप्त करने के लिये कवच धारण करके तैयार होकर इन्द्र महाराज के चारों तरफ रहते हैं । (६६९)

धनुरादिप्रहरणग्रहणाव्यग्रपाणयः
तूणीरखड्गफलककुन्तादिभिरलङ्कृताः ॥६७०॥

एकाग्रचेतसः स्वामिवदनन्यस्तदृष्टयः ।
श्रेणीभूताः शक्रसेवां, कुर्वते किङ्कराइव ॥६७१॥

जो हाथ में धनुष्यादि शस्त्रों को ग्रहण करने में तत्पर है और तलवार-फलक भाले आदि से अलंकृत है, ऐसे वे एकाग्र चित्त से स्वामी के मुख कमल ऊपर आँख रखकर श्रेणीबद्ध रूप में किंकर के समान शक्र महाराजा की सेवा करते हैं । (६७०-६७१)

तथासप्तास्य सैन्यानि तत्र तादृक् प्रयोजनात् ।
नृत्यज्ञात्योत्तुङ्ग चङ्ग तुरङ्गकारधारिणाम् ।।६७२।।

शूरणां युद्धसन्नद्धशस्त्रावरणशालिनाम् ।
निर्जराणां निकुरम्बं हमसैन्यमिति स्मृतम् ।।६७३।।

इन्द्र महाराजा को सात सैन्य होते हैं उसमें प्रथम अश्वसेना कही है जो कि उस प्रकार के प्रयोजन से नाचते हैं इस तरह जातिवंत ऊँचे और सुन्दर घोड़े के आकार को धारण करने वाले शूरवीर युद्ध के लिए तैयार रहते वख्तर और शस्त्र से शोभते देवता समूह रूप है । (६७२-६७३)

एवं गजानाम् कटकं रथानामपि भास्वताम् ।
विविधायुधपूर्णामश्वरूपमरुद्युजाम् ।।६७४।।

इसी तरह अश्व सेना के समान दूरी गजसेना भी होती है और विविध आयुधो से पूर्ण और देदीप्ययान ऐसी तीसरी रथ सेना भी होती है उसमें अश्व रूपी देव जोड़े हुए होते हैं । (६७४)

तथा वृषभदेवानां, सैन्यमुच्छृङ्गिणां युधे ।
उद्‌भटानां पदातीनां सैन्यमुग्रभुजोष्मणाम् ।।६७५।।

उसके बाद युद्ध में ऊंचे शृंग करने वाले चौथे वृषभ देवों की सेना होती है तथा युद्ध में प्रचंड भुजाबली उद्‌भट पाँचवी पैदल की सेना है । (६७५)

एतानि पंच सैन्यानि गतदैन्यानि वज्रिणम् ।
सेवन्ते युद्धसज्ञानि नियोगेच्छूनि सन्निधौ ।।६७६।।

आज्ञा के इन्छुक युद्ध में तैयार, दीनता रहित ये पाँच सैन्य इन्द्र महाराज के सान्निध्य में सेवा करते हैं । (६७६)

शुद्धाङ्गनृत्यवैदग्ध्यशालिनां गुणमालिनाम् ।
नटानां देवदेवीनां, षष्टं सैन्य भजत्यमुम् ।।६७७।।

शुद्ध अंग नृत्य की कौशल्य से शोभते गुणवान नटकार देव-देवियों का छठा सैन्य इन्द्र महाराज की सेवा करते हैं । (६७७)

स्वरमाधुर्यवर्याणां, सैन्यमातोद्यभारिणाम् ।
गन्धर्वदेवदेवीनां, सप्तमं सेवते हरिम् ।।६७८।।

स्वर की मधुरता से श्रेष्ठ वाणी को धारण करने वाले गंधर्व देव-देवियों का सातवां सैन्य इन्द्र महाराज की सेवा करता है । (६७८)

एतत्सैन्यद्वयं चातिचतुरं गीतताण्डवै ।
अविश्रमं प्रयुञ्जानमुपभोगाय वज्रिणः ।।६७९।।

ये दोनो सैन्य गीत और नृत्य में अति चतुर होते हैं और इन्द्र महाराज के उपयोग में हमेशा लगे रहते हैं । (६७९)

सप्तानामप्यथैतेषां सैन्यानां सप्त नायकाः ।
सदा सन्निहताः शक्रं विनयात् पर्युपासते ।।६८०।।

इन सात सैन्यों के सात सेनापति हमेशा इन्द्र महाराज के नजदीक रहकर विनय पूर्वक सेवा करते हैं । (६८०)

ते चेवं नामतोवायु १ एरावतश्च २ माठर. ३ ।
स्याद्दामर्द्धि ४ हरिनैगमेषी ५ श्वेतश्च ६ तुम्बरुः ७ ।।६८१।।

इन सेनापतियों के नाम अनुक्रम से इस प्रकार है १- वायु, २- ऐरावत, ३- माठर, ४- दामर्द्धि, ५- हरिनैगमेषी, ६- श्वेत और तुंबरु । (६८१)

सप्तापि सेनापतयः स्युरेतैरेव नामभिः ।
तृतीयस्य पंचमस्य सप्तमस्य सुरेशितुः ।।६८२।।

तीसरे, पाँचवे और सातवें देवलोक के इन्द्र महाराज के सेनापतियों के नाम भी इसी प्रकार से आते हैं । (६८२)

अङ्गीकृत्य द्वादशेन्द्रानानतारण्योरपि ।
एतन्नामानं एवामी, स्थानाङ्गे कथिता जिनैः ।।६८३।।

श्री जिनेश्वर भगवन्तों ने स्थानांग सूत्र के अन्दर बारह देवलोक के आश्रित आनत और आरण देवलोक के इन्द्र महाराज के सेना पतियों के नाम इसी प्रकार से कहा है । (६८३)

पादात्येशस्तत्र हरिनैगमेषीति विश्रुतः ।
शक्रदूतोऽति चतुरो नियुक्तः सर्वकर्मसु ।।६८४।।

इन सेनापतियों में पदाति सेना के सेनापति हरिनैगमेषी रूप में प्रसिद्ध है जो अति चतुर और सर्व कार्य में नियुक्त शक्र इति रुप है । (६८४) .

योऽसौ कार्य विशेषेण देवराजानुशासनात् ।
कृत्वामङ्क्षु त्वचश्छेदं रोमरन्ध्रर्नखांकुरैः ।।६८५।।

संहर्त्तुमीष्टे स्त्रीगर्भं न च तासां मनागपि ।
पीड़ा भवेन्नगर्भस्याप्यसुखं किंचिदुद्भवेत ।।६८६।।

वह हरिनैगमेषी देव इस तरह कुशल शक्ति धारण करता है देवेन्द्र की आज्ञा से विशिष्ट कार्य के समय में स्त्री के गर्भ का संहरण करने में समर्थ होता है, स्त्री को सहज भी पीड़ा न हो और गर्भ को जरा भी दुःख न हो उस तरह से संहरण कर सकते है । (६८५-६८६)

तत्रगर्भाशयाद्भर्गाशये यौनो च योनितः ।
योनेगर्भाशये गर्भाशयाद्योनाविति क्रमात् ।।६८७।।

आकर्षणामोचनाभ्याम् चतुर्भङ्ग्यत्र संभवेत ।
तृतीयेनैव भङ्गेन गर्भ हरति नापरैः ।।६८८।।

इदंचार्थतः पंचमागे

यहां १- गर्भाशय में से गर्भाशय में २- योनि से योनि में ३- योनि से गर्भाशय में और गर्भाशय से योनि में निकालना और रखने की चतुभंगी होती है, उसमें से तीसरे प्रकार की विभाग से गर्भ का अपहरण करता है अन्य विभाग नही है । यह बात श्री भगवती सूत्र में कही है । (६८७-६८८)

पत्तिसैन्यपतेरस्य कच्छाः सप्त प्रकीर्तिताः ।
कच्छा शब्देन च स्वाज्ञावशवर्त्तिसुरव्रजः ।।६८९।।

पदाति सैन्य के अधिपति हरिनैगमेषी देवों की सात कच्छा कही है, कच्छा शब्द का अर्थ - अपनी आज्ञानुवर्ती देवों का समूह समझना । (६८९)

ईशानाद्यच्युतान्तानामेवं सर्वबिडौजसाम् ।
पत्ति सैन्यपतेः कच्छाः सप्त सप्त भवन्ति हि ॥६६०॥

ईशान देवलोक से अच्युत देवलोक तक के सर्व इन्द्रों की पदाति सेना की सात-सात 'कच्छा' होती है । (६६०)

देवास्तत्राद्यकच्छायां, स्वेन्द्रसामानिकैः समाः ।
द्वितीयाद्याः षडन्याश्च द्विघ्ना द्विघ्ना यथोत्तरम् ॥६६१॥

इन सात कच्छाओं में से पहली कच्छा में देव अपने देवलोक के इन्द्र के सामानिक देवों की संख्या अनुसार होती है । दूसरी से सात तक की छः कच्छा में क्रमशः देवों की संख्या दोगुनी-दोगुनी समझना । (६६१)

यथासौधर्मेन्द्र हरिनैगमेषिचभूपतेः ।
स्यादाद्यकच्छा चतुरशीति देव सहस्त्रिका ॥६६२॥

जैसे कि सौ धर्मेन्द्र के हरिनैगमेषी सेनापति है उनकी प्रथम कच्छा के चौरासी हजार देवता होते हैं (६६२)

तथायानविमानाधिकारी पालक निर्जरः ।
सदाशक्रनियोमेच्छुरास्ते विरचिताञ्जलिः ॥६६३॥

तथा अब वाहन रूप विमान के अधिकारी पालक नामक देव है और वे संघ इन्द्र महाराज की आज्ञा का इच्छुक बनकर हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं । (६६३)

यदेन्द्रो जिनजन्माद्युत्सवेषु गन्तुमिच्छति ।
तदावादयते घण्टी सुघोषानैगमेषिणा ॥६६४॥

जब इन्द्र महाराज की श्री जिनेश्वर भगवंत के जन्म कल्याण आदि उत्सव में जाने की इच्छा होती है उस समय इन्द्र महाराजा नैगमेषी देव द्वारा 'सुघोषा' घंटा बजवाते हैं। (६६४)

वादीतायाममुष्यां च घण्टाः सर्वविमानगाः ।
शब्दायन्ते समं यन्त्रप्रयोगप्रेरिताइव ॥६६५॥

यह घण्टा बजाने के बाद सर्व विमान में रहे घंटे एक साथ में यन्त्र प्रयोग से प्रेरित हो इस तरह बजने लगते हैं । (६६५)

ततःपालकदेवेन रचिते पालकाभिधे ।
समं ीनो महायानविमाने सपरिच्छदः ॥६६६॥

औत्तराहेण निर्याणमार्गेणावतरत्यधः ।
एत्यनन्दीश्वरद्वीप, आग्नेयकोणसंस्थिते ॥६६७॥

शैलेरतिकराभिख्ये विमानं संक्षिपेत्ततः ।
कृतकार्यः स्वर्गमेति विहिताष्टाहिमहोत्सवः ॥६६८॥

उसके बाद पालक देवता से बनाया गया पालक नामक बड़े विमान में परिवार सहित बैठे इन्द्र महाराज उत्तर दिशा के निर्याण नीचे उतरने के मार्ग से नीचे उतरते हैं और नंदीश्वर द्वीप में आकर अग्नि कोने में रहे रतिकर पर्वत ऊपर विमान को संक्षेप करते हैं और फिर कार्य होने के बाद अष्टाहिन्का महोत्सव करके देवलोक वापिस जाते हैं । (६६६-६६८)

तथोक्तं - "तत्र दक्षिणो निर्याण मार्ग उक्तः इहतु उत्तरो वाच्यः तथा तत्र नंदीश्वर द्वीपे उत्तर पूर्वो रतिकर पर्वत ईशानेन्द्रस्यावतारायोक्तः इहतु दक्षिणपूर्व सौ वाच्यः" इति भगवती सूत्रवृत्तौ शतक १६ द्वितीयोद्देशके, तत्रेति ईशानेन्द्राधिकारे, इहे ति सौ धर्मेन्द्राधिकारे ॥

श्री भगवती सूत्र की टीका के सोलहवें शतक के दूसरे उद्देश में कहा है कि वहां दक्षिण निर्याण मार्ग कहा है वह यहां उत्तर कहना, वहां नन्दीश्वर द्वीप में उत्तर पूर्व को ईशान कोने का रति कर पर्वत ईशानेन्द्र को उतरने के लिए कहा है वहां तत्र सम्बंध से ईशानेन्द्र का अधिकार है और यहां इन्द्र से सौधमेन्द्र का अधिकार है -

स्वर्गेषु विषमेष्वेषा स्थितिः स्याद्दशमेऽपि च ।
घण्टापत्तीशनामादिः समेष्वीशाननाकवत् ॥६६६॥

एक संख्या वाले - विषम स्वर्गों में और दसवें स्वर्ग में सुघोषा घंटा और पैदल सेनापति के नाम आदि की वास्तव में इस तरह कहा है और यौगिक संख्या वाले स्वर्गों में ईशानेन्द्रों की स्थिति अनुसार समझना । (६६६)

तथादेवा महामेघाः सन्त्यस्यवशवर्तिनः ।
येषां स्वामितया शक्रोमघवानिति गीयते ॥७००॥

तथा 'महामेघा' नामक देवता इन्द्र महाराजा के अधीन होने से और उनके वे स्वामी होने से इन्द्र महाराज 'मघवान' रूप में कहलाते हैं । (७००)

तथोचुः - मघवंति मधा-महामेधा वशे सन्तस्य मधवान्, कल्पसूत्रवत्तौ।

श्री कल्पसूत्र की टीका में कहा है कि - मघव अतः मघा यानि महामेघा जिसके वश इससे वह मघवान कहलाते हैं ।

तथा हि मेघा द्वि विधा एके वर्षत्तुभाविनः ।
स्वाभाविकास्तदपरे, स्युर्देवतानुभावजाः ।।७०१।।

मेघ दो प्रकार के होते हैं । १- वर्षा ऋतु में होने वाले स्वाभाविक मेघ तथा २- अन्य देवता के प्रभाव से होने वाले मेघ होते हैं । (७०१)

तत्र शक्रो यदि वृष्टिं, कर्त्तुमिच्छेन्निजेच्छया ।
आज्ञापयति गोर्वाणांस्तदाऽभयत्रपार्षदान् ।।७०२।।

ते मध्यपार्षदांस्तेऽपि, बाह्यास्ते बाह्यबाह्यकान् ।
तेऽप्याभियोगिकांस्तेऽपि, ब्रुवते वृष्टिकायिकान् ।।७०३।।

उसमें इन्द्र महाराज की जब स्वयं इच्छा से वृष्टि करने की इच्छा हो तब अभ्यंतर पर्षदा के देवों को आज्ञा करते हैं और उस अभ्यंतर पर्षदा के देव मध्यम पर्षदा के देवों को आज्ञा करते हैं और वे देवता बाह्य पर्षदा के देवों को आज्ञा करते हैं, और वह बाह्य पर्षदा के देवता बाह्य अभियौगिक देवों को आज्ञा करते हैं और वे अभियौगिक देव वृष्टि करने वाले देवताओं को आज्ञा करते हैं । (७०२-७०३)

ततस्तेकुर्वते वृष्टिं हृष्टाः शक्रानुशिष्टिवः ।
एवमन्येऽपिकुर्वन्ति, सुराश्चतुर्विधा अपि ।।७०४।।

जन्मदीक्षाज्ञानमुक्तिमहेषु श्रीमदर्हताम् ।
भक्त्युद्रेकादतिशयोद्भावनाय प्रमोदतः ।।७०५।।

उसके बाद इन्द्र महाराज की आज्ञा होने से खुश हुए वे देवता वृष्टि करते हैं । इस तरह से अन्य भी चार प्रकार के देवता - भवनपति व्यंतर ज्योतिषी शेष वैमानिक इन्द्र श्री अरिहंत परमात्मा के जन्म, दीक्षा केवल ज्ञान और मोक्ष के

महोत्सव में भक्ति के आशय से और भगवान के अतिशय प्रकट करने के लिये आनंद से इस तरह से करते हैं । (७०४-७०५)

तथोक्तम्: - जाहेणं भंते ! सक्के देविंदे देवराए वुट्ठिकायं काउकामे भवइ से कहमिदाणिं पकरेइ । इत्यादि भगवती सूत्रे 14-2 ।

श्री भगवती सूत्र के चौदहवें शतक के दूसरे उद्देश में कहा है कि हे भगवन्त! देवों के राजा इन्द्र - शक्र महाराज वृष्टि करने की इच्छा करें उस समय किस तरह करते हैं ? इत्यादि उसमें आया है ।

छित्वा भित्वा कुट्टयित्वा चूर्णयित्वाऽथवा स्वयम् ।
कमण्डल्वां शिरः पुंसः कस्याप्येष यदि क्षिपेत् ।।७०६।।

तथापि किंचिदप्यस्य बाधा न स्यात्तथा विधा ।
भगवत्यां शक्रशक्तिरुक्ता चतुर्दशे शते ।।७०७।।

इन्द्र महाराज की शक्ति ऐसी है कि -इन्द्र महाराज स्वयं किसी पुरुष के मस्तक का छेदन करके, भेदन करके, चकनाचूर्ण करके कमंडल के अंदर डाल दें फिर भी इन्द्र महाराज को उस प्रकार की प्रतिकार रूप बाधा नही होती है । ऐसी इन्द्र महाराज की शक्ति होती है । श्री भगवती सूत्र के चौदहवें शतक में कहा है । (७०६-७०७)

सदा सन्निहितस्तस्यैरावणो वाहनं सुरः ।
व्यक्तो नानाशक्तियुक्तो भक्त्युद्युक्तः सुरेशितुः ।।७०८।।

दशार्णनृपबोधाय, यियासोरिव वज्रिणः ।
आज्ञां प्राप्यानेकरुपसमर्द्धिं कर्त्तुमीश्वरः ।।७०९।।

इन्द्र महाराज के सदा ऐरावत वाहन (ऐरावत रुप में बनने वाला देव) प्रगट रूप नजदीक में ही रहता है और वह इन्द्र महाराज ऊपर विशेष भक्ति वाला और विशेष शक्ति से युक्त होता है । जो दशार्ण भद्र राजा को बोध कराने के लिए जाने की इच्छा वाले इन्द्र महाराज की आज्ञा को प्राप्त करके अनेक रुप की समृद्धि करने में समर्थ बना था । (७०८-७०९)

यदा यदा स चेन्द्रस्य, क्वचिज्जिगमिषा भवेत् ।
तदा तदा हस्तिरुपं कृत्वेशमुपतिष्ठते ॥७१०॥

जब–जब इन्द्र महाराज को कभी भी जाने की इच्छा होती है तब–तब हस्ति रूप करके इन्द्र महाराज के पास में वह तैयार रहता है । (७१०)

दधात्यसौ करे बज्रममोघशक्तिशालि यत् ।
निरीक्ष्यैव विपक्षाणां क्षणात्क्षुभ्यति मानसम् ॥७११॥

ये इन्द्र महाराज हाथ में अमोघ शक्ति वाला वज्र धारण करते हैं कि उसे देखकर ही शत्रु का मन क्षण भर में क्षोभ प्राप्त करता है । (७११)

प्रयुक्तं द्विषतो हन्तुमिन्द्रेण कुपितेन यत् ।
ज्वालास्फुलिङ्गानभितो विकिरद्भीषणाकृति ॥७१२॥

कुर्वद् दृष्टि प्रतीघातमुत्फुल्लकिंशुकोपमम् ।
निहन्त्येवानुमम्यैनं मतं दूरेऽपि साध्वसात् ॥७१३॥

क्रोध में आये इन्द्र महाराज शत्रु को मारने के लिये जब वज्र का उपयोग करते हैं उस समय भीषण आकृति वाला यह वज्र चारों तरफ अग्नि के कणों को छोड़ते हुए आँख को बन्द कराते हुए आँख को प्रतिघात पहुँचाता है और खिले केशु के फूल समान लाल श्याम बन गये, इस वज्र के भय से दूर भागते शत्रु को भी जल्दी से पीछे जाकर मारता है । (७१२-७१३)

यथाऽनेनैव शक्रेण तन्मुक्तं चमरोपरि ।
ततो नंष्ट्वा गतस्यास्य श्रीमद्वीरपदान्तरे ॥७१४॥

पृष्ठे पतद्गृहीतं च जिनावज्ञाभियाऽमुना ।
चतुर्भिरगुङ्लैर्वीरपादाद्व्यवहितं रयात् ॥७१५॥

जैसे इसी ही इन्द्र महाराज ने चमरेन्द्र ऊपर वह वज्र छोड़ा था इस से वह चमरेन्द्र भाग कर वीर परमात्मा के चरणों के बीच में आ गया इससे श्री जिनेश्वर भगवान की अवज्ञा न हो इस तरह भय से उस चमरेन्द्र के पीछे पड़े वज्र को इन्द्र महाराज ने भगवान से चार अँगुल अन्तर रह गया था तब पकड़ लिया था । (७१४-७१५)

मन्वध्वन्येव वज्रेण कथमेष न ताडितः ।
वज्रवच्चमरेन्द्रोऽपि नाग्राहिवज्रिणा कथम् ॥७१६॥

नरादिभिस्त्वधः क्षिप्तं वस्त्वादातुं न शक्यते ।
सुरैः किं शक्यते येन वज्रमग्राहि वज्रिणा ॥७१७॥

प्रश्न यह है कि – रास्ते में ही वज्र ने चमरेन्द्र को क्यों नहीं मारा ? और इसका दूसरा प्रश्न यह है कि इन्द्र महाराज ने जैसे वज्र को पकड़ कर रखा था वैसे चमरेन्द्र को भी क्यों नहीं पकड़ा ? तीसरा प्रश्न यह है कि जैसे मनुष्य द्वारा नीचे फेंकी वस्तु ग्रहण नहीं कर सकता है तो क्या देवता ग्रहण कर सकता है ? कि जिससे इन्द्र महाराज ने वज्र को ग्रहण किया था । (७१६-७१७)

अत्रोच्यते - अधोनिपतने शीघ्रगतयोऽसुरनाकिनः ।
ऊर्ध्वमुत्पतने मंदगत्यश्च स्वभावतः ॥७१८॥

वैमानिका पुनरधः पतने मंदगामिनः ।
ऊर्ध्वमुत्पतने शीघ्रगतयश्च स्वभावतः ॥७१९॥

वज्रमप्यूर्ध्वगमने शीघ्रं मन्दमधोगमे ।
असुरेन्द्राद्वज्रिणस्तु मन्दगामि द्विधाप्यदः ॥७२०॥

इसका उत्तर देते हैं – असुर देवता स्वाभाव से ही नीचे जाने में शीघ्र गति वाला होता है और ऊपर जाने में मंद गति वाला होता हैं और वैमानिक देव स्वभाव से नीचे जाने में मंद गति वाला होता है और ऊपर जाने में शीघ्र गति वाला होता हैं। इसी तरह से वज्र भी ऊर्ध्व गमन में शीघ्र गति वाला होता है और अधोगमन में मंद गति वाला होता है अतः चमरेन्द्र और सौधर्मेन्द्र दोनो से दोनों रूप में यह वज्र मंदगामी है । (७१८-७२०)

यावत्क्षेत्रं शक्र एक समयेनोर्ध्वमुत्पतेत् ।
वज्रं द्वाभ्यां तावदेव, चमरः समयैस्त्रिभिः ॥७२१॥

अधः पुनर्यावदेकसमयेनासुरेश्वरः ।
तावद् द्वाभ्यां हरिर्वज्रं त्रिभिर्निपतति क्षणैः ॥७२२॥

निगृहीतुं ततो मार्गे, नाशक्यतासुर प्रभुः ।
वज्रेणाधोनिपतता, स्वतस्त्रिगुणशीघ्रगः ॥७२३॥

नाग्राहि शक्रेणाप्येष, स्वतो द्विगुणवेगवान् ।
वज्रं स्वतोमंदगति, धृतं पृष्ठानुधाविना ॥७२४॥

एक समय में इन्द्र महाराज जितने क्षेत्र में ऊँचे जाय उतने क्षेत्र के वज्र दो समय में पहुँचे और चमर तीन समय में पहुँचे । एक समय में असुरेन्द्र जितने क्षेत्र में नीचे जाता है उतने क्षेत्र में इन्द्र दो समय में पहुँचे और वज्र तीन समय में पहुँचे, इससे ही नीचे पड़ते वज्र से अपने से तीन गुणा शीघ्र गति वाले असुरेन्द्र मार्ग में निग्रह (शिक्षा) नही कर सकता । इससे ही इन्द्र महाराजा द्वारा भी अपने से दो गुणा गति वाला असुरेन्द्र पकड़ नहीं सकता और अपने से मंद गति वाले वज्र के पीछे दौड़ कर पकड़ लिया था । (७२१-७२४)

सुरा सुखेन गृहणीरन्नधः क्षिप्तं हि पुद्गलम् ।
यदसौ सत्वरः पूर्वं, पश्चान्मन्दगतिर्भवेत् ॥७२५॥

नीचे फैंके पुद्गल को देवता सुखपूर्वक ग्रहण कर सकता है क्योंकि नीचे फेंके पुद्गल प्रारम्भ में शीघ्र गतिवाला होता है और पीछे से मंद गतिवाला होता है । (७२५)

दूर्वं पश्चादपि सुरो, महर्द्धिकस्तु सत्वरः ।
नरादयस्तु तदनु नाधः पतितुमीशते ॥७२६॥

महर्द्धिक देव पहले और बाद में नीचे उतरने में एक समान गति वाले होते हैं और मनुष्य आदि पुद्गल के पीछे पड़कर पुद्गल को नहीं पकड़ सकता है । (७२६)

एवं च - अन्येषामपि देवानां यदा विमानवासिनाम् ।
युद्धं स्यादसुरैः सार्द्ध, भवप्रत्ययवैरतः ॥७२६॥

तथा वैमानिका देवाः काष्ठपर्णतृणादिकम् ।
शर्कराकणप्येकमामृशन्ति करेण यत् ॥७२८॥

अचिन्त्यपुण्यात्ततेषां, प्राप्य प्रहरणात्मताम् ।
सुभूमचक्रिणः स्थालमिव प्रहरति द्विषः ।।७२६।।

तदेतेषां प्रहरणेष्वसत्स्वपि न हि क्षतिः ।
असुराणां तु नैतादृक्, शक्तिः पुण्यापकर्षतः ।।७३०।।

नित्यान्येते ततोऽस्त्राणि वैक्रियाणि च विभ्रति ।
सस्मयाः सुभटंमन्यास्तथाविधनरादिवत् ।।७३१।।

इस तरह अन्य वैमानिक देवताओं को जब भव प्रत्यय बैर से असुर देवताओं के साथ में युद्ध होता है, उस समय वैमानिक देव काष्ठ-पत्ते, घास, पत्थर के कण को भी हाथ से स्पर्श करे तो सभूम चक्रवर्ती के थाल समान उसको अचिन्त्य पुण्य प्रभाव से शस्त्र बन कर शत्रुओं को मारता है, इससे वैमानिक देवताओं के पास में शस्त्र आदि के अभाव में भी किसी प्रकार का कष्ट नही है । जब असुर देवताओं को पुण्य अल्पता होने के कारण इस प्रकार की शक्ति नहीं होती कि जिससे यह असुर देवताओं के बनाये अस्त्रों को कायम धारण करते हैं और शस्त्र धारण करके गर्व युक्त बनकर अपने जात को सुभट मानते हुए मनुष्य के समान रहते हैं । इस तरह से युद्धादि करते रहते हैं । (७२७-७३१)

तथाहुः - देवसुराणं भंते ! संगामे किं णं तेसिं देवाणं पहरणत्ताए परिणमति ! गौ० जं णं देवा तणं वा कट्टं वे" त्यादि भगवती सूत्रे १८ - ७ ।

श्री भगवती सूत्र के अट्ठारहवें शतक के सातवें उद्देश में कहा है कि 'हे भगवन् देव और असुर के युद्ध में उन देवों के शस्त्र रूप में क्या परिणाम होता है ? हे गौतम! वे देव तृण काष्ठादि शस्त्र रूप में परिणाम रूप होते हैं ।'

विकुर्वाणशक्तिरपि वर्त्ततेऽस्य गरीयसी ।
जम्बूद्वीपद्वयं पूर्ण, यदसौ स्वविकुर्वितैः ।।७३२।।

वैमानिकैर्देवदेवीवृन्दैः सांकीर्ण्यतोऽभितः ।
ईष्टे पूरयितुं तिर्यगसंख्यान् द्वीपवारिधीन् ।।७३३।।

वैमानिक देवों की रचना शक्ति महान होती है, वे देव अपनी रचना के रूप से दो जम्बू द्वीप को भर सकते हैं । (यह तो एक देव की शक्ति कही है) जबकि

वैमानिक देव देवियों के समूह द्वारा चारों तरफ से ठूंस-ठूंस कर पूर्ण करना चाहे तो असंख्य द्वीप समुद्र को भर सकते हैं । (७३२-७३३)

तथाहु: -"सक्केणं देविंदे देवराया जाव केवतियं च णं पभू विउव्वित्तए! एवं जहेव चमरस्स, नवरं दो केवलकप्पेजंबुद्दीवे, बवसेसंतं चेव" भगवती सूत्रे।

श्री भगवती सूत्र में कहा है कि "देवों के इन्द्र, देवों के राजा इन्द्र महाराज कितने रूप को रचना करने में समर्थ हैं । उसका उत्तर चमरेन्द्र के वर्णन अनुसार जानना, केवल विशेष इतना ही है । शेष सब उसके अनुसार ही है ।"

अयंभाव:- जम्बुद्वीपावधिक्षेत्रं यावच्छक्रविमानत: ।
तावद्द्विगुणितं भर्त्तुमीष्टे रुपैर्विकुर्वितै: ।।७३४।।

शक्र महाराज के विमान अनुसार जो जम्बू द्वीप क्षेत्र है उससे दोगुना अपने रचना से रुप के द्वारा भर सकता है । (७३४)

तथाच देवेन्द्रस्तवे चमरेन्द्रमाश्रित्य -

जाव य जम्बुद्दीवो जाव य चमरस्स चमरचंचाओ।
असुरेहिं असुरकन्नाहिं अत्थि विसओ भरेउं जे ।।७३४ अ।।

श्री देवेन्द्र स्तव में चमरेन्द्र के आश्रित से कहा है कि-जितना बड़ा जम्बूद्वीप है अथवा जितनी चमरेन्द्र की चमरचंचा नगरी है उतने सुर और असुरकन्या द्वारा रचना से रूप द्वारा भर सकते हैं । (७३४अ)

न पंचमाङ्गवृत्तौ तु सूत्रमेतत्सफुटीकृतम् ।
तिर्यकक्षेत्रस्यात्र पृथगुक्तत्वाद्‌भाव्यते त्विति ।।७३५।।

तदत्र तत्वं बहुश्रुता विदन्ति

श्री भगवती सूत्र इस सूत्र की स्पष्टता नही की क्योंकि तिर्यंच क्षेत्र की बात अलग कहने के कारण सूत्र को स्पष्ट नहीं करने का संभवित है । तत्व तो बहुश्रत ज्ञानी ही जाने । (७३५)

सामानिकानामेतस्य, त्रायस्त्रिंशकनाकिनाम् ।
कर्त्तु वैक्रियरुपाणि, शक्तिरेवं प्ररुपिता ।।७३६।।

इन्द्र के सामनिक देवता और त्रायस्त्रिंशक देवताओं की भी वैक्रिय रूप शक्ति इस तरह से कही है । (७३६)

लोकपालाग्रपत्नीनामपि वैक्रियगोचरा ।
तुल्यैव शक्तिस्तिर्यक् तु, संख्येया द्वीपवार्द्धयः ॥७३७॥

लोकपाल और इन्द्र महाराज की पटरानियों की भी वैक्रिय शक्ति इतनी है कि तीर्च्छा असंख्यात द्वीप समुद्र अनुसार समझना । (७३७)

शक्तेर्विषय एवायं न त्वेषं कोऽपि कर्हिचित् ।
चक्रे विकुर्वणां नो वा, करोति न करिष्यति ॥७३८॥

यहाँ जो वर्णन करने में आया है वह केवल वैक्रिय शक्ति का विषय ही बताया है, शेष तो कभी किसी ने इस तरह रचना की नही है और करेंगे भी नहीं । (७३८)

शक्रस्याग्रमहिष्यस्तु भवन्त्यष्टौ गुणोत्तमाः ।
रूपलावण्यशालिन्यः प्रोक्तास्ता नामतस्त्विमाः ॥७३९॥

पद्मा १ शिवा २ शच्य ३ थाञ्जू ४ रमलाख्या ५ तथाप्सराः ६ ।
ततोनवमिका ७ रोहिण्यभिदा ८ स्यादिहाष्टमी ॥७४०॥

शक्रमहाराज की गुणवन्ती और रूप लावण्य से शोभायमान आठ पट्टरानियाँ होती हैं उनके नाम अनुक्रम से इस प्रकार हैं - १- पद्मावती, २- शिवा, ३-शचि, ४-अंजू, ५- अमला, ६-अप्सरा, ७-नवमिका और ८- रोहिणी । (७३९-७४०)

साम्प्रतीनामासां पूर्व भवस्त्वेवं -

द्वे श्रावस्तीनिवासन्यौ, हस्तिनागपुरालये ।
द्वे द्वे काम्पिल्यपुरगे, द्वे साकेत पुरालये ॥७४१॥

एताः पद्माख्यपितृका विजयाभिधमातृका ।
बृहत्कुमार्योऽष्टप्यात्तप्रव्रज्याः पार्श्वसन्निधौ ॥७४२॥

पुष्पचूलार्यिका शिष्याः, पक्षं संलिख्य सुव्रताः ।
मृत्वोत्पन्ना विमानेषु, पद्मावतंसकादिषु ॥७४३॥

जाता: शक्रमहिष्योऽष्टौ, सप्तपल्योपमायुषः ।
सिंहासनेषु कीडन्ति, पद्माख्यादिषु सोत्सवम् ।।७४४।।

वर्तमान कालिक पट्टरानी के पूर्वजन्म इस प्रकार हैं – आठ में से दो श्रावस्ती नगरी की, दो हस्तिनापुर की, दो कांपिल्यपुर की और दो साकेतपुर नगर की थी। बड़ी उम्र में कुमारी अवस्था में श्री पार्श्वनाथ परमात्मा के पास में दीक्षा स्वीकार करके पुष्प चूला साध्वी जी की शिष्या बनी थी । अच्छी तरह व्रतों का पालन करके अन्तिम समय में संलेखना करके मृत्यु प्राप्त कर पद्मावंतसकादि विमान में उत्पन्न हुई थी और इन्द्र महाराज की आठ पट्टरानियाँ हुई हैं और उनका आयुष्य सात पल्योपम का है । पद्म नामक सिंहासन पर उत्साह आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करती हैं । (७४१-७४४)

एकैस्यास्तथैतस्याः परिवारे सुराङ्गना ।
स्वतुल्यरुपालङ्कारा:, सहस्राण्येव षोडष ।।७४५।।
षौडशैताः सहस्राणि, विकुर्वन्ति नवा अपि ।
एवं च सपरिवाराः, पल्यो भवन्ति वज्रिणः ।।७४६।।

प्रत्येक पट्टरानी का परिवार में अपने समान ही रूप और अलंकार से शोभायमान सोलह हजार देवियाँ होती हैं । ये सोलह हजार देवियाँ नया वैक्रिय रुप करे अथवा न भी करे । इस तरह से परिवार सहित अग्र महिषी शक्र महाराज की पत्नियाँ होती हैं । (७४५-७४६)

अष्टाविंशत्या सहस्त्रैरधिकं लक्षमेव ताः ।
भुङ्क्ते तावन्ति रुपाणि, कृत्वेन्द्रोऽप्येकहेलया ।।७४७।।

ये सभी पत्नी देवियों को एक लाख और अट्ठाईस हजार रूप बनाकर इन्द्र महाराज एक साथ में भोग करता है । (७४७)

तथाहु:-'सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स पुच्छा अज्जो ! अट्ठ अग्गमहिसिओ प० ' इत्यादि भगवती सूत्रे १०-५ ।

श्री भगवती सूत्र के दसवें शतक के पाँचवे उद्देश में कहा है कि - हे भंदत ! देवों के इन्द्र शक्र महाराज सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में आठ अग्र महिषियों ने कहा है । इत्यादि

यदा शक्रः सहैताभिः कामक्रीडां चिकीर्षति ।
चारु चक्राकारमेकं, तदा स्थानं विकुर्वयेत् ।।७४८।।

पंच वर्णतृणमणिरमणीय महीतलम् ।
व्यासायामपरिक्षेपैर्जम्बूद्वीपोपमं च तत् ।।७४६।।

जिस समय इन्द्र महाराज इन सब देवियों के साथ कामक्रीड़ा करना चाहता है, उस समय एक सुन्दर चक्राकार स्थान बनाता है जो कि पंचवरणीय तृण और मणि से रमणीय भूमितल वाला है और लम्बाई चौड़ाई से जम्बू द्वीप के समान विस्तार वाला यह स्थान होता है । (७४८-७४६)

मध्यदेशेऽस्य रचयत्येकं प्रासादशेखरम् ।
योजनानां पंच शतान्युर्च्चं तदर्द्धविस्तृतं ।।७५०।।

और उसका मध्य भाग में पाँच सौ योजन ऊँचा, अढ़ाई सौ योजन चौड़ा मुख्य प्रासाद बनाने में आता है । (७५०)

तस्य प्रासादस्य नानामणिरत्नमयी मही ।
ऊर्ध्वभागोऽप्यस्य पद्मलतादिभक्तिशोभितः ।।७५१।।

उस प्रसाद की पृथ्वी विविध प्रकार के रत्न और मणिमय होती हैं और इसके ऊपर छंत्त पद्मलतादि चित्रों की विविध रचना से शोभती है । (७५१)

तस्यप्रासादस्य मध्ये, रचयेन्मणिपीठिकाम् ।
योजनान्यष्ट विस्तीर्णायतां चत्वारिमेदुराम् ।।७५२।।

उस प्रासाद के मध्य विभाग में आठ योजन लम्बा चौड़ा और चार योजन ऊँचा एक सुन्दर मणि पीठिका रचना करते हैं ।

तस्या मणीपीठिकाया, उपर्येकां मनोहराम् ।
विकुर्वयेद्दिव्यशय्यां, कोमलास्तरणास्तृताम् ।।७५३।।

रत्नश्रेणि निर्मित्तोरुप्रतिपादकृतोन्नतिम् ।
गाथामिवोद्यत्सुवर्ण चतुष्पादी सुखावहाम् ।।७५४।।*युग्मं॥*

उस मणि पीठिका के ऊपर कोमल चादर से ढकी हुई एक मनोहर दिव्य शैय्या देवों ने बनाई हुई होती है और रत्न श्रेणि से निर्मित बड़े चार स्तंभ से वह

शैय्या ऊँची देदीप्यमान और सुखावह होती है मानो सुन्दर वर्ण अक्षरों वाले चार पादवाली गाथा न हो ! ऐसी दिखती है । (७५३-७५४)

ततः सपरिवाराभिः, प्राणप्रियाभिरष्टभिः ।
गन्धर्व नाट्यानीकाभ्यां, चानुयातः सुरेश्वरः ॥७५५॥

तत्रोपेत्यानेकरुपो, गाढमालिङ्ग्य ताः प्रियाः ।
दिव्यान पंचविधान कामभोगान् भुङ्क्ते यथासुखम् ॥७५६॥

उसके बाद परिवार सहित आठ प्राण प्रियाओं के साथ में गांधर्व और नाटय सेना से युक्त इन्द्र महाराज वहाँ जाकर अनेक रूप करके उन प्रियाओं को गाढमय आलिंगन करके पांच प्रकार के दिव्य काम भोग को इच्छानुसार भोग करता है । (७५५-७५६)

तथाचसूत्रं - ''जाहे णं भंते सक्के! देविंदे देवराया दिव्वाइं भोगभोगई भुंजिउकामे भवइ से कहमिदाणिं पकरेइ ! गो० । ताहे चेव णं से सक्के दे० एगं महं नेमिपडिरुवगं विउव्वति-त्यादि'' भगवती सूत्रे १४-६ ।

श्री भगवती सूत्र के चौदहवें शतक छट्ठे उद्देश में कहा है कि - हे भदंत ! जब देवों का इन्द्र, देवों का राजा शक्र महाराजा दिव्य भोगों को भोगने की इच्छा करता है तब किस तरह करते हैं ? तब भगवन्त कहते हैं - हे गौतम ! वह देवेन्द्र एक नेमि प्रति रूपक चक्रकार बड़े महल को बनाता है इत्यादि पूर्व कहे अनुसार समझना ।

चत्वारोऽस्य लोकपालाश्चतुर्दिगधिकारिणः ।
तेषामपि विमानादिस्वरुपं किंचिदुच्यते ॥७५७॥

इन्द्र महाराज के चार दिशा के अधिकारी चार लोकपाल होते हैं उनसे भी विमानादि का स्वरुप कुछ कहलाता है ।

विमानं तत्र शक्रस्य, यत्सौधर्मावतंसकम् ।
तस्मात् प्राच्यामसंख्येय योजनानामतिक्रमे ॥७५८॥

तत्र सोम महाराज विमान मति निर्मलम् ।
संध्याप्रभाख्यम् देवेन्द्र विमानाभं समन्ततः ॥७५९॥

तत्रोपपातशय्यायामुपपातसभान्तरे ।
उत्पद्यते सोमराजः, शेषं सर्वंतु पूर्ववत् ॥७६०॥

वहाँ यदि शक्र महाराज का सौधर्मावतंसक विमान है उससे पूर्व दिशा में असंख्य योजन दूर सोम महाराज – पूर्व दिशा के दिग्पाल का अति निर्मल चारों तरफ इन्द्र महाराज के विमान समान संध्या प्रभ नामक विमान है तथा उपपात सभा में उपपात शैय्या ऊपर सोमराज उत्पन्न होता है शेष सारा वृत्तांत पूर्व के समान लेना चाहिए । (७५६-७६०)

अधोभागे विमानस्य, सोमराजस्य राजते ।
जम्बूद्वीपसमो तिर्यग्लोके सोमाभिधापुरी ॥७६१॥

सोमराज के विमान के नीचे तिर्यंच लोक में आयाम विस्तार में जम्बूद्वीप के समान सोमा नाम की नगरी है । (७६१)

प्रासाद परिपाट्योऽत्र, चतस्रः शेषमुक्तवत् ।
वैमानिक विमानार्द्धमानमत्रोच्चतादिकम् ॥७६२॥

यहाँ प्रासाद की चार श्रेणियाँ हैं शेष पहले कहे अनुसार समझना, ऊँचाई आदि वैमानिक विमान से अर्ध समझना । (७६२)

शेषाणां लोकपालानामप्येवं स्वस्वसंज्ञया ।
तिर्यग्लोके राजधान्यः, स्वविमानतले मताः ॥७६३॥

शेष लोकपाल की भी अपने-अपने नाम की राजधानी तिर्यंच लोक के अन्दर अपने विमान के नीचे कहा है । (७६३)

सुधर्माद्याः सभास्त्वत्र न सन्तीति जिना जगुः ।
नेषां विमानोत्पन्नानामिहैताभिः प्रयोजनम् ॥७६४॥

यहाँ इस लोकपाल की राजधानी में सुधर्मा आदि सभा नही होती इस तरह जिनेश्वर भगवान ने कहा है । क्योंकि यहाँ उत्पन्न हुए लोकपाल देवों के सभा का प्रयोजन नही होता । (७६४)

रोहिणी मदना चित्रा, सोमा चेत्यभिधानतः ।
चतस्रोऽग्रमहिष्योऽस्य स्युः सहस्रपरिच्छदाः ॥७६५॥

रोहिणी, मदना, चित्रा और सोमा इस तरह से चार नाम वाली हजार-हजार नाम वाली चार अग्रभहिषिया होती है । (७६५)

देवी सहस्त्रं प्रत्येकं, विकुर्वितुमपि क्षमाः ।
पत्नीसहस्त्राश्चत्वारस्तदेवं सोमभूभृतः ।।७६६।।

प्रत्येक अग्रमहिषिया एक-एक हजार देवियों की रचना करने में समर्थ है । इस तरह चार हजार सोम राजा की देवियाँ होती हैं (७६६)

त्यक्त्वा सुधर्मामन्यत्रार्हत्सक्थ्याशातनाभयात् ।
सहैताभिः पंचविधान, कामभोगान भुनक्त्यसौ ।।७६७।।

अरिहंत परमात्मा के अस्थि आदि की आशातना के भय से, वे अस्थियाँ जहां रखी जाती है, वह सुधर्मा सभा के बिना अन्य स्थान में सोमराज या देवियों के साथ में पाँच प्रकार के विषय काम भोग भोगते हैं । (७६७)

शेषाणां लोकपालानामप्येतैरेव नामभिः ।
चतस्त्रोऽग्रमहिष्यः स्युरियत्परिच्छदान्विताः ।।७६८।।

शेष के लोकपाल की भी इतना ही परिवार वाली इसी नाम की चार अग्रमहिषीयां होती हैं । (७६८)

सामनिकादयो येऽस्य ये चैषामपि सेवकाः ।
तथा विद्युत्कुमाराग्निकुमाराख्याः सयोषितः ।।७६९।।

मरुतकुमारा सूर्येन्दुग्रहनक्षत्रतारकाः ।
सोमाज्ञावर्तिनः सर्वे, ये चान्येऽपि तथा विधाः ।।७७०।।

सोमराजा के सामनिक देवता और उसके सेवक तथा पत्नी सहित विद्युत कुमार और अग्नि देवता, वायु कुमार देव, सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्र और तारा अन्य भी उस प्रकार के देव सोम लोक पाल के आज्ञाधारी होते हैं । (७६९-७७०)

ग्रहाणां दण्डमुसलश्रृङ्गाटकादिसंस्थितिः ।
गर्जितं ग्रहसंचारे गन्धर्व नगराणि खे ।।७७१।।

उल्कापाताभ्रवृक्षा दिग्दाहारजांसि धूम्रिकाः ।
सुरेन्द्रधनुरर्केन्दूपरागपरिवेषकाः ।।७७२।।

प्राचीनादि महावाता, ग्रामादिदहनादिकाः ।

जम्बूद्वीप दक्षिणार्द्धे, ये चोत्पातास्तथाविधाः ॥७७३॥

जनप्राणधनादीनां क्षयास्ते सोमभूभृताम् ।

तत्सेविनां वा देवानां नाविज्ञाता न चाश्रुताः ॥७७४॥

आकाश में ग्रहों के होते दंडाकार, मुसलाकार, सींगोडाकार आदि आकार ग्रह संचार का गर्जारव गंधर्व नगर, उल्कापात, आकाश वृक्ष, दिशा का दाह धूल का उठाव आदि धुआं, इन्द्र धनुष, सूर्य चन्द्र के ग्रहण, पूर्व दिशा में महावायु, गांव आदि का जलना, अन्य भी इस प्रकार के उत्पात जम्बू द्वीप के दक्षिणार्ध में होता है। वह और लोक के प्राण- धन आदि का क्षय होता है वह सारा सोमराजा का और उनके तथा उनके सेवक देवताओं के जानकारी के बाहर नहीं होता, सुना बिना नहीं होता । (७७१-७७४)

विकालकोऽङ्गारकश्च, लोहिताक्षः शनैश्चरः ।

चन्द्र सूर्य शुक्र बुध बृहस्पतिविधुन्तुदाः ॥७७५॥

भवन्त्यपत्यस्थानीयाः, सोमस्यैते दशापि हि ।

विकालेष्वादयः सर्वे, ग्रहा एव पुरोदिताः ॥७७६॥

विकालक, अंगारक, लोहिताक्ष, शनैश्चर, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति और राहु ये विकालक और चन्द्र आदि दस ग्रह सोम के पुत्र स्थानीय गिने गये हैं। (७७५-७७६)

पल्योपमतृतीयांशयुक्तं पल्योपमस्थितिः ।

सोमराजः सुखं भुङ्क्ते, दिव्य नाट्यादिलालितः ॥७७७॥

एक तृतीयांश युक्त एक पल्योपम के आयुष्य वाले सोमराज दिव्य नाटक आदि से आनन्द करते सुख भोगते हैं । (७७७)

दक्षिणास्यां च सौधर्मावतंसक विमानतः ।

विमानं वरशिष्टाख्यमस्ति पूर्वोक्तमानयुक् ॥७७८॥

यमस्तत्र महाराजो, राजते राजतेजसा ।

धर्मराज इति ख्यातो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥७७९॥

सौधर्मावतंसक एक विमान से दक्षिण दिशा में पूर्वोक्त प्रमाण वाला परशिष्ट नाम का विमान होता है, उसमें राज तेज से शोभाते यम महाराजा होता है जो निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ होने से धर्मराज रूप प्रख्यात हैं । (७७८-७७९)

सामानिकादयो येऽस्य, तेषामपि च सेवकाः ।
ये प्रेत व्यन्तरा ये च, तेषामप्यनुजीविनः ॥७८०॥

तथाऽसुरकुमारश्च सर्वे नरकपालकाः ।
कान्दर्पिकाद्यस्ते सर्वे यमाज्ञावशवर्त्तिनः ॥७८१॥

इस यमराज के सामनिक देवता उसके सेवक प्रेत-व्यंतर आदि देव और उसके भी सेवक असुर कुमार नरक पालक तथा कांदर्पिक आदि सर्व देवता यमराज के आज्ञानुवर्ती होते हैं । (७८०-७८१)

जम्बूद्वीपदक्षिणार्द्धे, डमरा कलहाश्च ये ।
अत्यन्तोद्दाम संग्रामा, महापुरूषमृत्यवः ॥७८२॥

देशद्रङ्ग ग्रामकुलरोगाः शीर्षादिवेदनाः ।
यक्षभूतोपद्रवाश्च, ज्वरा एकाहिकादयः ॥७८३॥

कासश्वासाजीर्णपाण्डुशूलार्शः प्रमुखा रुजः ।
देशग्रामवंशमारिगोत्रप्राणिधनक्षयाः ॥७८४॥

इत्यादयो महोत्पाता, येऽनार्याः कष्टकारिणः ।
यमस्य तत्सेविनां वा, नाविज्ञाता भवन्ति ते ॥७८५॥

दक्षिणार्ध जम्बूद्वीप में डमर, कलह, अत्यन्त बड़े युद्ध महापुरुषों के मृत्यु देश, द्रंग, गांव कुल के रोग, मस्तक आदि दर्द, यक्ष भूत का उपद्रव एकांतरादि ताप खांसी, श्वास, अजीर्ण, पांडुरोग, शूलरोग, मसा आदि रोग देश गांव, वंश में होने वाली महामारी, गोत्रीय जन, धन का क्षय आदि अनार्य और कष्ट कारक जो महाउपद्रव हैं, वह यम और यम के सेवकों की जानकारी से बाहर नहीं होता । (७८२-७८५)

अम्बादयो ये पूर्वोक्ताः, परमाधार्मिकाः सुराः ।
भवन्त्यपत्यस्थानीयाः यमराजस्य ते प्रियाः ॥७८६॥

अतएव मृतः प्राणि यमदूतैर्यमान्तिकम् ।
नीयते क्लृप्तमित्यादि लौकैस्तत्त्वानपेक्षिभिः ।।७८७।।

अंब आदि पूर्वोक्त परमा धार्मिक देवता, यमराज के प्रिय पुत्र समान है इसलिए ही तत्व को नही जानने वाले अज्ञ लोक से मरे हुए प्राणी को यमदूत यम के पास ले जाते हैं । ऐसी कल्पना की जाती है । (७८६-७८७)

तथाहुः - महिषो वाहनं तस्य, दक्षिणा दिग् रविः पिता ।
दण्डः प्रहरणं तस्य, घूमोर्णा तस्य वल्लभा ।।७८८।।

पुरी पुनः संयमिनी, प्रतिहारस्तु वैध्यतः ।
दासौ चण्डमहाचण्डौ, चित्रगुप्तस्तु लेखकः ।।७८९।।

लोकोक्ति इस तरह से है - 'यमराजा का वाहन पाडा है, दिशा दक्षिण है, पिता सूर्य है, हथियार दंड है, घूमोर्णा नाम की पत्नि है, संयमिनी नाम की नगरी है, वैध्यतः नाम का प्रतिहार है, चंड और महाचंड नामका दास है और चित्रगुप्त यह बही लिखने वाला होता है।' इत्यादि इत्यादि उसका परिवार वाला होता है। (७८८-७८९)

तृतीयभागाभ्यधिकल्योपमस्थितिर्यमः ।
महाराजः सुखं भुंक्ते दिव्यस्त्रीवर्गसंगतः ।।७९०।।

एक तृतीश १ $\frac{1}{3}$ पल्योपम के आयुष्य वाले यम राजा दिव्य स्त्री वर्ग के साथ में सुख भोगता रहता है । (७९०)

प्रतीच्यामथ सौधर्मावंतसक विमानतः ।
स्वयंज्वलाभधं सफूर्जद्विमान मुक्तमानवत् ।।७९१।।

सौधर्मावतंसक विमान से पश्चिम दिशा में पूर्वोक्त प्रमाणवाला देदीप्यमान स्वयं जवल नाम का विमान है । (७९१)

वरुणास्तत्र तरुणप्रतापार्को विराजते ।
सामानिकादयो येऽसय, येऽप्येषामनुजीविनः ।।७९२।।

स्तनितोदधिनागाख्याः, कुमारास्तत्त्रियोऽपि च ।
अन्येऽपि तादृशाः सर्वे वरुणाज्ञानुसारिणः ।।७९३।।

तेजस्वी, प्रतापी सूर्य समान, वरुण देवता वहां विराजमान होता है इसके सामनिक आदि देवता, असुर देवता तथा पत्नि सहित स्तमित कुमार, उदधि कुमार, नाग कुमार देवता, अन्य भी ऐसे प्रकार के देव वरुण की आशा का अनुकरण करते हैं । (७६२-७६३)

जम्बूद्वीपदक्षिणार्द्धे, सन्मंदाल्पातिवृष्टयः ।
तटाकादिजलभरा, जलोद्भेदा जलोद्वहाः ॥७६४॥

देश ग्रामादिवाहाश्च, जलोद् भृता जनक्षयाः ।
नाज्ञाता वरुणस्यैते, सर्वे तत्सेविनामपि ॥७६५॥

जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध में मन्द, अल्प और अतिवृष्टि तालाब आदि जल के समूह, जल के उद्भव स्थान, जल के वहन स्थान – नदी, नाला, नहर आदि देश ग्राम आदि के जलाशय, जल से उत्पन्न हुए जन क्षय ये सारी वस्तुएं वरुण देव और उनके सेवक से अज्ञात नही होता है । (७६४-७६५)

अयं पाथः पतिरति, विख्यातः स्थूल दर्शिनाम् ।
पश्चिमाशापतिः पाशपाणिर्जलधिमन्दिर ॥७६६॥

सामान्य लोक में यह वरुण देव 'समुद्रपत्ति' पश्चिमदिशा पति, पाशपाणि जलधि मंदिर आदि नाम से प्रसिद्ध है । (७६६)

कर्कोटकः कर्द्दमकोमुञ्जनश्च शङ्खपालकः ।
पुण्ड्रः पलाशमोदश्च जयो दधि मुखस्तथा ॥७६७॥

अयंपुलः काकरिकः, सर्वेऽप्येते सुधाभुजः ।
वरूणस्याधीश्वरस्य, भवन्त्यवत्प्रियाः ॥७६८॥

कर्कोटक, कर्दमक, अंजन, शंखपालक, पुंड्र, पलाशमोद जय दधिमुख, अयंपुल काक आदि ये सभी देवता वरुणाधीश को पुत्र के समान प्रिय होते हैं । (७६७-७६८) कर्कोटक आदि कौन होते हैं उसका परिचय देते हैं :-

अनुवेलन्धरं नागावासः कर्कोटका चलः ।
ऐशान्यां लवणाब्धौ तत्स्वामी कर्कोटकः सुर ॥७६९॥

लवण समुद्र में ईशान् कोने के अन्दर वेलंधर पर्वत के पीछे नागदेव के आवास रूप कर्कोटक पर्वत है और उसका स्वामी कर्कोटक देव होता है । (७९९)

विद्युत्प्रभाद्रिराग्नेय्यां, तस्य कर्द्दमकः पतिः ।
अञ्जनस्तु लोकपालो, वेलंबस्य सुरेशितुः ॥८००॥

धरणेन्द्र लोकपालस्तुर्योऽत्र शंखपालकः ।
पुंड्राद्यास्तु सुराः शेषा न प्रतीताविशेषतः ॥८०१॥

अग्नि कोने में विद्युतप्रभ नामका पर्वत है, उसका स्वामीर्कदमक देव है वेलंग नामक इन्द्र का लोकपाल अंजन नामका है चौथा शंखपाल धरणेन्द्र का लोकपाल है । यहां पुंड्र आदि देवता विशेष रूप में प्रसिद्ध नहीं है । (८००-८०१)

देशोनपल्यद्वितयस्थितिरेष मनोरमान् ।
वरुणाख्यो महाराजो, भुङ्क्ते भोगाननेकध ॥८०२॥

दो पल्योपम से कुछ कम आयुष्य वाला वरुण नाम का लोकपाल अनेक प्रकार के मनोरम सुखों को भोगता है । (८०२)

उदीच्यामाथ सौधर्मावतंसकादतिक्रमे ।
असंख्येययोजनानां, विमानं वल्गुनामकम् ॥८०३॥

सौधर्मावतंसक विमान से उत्तर दिशा में असंख्य योजन जाने के बाद वल्गु नाम का विमान होता है । (८०३)

देवस्तत्र वैश्रमणो, विभाति सपरिच्छदः ।
यः सौधर्म सुरेन्द्रस्य, कोशाध्यक्ष इति श्रुतः ॥८०४॥

उस विमान के अन्दर परिवार सहित वैश्रमण नाम का देव शोभायमान होता है जो सौधेन्द्र के खजांची के रूप में प्रसिद्ध है । (८०४)

अस्य सामानिकाद्याः ये, तेषां भृत्याश्च ये सुराः ।
सुपर्णद्वीप दिग्नाग कुमारा व्यन्तरापि ॥८०५॥

सर्वेऽप्येते सदेवीका ये चान्येऽपि तथा विधाः ।
भवंति ते वैश्रमणानुशासनवशीकृताः ॥८०६॥

वैश्रमण देव के सामानिक देव तथा उनके नौकर देवता तथा सुपर्ण कुमार द्वीप कुमार, दिक् कुमार नामक तथा व्यन्तर अपनी-अपनी देवियों सहित तथा अन्य भी उस प्रकार के देव होते हैं वे सभी वैश्रमण देव के आज्ञावर्ती होते हैं । (८०५-८०६)

सीसकायस्त्रपुताम्रै रत्नरजतकराः ।
वज्राकरा वसुधाराः, स्वर्णरत्नादिवृष्टयः ॥८०७॥

पत्र पुष्प बीज फलमाल्य चूर्णादिवृष्टयः ।
वस्त्राभरणसद्गन्धभाजनक्षीरवृष्टयः ॥८०८॥

तथा सुकाल दुष्कालौ, वस्त्वल्पार्घमहार्घता: ।
सुभिक्ष दुर्भिक्ष गुड घृत धान्यादिसंग्रहाः ॥८०९॥

क्रयाश्च विक्रयाश्चैव, चिरत्नरत्नसंचयाः ।
प्रहीण स्वामिकादीनि, निधानानि च भूतले ॥८१०॥

नेत्याद्याविदितं जम्बूद्वीपयाम्यार्द्ध गोचरम् ।
धनदस्य विभोर्यद्वा, नाकिनां तन्निषेविणाम् ॥८११॥

जम्बू द्वीप के दक्षिणार्ध विभाग में सीसा, लोहा, कलई, तांबा, रजत, रत्न, चाँदी की खान, वज्र की खान, धन वृष्टि, स्वर्ण रत्न की वृष्टि, पत्र, पुष्प, बीज, फल, माला, चूर्णादि की वृष्टि वस्त्र, आभरण, सुगन्धी द्रव्य, भाजन, क्षीर की वृष्टि, तथा सुकाल और दुष्काल वस्तु की सस्तापन-महंगाई, भिक्षा की सुलभता-दुर्लभता, गुड़, घी, अनाजादि के संग्रह, उसका लेना देना, पुराने रत्नों का संग्रह, भूतल में रहना, स्वामी आदि के निधान आदि वस्तुएं वैश्रमण और उनके सेवक देवताओं के ख्याल में रहता है, उनसे बाहर नहीं है । (८०७-८११)

पूर्णमाणि शालिभद्राः, सुमनोभद्र इत्यपि ।
चक्ररक्षः पुण्यरक्षः, शर्वाणश्च ततःपरम् ॥८१२॥

सर्वयशाः सर्वकामः, समृद्धोऽमोघ इत्यपि ।
असङ्गश्चापत्यसमा, एते वैश्रमणेशितुः ॥८१३॥

पूर्णभद्र, मणिभद्र, शालिभद्र, सुमन भद्र, चक्र रक्ष, पुण्य रक्ष शर्वाण सर्वयशा,

सर्वकामश्समृद्ध, अमोघ, असंग आदि देवता कुबेर देवता के प्रियतम समान होते हैं। (८१२-८१३)

असौ कृत्वोत्तुङ्गगेहां, स्वर्णप्राकारशोभताम् ।
प्रददावादिदेवाय, विनीतां स्वःपतेर्गिरा ।।८१४।।

इस कुबेर देवता ने इन्द्र महाराज की आज्ञा से श्री आदिनाथ भगवान को ऊँचे प्रासाद वाली, स्वर्ण के किले से शोभायमान विनीता नगरी बनाकर समर्पण की थी (८१४)

कृष्णाय द्वारिकामेवं, कृत्वा शक्राज्ञया ददौ ।
जिन जन्मादिषु स्वर्णे, रत्नौघैश्चाभिवर्षति ।।८१५।।

तथा इन्द्र महाराज की आज्ञा से कृष्ण महाराज को द्वारिका नगरी बनाकर दी थी और श्री जिनेश्वर भगवन्त के जन्मादि कल्याणक में स्वर्ण और रत्नों की वृष्टि करते हैं । (८१५)

समृद्धश्च वदान्यश्च, लोकेऽनेनोपमीयते ।
सिद्धान्तेऽपि दान शूरतया: गणधरैः समृतः ।।८१६।।

जंगत में धनबान और दानेश्वर को कुबेर रूप में उपमा दी जाती है । सिद्धान्त में भी गणधरों ने कुबेर को दानशूरा कहा है । (८१६)

तथाहु : **खमासूरा अरिहंता, तवशूरा अणगारा:।**
दाणसूरा वेसभणा, जुद्धसूरा वासुदेवाः ।।८१६अ।।

वह इस तरह से "क्षमाशूरा अरिहंत परमात्मा होते हैं, तपशूरा साधु मुनिराज होते हैं, दानशूरा कुबेर होता है और युद्धशूरा वासुदेव कहलाता है ।" (८१६अ)

एष वैश्रमणः पूर्ण पल्योपमद्वयस्थितिः ।
सुखान्यनुभवत्युग्रपुण्यप्राग्भारभासुरः ।।८१७।।

पूर्ण दो पल्योपम के आयुष्य वाला यह कुबेरदेव उग्र-महान पुण्य के समूह से देदीप्यमान सुख का अनुभव करता है । (८१७)

तथोक्तं - **सोम जयाणं सति भाग पलियं वरुणस्स दुन्नि देसूणा ।**
वेसयणे दो पलिया एस ठिई लोगपालणं ।।८१८।।

शास्त्र में कहा है कि - 'सोम और यमदेव का १ $\frac{1}{3}$ पल्योपम आयुष्य होता है, वरुण देव का कुछ कम दो पल्योपम का आयुष्य होता है और कुबेर देव का दो पल्योपम का आयुष्य कहा है इस तरह से लोकपाल का आयुष्य कहा है ।'(८१८)

चतुर्णामप्यमीषां येऽपत्यप्राया: सुधाभुज: ।
ते पल्य जीविन: सर्वे, बिना शशिदिवाकरौ ।।८१६।।

ये चारों लोकपाल के पुत्र समान जो देवता होते हैं उसमें से सूर्य और चन्द्र बिना सर्व देव एक पल्योपम के आयुष्य वाले होते हैं । (८१६)

एवं सामानिकैस्त्रायस्त्रिंशपार्षदमन्त्रिभि: ।
पत्नीभिर्लोकपालैश्च सैन्यै: सेनाधिपै: सुरै: ।।८२०।।

अन्येरपि धनैर्देवीदेवै: सौधर्मवासिभि: ।
सेवितो दक्षिणार्द्धस्य, लोकस्य परमेश्वर: ।।८२१।।

यथास्थानं परिहित मौलिमालाद्यङ्कृति: ।
शरत्काल इव स्वच्छाम्बरोऽर्केन्द्रच्छकुण्डल: ।।८२२।।

पूर्ण सागर युग्मायुरास्ते स्वैरं सुखाम्बुधौ ।
मग्नो मग्नश्रम: स्व: स्त्रीनाट्यनादप्रमोदित: ।।८२३।।

इस तरह से सामनिक देवता त्राय स्त्रिंश देवता, पर्षदा के देवता, मन्त्री देवता, अप्सराएं, लोक पाल सैन्य सेनापति देवता और अन्य भी बहुत सारे सौधर्मवासी देव देवियों से सेवा होती और दक्षिणार्थ लोक के ईश्वर, योग्य स्थान में मुकुट और मालादि अलंकारों को धारण करने वाले शरद काल के स्वच्छ बादल समान स्वच्छ वस्त्र धारण करने वाले सूर्य और चन्द्र समान स्वच्छ व तेजस्वी दो कुंडल धारण करने वाले पूर्ण दो सागरोपम के आयुष्य वाले श्रमरहित सुखरूपी समुद्र में मग्न स्वर्ग की स्त्रियाँ और नाटक के नाद से आनन्दित हुए सौधमेन्द्र में इच्छा पूर्वक रहते हैं । (८२०-८२३)

आश्चर्यमीदृगैश्वर्य व्यासक्तोऽप्यन्तरान्तरा ।
जम्बूद्वीपमवधिना, निरीक्षते महामना: ।।८२४।।

यह आश्चर्य की बात है कि ऐसे ऐश्वर्य में आसक्त होने पर भी महामना इन्द्र महाराजा बीच-बीच में अवधिज्ञान से जम्बूद्वीप को देखते हैं । (८२४)

संघे चतुर्विधे तादृगुणवंत प्रशंसति ।
सुराणा पर्षदि चमत्कारचञ्चलकुण्डलः ॥८२५॥

और उस समय देवताओं की पर्षदा में चमत्कार से कुंडलो को चंचल बनाते सिर हिलाते इन्द्र महाराज चतुर्विध संघ में रहे गुणवानों की प्रशंसा करते हैं। (८२५)

दर्श दर्श जिनांश्चायमुत्सृष्टासनपादुकः ।
पंञ्चांङ्ग स्पृष्टभूपीठः, स्तौति शक्रस्तवादिभिः ॥८२६॥

श्री जिनेश्वर परमात्मा को देख देखकर यह इन्द्र महाराजा आसन और पादुका का त्याग करके पंचांग से भूमि स्पर्श करके शक्र स्तवादि से स्तुति करते हैं । (८२६)

छाद्मस्थ्ये वर्द्धमानं यः, प्रौढ भक्तिर्व्यजिज्ञपत् ।
द्वादशाब्दी तव स्वामिनं !, वैयावृत्यं करोभ्यहम् ॥८२७॥

प्रयुक्तश्चभगवता, नेदमिन्द्र, भवेत्क्कचित् ।
यदर्हन्निन्द्र साहाय्यात् कोऽपि कैवल्यमाप्नुयात् ॥८२८॥

उनकी प्रौढ भक्ति पूर्वक छद्मस्थ रूप में रहे श्री वीर परमात्मा को विज्ञप्ति की थी कि हे भगवन्त ! मैं आपश्री की बारह वर्ष सेवा वैयावृत्य करना चाहता हूँ, उस समय परमात्मा ने कहा - 'हे इन्द्र ! इस तरह कभी बना नहीं है कि किसी भी अरिहन्त ने इन्द्र की सहायता से केवलज्ञान को प्राप्त किया हो ।' (८२७-८२८)

यो दशार्णेशबोधाय, ऋद्धि विकृत्य तादृशीम् ।
नत्वाऽर्हन्तं नृपमपि, क्षमयामास संयतम् ॥८२९॥

जिसने दशार्णभद्र को बोध के लिए इस प्रकार की ऋद्धि की रचना कर फिर अरिहंत को नमस्कार किया और उसे देखकर दीक्षित बने दशार्ण भद्र राजा ऋषि को नमस्कार करके क्षमा याचना की थी । (८२९)

ब्राह्मणीभूय यः कलिक नृपं हत्वा तदङ्गजम् ।
दत्तं राज्येऽभिषिच्यार्हच्छासनं भासयिष्यति ।।८३०।।

जो ब्राह्मण रूप करके कलिक राज को जिन शासन के ऊपर जुल्म करने वाले को मारकर उसके पुत्र 'दत्त' को राज्य ऊपर अभिषेक करके अरिहंत के शासन को प्रकाशित करेगा । (८३०)

जिनोपसर्गे यः संगम कामरकृते स्वयम् ।
निषिद्धय नाटकाद्युग्रं, षण्मासान् शोक मन्वभूत ।।८३१।।

भ्रष्टप्रतिज्ञं तं निर्वासयामास त्रिविष्टपात् ।
क्षणं मुमोच योऽर्हन्तं, न चित्तात्परमार्हतः ।।८३२।।

संगम देवता से किए जिनेश्वर श्री वीर भगवंत के उपसर्ग समय में, उन्होंने स्वयं नाटकादि का निषेध करके छः महीने तक अत्यन्त शोक का अनुभव किया था और उसके बाद प्रतिज्ञा भ्रष्ट होकर आते उस संगम को देवलोक में से निकाल दिया था । उस परमार्हत इन्द्र महाराज ने श्री अरिहंत परमात्मा को क्षण मात्र भी चित्त से नही छोड़ा । (८३१-८३२)

यःपालक विमानाधिरूढो राजगृहे पुरे ।
श्री वीरं समवसृतं वन्दित्वेति व्यजिज्ञपत् ।।८३३।।

अवग्रहाः कत्ति विभो ! भगवानाह पंच ते ।
स्वामिना स्वीक्रियते यस्सोऽवग्रह इति स्मृतः ।।८३४।।

पालक विमान ऊपर आरूढ होकर जिसने राजगृह नगरी में समवसरण में श्री वीर परमात्मा को वंदन करके विनती की थी कि हे भगवान ! अवग्रह कितने प्रकार के होते हैं ? तब भगवान ने कहा वे अवग्रह पाँच प्रकार के होते हैं। स्वामी से जो स्वीकार किया जाता है वही अवग्रह कहलाता है । (८३३-८३४)

देवेन्द्रावग्रहस्तव, प्रथमः स्यात्स चेन्द्रयोः ।
सौधर्मेशानयोर्लोक दक्षिणार्दोत्तरार्द्धयोः ।।८३५।।

द्वितीयश्चक्रिणा क्षेत्रेऽखिलेऽपि भरतादिके ।
तृतीयो मण्डलेशस्य, स च तन्मण्डलावधिः ।।८३६।।

तुरीयस्तु गृहपतेः, स च तद्गृह लक्षणः ।
पंचमः साधर्मिकस्य, पञ्च कोशावधिः स च ।।८३७।।

उसमें प्रथम अवग्रह-देवेन्द्र का होता है, जो सौधर्म और ईशान इन्द्र सम्बन्धी दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध लोक का जानना । दूसरा अवग्रह चक्रवर्ती का है जो कि समस्त भरतादि क्षेत्र में समझना । तीसरा अवग्रह देश के अधिपति का होता है, वह उसके देश की मर्यादा तक होता है । चौथा अवग्रह घर मालिक-गृहपति का उसके घर सम्बन्धी होता है और पांचवा अवग्रह साधर्मिक का होता है जो कि पाँच कोश तक होता है । (८३५-८३७)

तथोक्त भगवती वृत्तो १६ शतक २ उद्देशके 'साहाम्मिउग्गहे' त्ति समानेन धर्मेण चरन्तीति साधर्मिकाः - साध्वपेवक्षया साधवः एतेषावग्रहः- तदा भाव्यं पञ्च कोश परिमाणं क्षेत्रं, ऋतु बद्धे मासमेकं, वर्षासु चतुरो मासान् यावदिति साधर्मिकावगृहः ।

श्री भगवती सूत्र के सोलहवें शतक दूसरे उद्देश में कहा है कि साधर्मिक अवग्रह 'साहम्मि उग्गहोत्ति' इस तरह है समान धर्म का आचरण करता है साधर्मिक कहलाता है, साधु की अपेक्षा से साधु यह साधर्मिक कहलाता है और इनका अवग्रह पाँच कोस का समझना चाहिये । शेषकाल में एक महीने तक और चातुर्मास में चार महीने तक साधर्मिक अवग्रह होता है ।

आस्पदं स्वामिनामेषां, पञ्चानामप्यवग्रहम् ।
याचन्ते साधवस्तेषामपि पुण्यमनुज्ञया ।।८३८।।

इन पाँचों स्थानों के स्वामी के पास साधु अवग्रह की याचना करता है और और अनुज्ञा देने से उन स्वामियों को भी पुण्य का बन्धन होता है । (८३८)

श्रुत्वेति मुदितस्वान्तः, शचीकान्त प्रभुं नमन् ।
ऊंचे येऽस्मिन्ममं क्षेत्रे, विहरन्ति मुनीशवराः ।।८३९।।
तेषामवग्रहमहमनुजानमि भावतः ।
इत्युक्त्वाऽस्मिन्गते स्वर्गं, प्रभुं पप्रच्छ गौतमः ।।८४०।।

सत्यवादी सत्यमाह, शक्रोऽयमथवाऽन्यथा ।
जिनेनापि तदा सत्यवादीत्येष प्रशंसितः ।।८४१।।

इस तरह से सुनकर खुश हुए अंतःकरण वाले इन्द्र महाराज ने प्रभु को नमस्कार करके कहा कि - इस मेरे क्षेत्र में जो मुनिवर्य विचरण करते हैं, उनको मैं भावपूर्वक अवग्रह की अनुज्ञा देता हूँ । इस तरह कहकर स्वर्ग में गया, उस समय में श्री गौतम स्वामी ने वीर परमात्मा को पूछा - हे भगवान् ! सत्यवादी इस शकेन्द्र के अवग्रह की अनुज्ञा भाव से सत्य है या किस तरह ? तब परमात्मा ने भी इन्द्र महाराजा सत्यवादी हैं इस तरह कहकर उसकी प्रशंसा की । (८३६-८४१)

एवं योऽनेकधा धर्ममाराध्येतः स्थितिक्षये ।
विदेहेषूत्पद्य चैकावतारो मुक्तिमाप्स्यति ।।८४२।।

इस तरह से वह अनेक प्रकार से धर्म की आराधना करके यहाँ से इन्द्र पने से आयुष्य का क्षय होने के बाद महाविदेह में उत्पन्न होकर एकावतारी बनकर मुक्तिगामी होगा । (८४२)

अस्मिश्च्युते च स्थानेऽस्य पुनरुत्पत्स्यतेऽपरः ।
एवमन्येऽपि शक्राद्या, यथा स्थानं सुरासुराः ।।८४३।।

इस शकेन्द्र के च्यवन बाद इसके स्थान पर अन्य इन्द्र उत्पन्न होगा । इस तरह अपने-अपने स्थान में शक्र-देव-दानव आदि उत्पन्न होते हैं । (८४३)

ईशानदेवलोकस्य, प्रतरेऽथ त्रयोदशे ।
मेरोरूत्तरतः पंञ्च स्युर्विमाना वतंसकाः ।।८४४।।

दूसरे देवलोक का वर्णन करते हैं - दूसरे ईशान देवलोक के तेरह प्रतर में मेरु पर्वत की उत्तरदिशा में पांच अवतंसक विमान है । (८४४)

अंकावतंसकं प्राच्यां, विमानमस्ति शस्तभम् ।
दक्षिणस्यां स्फटिकावतंसकाख्यं निरुपितम् ।।८४५।।
अपरस्यां तथा रत्नावतंसकमिति स्मृतम ।
उत्तरास्यां जात रूपा वतंसकाभिधं भवेत् ।।८४६।।

उसमें प्रथम पूर्व दिशा में प्रशंसनीय प्रभावाला अंकावतंसक, दक्षिण दिशा में स्फटिकावतंसक, पश्चिम दिशा में रत्नावंतसक और उत्तर दिशा में जात रुपावतंसक नामक विमान होता है । (८४५-८४६)

मध्ये चैषामथेशानावतंसकाभिधं महत् ।
विमानं मानतः सौधर्मावतंसकसन्निभम् ॥८४७॥

इन चारों विमान के मध्य में ईशानावतंसक नामका महान-विशाल विमान होता है, उसका प्रमाण सौधर्मावतंसक विमान के समान है । (८४७)

तत्रोपपातशय्यायामुपपातसभास्पृशि ।
ईशानेन्द्रतया प्रौढ पुण्य उत्पद्यतेऽसुमान ॥८४८॥

उपपात सभा के अन्दर् कही उपपात शय्या ऊपर अधिक कुछ पुण्यशाली आत्मा ईशानेन्द्र रूप में उत्पन्न होता है ।

साम्प्रतीनस्त्सौ जम्बूद्वीपे क्षेत्रे च भारते ।
ताम्रलिप्त्यां पुरि मौर्य पुत्रोऽभूत्तामलिर्धनी ॥८४९॥

सचैकदारात्रिशेषं, जाग्रच्चित्ते व्यचिन्तयत् ।
नन्वियं यन्मया लब्धा, समृद्धिः सर्वतोमुखी ॥८५०॥

तत्प्राच्य प्राज्यपुण्यानां, फलमत्र न संशयः ।
प्रागेवं संचितं भुञ्जे, नूत्नमर्जयन॥८५१॥

क्षीणेऽस्मिन् किं करिष्येतद्भवान्तर सुखावहम् ।
किंचित्पुण्यमर्जयामि, गार्हस्थ्ये तु भवेन्न तत् ॥८५२॥

विचिन्त्येति विचारज्ञः, प्रातः प्रीत्या कुटुम्बकम ।
आकार्यज्ञातिमित्रादीनुपचर्याशनादिभिः ॥८५३॥

कुटुम्बभारमारोप्य, ज्येष्ठ पुत्रे विरक्तहृत् ।
तानापृच्छय दारूमयं, गृहीत्वैकं पतद्ग्रहम् ॥८५४॥

प्राणामयाप्रवव्राज प्रव्रज्ययाऽथ तत्र सः ।
यत्र यं प्राणिनं पश्येदाकाकमासुरेश्वरम् ॥८५५॥

तत्र तं प्रणमन् पष्ठतपा आतापनामपि ।
कुर्वाणो भान्वभिसुखः पष्ठस्य पारणादिने ।।८५६।।

आतापनाभुवः प्रत्युत्तीर्य पुर्यां कुलान्यटन् ।
उच्चनीचमध्यमानि, भिक्षार्थमपराह्नके ।।८५७।।

नादत्ते सूप शाकादि, किंतु केवलमोदनैः ।
पूर्णे पतद्ग्रहे भिक्षाचर्यायाः सः निवर्त्तते ।।८५८।।

एकविंशतिकृत्वस्तं, प्रक्षाल्यौदनमम्बुभिः ।
तादृग्नीरसमाहार्य, पष्ठिं करोत्यनन्तरम् ।।८५९।।

एवं वर्ष सहस्राणि, पष्ठि तपोऽतिदुष्करम् ।
कुर्वन् कृशीयान्निर्मांसो, व्यक्तस्नायुशिरोऽभवत् ।।८६०।।

ईशानेन्द्र का पूर्वजन्म - इस वर्तमान काल में ईशानेन्द्र जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र में ताम्र लिप्ती पुरी के अन्दर मौर्य का पुत्र तामलि नामक कोई धनवान सेठ था। एक समय थोड़ी रात्रि शेष रही उस समय वह जागृत हुआ तब वह मन में विचार करता है कि - वास्तविक ! चारों तरफ विस्तृत यह समृद्धि जो प्राप्त की है, वह पूर्व जन्म के महान पुण्य का फल है, उसमें किसी प्रकार की शंका का स्थान नहीं । वस्तुत: जब मैं पूर्व के संचित पुण्य को भोग रहा हूँ और नया पुण्य उपार्जन नहीं कर रहा हूँ, अत: यह पुण्य खत्म होने के बाद क्या करूंगा ? इसलिये जन्मान्तर में सुख को देने वाला कुछ पुण्य उपार्जन करना चाहिये । परन्तु वह गृहस्थ जीवन में संभव नहीं है, इस तरह विचार करके उसने सुबह प्रेमपूर्वक कुटुम्ब को बुलाकर ज्ञानी, मित्र, स्वजनादि को भोजन आदि से सत्कार करके बड़े पुत्र के ऊपर कुटुम्ब का भार आरोपण करके उनको पूछकर लकड़े का एक पात्र ग्रहण करके उसने 'प्राणाभा' नाम की दीक्षा स्वीकार की । 'प्राणाभा' अर्थात जो कोई भी प्राणी मिले, चाहे वह कौआ हो अथवा इन्द्र महाराज हो उन सबको नमस्कार करना । इस तरह से प्राणी मात्र को नमस्कार करते छठ के पारण के दिन में आतापना के स्थान से नीचे उतर कर नगरी के अन्दर गृहस्थों के वहां ऊँचे-नीचे और मध्यम कुलों में भिक्षा के लिए दिन के तीसरे पहर में भ्रमण करता है । दाल-साग को नहीं ग्रहण करता था परन्तु केवल चावल से पात्र को भरता था उस भिक्षाचर्या से वापिस आता

था और उस चावल को २१ बार पानी से धोकर उस नीरस आहार को ग्रहण करके तुरन्त ही छठम तप करता था इस तरह साठ हजार वर्ष तक अति दुष्कर तप को करते मांस रहित और कृश बन गया स्नायु और नसें सारी स्पष्ट दिखने लगी । (८४६-८६०)

ततश्चिन्तयति स्मैष यावदस्ति तनौ मम ।
शक्तिस्तावदनशनं, कृत्वा स्वार्थ समर्थये ।।८६१।।

ध्यायन्नेवं ताम्रलिप्त्यां, गार्हस्थ्यव्रतसंगतान् ।
आपृच्छयलोकानेकान्ते, त्यक्त्वा पतद्ग्रहादिकम् ।।८६२।।

ऐशान्यां मण्डलं पुर्या, आलिख्यानशनं दधौ ।
पादपोपगमं मृत्युमनाकांक्षंश्च तिष्ठति।।८६३।।

उसके बाद उसने विचार किया कि – जब तक मेरे शरीर में शक्ति है वहां तक अनशन करके स्वार्थ को मैं सिद्ध कर दूं, इस तरह चिन्तन कर ताम्र लिप्ती नगरी में गृहस्थ जीवन में साथ में रहे लोगों को पूछकर पात्रादि को एकान्त में छोड़कर नगरी के ईशान कोने में मंडलाकार की रचना कर पादपो पगमन अनशन को धारण किया और मृत्यु की आकांक्षा बिना अनशन की अवस्था में रहे । (८२१-८२३)

तदा च बलिचंञ्चाऽऽसीद्राजधानीन्द्रवर्जिता ।
तत्रत्याश्चासुरा देव देव्यो निरीक्ष्य तामलिम् ।।८६४।।

इन्द्रार्थिनः समुदित्तास्तत्रैत्येति व्यजिज्ञपन् ।
क्लिश्यामहेवयं स्वामिन्निर्नाथा विधवाइव ।।८६५।।

इन्द्राधीना स्थितिः सर्वा, सीदत्यस्माकमित्यतः ।
कृत्वा निदानमधिपा, यूयमेव भवन्तु नः ।।८६६।।

इत्यादि निगदन्तस्ते, स्थित्वा तामलिसंमुखम् ।
नानानाट्यादिदिव्यर्द्धि, दर्शयन्ति मुहुर्मुहः ।।८६७।।

देवाङ्गना अपि प्राणप्रिय प्रेमदृशैकशः ।
त्यक्तया कठिनतां कान्त ! निभालय निभालय ।।८६८।।

मनागमनोऽस्मासु कुर्यास्तपस्विन्नधुना यदि ।
भवेम तव किं कर्यस्तपः क्रीत्यो भवावधि ।।८६६।।

तामलिस्तु तद्वचोभिर्मरुदिभरिव भूधरः ।
निश्चल स्तस्थिवांस्तूर्ष्णीं, ततस्तेऽगुर्यथास्पदम् ।।८७०।।

उस समय असुरेन्द्र की बली चंचा राजधानी इन्द्र रहित थी । वहां के इन्द्र के अर्थी असुर निकाय के देव देवी वर्ग तामली को देखकर विज्ञप्ति की कि – हे स्वामिन् ! नाथ बिना कि विधवा के समान हम लोग क्लेश प्राप्त कर रहे हैं, हमारे इन्द्राधीन सर्व मर्यादा-स्थिति कमजोर हो रही है इसलिए आप निदान करके हमारे स्वामी बनो । इस तरह से कहने पर उन तामली तापस के सन्मुख रहकर विविध प्रकार का नाटकादि दिव्य ऋद्धि को बारम्बार दिखाते हैं, देवांगनाएं भी कहने लगी – हे प्राण प्रिय ! कठोरता छोड़कर प्रेम दृष्टि से हमारे ओर एक बार देखो ! जरा देखो! हे तपस्विन् ! अभी हमारे ओर थोड़ा सा मन हो तो तुम्हारा तप से खरीद की गई हम जीवन तक दासीत्व रूप स्वीकार करेगी । पवन से जैसे पर्वत चलायमान नही होता, वैसे उनके वचन से भी तामली तापस निश्चल और मौन रहे, इससे वे सभी अपने अपने स्थान में गये । (८६४-८७०)

ईशानेऽपि तदा देवाश्च्युतं नाथास्तदर्थिनः ।
इन्द्रोपपातशय्यायामसकृद्ददते दृशम् ।।८७१।।

षष्ठिं वर्ष सहस्राणि, कृत्वा बालतपोऽद्भुतम् ।
मासयुग्ममनशनं, धृत्वा मृत्वा समाधिना ।।८७२।।

तत्रोपपात शय्यायां, तस्मिन् काले स तामलिः ।
ईशानेन्द्रतयोत्पन्नो, यावत्पर्याप्ति भागभूत् ।।८७३।।

इस तरफ ईशान देवलोक के देव भी अपने नाथ का च्यवन होने से नाथ की इच्छा वाले इन्द्र की उपपात शय्या में बारम्बार दृष्टि करते हैं उस समय में वह तामलि तापस साठ हजार वर्ष की अद्भुत बाह्य तप करके दो मास का अनशन धारण कर समाधिपूर्वक ईशानेन्द्र की उपवास शय्या में ईशान् इन्द रूप में उत्पन्न हुआ और पर्याप्तियों को प्राप्त किया । (८७१- ८७३)

बलिचञ्चासुरास्तावद् ज्ञात्वैतत्कुपिता भृशम् ।
तामलेर्यत्र मृतकं, तत्रागत्यातिरोषतः ।।८७४।।

शुम्बेन बद्धा वामांहि, निष्ठीवन्तो मुखेऽसकृत् ।
ताम्रलिप्त्यां भ्रमयन्तौ, मृतकं तत्रिकादिषु ।।८७५।।

एवमुद्घोषयामासुस्तामलिस्तापसाधमः ।
धूर्त्तो मूर्त्तो दम्भ इव, पश्यतैव विडम्ब्यते ।।८७६।।

ईशानेन्द्र तयोत्पन्नोऽप्यसौ नः किं करिष्यति ।
पुरतोऽस्माकमीशानः, किमसौ तापसब्रुवः ।।८७७।।

असुरैः क्रियमाणां स्वस्वामिदेहकदर्थनाम् ।
दृष्ट्वेशानुसुरा रूष्टाः स्वामिने तदजिज्ञपन् ।।८७८।।

ईशानेन्द्रोऽप्युपपातः शय्यावस्थित एव ताम् ।
बलिचञ्चाराजधानीं, दृशाऽपश्यत्सरोषया ।।८७९।।

तस्य दिव्यप्रभावेण, बलिचञ्चाभितोऽभवत् ।
कीर्णाङ्गिरेव तप्तायः शिलामयीव दुस्सहा ।।८८०।।

असुरास्तेऽथ दवयुव्यथार्ताः स्थातुमक्षमाः ।
मीनाइवस्थले दीनाः, कृच्छ्रात्कण्ठगतासवः ।।८८१।।

इतस्ततः प्रधावन्तः कान्दिशीकाः सुरेश्वरम् ।
संभूय क्षययामासुरष्टाङ्गस्पृष्ट भूतलाः ।।८८२।।

स्वामिन्नज्ञान तोऽस्माभिरपराद्धोऽसिदुर्दशैः ।
नैवं पुनः करिष्यामः, क्षमस्व स्मस्तवानुगा ।।८८३।।

पुनः पुनर्विलपतो दृष्ट्वैतान् करुणास्वरम् ।
तां शक्तिं संजहारेन्द्रो, दयार्द्रस्तेऽप्यधुः सुखम् ।।८८४।।

उस समय बलि चंचा के असुर देवता तामिल को ईशानेन्द्र रूप में उत्पन्न हुए जानकर अत्यन्त क्रोधित हुए और जंहा तामिल का मुरदा पड़ा था वहां आकर अतिरोष पूर्वक शुम्ब से बायें पैर को बाँधकर बारम्बार थूंकते उन्होंने उस मुरदे को तामलित्तीपुर के चारों चौक में घुमाया और इस तरह उद्घोषणा की कि – यह

अधम तामलि तापस धूर्त है, साक्षात् दंभ की मूर्ति है, देखो इस तरह विडंबना की जाती है । यह ईशानेन्द्र रूप में उत्पन्न हुआ है, यह हमारा क्या करेगा ? अधम तापस हमारे सामने क्या हस्ती है ? असुर देवों से अपने स्वामी के पूर्व देह की कदर्थना होती देखकर, रूष्ट बने ईशान देवों ने अपने स्वामी को निवेदन किया । उपपात शय्या में ही रहे ईशानेन्द्र के दिव्य प्रभाव से चारों तरफ से बलि चंचा नगरी में अंगारे बिछाये हों इस तरह अथवा तो तपे हुए लोहे की शिला समान दुस्सह बन गयी गरमी की पीड़ा से दु:खी बने वे असुर देव वहां रहने के लिये असमर्थ हो गये, उनके प्राण कंठ में आ गये, चारों तरफ भयभीत वातावरण बन गया, अत: इधर-उधर दौड़ते हुए सभी असुर एकत्रित होकर ईशान् इन्द्र को साष्टांग नमस्कार करके उनसे क्षमायाचना की- हे स्वामिन् ! दुष्ट दृष्टि वाले हमारे द्वारा अज्ञान पूर्वक आप श्री का इस प्रकार से अपराध हो गया है। अब पुन: ऐसा नहीं करेंगे, क्षमा करो, क्षमा करो हम आप श्री के सेवक हैं, इस तरह बारम्बार करूण स्वर से विलाप करते उन असुरों को देखकर दयालु ईशानेन्द्र अपनी शक्ति को शान्त कर दिया और उस असुर को भी सुख हुआ । (८७४-८८४)

एवं तामलिना बालतपसेन्द्रत्वमर्जितम् ।
सम्यकत्वैकावतारत्वे, प्राप्य तीर्णो भवार्णव: ।।८८५।।

इस तरह से तामलि ने बालतप से इन्द्रत्व प्राप्त किया था तथा सम्यकत्व और एकावतारी रुप प्राप्त करके उसने वास्तविक में संसार समुद्र को पार कर लिया था। (८२५)

जैनक्रियापेक्षयेदं, यद्यप्यल्पतरं फलम् ।
सम्यग्दृष्टिर्हि तपसा, मुक्तिमीदृशा ।।८८६।।

यद्यपि जैन क्रिया की अपेक्षा से तो यह इन्द्र पद को प्राप्त करना अल्पतर फल कहा है। यदि सम्यगृदृष्टि जीवात्मा ने ऐसा तप किया हो तो ऐसे तप से मोक्षपद की प्राप्ति होती है । (८८६)

तथाहु: -"**सट्ठि वाससहस्सा तिसत्तखुत्तोदएण धोएण ।**
अणुचिन्नंतामलिणा, अण्णाणतवत्तिअप्पफलो ।।८८७।।"

कहा है कि साठ हजार वर्ष तक इक्कीस बार पानी से धोकर अन्न से तामली ने तप का पारणा किया था, परन्तु वह अज्ञान तप होने से अल्पफल प्राप्त किया । (८८७)

जनप्रवादोऽपि-तामलितणइ तवेण जिणमइ सिज्झइ सत्तजण।

अन्नाणहदोसेण, तामलिईसाणइं गयो ।।८८७।।

लोगों में भी कहा जाता है – तामलि जितने तप से जिनमति वाले सात जन-आत्मा मोक्ष में जा सकते हैं जबकि अज्ञान के दोष से तामलि केवल ईशानेन्द्र ही बना । (८८८)

तथाप्यस्य निष्फलत्वं, वक्तुं शक्यं न सर्वथा ।

सज्ञानाज्ञानतपसो, फले कुतोऽन्यथाऽन्तरम् ।।८८६।।

फिर भी इस तप को सर्वथा निष्फल नहीं कह सकते, नहीं तो सज्ञान और अज्ञान तप के भेद पड़ते ही नहीं । (८८६)

उक्तं- **जं अन्नाणी कम्मं खवेइ, बहुयाहिं वासकोडीहि ।**

तं नाणी तिहि गुत्तो, खवेइ ऊसासमित्तेणं ।।८६०।।

कहा है कि अज्ञानी करोड़ वर्ष से जिस कर्म को खत्म करता है उस कर्म को तीन गुप्ति से गुप्त ज्ञानी एक श्वासोच्छ्वास में खत्म करता है । (८६०)

सति मिथ्यादृशा मेव, सर्वथा निष्फलां क्रियाम् ।

असत्फलां वा मन्वानास्तन्वते बाल चेष्टितम् ।।८६१।।

इस कारण से मिथ्यादृष्टि की क्रिया है वह सर्वथा एकान्त से निष्फल अथवा अल्पफल वाली है, उसे बाल चेष्टा रूप कहा गया है । (८६१)

ततश्चेशाननाथोऽयं, प्राग्वज्जिनार्चनादिकम् ।

कत्वा सुधर्मासदसि सिंहासनमशिश्रियत् ।।८६२।।

उसके बाद ईशानेन्द्र पूर्व के समान जिनेश्वर प्रभु की पूजा आदि करके सुधर्मा सभा में सिंहासन पर बैठता है । (८६२)

त्रायस्त्रिंशास्त्वस्य चम्पावास्तव्याः सुहृदः प्रियाः ।

त्रयस्त्रिशान्मिथो यावज्जीवमुग्रार्हतक्रियाः ।।८६३।।

आराध्यानेकवर्षाणि, धर्ममन्ते प्रपद्य च ।
द्वौ मासौ प्रायमीशाने, त्रायस्त्रिंशकत्तां दधुः ॥८६४॥

इस इन्द्र महाराज के तेतीस –त्रायस्त्रिंश देवता, तेतीस के तेतीस चंपा नगरी के रहने वाले प्रिय मित्र थे और यावत्जीव तक उग्र रुप में श्री अरिहंत परमात्मा के शासन की आराधना-क्रिया में तत्पर थे, अनेक वर्षों तक धर्म की आराधना करके और अन्त में (यहाँ प्राय: शब्द का अर्थ ही अनशन होता है) दो महीने का अनशन करके ईशान् देवलोक त्रायस्त्रिंशक देव में उत्पन्न हुए हैं । (८६३-८६४)

सहस्राणि भवनत्यस्याशीतिः सामानिकाः सुराः।
दिशां चतुष्के प्रत्येकं, तावन्त आत्मरक्षकाः ॥८६५॥

ईशानेन्द्र के अस्सी हजार सामनिक देवता होते हैं और उतने ही अस्सी हजार प्रत्येक दिशा में आत्म रक्षक देव होते हैं । (८६५)

दशादेवसहस्राणि, स्युरभ्यन्तरपर्षदि ।
शतानि नव देवीनामिहोक्तानि जिनेश्वरैः।॥८६६॥

इस ईशानेन्द्र की अभ्यन्तर पर्षदा में दस हजार देवता होते हैं और नव सौ देवियाँ श्री जिनेश्वर ने कही है । (८६६)

मध्यमायां सहस्राणि, स्युर्द्वादश सुधाभुजाम् ।
उदितानि शतान्यष्टौ देवीनामिह पर्षदि ॥८६७॥

उसकी मध्यम पर्षदा बारह हजार देवताओं की होती है और आठ सौ देवियाँ होती हैं । (८६७)

चतुर्दश सहस्राणि, सुराणां बाह्यसंसदि ।
शतानि सप्त देवीनामथायुरुच्यते क्रमात् ॥८६८॥

बाह्य पर्षदा में चौदह हजार देवता होते हैं और सात सौ देवियाँ होती हैं । अब क्रमानुसार आयुष्य कहते हैं । (८६८)

सप्तपल्योपमान्यायुरन्तः पर्षदि नाकिनाम् ।
पल्योपमानि पञ्चाशद्देवीनां कथिता स्थितिः ॥८६८॥

अभ्यन्तर पर्षदा के देवों का पल्योपम और देवियों का पाँच पल्योपम का आयुष्य कहा है । (८९९)

मध्यमायां देवदेवीनां, षट् चत्वारी कमात् स्थितिः ।
पंचत्रीणि च बाह्यायां, पल्योपमान्यनुक्रमात् ।।९००।।

मध्यम पर्षदा के देव देवियों का आयुष्य अनुक्रम से छः और चार पल्योपम का कहा है और बाह्य पर्षदा के देव देवियों का आयुष्य क्रमशः पाँच और तीन पल्योपम का होता है । (९००)

कृष्ण च कृष्णराजी च, रामा च रामरक्षिता ।
वसुंश्च वसुगुप्ता च, वसुमित्रा वसुन्धरा ।।९०१।।

कृष्ण, कृष्णराजी रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्त वसुमित्रा और वसुंधरा वर्तमान कालीन इन चार अप्सराओं का पूर्वजन्म इस तरह से है । (९०१)

साप्रतीनानामासां प्राग्भवस्त्वेवं: -

पूर्वकासीनिवासिन्यौ द्वे द्वे राजगृहालये ।
द्वै श्रावस्ति निवासिन्यौ, द्वै कौशाम्ब्यां कृतस्थिती ।।९०२।।

रामाख्यपितृका वृद्धकन्या धर्माख्यमातृकाः ।
श्री पार्श्वपुष्पचूलान्ते वासिन्योऽष्टापि सुसुव्रता ।।९०३।।

अन्ते च पक्षं संलिख्य, कृष्णावतंसाकादिषु ।
समुत्पन्न विमोनेषु, नवपल्योपमायुषः ।।९०४।।

दो काशी निवासी, दो राजगृह निवासी, दो श्रावस्ती और दो कौशाम्बी निवासी थीं, इन सब बड़ी उम्र की कन्याओं के राम नाम के पिता थे और धर्मा नाम की माता थी और उन्होंने श्री पार्श्वनाथ भगवान् के अन्तेवासी पुष्पचूला साध्वी जी के पास में व्रत स्वीकार किया था और अंत में पंद्रह दिन का संलेखना करके कृष्णावर्त सभादि विमान में नौ पल्योपम के आयुष्यवाली देवी रूप में उत्पन्न हुई थी । (९०२ से ९०४)

षट् पञ्चाशत इत्येवमिन्द्राणां सर्वसंख्यया ।
इन्द्राण्यो द्वे शते सप्तत्यधिके सन्ति ताः समाः ।।९०५।।

कुल छप्पन इन्द्रों की भवनपति-२०, व्यन्तर-३२, ज्योतिष्ट-२, वैमानिक-२, इन्द्राणियों की कुल मिलाकर (समा: शब्द का अर्थ समान नहीं परन्तु सभी) २७० होता है । (६०५)

पुष्पचूलार्यिका शिष्या, श्री पार्श्वार्पितसंयमा: ।
कृतार्द्धमासानशना, दिव्यां श्रियमशिश्रियन् ।।६०६।।

वे सभी ही अर्थात् २७० देवियों ने पूर्व जन्म में श्री पार्श्वनाथ परमात्मा के पास में दीक्षा स्वीकार करके पुष्पचूला साध्वी की शिष्या बनकर पक्ष का अनशन करके दिव्य लक्ष्मी की प्राप्ति की । (६०६)

इत्यर्थतो ज्ञात० द्वितीय श्रुत० -

अष्टाप्यग्रमहिष्योऽस्य, सौधर्मेन्द्राङ्गना इव ।
वसुनेत्रसहस्त्राढयं, लक्षं स्युः सपरिच्छदाः ।।६०७।।

यह बात अर्थ से ज्ञाता सूत्र के द्वितीय श्रुत स्कंध में कहा है -

ईशानेन्द्र की ये आठो पट्टरानियाँ सौधर्म की पट्टरानियों के समान एक लाख अट्ठाईस हजार के परिवार वाली होती है । (६०७)

सौ धर्मेन्द्रवदेषोऽपि, स्थानं चक्राकृति स्फुरत् ।
विकुर्व्य योगनेताभि: सह भुङ्क्ते यथा सुखम् ।।६०८।।

सौधर्म के समान यह ईशानेन्द्र भी देदीप्यमान चक्राकार से स्थान बनाकर इन सब देवियों के साथ में इच्छानुसार भोग भोगता है । (६०८)

सैन्यानि पूर्ववत्सप्त, सप्तास्य सैन्यनायकाः ।
महावायु: १ पुष्पदन्तो २ महामाठर ३ एव च ।।६०६।।

महादामर्द्धि नामा ४ च तथा लघुपराक्रमः ५ ।
महाश्वेतो ६ नारदश्च ७ नामतस्ते यथाक्रमम् ।।६१०।।

पूर्व में सौधर्म का कहा था उस समान ईशानेन्द्र को भी सात सेना होती हैं, उनके सेनापति भी सात होते हैं उनके नाम अनुक्रम से - १-महावायु, २-पुष्पदन्त, ३-महामाठर, ४-महादामर्धि, ५-लघु पराक्रम ६- महाश्वेत और ७-नारद है । (६०६-६१०)

तुर्यस्येन्द्रस्य षष्ठस्याष्टमस्य दशमस्य च ।
द्वादशस्यापि सेनान्यः, स्युरेतैरेव नामभिः ॥६११॥

चौथे, छठे, आठवें, दसवें और बारहवें इन्द्र के सेनाधिपतियों के नाम भी इस प्रकार से ही होते हैं । (६११)

पादात्याधिपतिर्योऽस्य, नाम्ना लघु पराक्रमः ।
स पूर्वोक्त हरिनैगमेषिजैत्रपराक्रमः ॥६१२॥

पैदल सेना का अधिपति जो लघु पराक्रम नाम का है वह पहले के हरि नैगमेषि के पराक्रम को जीत लेने वाला है । (६१२)

अनेन नन्दिघोषाया, घण्टायास्ताडने कृते ।
युगपन्मुखरायन्ते, घण्टाः सर्व विमानगाः ॥६१३॥

यह लघु पराक्रम सेना के जब नन्दि घोष नाम के घंटे को बजाते हैं तब एक साथ में सब विमानों में रहे घंटे बजते हैं और वह नाद गूंज उठता है । (६१३)

अस्य यानविमानं च, प्रज्ञप्तं पुष्पकाभिधम् ।
पुष्पकाख्यः सुरश्चास्य, नियुक्तस्तद्विकुर्वणे ॥६१४॥

ईशानेन्द्र का गमनागमन का पुष्पक नाम का विमान है और उसकी रचना करने के लिए पुष्पक देव को नियुक्त किया होता है । (६१४)

तथोक्तं स्थानांगेऽष्टमें स्थानके - एतेसु णं अट्ठसु कप्पेसु अट्ठ इंदा प० तं० सक्के जाव सहस्सारे, एतेसिणं अट्ठण्हमिदाणं अट्ठ परि याणिया विमाणा प० त० पालए १, पुष्फए २, सोमणसे ३, सिरिवच्छे ४, णंदियावत्ते ५, कामकमे ६, पीतीमणे ७ विमले ८ इति ।

श्री ठाणांग सूत्र के आठवें स्थान में कहा है कि - इन आठ कल्प में आठ इन्द्र कहे हैं उन शक्र महाराज से लेकर सहस्रार तक के इन आठ इन्द्रों के बाहर जाने के विमान आठ कहे हैं वह इस तरह - १-पालक, २-पुष्पक, ३-सौमनस, ४-श्री वत्स, ५-नंदावर्त, ६-कामक्रम, ७-प्रीतिमन, ८-विमल । इति

दक्षिणात्येन निर्याण मार्गेणावतरत्यधः ।
अयं नन्दीश्वरद्वीपैशान्यां रतिकराचले ॥६१५॥

यह ईशानेन्द्र जाने के उतरने के दक्षिण मार्ग से नंदीश्वर के ईशान कोने में रहे रतिकर पर्वत पर उतरता है । (६१५)

प्रागुक्त वज्राभ्यधिकशक्तिवैभवशाभनम् ।
शूलमस्य करे साक्षाच्छूलं, प्रतीपचेतसाम् ॥६१६॥

पूर्व कहे अनुसार सौधर्मेन्द्र के आयुष्य वज्र से अधिक शक्ति वैभव और शोभा वाला शूल नामक शस्त्र को ईशानेन्द्र हाथ में धारण करते हैं जो शत्रुओं के मन में साक्षात् शूल के समान चुभता है । (६१६)

ऐरावणाधिकस्फातिवृषोऽस्य वाहनं सुरः ।
स च प्रभौ जिगमिषौ, वृषीभूयोपतिष्टते ॥६१७॥

सौधर्मेन्द्र के ऐरावत हाथी से अधिक बलवान वृषभ का देवरुप वाहन इस ईशानेन्द्र को होता है जबकि स्वामी को बाहर जाने की इच्छा होती है उस समय वृषभ तैयार रहता है । (६१७)

तमस्कायभिधा देवाः, सन्त्यस्य वशवर्तिनः ।
द्विविधं हि तमः स्वाभाविकं दिव्यानुभावजम् ॥६१८॥

तत्रेशान स्वर्गपतिश्चिकीर्षुस्तमसां भरम् ।
पर्षदादिक्रमात्प्राग्वद् ज्ञापयस्याभियोगिकान् ॥६१६॥

तमस्कायिकदेवांस्तेऽप्यादि शन्त्याभियोगिकाः ।
तमस्कायं ततश्चाविष्कुर्वन्त्येतेऽधिपाज्ञया ॥६२०॥

चतुर्विधाः परेऽप्येवं, विकुर्वन्ति सुरास्तमः ।
क्रीडारतिद्विषन्मोहगोप्यगुप्त्यादि हेतुभिः ॥६२१॥

तमस्काय के देवता इस ईशानेन्द्र के वश होते हैं उसमें दो प्रकार का है - १-स्वाभाविक और २. दिव्य प्रभाव से हुआ हो, उसमें ईशानेन्द्र अंधकार को करने की इच्छा करे उस समय पर्षदा के क्रम से अभियौगिक देवता को दिखाता है वे अभियौगिक देवता नमस्कार देवता को आदेश-आज्ञा देते हैं, इससे अपने स्वामी की आज्ञा से वे तमस्कायिक देव अंधकार की रचना करते हैं, दूसरे भी चारों प्रकार के देवता - १-क्रीड़ा, २-रति क्रिया, ३-शत्रु को भ्रम में डालने वाला और

४-गोपनीय वस्तुओं को छुपाने के लिये, इत्यादि के कारण से अंधकार की रचना करते हैं । (९१८-९२१)

विकुर्वणा शक्तिरपि, स्यादस्य वज्रपाणिवत् ।
सर्वत्र सातिरेकत्वं, किन्तु भाव्यं विवेकिभिः ॥९२२॥

ईशानेन्द्र की रचना शक्ति भी सौधर्मेन्द्र के समान होती है फिर भी प्रत्येक स्थान में विवेकी पुरुषों ने सौधर्मेन्द्र से यहां कुछ अधिकता समझ लेना । (९२२)

चत्वारोऽस्य लोकपालास्तत्रेशानावंतसकात् ।
असंख्येयसहस्राण्यं, योजनानामतिक्रमे ॥९२३॥

प्राच्यां विमानं सुमनोऽभिधानं सोम दिक्पत्ते ।
विमान सर्वतोभद्रं, यांस्यां यमहरित्पते ॥९२४॥

अपरस्या च वरुण विमानं वल्गुनामकम् ।
विमानं वैश्रश्रमणस्योत्तरस्यां स्यात्सुवल्गुकम् ॥९२५॥

इस ईशानेन्द्र के चार लोकपाल होते हैं, उसमें ईशानावंतसक विमान से असंख्याता हजार दूर पूर्व दिशा में सोम दिग्पाल का सुमन, दक्षिण दिशा में यम दिग्पाल सवतोभद्र, पश्चिम दिशा में वरुण दिगपाल का वल्गु और उत्तर दिशा में वैश्रमण दिग्पाल का सुवल्गु नामक विमान होता है । (९२३-९२५)

सौधर्मेशानवच्चैवं स्वर्गेषु निखिलेष्वपि ।
स्वेन्द्रावतंसकाल्लोकपालावासाश्चतुर्दिशम् ॥९२६॥

सौधर्म और ईशान् देवलोक के समान प्रत्येक स्वर्ग में अपने-अपने इन्द्र वतंसक विमान से चार दिशा में लोकपाल के निवास होते हैं । (९२६)

उक्तं चः -कप्पस्स अंतपयरे नियकप्पवडिसयाविमाणाओ ।
इदं निवासा तेसिं चउद्दिसि लोग पालाणं ॥९२७॥

कहा है कि - प्रत्येक देवलोक के अन्तिम प्रतर में अपने-अपने नाम के कल्प वतंसक विमान इन्द्र निवास होते हैं और उसके चारों दिशाओं में इन्द्र के लोकपाल के विमान होते हैं । (९२७)

अग्रेतनानामप्योजयुजामेवं विडौजसाम् ।
तृतीय तुर्ययोर्वाच्यो, व्यत्ययो लोकपालयोः ।।६२८।।

यथा तृतीयेन्द्रस्यैते, क्रमात्सौधर्मराजवत् ।
चतुर्थेन्द्रस्य चेशान सुरेन्द्रस्येव ते क्रमात् ।।६२६।।

विमानानां चतुर्णामप्येषामधो विवर्त्तिनि ।
तिर्यगलोके राजधान्यश्चतस्त्रः प्राग्वदाहिताः ।।६३०।।

आगे के शक्तिशाली, इन्द्र महाराज के तीसरे और चौथे लोकपाल में विपर्यय है जैसे कि तीसरे इन्द्र के लोकपाल सौधर्म इन्द्र के समान समझना एवं चौथे इन्द्र के लोकपाल ईशानेन्द्र के समान समझना । लोकपाल के चार विमानों के नीचे तिर्यंच लोक में रही लोकपाल की पूर्व के समान चार राजधानियाँ समझनी चाहिये । (६२८-६३०)

सौधर्मेशानेन्द्र लोकपालानां यास्तु वर्णिताः ।
नगर्यः कुण्डलद्वीपे, द्वात्रिंशत्तास्त्वितः पराः ।।६३१।।

सौधर्म और ईशानेन्द्र के लोकपाल की कुंडल द्वीप में जो बत्तीस नगरिया कही है वे इन राजधानियों से अलग समझना चाहिये । (६३१)

स्थितिश्च सोमयमयोः, पल्योपमद्वयं भवेत् ।
पल्योपमस्य चैकेन, तृतीयांशेन वर्जितम् ।।६३२।।

पूर्णं वैश्रमणस्याथ, स्थिति पल्योपमद्वयम् ।
तृतीयांशाधिकं पल्यद्वयं च वरुणस्य सा ।।६३३।।

सोम और यम लोकपाल का आयुष्य १/३ कम दो पल्योपम का होता है वैश्रमण का आयुष्य पूर्ण दो पल्योपम का होता है और वरुण का आयुष्य १/२ पल्योपम अधिक दो पल्योपम का होता है । (६३२-६३३)

पृथ्वीराजी च रयणी, विद्युश्चेत्यभिधानतः ।
चतुर्णाप्यमीसा स्युश्चतस्त्रः प्राणवल्लभाः ।।६३४।।

चारों लोक पाल को, पृथ्वी, राजी, रयणी और विद्युत नाम की चार पट्टरानियाँ होती हैं । (६३४)

एषामपत्यस्थानीय देववक्तव्यतादिकम् ।
सर्वमप्यनुसंधेयं, सुधिया पूर्ववर्णितम् ।।६३५।।
कित्वमीषामौत्तराहा, वस्या स्युरसुरादयः ।
उदीच्यामेव, निखिलोऽधिकारः पूर्ववर्णितः ।।६३६।।

चारों लोकपालों के पुत्र स्थानीय देवता आदि की बात पूर्व के समान वृद्धि से समझ लेना, विशेष केवल इतना है कि इस देवलोक के वशवर्ती असुरादि देवता उत्तर दिशा के सम्बन्धी समझना चाहिये । (६३५-६३६)

तथाहु : - चउसु विमाणे सु चत्तारि, उद्देशा अपरिसेसा नवरंठितीएणाण त्त ।

कहा है कि चार विमानों में चार वस्तुएं समान होती हैं केवल आयुष्य की स्थिति में भिन्नता होती है ।

आदिदुगि तिभागूणा पलिया छणायस्य होंति दो चेव।
दो सति भागा वरुणे पलियमहावच्चदेवाणं ।।६३७।।

पहले दो लोकपाल का $\frac{1}{3}$ पल्योपम कम दो पल्योपम का आयुष्य होता है, धनद लोकपाल का दो पल्योपम का आयुष्य होता है और वरुण लोकपाल का आयुष्य पल्योपम भाग युक्त दो पल्योपम का होता है इत्यादि श्री भगवती सूत्र में कहा है । (६३७)

तथा - **स्थितेरल्पत्वेऽप्यमीषामाज्ञैश्वर्यं भवेन्महत् ।**
लोकेऽल्पविभवत्वेऽपि नृपाधिकारिणामिव ।।६३८।।

जैसे राजा का अधिकारी अल्प वैभव वाला होने पर भी विशिष्ट सत्ता वाला होता है वैसे आयुष्य से अल्प होने पर भी इस लोकपाल का ऐश्वर्य सत्ता महान होता है । (६३८)

उक्ता दशाधिपतयः, सौधर्मेशानयोर्यतः ।
सूत्रे तत्र सुरेन्द्रौ द्वौ, लोकपालास्तथाऽष्ट च ।।६३९।।

इससे ही सूत्र में सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्रः देवलोक के अधिपति कहे हैं । उसमें दो इन्द्र (सौधर्मेन्द्र-ईशानेन्द्र और उसके चार-चार, आठ लोकपाल समझें इस तरह से २ + ८=१० होता है । (६३९)

तथाहुः - सोहम्मीसाणे सु ण भंते ! कप्पेसु कह देवा आहेवच्चं जाव विहरंति ! गो० दसा देवा विहरंति । इत्यादि भगवती सूत्रे ।

श्री भगवती सूत्र में कहा है कि - हे भदंत ! सौधर्म और ईशान् देवलोक में कितने देवता अधिपति रूप में फिरते विचरते हैं ? हे गौतम ! दस देवता अधिपतिरूप भोगते हैं तब तक विचरते हैं ।

एवमीशानदेवेन्द्र, सामानिकादिभिर्वृतः ।
विमानावासलक्षणामिहाष्टाविंशतेः प्रभुः ॥६४०॥

उत्तरार्द्धलोकनेता, कान्त्या विद्योतयन् दिशः ।
असंख्य देवी देवानामीशान स्यर्गवासिनाम् ॥६४१॥

आधिपत्यमनुभवत्युदात्त पुण्यवैभवः ।
प्रतापनिस्तुलः शूलपाणिर्वृषभवाहनः ॥६४२॥ *त्रिभिर्विशेषकं ॥*

इस तरह से सामानिक देवता से घिरे हुए अट्ठाईस लाख विमान के अधिपति उत्तरार्धलोक के स्वामी, अपनी कान्ति से दिशाओ को प्रकाशित करने वाले विशिष्ट पुण्यशाली उनके प्रताप से जिसकी तुलना नहीं हो सके, शूल नामक शस्त्र को हाथ में धारण करने वाला वृषभ वाहन वाले ईशानेन्द्र ईशान् स्वर्ग में रहने वाले असंख्य देव देवीयों के स्वामीरूप को अनुभव करने वाला होता है। (६४०-६४२)

अहो माहात्म्यमस्योच्चैर्यत्सौधर्मेश्वरोऽपिहि ।
आदृतः पार्श्वमभ्येतुं, क्षमते न त्वनादृतः ॥६४३॥

एवमालापसंलापौ, कर्तुं संमुखमीक्षितुम ।
अनेन सह सौधर्माधीशोऽनीशो ह्यनादृतः ॥६४४॥

अहो ! ईशानेन्द्र का महात्म्य इतना विशेष है कि स्वयं सौधर्मेन्द्र भी ईशानेन्द्र की इच्छा से ही उनकी अनुज्ञा होती है । तभी ही उनके नजदीक जा सकता है अन्यथा नहीं जा सकता । इसी तरह उनके साथ में बातचीत करना, सामने जाना इत्यादि सारी प्रवृत्तियाँ भी ईशानेन्द्र की इच्छा बिना सौधर्मेन्द्र नहीं कर सकता है । (६४३-६४४)

ईशानेन्द्रस्तु सौधर्माधिपतेरान्तिकं सुखम् ।
यात्तीक्षते जल्पति च नास्यानुज्ञामपेक्षाते ॥६४५॥

जबकि ईशानेन्द्र तो सौधर्मेन्द्र के पास में अनुज्ञा की अपेक्षा बिना ही सुखपूर्वक जा सकता है, बोल सकता है और देख सकता है । (६४५)

एवमुत्पन्नेषु नानाकार्येषु च परस्परम् ।
संभूयं गोष्ठीमप्येतौ, कुर्वातेप्रश्रयाश्रयौ ॥६४६॥

इस तरह से अलग-अलग प्रकार के कार्य के समय पर दोनों इन्द्र परस्पर मिलकर आदर-विनय को प्राप्त करते वे परस्पर बातचीत करते हैं । (६४६)

गच्छेत्कदाचिदीशाननाथोऽपि प्रथमान्तिकम् ।
सौधर्मेन्द्रोऽप्यनुज्ञाप्य, यायादेतस्य सन्निधौ ॥६४७॥

किसी समय ईशानेन्द्र, सौधर्मेन्द्र के पास में जाता है और कभी सौधर्मेन्द्र ईशानेन्द्र को कहकर उनके पास में जाता है । (६४६)

भो दक्षिणार्द्धलोकेन्द्र सौधर्मेन्द्र ! हितावहम् ।
कार्यमेतदिति गिरा, वदेदीशाननायकः ॥६४८॥

ईशानेन्द्र, सौधर्मेन्द्र के साथ में बात करता है उस समय कहते हैं - हे दक्षिणार्द्ध लोकेन्द्र ! सौधर्मेन्द्र! 'यह कार्य हितकारी है' इस तरह से बात करते हैं । (६४८)

उत्तरार्द्धलोकनेतर्भो ईशानसुरेश्वर!।
सत्यमित्यादिकृत्यौधानुभौ विमृशतो मिथः ॥६४९॥

उस समय सौधर्मेन्द्र उत्तर देता है - हे उत्तरार्ध लोकेन्द्र ! ईशानेन्द्र ! तुम्हारी बात सत्य है, इस तरह से कहकर परस्पर कार्य का विचार करते रहते हैं । (६४९)

तथाहुः - 'प्रभूणं भंते ! सक्के दे विंदे देवराया ईशाणस्स देविदस्स देव रण्णो अं ति अं पाउब्भ वित्तए ? हंता पभू !' इत्यादि भगवती सूत्रे ३ १ ॥

श्री भगवती सूत्र के तीसरे शतक पहले उद्देश में कहा है कि हेमदंत देवों के इन्द्र, देवों के राजा, शक्र महाराजा ईशानेन्द्र के पास में क्या जा सकता है ? गौतम ! हाँ वह जा सकता है इत्यादि –

साधारण विमानादि हेतोर्जात्वेनयोर्द्वयोः ।
उत्पद्यते विवादोऽपि, मिथो निर्जरराजयोः ॥६५०॥

साधारण विमानों के कारण ये दोनों इन्द्र के बीच में कुछ किसी समय विवाद भी उत्पन्न होता है । (६५०)

आध्माततामवत्कोधात्ताम्राननविलोचनौ ।
कल्पान्त वह्नितपनाविवाशक्यनिरीक्षणौ ॥६५१॥
चण्डरूपौ तदाचैतो कोऽन्यो वक्तुमपीश्वरः ! ।
योऽत्रयुक्तमयुक्तं वा, निर्णीय शमयेत्कलिम् ॥६५२॥
ततः क्षणान्तरादीषच्छान्तौ विचिन्त्य चेतसा ।
सनत्कुमारं देवेन्द्रं, स्मरतस्ताबुभावपि ॥६५३॥

गर्म किए ताम्बा के समान क्रोध से लाल श्याम मुख और आँखों वाले कल्पांत काल की अग्नि के समान जिसके सामने देखकर भी प्रचंड रूप वाले इन दोनो देवेन्द्रों को कहने का कोई नहीं समर्थ हो सकता है जो योग्य-अयोग्य का निर्णय करके झगड़े को शान्त कर सके । उसके बाद क्षण में फिर कुछ शान्त हुए वे दोनों इन्द्र मन में विचार करके सनत्कुमार का स्मरण करते हैं । (६५१-६५३)

सोऽपि ताभ्यां स्मर्यमाणो विज्ञायावधिनाद्रुतम् ।
तत्रागत्य न्याप्यकार्यमाज्ञाप्य शमयेत्त्कलिम् ॥६५४॥

दोनों के द्वारा याद करने से वह सन्तकुमार इन्द्र भी अवधिज्ञान से जानकर वहां आकर योग्य कार्य की आड़ देकर झगड़े को शान्त करते हैं ।

ततः सनत्कुमारेन्द्र बोधितौ त्यक्तविग्रहौ ।
तदाज्ञां विभ्रतो मौलौ, तौमिथः प्रीतमानसौ ॥६५४॥

तथाहुः – 'अत्थि णं भंते ! सक्की साणाणं देविदाणं देवराईणं विवादा समुप्पज्जंति ? हंता अत्थीत्यादि' भगवती सूत्रे ३, १ ।

श्री भगवती सूत्र के तीसरे शतक पहले उद्देश में कहा है कि – हे प्रभु ! देवों के राजा, देवों के इन्द्र शक्र ईशानेन्द्र को विवाद उत्पन्न होता है ? गौतम ! हाँ, होता है इत्यादि आया है ।

कदाचिच्च तथा क्रुद्धौ, युद्धसज्जौ परस्परम् ।
सामानिकादयो देवा, उभयोरपि संमताः ॥९५६॥

अर्हद्दृष्टाक्षालनाम्बुसेकात्तौ गतमत्सरौ ।
निर्माय निर्मायतया, बोधयन्ति नयस्थित्तिम् ॥९५७॥

किसी समय क्रोध में आकर परस्पर युद्ध करने के लिये तैयार हो जाते हैं उस समय दोनों के मान्य-सामानिक देवता श्री अरिहंत भगवन्त की दाढ़ा के प्रक्षाल का पानी छांट करके उसे शान्तकर सरलकर न्याय समझाते हैं । (९५६-९५७)

पश्यतातितमां रागद्वेषयोर्दुर्विलघं ताम् ।
यदेताभ्यां विडम्ब्येते, तादृशावप्यधीश्वरौ ॥९५८॥

देखो-देखो राग द्वेष कितना दुर्लध्य है कि जो रागद्वेष द्वारा ऐसे महान इन्द्र भी विडम्बना प्राप्त करते हैं । (९५८)

एवमीशानदेवेन्द्रोऽनुभवन्नपि वैभवम् ।
अर्हन्तमर्हद्धर्मं च, चित्तान्न त्यजति क्षणम् ॥९५९॥

इस तरह से ईशानेन्द्र वैभव का अनुभव करने पर भी श्री अरिहंत परमात्मा और श्री अरिहंत के धर्म को चित्त से क्षणवार भी नहीं छोडते हैं । (९५९)

उत्तरार्द्ध जिनेन्द्राणां, कल्याणकेषु पञ्चसु ।
करोत्यग्रेसरी भूय, सहोत्साहं महोत्सवान् ॥९६०॥

उत्तरार्ध लोक के श्री जिनेश्वर भगवन्तों के पाँच कल्याणक में अग्रेसर बनकर उत्साहपूर्वक महोत्सव करते हैं । (९६०)

जिनेन्द्रपादान् भजते, भरतैरवतादिषु ।
नंदीश्वरे च प्रत्यब्दं, करोत्यष्टाहिकोत्सवान् ॥९६१॥

भरत और ऐरावत आदि में श्री जिनेश्वरों की सेवा करते हैं और प्रत्येक वर्ष नंदीश्वर द्वीप में आठ दिन महोत्सव करते हैं । (९६१)

असकृच्चार्हतां भावपूजामपि करोति सः ।
अष्टोत्तरं नट नटीशंत विकृत्य नर्त्तयन् ॥९६२॥

और १०८ नर नारियों (नट-नटी) की रचना करके नृत्य पूर्वक बारम्बार अरिहंत भगवन्त की भावपूर्वक पूजा भी करते हैं । (९६२)

देवपर्षत्समक्षं च, चमत्कारातिरेकतः ।
प्रशंसति नरस्यापि, धर्मदार्ढ्यादिकं गुणम् ॥९६३॥

दृढतापूर्वक धर्म आराधना करते धर्मात्मा को देखकर उसके चमत्कार के अतिरिक्त देवकी पर्षदा समक्ष मनुष्य के भी धर्म की दृढ़ता आदि गुणों की प्रशंसा करते हैं । (९६३)

आराध्यानेकधा धर्म, सम्यक्त्वाद्येवमुत्तमम् ।
समाप्यायुः सातिरेकं सागरोपमयोर्द्वयम् ॥९६४॥

इतश्च्युत्वेशानराजो, महाविदेह भूमिषु ।
उत्पद्य प्राप्तचारित्रो, भावी मुक्तिवधूधवः ॥९६५॥

इस तरह से ईशानेन्द्र उत्तम सम्यकत्व आदि धर्म की अनेक प्रकार से आराधना करके साधिक दो सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करके यहां से च्यवन कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर चारित्र स्वीकार करके मुक्ति वधू के स्वामी बनेगें अर्थात् मोक्ष गामी होंगे । (९६४-९६५)

इत्थंमया पृथुसुखौ प्रथम द्वितीयौ,
स्वर्गावनर्गलशुभाचरणाधिगम्यौ।
साधीश्वरौश्रुतवतां वचनानुसाराद्यावर्णितौ ।
विभव शालि सुरालिपूर्णो ॥९६६॥ इन्द्रवज्रा ।

इस तरह से वैभवशाली देवताओं से पूर्ण, अत्यन्त सुखवाले अनर्गल शुभ आचरण से प्राप्य प्रथम और द्वितीय स्वर्ग का तथा उनके इन्द्रों का वर्णन ज्ञानियों के वचनानुसार मैंने किया है । (९६६)

विश्वाश्चर्यद कीर्त्तिकीर्त्ति विजय श्री वाचकेंद्रांतिष -

द्राजश्रीतनयोऽतनिष्ट विनयः श्री तेजपालात्मजः ।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जगत्तत्व प्रदीपोपमे ।

षड्विंशोमधुरः समाप्तिमगमत्सर्गो निसर्गोज्ज्वलः ।।६६७।।

विश्व को आश्चर्य करने वाली कीर्ति वाले उपाध्याय श्री कीर्ति विजय जी गणिवर के शिष्य माता राज श्री और पिता तेजपाल के पुत्र विनय विजय जी अर्थात् कि मैंने निश्चित जगत के तत्वों के लिए प्रदीप समान जो काव्य-लोक प्रकाश काव्य है उसमें स्वाभाविक उज्जवल और मधुर स्वरूप छब्बीसवां सर्ग यह समाप्त किया है। (६६७)

इति श्री लोक प्रकाशे षड्विंशः सर्गः समाप्त ।।१०८४।।

॥ अथ सप्तविंशति तमः सर्ग प्रारभ्यते ॥

सर्ग सत्ताईसवां

सौधर्मेशाननामानावुक्तौ स्वर्गौ सभर्त्टकौ ।
स्वरूपमुच्यते किंचित्तृतीयतुर्ययोरथ ॥१॥

सौधर्म और ईशान देवलोक का तथा इन्द्रों का वर्णन किया । अब तीसरे और चौथे देवलोक का कुछ स्वरूप कहता हूँ । (१)

सौधर्मेशाननाकाभ्यां, दूरमूर्ध्वं व्यवस्थितौ ।
योजनानामसंख्येयकोटाकोटिव्यतिक्रमे ॥२॥

सनत्कुमार माहेन्द्रौ, स्वर्गौ निसर्गसुन्दरौ ।
सौधर्मेशानवदिमावप्येकवलयस्थितौ ॥३॥

सौधर्म और ईशान देवलोक के ऊपर अत्यन्त दूर, असंख्य कोटा कोटि योजन ऊपर जाने के बाद कुदरत रूप में सुन्दर सनत कुमार और महेन्द्र देवलोक सौधर्म और ईशान् देवलोक के समान एक गोलाकार से रहे हैं । (२-३)

संस्थानमर्द्धचन्द्राभं प्रत्येकमनयोर्भवेत् ।
उभौ पुनः समुदितौ, पूर्णचन्द्राकृतीमतौ ॥४॥

दोनों देवलोक का संस्थान अर्ध चन्द्राकार से होता है और दोनों के संस्थान को मिलाने से पूर्ण चंद्राकार होता है ।

तत्रापि सौधर्मस्योर्ध्वं समपक्षं समानदिक् ।
सनत्कुमार ईशानस्योर्ध्व माहेन्द्र एव च ॥५॥

उसमें भी सौधर्म के बराबर ऊपर समान् दिशा में सनत्कुमार देवलोक है और ईशान के ऊपर माहेन्द्र देवलोक होता है । (५)

प्रतरा द्वादश प्राग्वद्, द्वयोः संगतयोरिह ।
प्रतिप्रतरमेकैकं, भवद्विमानमिन्द्रकम् ॥६॥

वैडूर्य १ रूचकं २ चैव रूचिकं ३ च ततःपरम् ।
अङ्क ४ च स्फटिकं ५ चैव तपनीयाख्य ६ मेव च ।।७॥
मेघ ७ मर्ध्य च ८ हारिद्रं ९ नलिनं १० लोहिताक्षकम् ११।
वज्रं १२ चेति प्रतरेषु द्वादशस्विन्द्रकाः क्रमात् ।।८॥

दोनों देवलोक के बारह प्रतर होते हैं, प्रत्येक प्रतर में इन्द्रक विमान होता है । १-वैडुर्य, २-रूचक, ३-रूचिक, ४-अंक, ५-स्फटिक, 6-तपनीय, ७-मेघ, ८-अर्ध्य, ९-हारिद्र, १०-नलिन, ११-लोहिताक्ष, १२-वज्र, इन नाम के प्रत्येक प्रतर में क्रमशः बारह इन्द्रक विमान होते हैं । (६-८)

चतस्त्रः पंक्तयो दिक्षु, प्रतिप्रतरमिन्द्रकात् ।
अन्तरेषु बिना प्राची, प्राग्वत्पुष्पावकीर्णकाः ।।९॥

प्रत्येक इन्द्रक विमान से चारों दिशा में विमान की एक-एक श्रेणी है और उसके आंतर-बीच में पूर्व दिशा बिना की दिशा में पुष्पावकीर्णक विमान है । (९)

एकोनपञ्चाशदष्टसप्तषट् पञ्चकाधिका ।
चतुस्त्रिद्वयेकाधिका च, चत्वारिंशत्ततः परं ॥१०॥
चत्वारिंशद् थैकोनचत्वारिंशद्विमानकाः।
अष्टात्रिंशत्प्रतिपङ्क्ति, प्रतरेषु क्रमादिह ।।११॥

प्रत्येक प्रतर में क्रमशः पहले में ४९, दूसरे में ४८, तीसरे में ४७, चौथे में ४६, पांचवे में ४५, छठे में ४४, सातवें में ४३, आठवें में ४२, नौवे में ४१, दसवें में ४०, ग्यारहवें में ३९, बारहवें में ३८ विमान होते हैं । (१०-११)

प्रथम प्रतरे सप्तदश त्र्यस्त्रा विमानकाः ।
प्रतिपङ्क्ति चतुष्कोणा, वृत्ताः षोडश षोडश ॥१२॥
सर्वे पंक्ति विमानाश्च षण्णवत्यधिकं शतम् ।
द्वितीय प्रतरे, त्रैधा अपि षोडश षोडश ॥१३॥
सर्वे चाते संकलिता, द्विनवत्यधिकं शतम् ।
तार्त्तीयीके प्रति पंक्ति वृत्तापञ्चदशोदिताः ॥१४॥

षोडश त्रिचतुष्कोणाः सर्वेष्टाशीतियुक् शतम् ।
तुर्ये त्र्यस्रा षोडशान्ये, द्वैधाः पञ्च दशाखिलाः ।।१५।।

प्रथम प्रतर में प्रत्येक पंक्तिके अन्दर त्रिकोनाकार के सत्तरह विमान होते हैं और गोलाकार तथा चोरस सोलह–सोलह विमान होते हैं, चार पंक्ति में कुल मिलाकर एक सौ छियानवे (१९६) है, दूसरे प्रतर में प्रत्येक आकार के विमानों की संख्या १६–१६ की है और चारों पंक्ति के कुल मिलाकर एक सौ ब्यानवे होते हैं तीसरे प्रतर के प्रत्येक पंक्ति में गोलाकार विमान पंद्रह है और त्रिकोन व चोरस १६–१६ होते हैं इन कुल चार पंक्ति के एक सौ अट्ठासी (१८८) विमान होते हैं और चौथे प्रतर में त्रिकोण विमान १६ हैं और दूसरे १५–१५ हैं अतः कुल मिलाकर एक सौ चौरासो (१८४) विमान होते हैं । (१२–१५)

शतं चतुशीत्याढयं पञ्चमें प्रतरे पुनः।
त्रैधा अपि पञ्चदस, सर्वेऽशीत्यधिकं शतम् ।।१६।।

पाँचवें प्रतर में त्रिकोण और चोरस विमान १५–१५ है और चारों श्रेणि मिलाकर कुल एक सौ अस्सी (१८०) विमान होते हैं ।

पञ्चदश पञ्चदश, षष्ठे त्रिचतुरस्रकाः ।
वृत्ताश्चतुर्दशैवं च षट्सप्ततियुतं शतम् ।।१७।।

छठे प्रतर में त्रिकोण और चोरस विमान १५–१५ है और गोलाकार विमान १४ होते हैं । कुल चार श्रेणी के एक सौ छहत्तर (१७६) विमान होते हैं । (१७)

सप्तमे प्रतरे त्रयस्राः, प्रोक्ताः पञ्चदशोत्तमैः ।
वृत्ताश्च चतुरस्राश्च, चर्तुदश चतुर्दश ।।१८।।

द्विसप्तत्या समधिकं शतं सर्वेऽष्टमे पुनः ।
चतुर्दशैव त्रेधापि, सर्वेऽष्टषष्ठियुक्त शतम् ।।१९।।

सांतवें प्रतर में त्रिकोण विमान पंद्रह है, गोलाकार और चोरस विमान १४–१४ हैं और चार श्रेणी के कुल विमान एक सौ बहत्तर (१७२) होते हैं आठवें प्रतर में तीनों प्रकार के विमान १४–१४ होते हैं और चारों श्रेणी के कुल विमान एक सौ अडसठ होते हैं । (१८–१९)

नवमे त्रिचतुष्कोणाश्चतुर्दश चतुर्दश ।
वृत्तास्त्रयोदशैवं च, चतु:षष्टियुतं शतम् ॥२०॥

नौवे प्रत्तर में त्रिकोन और चोरस विमान १४-१४ हैं और गोलाकार विमान तेरह हैं एवं चारों श्रेणि के कुल मिलाकर एक सौ चौसठ (१६४) विमान होते हैं। (२०)

त्र्यस्त्राश्चतुर्दशान्ये च द्वैधा अपि त्रयोदश ।
षष्ट्याधिकं शतं सर्वे, दशमे प्रतरे पुन: ॥२१॥

दसवें प्रतर में त्रिकोन विमान १४ हैं और गोलाकार व चोरस विमान १३-१३ है और चारों श्रेणि के कुल विमान एक सौ साठ (१६०) होते हैं। (२१)

एकादशे त्रिधाप्येते, त्रयोदश त्रयोदश ।
सर्वे पुन: संकलिता: षट्पञ्चाशद्युतं शतम् ॥२२॥

ग्यारहवें प्रतर में तीन प्रकार के विमान १३-१३ होते हैं। चार श्रेणि के एक सौ छप्पन (१५६) विमान होते हैं। (२२)

द्वादशे त्रिचतुष्कोणास्त्रयोदश त्रयोदश ।
वृत्ताश्च द्वादशैवं च, द्विपञ्चाशं शतं समे ॥२३॥

बारहवें प्रतर में त्रिकोन और चोरस विमान १३-१३ होते है गोल विमान १२ होते हैं और चार श्रेणि के कुल मिलाकर एक सौ बावन (१५२) होते हैं। (२३)

एवं च पंक्तिवृत्तानां साशीतिरिह षट्शती ।
पंक्तित्र्यस्त्राणां च सप्त शतानि द्वादशोपरि ॥२४॥
स्यात्पंक्तिच्चतुरस्त्राणां, सषण्णवति षट्शति ।
द्वादशानामिन्द्रकाणां, क्षेपेऽत्र सर्व संख्यया ॥२५॥

इस तरह से बारह प्रतर के मिलाकर पंक्ति में रहे गोलकार विमान छ: सौ अस्सी (६८०) होते हैं त्रिकोन विमान की संख्या सात सौ बाइस (७२२) होती है तथा चोरस विमान की संख्या छ: सौ छियानवे (६९६) है, इन संख्या में इन्द्र विमान बारह मिलाने से कुल विमान की संख्या इक्कीस सौ होते हैं। (२४-२५)

पांक्तेयानि विमानानि, स्युः शतान्येकविंशतिः ।
भवन्त्यन्यानि पुष्पावकीर्णानि तानि संख्यया ॥२६॥

सहस्राः सप्तनवतिर्लक्षाण्येकोन विंशतिः।
शतानि नव सर्वाग्राद्विमान लक्षविंशतिः ॥२७॥

इसके बिना अन्य विमान पुष्पावकीर्ण होते हैं उसकी संख्या उन्नीस लाख सत्तानवे हजार नव सौ (१९९७९००) होती है और उसमें २१०० श्रेणिक विमान की संख्या मिलाने से बीस लाख विमान की संख्या होती है । (२६-२७)

तत्र द्वादश लक्षाणि, सनत्कुमार चक्रिणः ।
लक्षाण्यष्ट विमानानां, माहेन्द्राधीश्वरस्य च ॥२८॥

इसमें बारह लाख विमान सनत्कुमार इन्द्र के हैं और आठ लाख विमान माहेन्द्राधिपति के होते हैं । (२८)

सनत्कुमार माहेन्द्र सुरेन्द्रयोः पृथक् पृथक ।
सौधर्मेशानवद्वृत्तादिषु स्वामित्वमुह्यताम् ॥२९॥

सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक में इन्द्र का सौधर्म और ईशान के समान गोल, चोरस और त्रिकोन विमानों में स्वामित्व अलग-अलग समझना चाहिये । (२९)

संख्या सनत्कुमारेऽथ, वृत्तानां पंक्तिवर्त्तिनाम् ।
द्वाविंशत्यधिका पञ्चशती प्राच्यैर्निरूपिता ॥३०॥

त्रिकोणानां सर्वसंख्या, षट्पञ्चाश शतत्रयम् ।
चतुष्कोणानां तथाष्टचत्वारिंशं शतत्रयम् ॥३१॥

उसमें सनत्कुमार देवलोक के पंक्तिगत गोल विमान की संख्या पूर्व पुरुषों ने पाँच सौ बाईस (५२२) की कही है, त्रिकोन की संख्या तीन सौ छप्पन (३५६) और चतुष्कोण की संख्या तीन सौ अड़तालीस (३४८) की कही है । (३०-३१)

षड्विंशा द्वादश शती, पांक्तेयानां भवेदिह ।
लक्षाण्येकादशैवाष्टनवतिश्च सहस्रकाः ॥३२॥

सचतुः सप्ततिः सप्तशती पुष्पावकीर्णकाः ।
एवं द्वादश लक्षाणि, तृतीयस्य सुरेशितः ॥३३॥

सनत्कुमार देवलोक के पंक्तिगत कुल विमानों की संख्या बारह सौ छब्बीस (१२२६) *होती है और पुष्पावकीर्णक विमान की संख्या ग्यारह लाख अठ्ठानवें* हजार सात सौ चौहत्तर (११९८७७४) और सब विमानों की कुल संख्या बारह लाख की होती है । (३२-३३)

तुर्येवृतविमानानां, सप्तत्याऽभ्यधिकं शतम् ।
षट्पञ्चाशत्समधिकं, त्रिकोणानां शतत्रयम् ॥३४॥

चतुष्कोणानां तथाष्ट चत्वारिंशं शतत्रयम् ।
शतान्यष्ट चतुः सप्तत्याढयानि सर्वसंख्यया ॥३५॥

सप्त लक्षाण्यथ नवनवतिश्च सहस्रकाः ।
षड्विंशं च शतं पुष्पावकीर्णा इह निश्चिताः ॥३६॥

एषां योगेऽष्टलक्षाणि माहेन्द्रस्य सुरेशितुः ।
विमानानीशितव्यानि, भाव्यानि भव्यधीधनैः ॥३७॥

माहेन्द्र देवलोक के पंक्तिगत विमानों में से गोल विमान एक सौ सत्तर (१७०) है । त्रिकोनाकार विमान तीन सौ छप्पन (३५६) है और चतुष्कोण विमान तीन सौ अड़तालीस (३४८) है । पंक्तिगत कुल विमान आठ सौ चौहतर (८७४) होते हैं। इसमें पुष्पा वकीर्णक विमान सात लाख निन्नानवें हजार एक सौ छब्बीस (७९९,१२६) है । इस तरह से माहेन्द्र देवलोक के राज्य भोगने के कुल मिलाकर विमान आठ लाख भव्य बुद्धिमान जीव को समझना । (३४-३७)

अमी विमानाः सर्वेऽपि धनवातप्रतिष्ठिताः ।
श्यामं ब्रिना चतुवर्णा, मणिरत्न विनिर्मिताः ॥३८॥

ये सभी विमान धनवात ऊपर रहते हैं, मणिरत्न से निर्मित रहते हैं और श्याम वर्ण के बिना अन्य चार वर्ण वाले होते हैं । (३८)

धनवातोऽतिनिचितो, निश्चलो वातसंचय ।
जगत्स्वाभाव्यतस्तत्र, विमानाः शश्वदास्थिताः ॥३९॥

यह धनवात अतिदृढ़ और निश्चल वायु का समूह है जगत के स्वभाव से ही ये विमान वहां हमेशा के लिए रहते हैं । (३९)

षड्विंशतिः शतान्येषु, पृथ्वी पिण्डो निरूपितः ।

शतानि षड् योजनानां, प्रासदाः स्युरिहोच्छ्रिता ॥४०॥

इन विमान में छब्बीस सौ (२६००) योजन का पृथ्वीपिंड कहा है और उसके ऊपर छः सौ योजन ऊँचे प्रासाद विमान होते हैं । (४०)

सौधर्मेशाननिष्ठानां, विमानानामपेक्षया ।

अत्युत्कृष्टवर्णगंधरसस्पर्शाअमी मताः ॥४१॥

सौधर्म और ईशान देवलोक के विमान की अपेक्षा से इन विमानों के वर्ण, गंध, रस. स्पर्श अति उत्कृष्ट होते हैं । (४१)

सौधर्मेशानवच्छेषं, स्वरूपं भाव्यतामिह ।

विष्कम्भायाम परिधिमानं तु प्राक् प्रदर्शितम् ॥४२॥

इन दोनों देवलोक के विमानो का शेष स्वरुप सौधर्म एवं ईशान देवलोक के विमानो के समान समझना तथा लम्बाई; चौड़ाई एवं परिधि पहले कहा है । (४२)

अथैतेषु विमाननेषु, पूर्व पुण्यानुसारतः ।

उत्पद्यन्ते सुरास्तत्र, रीतिस्तु प्राक् प्रपंचिताः ॥४३॥

इन विमानों के अन्दर पूर्व पुण्यानुसार देवता उत्पन्न होते हैं और इनकी उत्पत्ति पहले कही हैं उसके अनुसार जानना । (४३)

पद्मकेसरवद्गौरास्तेऽथ सर्वाङ्गभूषणाः ।

वराहचिह्नमुकुटा, सनत्कुमार नाकिनः ॥४४॥

सनत्कुमार के देव गुलाबी गोर वर्ण वाले तथा सर्वांगभूषण वाले होते हैं तथा उनके मुकुट में वराह का चिह्न होता है । (४४)

सिंहचिह्नधारिचारु किरीटरम्यमौलयः ।

देवा विशिष्टद्युतयो, माहेन्द्रस्वर्गवासिनः ॥४५॥

माहेन्द्र देवलोक के देवता विशिष्ट तेज वाले और मस्तक पर सिंह का चिन्ह वाले सुन्दर मुकुट को धारण करने वाले होते हैं । (४५)

जघन्यतोऽपि पाथोधि द्वितीयस्थितयः सुराः ।

सनत्कुमारऽथोत्कर्षात्, सप्तसागरजीविनः ॥४६॥

सनत्कुमार में देवता जघन्य से दो सागरोपम और उत्कृष्ट से सात सागरोपम के आयुष्य वाले होते हैं । (४६)

माहेन्द्रे तु जघन्येन, साधिकाब्धिद्वयायुषः ।
उत्कर्षतः पुनः सातिरेकसप्तार्णवायुषः ॥४७॥

माहेन्द्र देवलोक के देवता जघन्य से कुछ अधिक दो सागरोपम और उत्कृष्ट से कुछ अधिक सात सागरोपम आयुष्य वाले होते हैं । (४७)

एकस्य सागरस्यांशाः, कल्प्यन्ते द्वादशेदृशाः ।
स्वर्गयोरेतयोर्भागा ज्ञेयाः स्थिति निरूपणे ॥४८॥

एक सागरोपम के बारह अंश कल्पना करना और इन अंश को दोनों तीसरे– चौथे देवलोक के प्रत्येक प्रतर के देवों के आयुष्य की गिनती के लिए उपयोग जानना।

प्रथम प्रतरे तत्रोत्कृष्टा जलनिधि द्वयम् ।
स्थितिः पञ्चलवोपेतं, द्वितीय प्रतरे पुनः ॥४६॥

दशभागाधिकं वार्द्धिद्वयं स्थितिर्गरीयसी ।
त्रिभिर्भागैः समधिकास्तृतीये सागरास्त्रयः ॥५०॥

वहां प्रथम प्रतर के देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम और $\frac{५}{१२}$ अंश की होती है, दूसरे प्रतर के देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम और $\frac{१०}{१२}$ अंश की होती है और तीसरे प्रतर के देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम और $\frac{३}{१२}$ अंश की होती है । (४६-५०)

चतुर्थे प्रतरे साष्टभागं वारांनिधित्रयम् ।
पञ्चमे सैकभागं च, वारांनिधि चतुष्टयम् ॥५१॥

चौथे प्रतर के देवों का आयुष्य तीन सागरोपम और $\frac{८}{१२}$ अंश होता है । पांचवे प्रतर के देवों का आयुष्य चार सागरोपम और $\frac{१}{१२}$ अंश होता है । (५१)

षड्भागाभ्यधिकं षष्ठे तदेव सप्तमे पुनः ।
न्यूनमेकेन भागेन, सागरोपम पञ्चकम् ॥५२॥

छठे प्रतर के देवों का आयुष्य चार सागरोपम और $\frac{२}{१२}$ अंश होता है सातवें प्रतर के देवों का आयुष्य ४ सागरोपम व $\frac{११}{१२}$ अंश होता है। (५२)

एतदेव चतुर्भागास्त्यधिकं पतरेऽष्टमे ।

नवमे नव भागाढयमेतत्पयोधिपञ्चकम् ॥५३॥

आठवें प्रतर के देवों का आयुष्य पाँच सागरोपम और $\frac{४}{१२}$ अंश होता है नौवें प्रतर के देवों का आयुष्य पांच सागरोपम व $\frac{६}{१२}$ अंश होता है। (५३)

साधिका दशमे द्वाभ्यां भागाभ्यां षट् पयोधयः ।

एकादशेऽप्येत एव, साधिकाः सप्तभिर्लवैः ॥५४॥

दसवें प्रतर के देवों का आयुष्य छः सागरोपम और $\frac{२}{१२}$ अंश होता है ग्यारहवें प्रतर के देवों का आयुष्य छः सागरोपम व $\frac{७}{१२}$ अंश होता है। (५४)

प्रतर द्वादशे चात्र, देवानां परमा स्थितिः ।

अर्णवाः सप्त सर्वत्र, जघन्या त्वम्बुधिद्वयम् ॥५५॥

बारहवें प्रतर के देवों का उत्कृट आयुष्य सात सागरोपम होता है और जघन्य तो सर्व प्रतरों में दो सागरोपम समझना। (५५)

सनत्कुमारे निर्दिष्टा, येयं ज्येष्टेतरा स्थितिः ।

माहेन्द्रेऽपि सैव किंतु, ज्ञेया सर्वत्र साधिका ॥५६॥

सनत्कुमार देवलोक के बारह प्रतर के देवों की जो जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति कही है इससे कुछ अधिक माहेन्द्र देवलोक के प्रत्येक प्रतर के देवों की जघन्य- उत्कृष्ट स्थिति समझना चाहिये। (५६)

अत्रापि सातिरेकत्वं, सामान्योक्तमपि श्रुते ।

पल्योपमस्यासंख्येयभागेनेति विभाव्यताम् ॥५७॥

यहाँ कुछ अधिक इस तरह सामान्य रूप में आगम में कहा है वह पल्योपम के असंख्यातका भाग समझना। (५७)

देहोच्चत्वं सुराणां स्यादिह स्थित्यनुसारतः ।

द्वि सागरायुषस्तत्र, सप्तहस्तोच्चभूधनाः ॥५८॥

त्रिपाथोधि जीविनां तु कराः षट् तनुतुङ्गता ।
एकादशविभक्तस्य, चत्वारोऽशाः करस्य च ॥५६॥

यहाँ देवताओं की ऊँचाई आयुष्य के अनुसार होती है दो सागरोपम के आयुष्य वाले देवताओं की ऊँचाई सात हाथ की होती है। तीन सागरोपम के आयुष्य वाले देवताओं की ऊँचाई छः हाथ $\frac{४}{११}$ अंश होती है। (५८-५६)

त्रयो भागाः कराः षट् च चतुर्जलधिजीवि नाम।
द्वौ भागो षट् करा स्तुङ्गो देहः पंचार्णवायुषाम् ॥६०॥

और चार सागरोपम के आयुष्य वाले देवों की ऊँचाई ६ $\frac{३}{११}$ हाथ की होती है और पांच सागरोपम के आयुष्य वाले देवों की ऊँचाई ६ $\frac{२}{११}$ होती है । (६०)

एको भागाः षट् कराश्च षट्सागरोपमायुषाम् ।
सप्ताब्धिस्थितयः पूर्णषट् करोत्तुङ्गविग्रहाः ॥६१॥

छः सागरोपम के आयुष्य वाले देवों की ऊँचाई ६ $\frac{१}{११}$ हाथ की होती है और सात सागरोपम के आयुष्य वाले देवों की ऊँचाई छः हाथ की होती है । (६१)

ते चोच्छ्वसन्ति मासेनार्णवद्धयायुषस्ततः ।
स्यात्पक्षा वृद्धिरूच्छ्वासान्तरे सप्तार्णवावधि ॥६२॥

दो सागरोपम के आयुष्य वाले देव महीने में एक बार श्वास लेते हैं, एक सागरोपम वाले पंद्रह दिन की वृद्धि करते हैं अर्थात तीन सागरोपम वाले डेढ़ महीने में, चार सागरोपम वाले दो महीने में, ५ सागरोपम वाले अढाई महीने में, छः सागरोपम वाले तीन महीने में और सात सागरोपम आयुष्य वाले देव तीन महीने में और पंद्रह दिन में श्वास लेते हैं । (६२)

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुः पञ्च षट् सप्तभिः सहस्रकैः ।
स्थितेरपेक्ष्याऽब्दानामाहारयन्ति पूर्ववत् ॥६३॥

आयुष्य की स्थिति के अनुसार क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात हजार वर्ष के अन्तर में आहार लेते हैं । (६३)

यथोक्तसागरेभ्यश्च, हीनाधिकायुषां पुनः ।
आहारोच्छ्वास देहादिमानं हीनाधिकं भवेत् ॥६४॥

पहले सागरोपम से कम ज्यादा आयुष्य वाले देवों के आहार श्वासो श्वास और देह प्रमाण कम ज्यादा होता है । (६४)

कामभोगाभिलाषे तु, सौधर्म स्वर्गवासिनीः ।
पल्योपमाधिकदशपल्योपमान्त जीवनीः ॥६५॥

प्राच्यपुण्यानुसारेण, लब्धाधिकाधिक स्थितीः ।
स्मरन्ति चेतसा देवीः स्वार्हाः कामानलैधसा ॥६६॥

काम भोग के अभिलाषा समय में वह देव काम रूपी अग्नि के लिए ईंधन समान चित्त से सौधर्म स्वर्ग में रहने वाली एक पल्योपम से अधिक और दस पल्योपम की अन्दर की स्थिति धारण करने वाली पूर्व के पुण्यानुसार अधिक आयुष्य वाली अपने योग ऐसी देवियों को याद करता है । (६५-६६)

ततस्ता अपि जानन्ति सद्योऽङ्गस्फूरणादिभिः ।
स्वकामुकरिरसां द्रागत्यन्तचतुराशयाः ॥६७॥

उसके बाद चतुर आशय वाली वह देवी भी तुरन्त ही अपने अंग के स्फुरणादि द्वारा अपने प्रिय की स्वेच्छा को समझ जाती है । (६७)

ततश्चाद्भुतं शृङ्गारनेपथ्य सुषमाश्चिन्ताः ।
उपायान्ति तदभ्यर्णं, भर्त्तुगृहमिवाङ्गनाः ॥६८॥

फिर अद्भुत शृंगार और वस्त्रादि की सजावट आदि शोभाओं से अलंकृत वह देवी, जैसे गृहणी-स्त्री अपने पति के गृह जाती है उस तरह से वह देव के पास में जाती है । (६८)

ततस्ता विनिवेश्यैते, क्रोड सिंहासनादिषु ।
भुजोपपीडमालिङ्गय, पीडयन्तः स्तनौ मुहुः ॥६९॥

चुम्बन्तोऽधरविम्बादौ, स्पृशन्तो जघनादिषु ।
एवं संस्पर्शमात्रेण तुष्यन्ति सुरतैरिव ॥७०॥

उसके बाद वह देव भी उस देवांगना-अप्सरा को अपने गोद रूपी सिंहासन ऊपर बैठाकर भुजाओं द्वारा गाढ़ आलिंगन करके बारम्बार उसके स्तनो को दबाता

है, होठों का चुम्बन करता है, जंघा आदि प्रदेशो में स्पर्श करता है इस तरह स्पर्श मात्र से मैथुन क्रीड़ा के समान तृप्त हो जाता है । (६९-७०)

देव्योऽपि ताः स्पर्शभोगैस्तथा दिव्य प्रभावतः ।
शरीरान्तः परिणतैस्तृप्यन्ति शुक्रपुद्गलैः ॥७१॥

वह देवी भी दिव्य प्रभाव के कारण से स्पर्श भोग-स्पर्श मात्र से भी शरीर के अन्दर परिणत हुए शुक्र पुद्गलों से तृप्त हो जाती है (७१)

एवं पञ्चाक्षविषयास्वादाह्लादैर्निरन्तरम् ।
जानन्त्येते गतमपि, कालं नैकनिमेषवत् ॥७२॥

इस तरह से वह देव हमेशा पांच इन्द्रिय के विषय सुख के रसास्वाद के आह्लाद से एक आंख के पलकार के समान गये समय को नहीं जानता है । (७२)

ज्ञानेनावधिना त्वेते द्वितीयां शर्कराप्रभाम् ।
पश्यन्त्यधस्तलं यावत्पद्मलेश्याः स्वभावतः ॥७३॥

इस देवलोक के देव अवधि ज्ञान से दूसरे शर्करा प्रभा पृथ्वी तक नीचे जा सकता है और उनके स्वभाव से ही पद्म लेश्या होती है । (७३)

गर्भजौ नरतिर्यञ्चौ, संख्येयस्थितिशालिनौ ।
उत्पद्येते इहैतेऽपि च्युत्वा यान्त्येतयोर्द्वयोः ॥७४॥

संख्यात वर्ष के आयुष्य वाले गर्भज मनुष्य और तिर्यंच यहां जो उत्पन्न होते हैं और ये देव च्यवनकर गर्भज मनुष्य और तिर्यंच में जाते हैं । (७४)

एक सामयिकी प्राग्वत्संख्योत्पत्तिविनाशयोः ।
एक सामयिकं ज्ञेयं जघन्यं चान्तरं तयोः ॥७५॥

इस देवलोक में देवों की एक ही समय में उत्पत्ति और च्यवन की संख्या सौधर्म देवलोक के समान समझ लेना चाहिए । उत्पत्ति और च्यवन का अन्तर जघन्य से दोनों देवलोक में एक समय का होता है । (७५)

युक्ता मुर्हुत्तैविंशत्या, दशभिश्च दिनाः क्रमात् ।
नव द्वादश च ज्येष्ठान्तरं स्यादनयोर्दिवोः ॥७६॥

जब उत्कृष्ट आंतरा सनत्कुमार देवलोक में नौ दिन और २० मुहुर्त्त का है और माहेन्द्र देवलोक में १२ दिन और १० मुहुर्त्त का होता है । (७६)

सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गयोरमृताशिनाम् ।
उक्तं स्वरुपमनयोः, स्वामिनोस्तदथोच्यते ॥७७॥

सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक के देवों के स्वरुप का वर्णन किया । अब उनके इन्द्रों का वर्णन करने में आता है । (७७)

प्रतरे द्वादशे तत्र, सनत्कुमारताविषे ।
सौधर्मवदशोकाद्याः, प्राच्यादिष्ववतंसकाः ॥७८॥

सनत्कुमार देवलोक के बारहवें प्रतर में सौधर्म देवलोक के समान पूर्व आदि चार दिशाओं में अशोका वतंसक आदि विमान होता है । (७८)

मध्ये सनत्कुमारावतंसकः पूर्ववद्भवेत् ।
तत्रोपपातशय्यायामुपपातसभास्पृशि ॥७९॥

उत्पद्यते खलु सनन्कुमारेन्द्रतया कृती ।
कृतपुण्यः करोत्युक्तरीत्यार्हदर्चनादिकम् ॥८०॥

मध्य में सौधर्मावतंसक विमान के समान सनत्कुमारवतंसक विभान होता है । इस उपपात सभा में रही उपपात शय्या में पुण्यशाली विशिष्ट जीव सनत्कुमार इन्द्र रूप में उत्पन्न होता है और प्रथम कहा है उस के अनुसार श्री अरिहंत भगवन्त की पूजा आदि करता है । (७९-८०)

ततः सिंहासनासीनश्चारुशृंङ्गारभासुरः ।
सामानिकैर्द्विसप्तत्या, सहस्रैः परितो वृतः ॥८१॥

पन्च पल्योपमाढयार्द्धपञ्चमाम्भेधिजीविभिः ।
अन्तः पर्षद्गतैर्देवसहस्त्रैरष्टभिर्वृतः ॥८२॥

चतुः पल्योधिकसार्द्धचतुःसागरजीविभिः ।
मध्यपर्षद्गतैर्देवसहस्रैर्दशभिर्वृतः ॥८३॥

त्रिपल्याभ्याधिकाध्यर्द्धचतुरर्णवजीविभिः ।
सहस्रैश्च द्वादशभिर्जुष्टो बाह्यसभासदाम् ॥८४॥

त्रायस्त्रिंशैर्मन्त्रिभिश्च लोकपालैश्च पूर्ववत् ।
आश्रितः सप्तभिः सैन्यैः सैन्याधिपैश्च सप्तभिः ॥८५॥

द्विसप्तया सहस्रैश्च, पृथक् पृथक् चतुर्दिशम् ।
सेवितः सज्जकवचैः शस्त्रोग्रैरात्मरक्षकैः ॥८६॥

विमानावासलक्षाणां, द्वादशानामधीश्वरः ।
तद्वासिनां च देवानामसंख्यानां महौजसाम् ॥८७॥

सदैश्वर्यमनुभवत्युदात्तपुण्यवैभवः ।
दिव्य शक्ति संप्रयुक्त पटुनाटकदत्तदृक् ॥८८॥ *अष्टभिकुलकं।*

उसके बाद बहत्तर हजार (७२०००) सामानिक देवताओं से घिरे हुए, साढ़े चार सागरोपम और पाँच पल्योपम के आयुष्य वाले आठ हजार अंत पर्षदा के देव, साढे चार सागरोपम और चार पल्योपम के आयुष्य वाले दस हजार, मध्यम् पर्षदा के देव, साढे चार सागरोपम और तीन पल्योपम के आयुष्य वाले बाह्य पर्षदा के बारह हजार देवताओं से घिरे हुए तथा सौधर्मेन्द्र के समान त्रायस्त्रिंश देव, मंत्री देव लोकपाल, सात सैन्य सात सेनाधिपतियों से आश्रित बने चार दिशा में बख्तर धारण किए अति उग्र खुले शस्त्रों को धारण करने वाले, खडे रहे बहत्तर हजार आत्मरक्षक देवताओं से रक्षण होते, बारह लाख विमान तथा उन विमानों में निवास करने वाले, दिव्य शक्ति व्यक्तियों द्वारा रजुयात होते नाटक को देखने के लिए दृष्टि स्थापित करने वाले श्री सनत्कुमारेन्द्र श्रेष्ठ शृंगार को धारण करके सिंहासन पर विराजमान होकर चिरकाल तक ऐश्वर्य का अनुभव करते हैं । (८१-८८)

अस्य यानविमानं च, भवेत्सौमनसाभिधम् ।
देवः सौमनसाख्यश्च, नियुक्तस्ताद्विकुर्वणे ॥८९॥

इस सनत्कुमारेन्द्र को बाहर जाने के लिए विमान सौमनस नामका है और सोमनस नाम के देव उसकी रचना करते हैं । (८९)

निज वैक्रियलब्ध्या तु, देव रूपै र्विकुर्वितैः ।
जम्बूद्वीपांश्चतुरोऽयं पूर्णान् पूरयितुं क्षमः ॥९०॥

तिर्यक् पुनरसंख्येयान्, भर्त्तुर्द्वीपाम्बुधीन् क्षमः ।
सौधर्मशानाधिराजापेक्षया किल भूयसः ॥६१॥

यह इन्द्र महाराज अपनी वैक्रिय लब्धि से बने हुए रूपो से चार जम्बू द्वीपों को पूर्ण रूप में भरने में समर्थ है और वह तिच्र्छों को तो असंख्याता द्वीव व समुद्रों को भरने के लिए समर्थ हो सकता है और सौधर्म और ईशानेन्द्र की अपेक्षा से यहां असंख्यात् बड़ा समझना चाहिये । (६०-६१)

भोगेच्छुस्तु सुधर्मायां, जिनास्थ्याशातनाभिया ।
जम्बूद्वीप समं स्थानं, चक्राकृति विकुर्वयेत् ॥६२॥

भोग की इच्छा वाला वह इन्द्र सुधर्मा सभा में भगवान के अस्थि आदि की आशातना के भय से जम्बूद्वीप समान चक्राकृति स्थान बनाता है । (६२)

मध्ये रत्न पीठिकाढयं, प्रासादं रचयत्ययम् ।
षड्योजनशतोत्तुङ्ग, रत्नचन्द्रोदयाञ्चितम् ॥६३॥

उसके मध्य में रत्न पीठिका युक्त प्रासाद रचना करता है वह प्रसाद छः सौ योजन ऊंचा और रत्नों के चंदौवे से युक्त होता है । (६३)

तत्र सिंहासनं रत्नपीठिकायां सृजत्यसौ ।
न शक्रेशानवच्छय्यां, संभोगा भावतस्तथा ॥६४॥

उस रत्नपीठिका ऊपर वह सिंहासन बनाता है, परन्तु सौधर्म और ईशानेन्द्र के समान शय्या नही बनाता है, क्योंकि उनको संभोग मैथुन नहीं होता है । केवल शरीर स्पर्श आदि होता है । (६४)

सामानिकादिकाशेषपरिवारसमन्वितः ।
लज्जनीयरताभावात्तत्रोपैत्यथ वासवः ॥६५॥

सौधर्मस्वर्गवासिन्यस्तद्योग्यास्त्रिदशाङ्गनाः ।
तत्रायान्ति सहैताभिर्युङ्क्ते वैषयिकं सुखम् ॥६६॥

लज्जनीय क्रीड़ा के अभाव होने के कारण सामनिकादि सम्पूर्ण परिवार से युक्त इन्द्र महाराज वहां आता है और सौधर्म देवलोक में रहने वाली सनत्कुमारेन्द्र

के योग्य अप्सरा-देवियां भी वहां आती हैं और उनके साथ में विषय सुख भोगती हैं । (९५-९६)

माहेन्द्रेन्द्रादयोऽप्येवं, देवेन्द्रा अच्युतावधि ।
चक्राकृति स्थानकादि, विकृत्य भुञ्जते सुखम् ॥९७॥

इस तरह से माहेन्द्र से लेकर अच्युतेन्द्र तक के सभी इन्द्र महाराज चक्राकार स्थान बनाकर सुख भोगते हैं । (९७)

तत्र चक्राकृति स्थाने, प्रासादांस्तु सृजन्त्यमी ।
स्वस्व विमान प्रसादोत्तुङ्गान् सिंहासनाञ्चितान् ॥९८॥

उस चक्राकृति स्थान के अन्दर अपने-अपने विमान के प्रासाद से भी ऊंचे सिंहासन से युक्त प्रासाद बनाते हैं । (९८)

एवमैश्वर्ययुक्तोऽपि, विरक्त इव धार्मिकः ।
महोपकारिणं प्राज्ञ, इव धर्ममविस्मरन् ॥९९॥
बहूनां साधुसाध्वीनां, जिनधर्मदृढात्मनाम ।
श्रावकाणां श्राविकाणां सम्यकत्वादि व्रत स्पृशाम् ॥१००॥
हितकामः सुखकामो, निः श्रेयसाभिलाषुकः ।
गुणग्राही गुणवतां, गुणवान् गुणिपूजकः ॥१०१॥
सनत्कुमाराधिपतिर्भव्यः सुलभबोधिकः ।
महाविदेहेषूत्पद्य, भवे भाविनि सेत्स्यति ॥१०२॥

इस तरह से ऐश्वर्य युक्त होने पर भी जैसे पुरुष अपने महान उपकार नहीं भूलते हैं वैसे वैरागी धार्मिक के समान यह सनत्कुमार धर्म को कभी नहीं भूलता । जिन धर्म में दृढ़ बहुत सारे साधु-साध्वी और सम्यकत्वादि व्रतों को धारण करने वाले श्रावक श्राविका का हित को चाहने वाला सुख को चाहने वाले मोक्षाभिलाषी गुणवान के गुण ग्रहण करने वाला स्वयं गुणवान् और गुणवान के गुण को पूजने वाला मोक्षगामी, सुलभ बोधि श्री सनत्कुमारेन्द्र आगामी जन्म में महाविदेह में उत्पन्न होकर मोक्ष में जायेंगे । (९९-१०२)

माहेन्द्र देवलोकेऽपि, प्रतरे द्वादशे स्थिताः ।
पञ्चावतंसका अङ्कादय ईशाननाकवत् ॥१०३॥

चौथे इन्द्र का अधिकार कहते हैं - माहेन्द्र देवलोक के अन्दर बारह प्रतर में ईशान देवलोक के समान अंकावतंसक आदि पांच विमान होते हैं । (१०३)

मध्य स्थितेऽथ माहेन्द्रावतंसकविमानके ।
उत्पद्योत्पादशय्यायां, प्राग्वत्कृतजिनार्चनः ॥१०४॥

सिंहासन समासीनः, पीनश्रीर्भाग्यभासुरः ।
सामानिकानां सप्तत्या सहस्त्रैः परितो वृतः ॥१०५॥

सप्त षट्पञ्चपल्याढयां सार्द्धार्णवचतुष्टयीम् ।
यथाक्रमं विक्रमाढ्यैर्दधद्भिः स्थितिमायुषः ॥१०६॥

षडिभरान्तरपार्षद्यैरष्टाभिर्मध्यपार्षदैः ।
दशभिः बाह्यपार्षद्यैः, सेव्यः सुरसहस्त्रकैः ॥१०७॥

चतुर्भिश्च लौकपालैः सप्तभिः सैन्यनायकैः ।
सैन्यैश्च सप्तभिः सेवाचतुरैरनुशीलितः ॥१०८॥

प्राच्यादिदिक्षु प्रत्येकमुदण्डायुधपाणिभिः ।
जुष्टः सहस्त्रैः सप्तत्या, निर्जरैरात्मरक्षकैः ॥१०९॥

जम्बूद्वीपान् सातिरेकान्, चतुरश्च विकुर्वितैः ।
रूपैर्भर्त्तु क्षमस्तिर्यगसंख्यद्वीपवारिधीन् ॥११०॥

विमानावासलक्षाणामिहाष्टानामधीश्वरः ।
देवानांभूयसामेवं माहेन्द्रस्वर्गवासिनाम् ॥१११॥

ईशानोऽसौ विजयते द्विव्यनाटकदत्तहृत् ।
माहेन्द्रेन्द्रः सातिरेक सप्त सागर जीवितः ॥११२॥ *नवभिकुलकं।*

उसके मध्य में रहे माहेन्द्रवतंसक विमान के अन्दर उपपात शय्या में उत्पन्न होकर पूर्व के समान श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा करते हैं, उसके बाद सत्तर हजार पराक्रमी सामानिक देवों से घिरे हुए साढ़े चार सागरोपम + सात पल्योपम की स्थिति वाले छः हजार अभ्यतंर पार्षद देव साढ़े चार सागरोपम + छह पल्योपम की स्थिति

इस देवलोक में छः प्रतर है, प्रत्येक प्रतर में एक-एक इन्द्र विमान है उनके नाम अनुक्रम से १- अंजन, २-वरमाल, ३- रिष्ट, ४-देव, ५-सोम, ६-मंगल है और उसकी चारों दिशा में पंक्ति बद्ध विमान होते हैं और पूर्व के समान उसके बीच में पुष्पावक्रीर्णक विमान है । (११६-११७)

सप्तषट् पंचयुक्त्रिंशत्, चतुस्त्रिद्व्यधिका च सा ।
प्रति पंक्ति विमानाः स्युः, प्रतरेषु क्रमादिह ॥११८॥

छः प्रतरों में से प्रथम प्रतर की प्रत्येक पंक्ति - चार पंक्ति में अड़तीस-अड़तीस विमान होते हैं, दूसरे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में छत्तीस-छत्तीस, तीसरे प्रतर में पैंतीस-पैंतीस, चौथे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में चौंतीस-चौंतीस, पांचवें प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में तेतीस-तेतीस तथा छठे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में बत्तीस-बत्तीस विमान होते हैं। (११८)

प्रथमप्रतरे तत्र, प्रतिपङ्क्ति विमानकाः ।
त्रयोदश त्रिकोणाः स्युद्वादशा द्वादशापरे ॥११९॥

अष्टचत्वारिंशमेवं, पाङ्क्तेयानाशतं मतम् ।
त्रैधा अपि द्वितीयेऽस्मिन्, द्वादश द्वादशोदिता ॥१२०॥

उसमें प्रथम प्रतर के प्रत्येक पंक्ति में तेरह त्रिकोन विमान और गोल तथा चोरस १२, १२ विमान होते हैं इस तरह प्रथम प्रतर में कुल मिलाकर विमान एक सौ अड़तालीस (१४८) होते हैं । (११९-१२०)

सर्वे शतं चतुश्चत्वारिशं चाथ तृतीयके ।
वृत्ता एकादश द्वैधा, द्वादश द्वादशापरे ॥१२१॥

दूसरे प्रतर में तीन प्रकार के विमान की संख्या बारह-बारह है अतः चार पक्ति के कुल विमान एक सौ चवालीस (१४४) होते हैं । (१२१)

चत्वारिशं शतं सर्वे, प्रतरेऽथ तुरीयके ।
वृत्ता द्वादश किंचैकादश त्रिचतुरस्त्रकाः ॥१२२॥

तीसरे प्रतर में गोल, विमान ग्यारह है त्रिकोन और चोरस विमान बारह-बारह है कुल मिलाकर एक सौ चालीस (१४०) होते हैं । (१२२)

इस देवलोक में छः प्रतर है, प्रत्येक प्रतर में एक-एक इन्द्र विमान है उनके नाम अनुक्रम से १- अंजन, २-वरमाल, ३- रिष्ट, ४-देव, ५-सोम, ६-मंगल है और उसकी चारों दिशा में पंक्ति बद्ध विमान होते हैं और पूर्व के समान उसके बीच में पुष्पावकीर्णक विमान है । (११६-११७)

सप्तषट् पंचयुक्त्रिंशत्, चतुस्त्रिद्वयधिका च सा ।
प्रति पंक्ति विमानाः स्युः, प्रतरेषु क्रमादिह ॥११८॥

छः प्रतरों में से प्रथम प्रतर की प्रत्येक पंक्ति - चार पंक्ति में अड़तीस-अड़तीस विमान होते हैं, दूसरे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में छत्तीस-छत्तीस, तीसरे प्रतर में पैंतीस-पैंतीस, चौथे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में चौंतीस-चौंतीस, पांचवें प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में तेतीस-तेतीस तथा छठे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में बत्तीस-बत्तीस विमान होते हैं। (११८)

प्रथमप्रतरे तत्र, प्रतिपङ्क्ति विमानकाः ।
त्रयोदश त्रिकोणाः स्युर्द्वादशा द्वादशापरे ॥११९॥

अष्टचत्वारिंशमेवं, पाङ्क्तेयानाशतं मतम् ।
त्रैधा अपि द्वितीयेऽस्मिन्, द्वादश द्वादशोदिता ॥१२०॥

उसमें प्रथम प्रतर के प्रत्येक पंक्ति में तेरह त्रिकोन विमान और गोल तथा चोरस १२, १२ विमान होते हैं इस तरह प्रथम प्रतर में कुल मिलाकर विमान एक सौ अड़तालीस (१४८) होते हैं । (११९-१२०)

सर्वे शतं चतुश्चत्वारिंशं चाथ तृतीयके ।
वृत्ता एकादश द्वैधा, द्वादश द्वादशापरे ॥१२१॥

दूसरे प्रतर में तीन प्रकार के विमान की संख्या बारह-बारह है अतः चार पंक्ति के कुल विमान एक सौ चवालीस (१४४) होते हैं । (१२१)

चत्वारिंशं शतं सर्वे, प्रतरेऽथ तुरीयके ।
वृत्ता द्वादश किंचैकादश त्रिचतुरस्त्रकाः ॥१२२॥

तीसरे प्रतर में गोल, विमान ग्यारह है त्रिकोन और चोरस विमान बारह-बारह है कुल मिलाकर एक सौ चालीस (१४०) होते हैं । (१२२)

म्वें शतं च षट्त्रिशं पञ्चमें प्रतरे पुनः ।
एकादशमितास्त्रैधा, द्वात्रिशं च शतं समे ॥१२३॥

चौथे प्रतर में गोल विमान बारह है त्रिकोन और चोरस विमान ग्यारह-ग्यारह है, कुल पंक्तिगत विमान एक सौ छत्तीस है । पाँचवें प्रतर में तीनों प्रकार के ग्यारह-ग्यारह विमान होते हैं, कुल मिलाकर पंक्तिगत विमान एक सौ बत्तीस (१३२) होते हैं । (१२३)

षष्ठेऽथप्रतरे वृत्ताः, प्रतिपङ्क्ते दशापरे ।
द्विधाप्येकादश पृथगष्टाविशं शतं समे ॥१२४॥

छठे प्रतर में वृत विमान दस तथा त्रिकोन और चोरस विमान ग्यारह-ग्यारह है, कुल विमान एक सौ अट्ठाईस होते हैं । (१२४)

चतुःसप्ततियुक्ते द्वे, शते च पंक्ति वृत्तकाः ।
भवन्त्येवमिन्द्रकाणां, षण्णां संयोजनादिह ॥१२५॥

पङ्क्ति त्र्यस्त्राश्च चतुरशीतियुक्तं शतद्वयम् ।
द्वे शते पङ्क्तिचतुरस्त्रकाः षड्सप्ततिस्पृशी ॥१२६॥

चतुस्त्रिंशाष्टशत्येवं, पाङ्क्तेयाः सर्वसंख्यया ।
निर्दिष्टाः पञ्चमस्वर्गे पञ्चमज्ञानचारूभिः ॥१२७॥

प्रत्येक प्रतर में इन्द्रक विमान सहित दो सौ चौहत्तर (२७४) गोल विमान है, दो सौ चौरासी (२८४) त्रिकोन विमान है, दो सौ छिहत्तर (२७६) चोरस विमान है । सब मिलाकर पाँचवें स्वर्ग में पंक्तिगत विमान कुल संख्या आठ सौ चौंतीस (८३४) केवल ज्ञानी भगवन्तों ने कहा है । (१२५-१२७)

लक्षास्तिस्त्रः सद्स्त्राणां, नावतिश्च नवाधिका ।
शतमेकं सषट्षष्टिरत्र पुष्पावकीर्णकाः ॥१२८॥

इस ब्रह्म लोक में तीन लाख, निन्यानवें हजार, एक सौ छयासठ (३,९९,१६६) पुष्पावकीर्णक विमान होते हैं । (१२८)

विमाणानां च लक्षाणि, चत्वारि सर्व संख्यया ।
निर्दिष्टा ब्रह्मलोकेऽमी, धनवाते प्रतिष्ठिताः ॥१२९॥

इस तरह से पांचवे देवलोक में चार लाख विमान होते हैं जो कि धनवात पर प्रतिष्ठित हुए हैं। (१२६)

प्रासादानामुच्चतैषु, शतानि सप्त निश्चितम् ।
पृथ्वी पिण्डो योजनानां शतानि पञ्चविंशतिः ॥१३०॥

इस देवलोक के प्रासाद सात सौ योजन ऊँचे है और उसका पृथ्वी पिंड पच्चीस सौ योजन मोटा होता है । (१३०)

भवन्ति वर्णतश्चामी, शुक्ल पीतारूणप्रभाः ।
ज्ञेयं शेषमशेषं तु स्वरुपमुक्तया दिशा ॥१३१॥

इस प्रासाद का वर्ण, श्वेत, लाल और पीला होता है शेष प्रत्येक बात पूर्व देवलोक के समान समझ लेना चाहिए । (१३१)

उत्पद्यन्तेऽमीषु देवतया सुकृत शालिनः ।
कतार्हदर्चनाः प्राग्वद्दिव्यसौख्यानि भुञ्जते ॥१३२॥

इस देवलोक के अन्दर पूर्व जन्म में सुकृत करके आए जीव उत्पन्न होते हैं और श्री अरिहंत परमात्मा की पूजा करके पूर्व में जैसा वर्णन किया है उसके अनुसार सुख का अनुभव करता है । (१३२)

मधुकपुष्पवर्णाङ्ग प्रभा प्राग्भारभासुराः ।
छागचिह्नाढय मुकुटाः पद्मलेश्याञ्चिताशया ॥१३३॥

ये देवता महुये के पुष्प समान वर्ण वाले हैं, प्रभा के समूह से देदीप्यमान है इस तरह मुकुट में बकरे का चिन्ह होता है और उनके मनो के परिणाम पद्मलेश्यायुक्त है (१३३)

तथाह जीवभिगमः - 'बंभलोगलंतगा देवा आल्लमहूय पुष्प वन्नाया' यत्तु संग्रहण्यां -एते पद्म केसरगौरा उक्ताः 'तत्पक्वधुक पुष्पपद्मकेसरयोर्वर्णे न विशेष इति तद्वृत्ताविति ध्येयं ॥

श्री जीवाभिगमसूत्र में कहा है कि ब्रह्मलोक और लांतक देवलोक के देवों का रंग ताजे महुये के पुष्प समान होता है संग्रहणीय में जो पद्म और केसर सदृश लाल कहा है। वह पक्के हुए महुये के पुष्प और पद्म केशर के वर्ण में कुछ अंतर नहीं है। इस तरह संग्रहंणी की टीका में कहा है ।

जघन्यतोऽप्यमी सप्तसागरस्थितयः सुराः ।
उत्कर्षेण: पुनः पूर्णदशाम्भोनिधि जीविनः ।।१३४।।

इस देवलोक की जघन्य स्थिति सात सागरोपम है और उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की होती है । (१३४)

प्रथम प्रतरे त्वत्र, नाकिनां परमा स्थितिः ।
सार्द्धा सप्तार्णवास्ते च, द्वितीयेऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।।१३५।।

तृतीयेऽष्टाब्धयः सार्द्धाश्चितुर्थे च नवैव ते ।
पञ्चमे नव सार्द्धाश्च, षष्ठे पूर्णादशाब्धयः ।।१३६।।

सर्वत्रापि जघन्या तु सप्तैव जलराशयः ।
तथा सप्तार्णवायुष्का येऽत्र ते षट् करोच्छ्रिताः ।।१३७।।

प्रथम प्रतर की उत्कृष्ट स्थिति साढ़े सात सागरोपम है । दूसरे प्रतर की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागरोपम की है तीसरे प्रतर की उत्कृष्ट स्थिति साढ़े आठ सागरोपम है, चौथे प्रतर की उत्कृष्ट स्थिति नौ सागरोपम की है पांचवे प्रतर की उत्कृष्ट स्थिति साढे नौ सागरोपम की है, छठे प्रतर की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपरम की है । और सर्व प्रतर में जघन्य स्थिति सात सागरोपम ही होती है । (१३५-१३७)

अष्टाकूपारायुषां तु देहयानं भवेदिह ।
कराः पञ्चैकादशांशैः षड्भिरभ्यधिकाअथ ।।१३८।।

नवाब्धिजीविनां पञ्च कराः पञ्चलवाधिकाः ।
दशार्णवायुषां पञ्च कराश्चतुर्लवाधिकाः ।।१३९।।

सात सागरोपम की आयुष्य वाले देवों की ऊंचाई छः हाथ होती है, आठ सागरोपम के आयुष्य वाले देवों की ऊंचाई ५ हाथ ६/११ होती है । नौ सागरोपम के आयुष्य वाले देवों की ऊंचाई ५ हाथ ५/११ होता है । और ८ सागरोपम आयुष्य वाले देवों की ऊंचाई ५ हाथ ४/११ होती है । (१३८-१३९)

स्यादेतेषां निज निज स्थिति सागर संमितैः ।
भुक्तिर्वर्षाणां सहस्रैः पक्षैरूच्छ्वास ईरितः ।।१४०।।

इन देवताओं को अपने-अपने आयुष्य के सागरोपम की संख्ययानुसार उतने हजार वर्ष मैं आहार और उतने पखवारे में उच्छ्वास होता है । (१४०)

एषां कामाभिलाषे तु, देव्योऽभ्यायान्ति चिन्तिताः
सौधर्म स्वर्ग वास्तव्यास्तद्योस्याः कान्ति भासुराः ।।१४१।।

इन देवों को काम की अभिलाषा उत्पन्न हो तब चिन्तन मात्र से सौधर्म देवलोक में रहने वाली देदीप्यमान कान्तिवाली उन देवों के योग्य अप्सराएं आती हैं । (१४१)

तद्राजधानी स्थानीयं मनोभवमहीपतेः ।
दिव्यमुन्मादजनकं, स्वरूपं स्वर्गयोषिताम् ।।१४२ ।।

विलोकयन्तस्तेऽक्षामकामाभिरामयादृशा ।
प्रतीच्छतः कटाक्षाश्च, तासामाकूतकोमलान् ।। १४३।।

एवं पश्यन्त एवामी, तृप्यन्तिसुरतैरिव।।
प्रागुक्तापेक्षया स्वल्पकामोद्रेकाः सुधाभुजः ।।१४४।।

देव्योऽपि ताः परिणतैस्तादग्दिव्यानुभावतः ।
दूरादपि निजाङ्गेषु, तृप्यन्ति शुक्र पुद्गलैः ।।१४५।।

कामदेव की राजधानी समान अप्सराओं के दिव्य-उन्मादक स्वरूप को देखते ही देव तीव्रतर कामरागार्त्त दृष्टि से देवियों के आशय के कटाक्षों को धारण कर केवल इस दृष्टि सुख से भी सुरत क्रीड़ा के समान तृप्त होते हैं क्योंकि पूर्व के देवों से इन देवों का कामोद्रेग अल्प होता है । इस प्रकार के दृष्टि सुख से दिव्य प्रभाव के कारण से देवियों के अंग में दूर से भी परिणाम होने के कारण शुक्र पुद्गलों से उन देवियों को भी परम तृप्ति होती है । (१४२-१४५)

सेवार्त्तेन बिना ये स्युः पञ्चसंहननाञ्चिताः ।
गर्भजास्ते नृतिर्यञ्च उत्पद्यंतेऽत्र ताविषे ।।१४६।।

सेवार्त्त संहनन विना के पांच संहनन वाले गर्भज मनुष्य और तिर्यंच ही इस देवलोक में उत्पन्न होते हैं । (१४६)

नृतिरश्चोरेव गर्भजयोश्चयुत्वोद्भवन्त्यमी ।
च्यवमानोत्पद्यमानसंख्यात्वत्रापि पूर्ववत् ॥१४७॥

ये देव यहां से च्यवन कर गर्भज मनुष्य और तिर्यंच में ही उत्पन्न होते हैं मृत्यु और उत्पत्ति की संख्या यहां पूर्व के समान समझना चाहिए । (१४७)

अत्रोत्पत्तिच्यवनयोरन्तरं परमं यदि ।
द्वाविंशतिर्दिनान्यर्द्धाधिकान्येवं भवेत्तदा ॥१४८॥

उत्पत्ति और च्यवन दोनों का उत्कृष्ट अन्तर रहता है तो साढ़े बाईस दिन का होता है । (१४८)

वसुमत्यास्तृतीयायाः पश्यन्त्यधस्तलावधि ।
इहत्यानिर्जरा स्वच्छतमेनावधि चक्षुषा ॥१४९॥

यहां के देवों को स्वच्छतम अवधिज्ञानचक्षु होता है उसके द्वारा वे नीचे तीसरी नरक के अंत विभाग तक देख सकते हैं । (१४९)

अत्रापि प्रतरे षष्टे, ब्रह्मलोकावतंसकः ।
अशोकाद्यवतंसानां, मध्ये सौधर्मवद्भवेत् ॥१५०॥

यहां पर अन्तिम प्रतर में सौधर्म देवलोक के समान अशोका वतंसक विमानों के बीच में ब्रह्मलोकावतंसक विमान है । (१५०)

तत्र च ब्रह्मलोकेन्द्रो, देवराजो विराजते ।
सामानिक सुरैः षष्टया, सहस्रैः सेवितोऽभितः ॥१५१॥

वहां चारो तरफ से साठ हजार सामानिक देवताओं से सेवित, ब्रह्मलोकेन्द्र नामक इन्द्र विराजमान होता है । (१५१)

पञ्चपल्योपमोपेत सार्द्धाष्ट सागरायुषाम् ॥
चतुः सहस्रया देवानामन्तः पर्षदि सेवितः ॥१५२॥

साढे आठ सागरोपम + पांच पल्योपम के आयुष्य वाले चार हजार अन्तर पर्षदा के देवता इस इन्द्र महाराज की सेवा करते हैं । (१५२)

षड्भिर्देवसहस्रैश्च, मध्यपर्षदि सेवितः ।
चतुःपल्योपमोपेत सार्द्धाष्टाम्भोधिजीविभिः ॥१५३॥

साढ़े आठ सागरोपम+चार पल्योपम के आयुष्य वाले छः हजार मध्य पर्षदा से युक्त इन्द्र महाराज होते हैं । (१५३)

बाह्यपर्षदि देवानां सहस्त्रैरष्टभिर्वृतः ।
पल्योपमत्रयोपेतसार्द्धाष्टवार्द्धि जीविभिः ॥१५४॥

त्रायस्त्रिंशैर्लोकपलिपालैर्मित्रमन्त्रि पुरोहितैः ।
एकैकस्यां दिशिषष्टया सहस्त्रैरात्मा रक्षकैः ।
अनीकैः सप्तभिः सप्तभिः सेव्योऽनीक नायकैः ॥१५६॥

साढ़े आठ सागरोपम+तीन पल्योपम के आयुष्य वाले आठ हजार बाह्य पर्षदा के देवताओं से यह इन्द्र महाराज घिरा हुआ रहता है । त्रायंस्त्रिंश देवलोक पाल मित्र देव, पुरोहित देवं, यान विमान के अधिकारी देव, वाहनादि एक-एक दिशा में साठ हजार आत्म रक्षक देवता सात सेना और सात के सेनाधिपति से सेवा होते रहता है । (१५४-१५६)

अन्येषामप्यनेकेषां देवानां ब्रह्मवासिनाम् ।
विमानावासलक्षाणां चाष्टानामप्यधीश्वरः ॥१५७॥

अन्य भी अनेक बह्मलोक में रहने वाले देवताओं के तथा आठ लाख विमान के अधीश्वर रहते हैं । (१५७)

जम्बूद्वीपानष्ट पूर्णान् रूपैर्नव्यैर्विकुर्वितैः ।
क्षमः पूरयितुं तिर्यगसंख्यद्वीपवारिधीन ॥१५८॥

यह ब्रह्मलोकेन्द्र अपने द्वारा बनाये रूपों से आठ जम्बूद्वीप को भ्रने में समर्थ है और तिर्च्छा असंख्य द्वीप समुद्रों को अपने रुप से भरने में समर्थ होता है। (१५८)

कृतार्हद्र्चनः प्राग्वद्धर्मस्थिति विशारदः ।
साम्राज्यं शास्ति संपूर्णदशसागरजीवितः ॥१५९॥

पूर्व कहे वर्णन के अनुसार श्री जिनेश्वर भगवान की पूजा करते धर्म स्थिति में विशारद सम्पूर्ण दस सागरोपम के आयुष्य वाला ब्रह्मेन्द्र साम्राज्य चलाता है । (१५९)

अस्य यान विमानं च नंद्यावर्त्तमिति स्मृतम् ।
नन्द्या वर्त्ताभिधोदेवो, नियुक्तस्तद्विकुर्वणे ॥१६०॥

इस इन्द्र महाराज का बाहर जाने का मन हो तब नन्द्यावर्त नाम के विमान और उस विमान को बनाने का अधिकारी नन्द्यावर्त नाम का देव तैयार करता है ।(१६०)

अथास्य ब्रह्मलोकस्य, वरिष्ठे रिष्टनामनि ।
तृतीय प्रतरेसन्ति, लोकान्तिकाः सुरोत्तमाः ॥१६१॥

अब इस ब्रह्मलोक के उत्तम रिष्ट नाम के तीसरे प्रतर में लोकांतिक नामक उत्तम देवता निवास करते हैं ।(१६१)

तथाह्यतिक्रम्य तिर्यग्, जम्बू द्वीपादितः परम् ।
द्वीपाम्बुधीन संख्येयान्, द्वीपोऽरुणवराः स्थितः ॥१६२॥

स्थान द्विगुण विस्तीर्ण तया सोऽसंख्यविस्तृतः ।
द्विगुणे नायमरूणवरेण वेष्टितोऽब्धिना ॥१६३॥

अथ द्वीपस्यास्य बाह्य वेदिकान्त प्रदेशतः ।
अवगाह्यारुण वरनामधेयं पयोनिधिम् ॥१६४॥

योजनानां सहस्त्रान् द्वाचत्वारिशतमत्र च ।
जलोपरितलादूर्ध्वमप्काय विकृतीर्महान् ॥१६५॥

तमस्कायो महाघोरान्धकाररूप उद्धतः ।
परितोऽब्धिभिमंरून्धन्, वलयाकृति नाऽऽत्मना ॥१६६॥

वह इस तरह से इस जम्बू द्वीप से लेकर तिर्च्छे असंख्य द्वीप समुद्र में जाने के बाद अरुणवर नाम का द्वीप आता है, क्रमशः दोगुने-दोगुने विस्तार वाले द्वीप समुद्र होने से असंख्य योजन के विस्तार वाले ये द्वीप हैं कि जो उससे भी दोगुने विस्तार धारण करते असंख्य योजनका अरुणवर समुद्र से घिरा हुआ है । अब इस द्वीप के बाह्य वेदिका के अन्तिम विभाग से लेकर अरुणवर नाम के समुद्र में बियालीस हजार योजन के बाद जल के ऊपर के तल से ऊंचे महान अप काय का विकार होता है, और वह विकार तमस्कार नाम से महाघोर अंधकार रुप में चारों ओर इस समुद्र की वलयाकृति से घिरा हुआ रहा है ।(१६२-१६६)

स्थिरार्केन्दुकरक्लिष्टैः संभूय तिमिरैरिव ।
रचितः स्वनिवासाय, भीमदुर्गो महाम्भसि ।।१६७।।

स्थिर सूर्य और चन्द्र के किरण से दुःखी हुए अंधकार से चारों ओर से एकत्रित होकर बड़े समुद्र के अन्दर अपने निवास के लिए मानो बड़ा किला न बनाया हो इस तरह अंधकार लगता है । (१६७)

योजनानां सप्तदस शतान्यथैकविंशतिम् ।
यावदूर्ध्वं समभित्याकार एवायमुद्गतः ।।१६८।।

यह तमस्काय सत्तरह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊंचे भींत के आकार से रहता है । (१६८)

ततश्च विस्तरंस्तिर्यकक्रमादसंख्य विस्मृतिः ।
निक्षिप्य कुक्षी चतुरः सौधर्मादीस्त्रिविष्टपान् ।।१६९।।

वहां से तिर्च्छा विस्तार वाला रहा यह तमस्कार (अंधकार) का घेराव असंख्याता योजन का होता है । चतुर यह तमस्काय सौधर्म आदि लोक को अपनी कुक्षि में मानो समा देता है । (१६९)

ततोऽप्यूर्ध्वं ब्रह्मलोके, तृतीय प्रस्तटावधि
ऊद्गत्य निष्ठितः श्रान्त, इवाविश्रममुत्पतत् ।।१७०।।

लगातार ऊंचा घुसा रहा हो इस तरह यह तमस्काय मानो थक गया न हो इस तरह ब्रह्मलोक के दूसरे प्रतर में जाकर रुकता है । (१७०)

अधश्चायं सभमित्याकारत्वाद्वलयाकृतिः ।
शरावबुघ्नं तुलयत्यूर्ध्वं कुर्कुटपन्जरम् ।।१७१।।

आदेरारभ्योर्ध्वमयं, संख्येय योजनावधिं ।
संख्येयानि योजनानि, विस्तारतः प्रकीर्त्तितः ।।१७२।।

ततः परमसंख्येययोजनान्येष विस्तृतः ।
परिक्षेपेण सर्वत्राप्येषोऽसंख्येययोजनः ।।१७३।।

नीचे समभित्ती के आकार होने के कारण यह तमस्काय वलयाकृति है, बीच में सराव संपुट (उलटा सीधा कोडिया) के आकार का होता है और ऊपर कुकडे

के पिंजर समान आकृति बनती है । आदि से लेकर ऊर्ध्व यह संख्यात् योजन तक फैलता जाता है, तब उसका घेराव भी संख्याता योजन का होता है । उसके बाद असंख्य योजन विस्तार वाला और वृत्ताकार से असंख्या योजन का होता है । (१७१-१७३)

यद्यप्यधस्तमस्कायः संख्येय विस्तृतिः स्वयम् ।
तथाप्यस्य कुक्षिगतासंख्यद्वीपपयोनिधेः ।।१७४।।

परिक्षेपस्त्वसंख्येय योजनात्मैव संभवेत् ।
क्षेत्रस्यासंख्यमानस्य, परिक्षेपोह्यसंख्यकः ।।१७५।।

यद्यपि तमस्काय स्वयं संख्यात योजन विस्तार वाला है, फिर भी उसके अंदर असंख्य द्वीप समुद्र आ जाने के कारण उसका परिक्षेप असंख्य योजन होता है। क्योंकि असंख्य योजन प्रमाण क्षेत्र का परिक्षेप भी असंख्य योजन का हो जाता है। (१७४-१७५)

अन्तर्बाह्य परिक्षेप विशेषस्त्विह नोदितः ।
उभयोरपि तुल्यरूपतयाऽसंख्येयतमाततः ।।१७६।।

अंतर की परिधि और बाह्य परिधिका विशेष प्रमाण नहीं कहा क्योंकि दोनों असंख्य योजन होने से असंख्यतारूप में समान है । (१७६)

इत्थमस्य महीयस्तामाहुः सिद्धान्तपारगाः ।
महर्द्धिकः कोऽपि देवो, यो जम्बूद्वीपमन्जसा ।।१७७।।

तिसृणां चप्पुटिकानां मध्य एवैकविंशतिम् ।
वारान् प्रदक्षिणीकृत्यागच्छेद्गत्यायया‌ऽथ सः ।।१७८।।

तयैव गत्याक्वचित्कं, तमस्कायं व्यतिव्रजेत् ।
मासैः षड्भिरपिक्वचित्कं तु नैव व्यतिव्रजेत् ।।१७९।।

तत्र संख्येय विस्तारं, व्यति व्रजेन्नचापरम् ।
एवं महीयसि तमस्कायेऽथाब्दाः सविद्युतः ।।१८०।।

सिद्धान्त के पारगामी पुरुषों ने इस तमस्काय की विशालता का वर्णन इस तरह किया है कि कोई महार्द्धिक जम्बूद्वीप के तीन चपटी में जिस गति से २१ इक्कीस

बार प्रदक्षिणा दे सकता है। उसी गति से ही कोई जगह के तमस्काय को छः महीने में पार कर सकता है जबकि किसी स्थान के तमस्काय को भी नहीं पार सकता है। उसमें तमस्काय के असंख्यात योजन के विस्तार को पार कर सकता है, अधिक को नहीं पार सकता है। (१७७-१८०)

प्रादुर्भवन्ति वर्षन्ति, गर्जन्ति विद्युतोऽपि च ।
द्योतन्ते बिलसद्देवासुरनागविनिर्मिताः ॥१८१॥

इस तरह विशाल तमस्काय के अन्दर विलास करते देव असुर और नाग कुमार देवों से रचित बिजली सहित के मेघ प्रगट होते हैं वर्षा करते हैं गर्जन करते हैं और बिजली चमकती है। (१८१)

तथाहु : - अत्थिणं भंते! तमुक्काए उराला बलाहया संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति वो - हंता अत्थि इत्यादि भगवत्ती सूत्रे । ६-५।

श्री भगवती सूत्र के छठे शतक के पांचवे उद्देश में कहा है कि - हे भदंत ! तमस्काय में उदार जलयोनिक मेघ अथवा वात योनिक मेघ वर्षा करते हैं, हां, गौतम करते हैं। इत्यादि

यद्यप्यत्र नरक्षेत्राद्बहिर्नाङ्गीकृतं श्रुते ।
धनगर्जित बृष्टयादि, तथापि स्यात्सुरोद्भवम् ॥१८२॥

यद्यपि नरक्षेत्र के बाहर मेघ गर्जना और वृष्टि आदि शास्त्र में नहीं कहा, फिर भी यहां देवता द्वारा रचना समझना। (१८२)

यथा नराः स्वभावेन, लङ्घितुं मानुषोत्तरम् ।
नेशा विद्यालब्धि देवानुभावाल्लङ्घयन्त्यपि ॥१८३॥

अत्रोक्ता विद्युतोयाश्च, भास्वरास्तेऽपि पुद्गलाः ।
दिव्यानुभावजा ज्ञेया, बादराग्नेरभावतः ॥ १८४॥

जिस तरह से मनुष्य अपनी सहज शक्ति से मानुषोत्तर पर्वत को पार नहीं करते। परन्तु विद्यालब्धि और देव की कृपा से पार कर सकते हैं। इसी तरह से बादल में अग्नि के अभाव होने से यहां बिजली अथवा देदीप्यमान तेजस्वी पुदगल केवल दैवी प्रभाव से समझ लेना। (१८३-१८४)

तथाहुः - इहं न बादरास्तेजस्कायिका मन्तव्याः, इहैव तेषां निषेत्स्यमान त्वात्, किन्तु देवप्रभावजनिता भास्वरा पुद्गला इति भगवती वृत्तौ ।

श्री भगवती सूत्र की टीका में कहा है कि - यह देदीप्यमान पुद्गल बादर तेउकाय नहीं समझना । क्योंकि आगे उसका निषेध करने में आया है इसलिए यह तेजस्वी पुद्गल देवी प्रभाव से उत्पन्न हुआ समझना ।

तथा नात्र तमस्काये, देशग्रामपुरादिकम् ।
नाप्यत्र चन्द्रचण्डांशु ग्रहनक्षत्र तारकाः ।।१८५।।

येऽप्यत्रासन्न चन्द्रार्क किरणास्तेऽपि तामसैः ।
मलीमसा असत्प्राया, **दुर्जन सद्गुणा इव ।।१८६।।**

तथा इस तमस्काय में देश, गांव पुर आदि नहीं है और चन्द्र सूर्य ग्रह, नक्षत्र और तारा भी नहीं है और जो चन्द्र सूर्य के किरण यहां आते हैं वे भी इस अंधकार से दुर्जन में रहे सद्गुणों के समान निस्तेज और नहींवत् बन जाते हैं । (१८५-१८६)

अत एवाति कृष्णोऽयमगाधश्च भयङ्करः ।
रौद्यातिरेकात्पुलकोद्भेदमालोकितः संजेत् ।।१८७।।

आस्तामन्यः सुरोऽप्येनं, पश्यन्नादौ प्रकम्पते ।
ततः स्वस्थीभूय शीघ्रगतिरेनमतिव्रजेत् ।।१८८।।

इससें ही अत्यन्त काला, अगाध, भयंकर यह तमस्काय अति रौद्र होने से देखने मात्र से ही रोम खड़े कर देता है, अन्य की बात तो जाने दो देव भी इससे प्रथम बार देखकर तो कम्पायमान हो उठता है फिर स्वस्थ होकर शीघ्र गति से इसे पार कर देता है । (१८७-१८८)

तम १ श्चैव तमस्कायोऽ २ न्धकारः ३स महादिकः ४ ।
लोकान्धकारः ५ स्याल्लोक तमिस्रं ६ देवपूर्वकाः ।।१८९।।

अन्धकार ७ स्तमिस्रं ८ चारण्यं च व्यूह १० एवं च ।
परिघश्च ११ प्रतिक्षोभो १२ ऽरुणोदो वारिध स्तथा १३ ।।१९०।।

त्रयोदशास्य नामानि, कथितानि जिनैः श्रुते ।
तत्र लोकेऽद्वितीयत्वाल्लोकान्धकार उच्यते ।।१९१।।

श्री जिनेश्वर भगवन्तो ने आगम के अन्दर इसके तेरह नाम कहे हैं वह इस तरह : - १-तम: २ तमस्काय, ३ अंधकार ४ महादिक, ५. लोकांधकार, ६ लोक त मिस्त्र, ७ देवांधकार, ८ देवताभिश्च, ९ देवारण्य, १० देवव्यूह, ११ परिध १२ प्रतिक्षोभ, १३ अरुणोद वारिधि इन नामों में से भी लोक में अद्वितीय रूप होने से यह खासतौर पर लोकांधकार कहलाता है । (१८९-१९१)

न हि प्रकाशो देवानामप्यत्र प्रथते मनाक् ।
देवान्धकारोऽयं देवतमिस्त्रं च तदुच्यते ॥१९२॥

यहां देवों के तेज का प्रकाश की जरा फैल नहीं सकता है इससे यह देवांधकार और देवतमिश्र कहलाता है । (१९२)

बलवद्देवभयतो, नश्यतां नाकिनामपि ।
अरण्य वच्छरण्योऽयं, देवारण्यं तदुच्यते ॥१९३॥

बलवान देव के भय से भागते देवों को अरण्य के समान की शरणभूत होने से देवारण्य वह कहलाता है । (१९३)

दुर्भेदत्वाद्व्यूह इव प्रतिक्षोभो भयावहः ।
गतिरूंधन परिधवत् देवव्यूहादिरूच्यते ॥१९४॥

दुर्भेद होने से व्यूह कहलाता है, भंयकर होने से प्रतिक्षोभ कहलाता है, गति को रोकने वाला होने से परिध कहलाता है तथा देवव्यूहादि नाम भी कहलाता है । (१९४)

अरूणो दाम्भोधि जलविकारत्वातथाभिधः ।
एवमन्वर्थता नाम्नामन्येषामपि भाव्यताम् ॥१९५॥

अरुणवर समुद्र के जल का विकार होने से अरुणोद भी कहलाता है इस तरह अन्य प्रत्येक नाम की सार्थकता समझ लेना चाहिए । (१९५)

यत्र रिष्टप्रस्तटेऽयं, तमस्कायश्चनिष्ठितः ।
तस्येन्द्रक विमानस्य, रिष्टाख्यस्य चतुर्दिशम् ॥१९६॥

जीव्र पुद्गलसत्पृथ्वीपरिणाम स्वरूपिके ।
द्वे द्वे च कृष्णराज्यौ स्तो, जात्याञ्जनघनद्युती ॥१९७॥

अब कृष्णराजी का वर्णन कहते हैं : - जो रिष्ट नाम के प्रतर में यह तमस्काय रूकता है उस प्रतर के रिष्ट नामक इन्द्रक विमान के चारों तरफ पृथ्वी रुप में परिणाम होने से जीव के पुद्‌गल वाली दो-दो कृष्णराजी है जो कि जाति मान अंजन रत्न समान गाढ कृष्ण वर्ण वाली होती है । (१६६-१६७)

तथाहि दिशि पूर्वस्यां, द्वे दक्षिणोत्तरायते ।
पूर्वपश्चिमविस्तीर्णे, कृष्ण राज्यौ प्रकीर्त्तिते ।।१६८।।

स्यातामपाच्यामप्येवं ते द्वे पूर्वा परायते ।
दक्षिणोत्तर विस्तीर्णे, कृष्णा राज्यौ यथोदिते ।।१६६।।

प्रतीच्यामपि पूर्वावत्ते दक्षिणोत्तरायते ।
उदीच्यां च दक्षिणावत्ते द्वे पूर्वापरायते ।।२००।।

वह इस तरह से - पूर्व दिशा में अन्दर दो कृष्ण राजी होती है जो कि लम्बी है और पूर्व-पश्चिम चौड़ी है, इसी तरह दक्षिण दिशा में भी दो कृष्णराजी है जोकि पूर्व-पश्चिम लम्बी है और दक्षिण-उत्तर चौड़ी है । पश्चिम दिशा में भी दो कृष्ण राजी है जो कि पूर्व दिशा के समान दक्षिण-उत्तर लम्बी है और पूर्व-पश्चिम चौड़ी है । (१६८-२००)

प्राच्यां प्रतीच्यां या बाह्या, षट्कोणा सा भवेत्किल ।
दक्षिणस्यामुदीच्यां च, बाह्या या सा त्रिकोणिका ।।२०१।।

पूर्व और पश्चिम में रही जो बाह्य कृष्णराजी होती है, वह षट्‌कोन होती है, और दक्षिण और उत्तर में जो बाह्य रही कृष्णराजी होती है वह त्रिकोन होती है । (२०१)

अभ्यन्तराश्चतुः कोणाः, सर्वा अप्येवमासु च ।
द्वे षट् कोणे द्वे त्रिकोणे, चतस्रश्चतुरस्रिकाः ।।२०२।।

जब अभ्यन्तर चार कृष्णराजी चतुष्कोन होती है अतः यह कृष्णराजी में दो, छह कोन वाली है दो-तीन कोने वाली है और चार-चार कोने वाली है । (२०२)

पौरस्त्याभ्यन्तरा तत्र, कृष्ण राजी स्पृशत्यसौ ।
निजान्तेन कृष्णराजी, दाक्षिणात्यां बहिः स्थिताम् ।।२०३।।

पूर्व दिशा के अन्दर की कृष्ण राजी अपने छेडे से दक्षिण दिशा के बाहर की कृष्ण राजी को स्पर्श करती है । (२०३)

दक्षिणाभ्यन्तरा चैवं बाह्यां पश्चिमदिग्गताम् ।
एवं बाह्यामौत्तराहां, पश्चिमाभ्यन्तरा स्पृशेत् ।।२०४।।

इस तरह से दक्षिण के अन्दर की कृष्ण राजी पश्चिम की बाह्य कृष्ण राजी को स्पर्श करती है इसी तरह से पश्चिम दिशा की अभ्यंतर कृष्णराजी उत्तर बाह्य कृष्णराजी को स्पर्श करती है । (२०४)

उदीच्याभ्यन्तरा बाह्यां, प्राची निष्ठां स्पृशत्यतः ।
अष्टापि कृष्ण राज्यः स्थुरक्षपाटक संस्थिता। ।।२०५।।

और उत्तर दिशा में रही अन्दर की कृष्ण राजी पूर्व दिशा की बाह्य कृष्ण राजी को स्पर्श करती है ये आठों कृष्णराजी अखाड़े की आकार वाली है । (२०५)

स्यादासान विशेषोयः पेक्षास्थाने निषेदुषाम् ।
स चाक्षपाटकस्तद्वदासां संस्थानमीरितम् ।।२०६।।

सभा स्थान में बैठने का जो आसन विशेष होता है, वह अक्षपाटक कहलाता है उसके समान इन कृष्ण राजियों की आकृति होती है । (२०६)

एता विष्कम्भतोऽष्टापि, संख्येययोजनात्मिकाः ।
परिपेक्षायामतश्चासंख्येय योजनात्मिकाः ।।२०७।।

ये आठों कृष्ण राजियां विष्कंभ संख्यात योजन प्रमाण है जबकि आयाम और परिक्षेप असंख्य योजन प्रमाण होती है । (२०७)

तमस्कायमान योग्यः सुरो यः प्राग् निरुपितः ।
स एव च तया गत्वा, मासार्द्धेन व्यतिव्रजेत् ।।२०८।।

कांचिदत्र कृष्णराजीं, काश्चिन्नैव व्यतिव्रजेत् ।
महत्वमासामित्येवं, वर्णयन्ति बहुश्रुताः ।।२०८।।

तमस्काय के प्रमाण के मापने के लिए जो देव की गति कही है, उस गति से जाने वाला कोई देव १५ दिन में इन कृष्ण राजियों में से कुछ राजी को पार कर

सकता है अबकि कोई उसे पार नहीं कर सकता है । इस तरह से इस कृष्ण राजी का महत्व बहुश्रुत ज्ञानियों ने वर्णन किया है । (२०८-२०६)

तमस्कायवदत्रापि, गृहग्रामद्यसंभवः ।
नाप्यत्र चन्द्रसूर्याद्या न तेषा किरणा अपि ॥२१०॥

तमस्काय के समान इन कृष्ण राजियों में भी घर गाय आदि नहीं होते सूर्य चन्द्र अथवा उसके किरण भी नहीं होते हैं । (२१०)

अत्राम्भोद वृष्टि विधुद्गर्जितादि च पूर्ववत् ।
परं तद्देवजनितं, न नागासुरकर्त्तृकम् ॥२११॥

यहां मेघ, वृष्टि; विद्युत, गर्जना आदि तमस्काय के समान है परन्तु वह देवकृत होता है नागकुमार या असुर कुमार कृत नहीं होता है । (२११)

'असुर नाग कुमाराणां तत्रगमनासंभवादिति' - भगवतीवृत्तौ ॥

श्री भगवती सूत्र की टीका में कहा है कि 'नागकुमारऔर असुर कुमारों का वहां गमन का अभाव होता हैं । इसलिए वहां देवकृत ही होता है इनका नहीं है ।

कृष्णराजी मेघराजी, मघा माघवतीति च ।
स्यांद्वातपपरिघो वातप्रतिक्षोभस्तथैव च ॥२१२॥
स्याद्देवपरिघो देवप्रतिक्षोभोऽपि नामतः ।
आसां नामान्यष्ट तेषामन्यर्थोऽर्थविमाव्यते ॥२१३॥

इसके आठ नाम हैं १- कृष्णराजी, २-मेघराजी, ३-मघा, ४-माघवती, ५-वात परिध, ६- वातपतिक्षोभ, ७- देवपरिघ और ८- देवप्रतिक्षोभ है, इनका अर्थ इस प्रकार से होता है । (२१२-२१३)

कृष्णापुद्गलराजीति, कृष्णराजीयमुच्यते ।
कृष्णाद्रेखातुल्यत्वान्मेघराजीति च स्मृता ॥२१४॥
मघाया माघवत्याश्च सवर्णेत्याख्यया तथा ।
वातोऽत्र वात्या तद्वद्याः तमिस्त्रा भीषणाऽपिच ॥२१५॥
ततोऽसौ वातपरिधस्तत्प्रतिक्षोभ इत्यपि ।
स्याद्देव परिघो देवप्रतिक्षोमश्च पूर्ववत् ॥२१६॥

श्याम पुद्‌गल की श्रेणि होनेसे प्रथम नाम कृष्णराजी कहलाता है । काले बादल रेखा समान होने से मेघराजी कहलाता है, छठी और सातवीं मघा-मघावती नरक समान अंधकार होने से मघा और मघावती कहलाती है वात शब्द से घुमावदार वायु समझना उसके समान अंधरी और भंयकर होने से वह वातपरिध और वातप्रतिक्षोभ कहलाता है । सातवीं-आठवीं इस तरह देव परिध और प्रतिक्षोभ नाम का पूर्व के तमस्काय के समान समझ लेना । (२१४-२१६)

अथासां कृष्णराजी नामन्तरेषु किलाष्टसु ।
लौकान्तिकविमानानि, निर्दिष्टान्तष्टपारगैः ।।२१७।।

अब इस कृष्णराजी के आठ प्रतर में आठ लोकांतिक विमान है । इस तरह श्री तीर्थंकर परमात्मा ने कहा है । (२१७)

तत्राभ्यन्तरयोः प्राच्योदीच्ययोरन्तरे तयोः ।
विमानमर्च्वि प्रथमंः चकास्ति प्रचुर प्रभम् ।।२१८।।

उसमें अभ्यंतर पूर्व और उत्तर दिशा की कृष्णराजी बीच में अत्यन्त तेजस्वी अर्चिनाम का विमान प्रकाशमय है । (२१८)

अन्तरे प्राच्ययोरेव, बाह्याभ्यन्तरयोरथ ।
द्वितीयमर्चिर्मालीति, विमानं परिकीर्त्तितम् ।।२१६।।

पूर्व दिशा की ही बाह्य और अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में दूसरा अर्चिमाली नाम का विमान कहा है । (२१६)

तृतीयमभ्यन्तरयोरन्तरे प्राच्ययाम्ययोः ।
वैरोचिनाभिदं प्रोक्तं विमानं मानवोत्तमैः ।।२२०।।

पूर्व और दक्षिण दिशा की अभ्यन्तर कृष्णराजी के बीच में वैराचन नाम का विमान श्री जिनेश्वर ने कहा है । (२२०)

बाह्याभ्यान्तरयोरेवान्तरेऽथ दाक्षिणात्ययोः ।
प्रभंकरभिदं तुर्यं, विमानमुदितं जिनैः ॥२२१।।

दक्षिण दिशा की बाह्य और अभ्यन्तर कृष्णराजी के बीच में चौथे प्रभंकर नाम का विमान श्री जिनेश्वरों ने कहा है । (२२१)

अभ्यन्तर दाक्षिणात्यप्रतीच्ययोरथान्तरे ।
विमानमुक्तं चन्द्राभं पञ्चमं परमेष्ठिभिः ॥२२२॥

दक्षिण और पश्चिम दिशा की अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में चन्द्राभ नाम का पांचवा विमान श्री परमेष्ठियों ने कहा है। (२२२)

स्यात्प्रतीचीनयोरेवं, बाह्याभ्यन्तरयोस्तयोः ।
विमानमन्तरे षष्ठं सूर्याभमिति नामतः ॥२२३॥

पश्चिम दिशा की बाह्य और अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में सूर्याभ नाम का छठा विमान कहा है ।

पश्चिमोदीच्ययोरभ्यन्तरयोरन्तरेऽथ च ।
विमानमुक्तं शुक्राभं, सप्तमं जिन सत्तमैः ॥२२४॥

पश्चिम और उत्तर दिशा की अभ्यंतर कृष्णराजी बीच में शुक्राभ नाम का सातवां विमान श्री जिनेश्वरों ने कहा है । (२२४)

बाह्यभ्यन्तरयोरौत्तराहयोरन्तरेऽथ च ।
विमानं सु प्रतिष्ठाभमष्टमं परिकीर्त्तितम् ॥२२५॥

उत्तर दिशा के ब्राह्य और अभ्यंतर कृष्णराजी के बीच में सुप्रतिष्ठाभ नाम का आठवां विमान कहा है ।

सर्वासां कृष्णराजीनां, मध्य भागे तु तीर्थपैः ।
विमान नवमं रिष्टाभिधानामिह वर्णितम् ॥२२६॥

सर्व कृष्ण राजियों के मध्य विभाग के अन्दर नौवा रिष्ट नाम का विमान श्री तीर्थंकर परमात्मा ने कहा है । (२२६)

ब्रह्मलोकान्तभावित्वाल्लौकांतिकान्यमून्यथ ।
लोकान्तिकानां देवानां, संबन्धीनि ततस्तथा ॥२२७॥

ब्रह्मलोक में अन्त के विभाग में रहने वाले होने से ये विमान लोकांतिक कहलाते हैं तथा लोकांतिक देव सम्बन्धी होने के कारण से भी ये विमान लोकांतिक कहलाते हैं । (२२७)

नवाप्येते विमानाः स्युर्घनवायु प्रतिष्ठिताः ।
वर्णादिभिश्च पूर्वोक्त ब्रह्मलोक विमानवत् ।।२२८।।

ये नौ विमान घनवायु ऊपर रहते है और उसका वर्ण आदि ब्रह्मलोक के विमानों के समान समझ लेना चाहिए । (२२८)

संस्थानं नैकधाऽमीषाम्पाङ्क्तेयतया खलु ।
एभ्यो लोकान्तः सहस्त्रैर्योजनानामसंख्यकैः ।।२२९।।

इन विमानों की एक पंक्ति में नहीं होने से इन विमानों का संस्थान एक समान नहीं है । इन विमानों से लोक का छेडा असंख्य हजार योजन के बाद आता है । (२२९)

एतेष्वथ विमानेषु, निवसन्ति यथाक्रमम् ।
सारस्वतास्तथाऽऽदित्या, बह्न वरुणा अपि ।।२३०।।

गर्दतोयाश्च तुषिता, अव्याबाधस्तथाऽपरे ।
आग्नेया अथरिष्टाश्च, लौकान्तिकसुधांभुजः ।।२३१।।

इन नौ विमान के अन्दर अनुक्रम से १-सारस्वत, २-आदित्य, ३-वहि, ४- वरुण, ५- गर्दतोय, ६- तुषित, ७- अव्याबाध, ८- आग्नेय और ९- रिष्ट नाम के लोकांतिक देवता निवास करते हैं । (२३०-२३१)

''अत्राग्नेयाः संज्ञान्तरतो मरुतोऽप्यभिधीयन्ते ।''

'यहां आग्नेय का दूसरा नाम 'मरुत' भी कहा जाता है ।'

स्वत एवावबुद्धानामनुत्तरचिदात्मनाम् ।
विज्ञाय दीक्षावसरं दित्सूनां दानमाब्दिकम् ।।२३२।।

प्रव्रज्यासमयादर्वाक, संवत्सरेण तत्क्षणम् ।
श्रीमतामर्हतां पादान्तिकमेत्य तथास्थितेः ।।२३३।।

विमानंयानादुत्तीर्य, सोत्साहाः सपरिच्छदाः ।
सारस्वत प्रभृतय सर्वे लौकान्तिकाः सुराः ।।२३४।।

विज्ञा विज्ञपयन्त्येवं, जयनन्द जगद्गुरो ।
त्रैलोक्यबंधो? भगवन! धर्मतीर्थ प्रवर्त्तय ।।२३५।। *चतुर्भि कलापकं।*

यदेतत्सर्वलोकाना, सर्वलोके भविष्यति ।
मुक्ति राजपथीभूतं, निःश्रेयसकरं परम् ॥२३६॥

अपने आचार अनुसार ये सारस्वत आदि सर्व लोकान्तिक देवता स्वयं संबुद्ध अनुत्तर अपनी, दीक्षा का समय जानकर सांवत्सरिक दान देने की इच्छा वाले बने श्री मान अरिहंत भगवन्त के चरण कमल में दीक्षा के एक वर्ष पहले अपने विमान से उतर कर उत्साहपूर्वक परिवार सहित सुज्ञ वे देव इस तरह से विज्ञप्ति करते हैं कि- हे जगद गुरुदेव ! हे त्रैलोक्य बन्धु ! भगवन्त ! आप विजय प्राप्त करे ! आनन्द प्राप्त करे और धर्मतीर्थ प्रवृत्ति करवाओ, जिससे तीर्थ सर्वलोक में सर्व लोगों को मुक्ति साम्राज्य के मार्ग रूप और श्रेष्ठ कल्याणकर बनेगा । (२३२-२३६)

इहसारस्वतादित्यद्वये समुदितेऽपिहि ।
सप्त देवाः सप्त देवशतानि स्यात्परिच्छदः ॥२३७॥

यहां सारस्वतः और आदित्य ये दोनों को सात-सात देव और अन्य सात सौ-सात सौ का परिवार होता है । (२३७)

एव वह्नि वरुणयोः परिवारश्चतुर्दश ।
देवास्तथाऽन्यानि देवसंहस्त्राणि चतुर्दश ॥२३८॥

इस तरह से वह्नि और वरुणदेव का १४-१४ देव और चौदह चौदह हजार देवों का परिवार कहा है । (२३८)

गर्दतोयतुषितयोर्द्वयोः संगतयोरपि ।
सप्तदेवाः सप्तदेव सहस्त्राणि परिच्छदः ॥२३९॥

गर्दतोय और तुषित देवों को सात-सात देव और सात-सात हजार देवों का परिवार होता है । (२३९)

अव्याबाधाग्नेयरिष्टदेवानां च सुरा नव ।
शतानि नव देवानां, परिवारः प्रकीर्तितः ॥२४०॥

अव्याबाध आग्नेय और रिष्ट देवों के नो, नौ देव और नौ सौ - नौ सौ देवों का परिवार कहा गया है । (२४०)

अव्याबाधाश्चैषु देवाः, पुरुषस्याक्षिपक्ष्मणि ।
दिव्यं द्वात्रिंशत्प्रकारं, प्रादुष्कुर्वन्ति ताण्डवम् ।।२४१।।
तथापि पुरुषास्यास्य, बाधाकोऽपि न जायते ।
एवं रूपा शक्तिरेषां, पञ्चमाङ्गे प्रकीर्तिता ।।२४२।।

इन लोकतांत्रिक देवों में अव्याबाध नाम के देव पुरुष की आंख की बरौनी ऊपर बत्तीस बद्ध नाटक प्रकट कर सकते हैं और फिर भी पुरुष को कुछ विघ्न बाधा नहीं होती है इस तरह की शक्ति श्री भगवती सूत्र के चोदहवें शतक के आठवें उद्देश्य में कहा है । (२४१-२४२)

लौकान्तिक विमानेषु, देवानामांष्ट वार्द्धयः ।
स्थितिरुक्ता जिनैरेते, पुण्यात्मानः शुभाशयाः ।।२४३।।
एकावतारा: सिद्धयन्ति, भवे भाविनि निश्चितम् ।
अष्टावतारा-अप्येते, निरुपिता मतांत्तरे ।।२४४।।

श्री जिनेश्वर भगवन्तों ने इस लोकांतिक विमान में रहे देवों की स्थिति आठ सागरोपम की कही है ये लोकांतिक देवता पुण्यशाली होते है, शुभाशय वाले होते हैं और एकावतारी होते हैं और आने वाले जन्म में निश्चित ही मोक्ष में जानेवाले हैं, मतान्तर में आठ जन्म में जाने वाले कहा है । (२४३-२४४)

तन्मतद्वयं चैवं –लोकान्ते लोकाग्र लक्षणे सिद्धि स्थाने भवाः लोकान्तिकाः भाविनी भूतवदुपचारन्यांदेन एवं व्यपदेशः अन्यथा ते कष्णराजीय मध्य वर्त्तिनः लोकान्ते भावित्वं तेषामनन्तरभवे एव सिद्धि गमना दिति स्थानङ्गवृत्तौ ६ स्थान के

श्रीढाणांग सूत्र की वृत्ति के नौवे स्थान में कहा है कि लोकान्ते अर्थात लोक के अग्रभाग स्वरुप सिद्धि स्थान में हुए लोकान्तिक कहलाता है । अतः भावि में भूतकाल का उपचार करके इस तरह से कहलाता है । शेष तो वे कृष्णराजी के मध्य में रहता है और लोकांत में होना अगले जन्म के अन्दर मोक्ष में जाने के होने से वह किस तरह घटता है? इससे भावि का भूतकाल में उपचार से किया गया है । इस तरह समझना ।

''श्री ब्रह्म लोके प्रतरे तृतीये, लौकान्तिकास्तत्र वसन्ति देवाः।
एकावतारा: परमायुरष्टौ, भवन्ति तेषामपि सागराणि ।। २४४ अ।।

इति श्रेणिक चरित्रे ।।''

श्रेणिक चरित्र में कहा है कि 'ब्रह्मलोक के तीसरे प्रतर में लोकांतिक देवों का निवास है, वे एकावतारी है और आठ सागरोपम के परम उत्कृष्ट आयुष्य वाला होते हैं। (२४४)

''अट्ठेवं सागराइं परमाउं होइ सव्व देवाणं ।
एगाव यारिणो खलु देवा लोगंतिया नेया ।।२४४ ब।।
इति प्रवचन सारोद्धारे।

श्री प्रवचन सारोद्धार में इस तरह कहा है कि - 'इन लोकांतिक सर्वदेवों का उत्कृष्ट आयुष्य आठ सागरोपम का होता है तथा एकावतारी होते हैं ।' (२४४ ब)

तत्वार्थ टीकायामपि - लोकान्ते भवा लौकान्तिका: अत्र प्रस्तुतत्वाद् ब्रह्मलोक एव परिगृह्यते तदन्तनिवासिनो लोकान्तिका: सर्व ब्रह्मलोक देवानां लौकान्तिक प्रसङ्ग इति चेन्न, लोकान्तोपश्ले षात् जरा मरणादिज्वाला कीर्णो वा लोककस्तदनावर्तित्वाल्लौकान्तिका: कर्म क्षयाभ्यासी भावाच्चे त्ति।

'तत्त्वार्थ सूत्र की टीका में भी कहाँ है कि 'लोक के अन्त में बने है इससे लोकांतिक कहलाते हैं, यहां पर प्रस्तुत में लोक से ब्रह्मलोक ग्रहण करना उसे अन्त में रहने वाले होने से लोकांतिक कहलाता है ।

इस पर प्रश्न करते हैं - तो फिर ब्रह्मलोक के सर्वदेव लोकांतिक कहे जायेंगे। इसका उत्तर देते हैं - ना लोक शब्द नहीं है परन्तु लोकान्त शब्द होने से ब्रह्मलोक में सर्व देव नहीं आते हैं । अत: जरा मरणादि से युक्त जो लोक है उसके अन्दर रहने वाले और कर्म क्षय के अभ्यासी होने से लोकान्तिक कहलाते हैं ।'

लब्धि स्तोत्रे तु -

सव्वट्ठचुआ चउकय आहार गुवसमंजिणगण हराई।
निअमेण तब्भव सिवा सत्तट्ठभवेहिं लोगंती ।।२४४ सी ।।

लब्धि स्तोत्र में भी कहा है कि - सवार्थ सिद्ध विमान में से च्यवन हुआ जीव चार बार जिसने आहारक लब्धि का उपयोग किया है, चार बार जिसने उपशय श्रेणी

की है ऐसे जीवात्मा श्री जिनेश्वर तथा गणधर भगवंत ये सभी तद्जन्म में मोक्षगामी होते हैं, जबकि लोकांतिक देव सात आठ जन्म के अन्दर मोक्ष में जाने वाले होते हैं । इस शास्त्र का मंतव्य सबसे अलग है । (२४४ सी)

अथोर्ध्वं ब्रह्मलोकस्य, समपक्षं समानदिक् ।
योजनानामसंख्येय कोटाकोटि व्यतिक्रमे ॥२४५॥

विभाति लान्तकः स्वर्गः पञ्चप्रतरशोभितः ।
प्रतिप्रतरमेककेनेन्द्रकेण विराजितः ॥२४६॥

अब लांवतक देवलोक का वर्णन करते हैं : - इस ब्रह्म देवलोक के ऊपर असंख्य कोटा कोटिं योजन जाने के बाद समान दिशा समान श्रेणि में रहे प्रत्येक प्रतर में एक-एक इन्द्रक विमान से शोभायमान पांच प्रतर से युक्त लांतक नाम का स्वर्ग शोभायमान है । (२४५-२४६)

प्रथम प्रतरे तत्र, बलभद्राख्यमिन्द्रकम् ।
चक्रं गदा स्वस्तिकं च, नन्द्यावर्त्तमिति क्रमात् ॥२४७॥

उसमें प्रथम प्रतर में बलभद्र, दूसरे प्रतर में चक्र, तीसरे प्रतर में गदा चौथे प्रतर में स्वस्तिक और पांचवे प्रतर में नन्द्यावर्त नामक इन्द्रक विमान होता है। (२४७)

प्रतिप्रतरमेतेभ्यः, पङ्क्तयोऽपि चतुर्दिशम् ।
प्राग्वदत्र विना प्राचीं, प्रोक्ताः पुष्पावकीर्णकाः ॥२४८॥

प्रत्येक प्रतर में इन इन्द्रक विमान के चारों दिशामें पंक्तिगत विमान है और पूर्व दिशा विना की तीन दिशा में पुष्पावकीर्णक विमान होते हैं । (२४८)

एकत्रिंशदथ त्रिशंदेकोनत्रिंशदेव च ।
तथाऽष्टाविंशतिः सप्त विशंतिश्च यथाक्रमम् ॥२४९॥

पञ्चस्वेषु, प्रतरेषु, प्रतिपंक्ति विमानकाः ।
ऐकैकस्यामथो पङ्क्तौ, प्रथम प्रतरे स्मृताः ॥२५०॥

त्र्यस्त्रा एकादशान्ये च, द्वैधा दश दशेति च ।
चतुर्विशं शतं सर्वे, पङ्क्तिस्थायि विमानकाः ॥२५१॥

पांच प्रतर के अन्दर अनुक्रम से प्रत्येक पंक्ति में इक्तीस, तीस, उन्तीस, अट्ठाईस और सत्ताईस विमान होते है । अब प्रथम प्रतर की एक-एक पंक्ति में त्रिकोन और दूसरे में दस-दस विमान है और पंक्ति गत कुल विमान १२४ होते हैं। (२४६-२५१)

वृतास्त्र्यस्राश्चतुरस्रा, द्वितीयप्रतरे दशं ।
प्रति पङ्क्तयत्र सर्वे च, विशं शतंमुदीरिताः ॥२५२॥

दूसरे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में गोलाकार-त्रिकोण और चोरस विमान दस-दस होते हैं और कुल पंक्ति में १२० विमान होते हैं । (२५२)

तृतीये त्रिचतुःकोणा, दश वृत्ता नवेति च ।
सर्वे विमानाः पाङ्क्तेया, भवन्ति षोडशं शतम् ॥२५३॥

तीसरे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में त्रिकोन और चोरस १०, १०, विमान है और गोल विमान नौ है, सर्व पंक्ति के विमान ११६ होते है । (२५३)

वृत्ताश्च चतुरस्राश्च, तुर्येनव नव स्मृताः ।
दश त्रिकोणाः सर्वे च पाङ्क्तेया द्वादशं शतम् ॥२५४॥

चौथे प्रतर के प्रत्येक पंक्ति में गोल ओर चौरस विमान नौ-नौ है और त्रिकोन विमान दस हैं, सब मिलाकर पंक्तिगत विमान ११२ होते हैं । (२५४)

पञ्चमे च नव नव, त्रिचतुः कोण वृत्तकाः ।
अष्टोत्तरं शतं सर्वे, चात्र पङ्क्ति विमानकाः ॥२५५॥

पंचवे प्रतर के प्रत्येक पंक्ति में तीनों प्रकार के नौ, नौ विमान है और पंक्ति गत कुल मिलाकर विमान १०८ होते हैं । (२५५)

एवं पञ्चेन्द्रकक्षेपे, सर्वेऽत्र पंङ्क्तिवृत्तकाः ।
विमानास्त्रिनवत्याढयं, शतं लान्तकताविषे ॥२५६॥

इस तरह से लांतक देवलोक के पांचों प्रतर के इन्द्रक विमान सहित गोल विमान कुल मिलाकर १९३ होते हैं । (२५६)

पंक्तित्र्यस्राणां शते द्वे द्विनवत्यधिकं शतम् ।
स्यात्पङक्ति चतुस्राणामेवं च सर्वसंख्यया ॥२५७॥

पांच प्रतर के पंक्तिगत त्रिकोन विमान दो सौ है और चोरस विमान १६२ होते है । (२५७)

पञ्चाशीत्याभ्यधिकानि, शतानि पञ्च पङ्क्तिगाः ।
सहस्राण्येकोनपञ्चाशच्चत्वारि शतानि च ॥२५८॥

युक्तानि पञ्चदशभिरिह पुष्पावकीर्णकाः ।
विमानानां सहस्राणि, पञ्चाशत्सर्वसंख्यया ॥२५६॥

पांच प्रतर के पंक्तिगत सर्व विमान पांच सौ पंचाशी (५८५) है और पुष्पावकीर्णक विमान उनचास हजार चार सौ पन्द्रह (४६४१५) होते है और लांतक देवलोक के सर्व विमान पंचास हजार होते हैं । (२५८२५६)

विहायसि निरालम्बे, प्रतिष्ठितो धनोद्दधिः ।
धनवातोऽस्मिन्निहामी, स्युर्विमानाः प्रतिष्ठिताः ॥२६०॥

आलंबन रहित आकाश में घनोदधि रहा है उसके ऊपर घनवात रहा है और इसके ऊपर ये विमान रहे है । (२६०)

वर्णोच्चत्वादितमानं च, स्यादेवां बह्मलोकवत् ।
देवास्तवत्र शुक्लवर्णाः शुक्लेश्या महर्द्धिकाः ॥२६१॥

इन विमानों का वर्ण तथा ऊंचाई का प्रमाण ब्रह्मलोक के समान समझ लेना, यहां रहे महर्द्धिक देव शुक्ल वर्ण वाले और शुक्ल लेश्या वाले होते हैं । (२६१)

इतः प्रभृति देवाः स्युः सर्वेऽप्यनुत्तरावधि ।
शुक्लेश्या शुक्लवर्णाः कितूत्कृष्टा यथोत्तरम् ॥२६२॥

यहां से लेकर अनुत्तर विमान तक के देव शुक्ल लेश्या और शुक्ल वर्ण वाले है, परन्तु ऊपर से ऊपर उत्कृष्ट भाव वाले समझना चाहिए । (२६२)

प्रथम प्रतरे तत्र, स्थिति र्ज्येष्ठा सुधा भुजाम् ।
पञ्चभागीकृत स्याब्धेश्चत्वारोऽंशा दशाब्धयः ॥२६३॥

लांतक देवलोक के प्रथम प्रतर के देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति १०८५ सागरोपम की होती है । (२६३)

द्वितीय प्रतरे भागास्त्रयं एकादशाब्धयः ।
द्वाभ्यां भागाभ्यां समेतास्तृतीये द्वादशाब्धयः ।।२६४।।

चतुर्थे त्वेकभागाढयास्त्रयोदश पयोधयः ।
पञ्चमे प्रतरे पूर्णाश्चतुर्दशैव वार्द्धयः ।।२६५।।

दूसरे प्रतर के देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति ११- ३/५ सागरोपम की है, तीसरे प्रतर के देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति १२- २/५ सागरोपम की है । चौथे प्रतर के देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति १३- १/५ सागरोपम की है और पांचवे प्रतर के देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति पूर्ण १४ सागरोपम है ।

जघन्येन तु सर्वत्र, दशैव मकराकराः ।
स्वस्वस्थित्यनुसारेण, देहमानमथ ब्रुवे ।।२६६।।

जघन्य तो सर्वत्र १० सागरोपम की स्थिति समझना । अपने-अपने आयुष्य अनुसार देह प्रमाण इस तरह है । (२६६)

एका दशोद्भवैर्भागैश्चतुर्भिरग्निकाः कराः ।
पञ्चदेहमानमत्र, दशरत्नाकराब्युषाम् ।।२६७।।

दस सागरोपम के आयुष्य वाले देवताओं का देहमान ५- २/११ हाथ होता है । (२६७)

त्रिभागाढयाः कराः पञ्चैकादशार्णवजीविनाम् ।
हस्ताः पञ्च लवौ द्वौ च, द्वादशाम्योधिजीविनाम् ।।२६८।।

सैकभागाः कराः पञ्च, त्रयोदशार्णवायुषाम् ।
चतुर्दशाब्धिस्थितीनां, पूर्णाः पञ्च करास्तनुः ।।२६९।।

ग्यारह सागरोपम के आयुष्य वाले देवताओं का देहमान ५- ३/११ हाथ है। बारह सागरोपम के आयुष्य वाले देवताओं का देहमान ५- २/११ हाथ है, तेरह सागरोपम के आयुष्य वाले देवताओं का देहमान ५- १/११ हाथ का है और चौदह सागरोपम के आयु वाले देवताओं का देहमान सम्पूर्ण ५ हाथ प्रमाण का होता है । (२६८-२६९)

ईशानस्ववासिनीभिर्देवीभिर्विषयेच्छव: ।
चिन्तामात्रोपस्थिताभी, रमन्ते ब्रह्मदेव वत् ॥२७०॥

विषय सुख भोगने की इच्छा वाले देवताओं की इच्छा मात्र से आई हुई ईशान देवलोक की देवियों के साथ में वे देव ब्रह्मलोक के समान क्रीड़ा करते हैं। (२७०)

च्यवमानोत्पद्यमानसंख्या गत्यागती अपि ।
अवधिज्ञान विषय:, स्यादत्र ब्रह्म लोकवत् ॥२७१॥

च्यवन और उत्पत्ति की संख्या गति, अगति, अवधि ज्ञान का विषय ये सब विषय ब्रह्मलोक के समान समझ लेना । (२७१)

अत्रोत्पत्ति च्यवनयोरन्तरं परमं भवेत् ।
दिनानि पञ्चचत्वारिंशत् क्षणश्च जघन्यत: ॥२७२॥

यहां उत्पत्ति और च्यवन का उत्कृष्ट अन्तरा ४५ दिन का होता है और जघन्य से एक समय का होता है । (२७२)

पञ्चमे प्रतरे चात्र, स्याल्लान्तकावतंसक: ।
अङ्कावतंसकादीनां मध्येईशाननाकवत् ॥२७३॥
लान्तकस्तत्र देवेन्द्र: पुण्यसारो विराजते ।
सामानिकामरै: पञ्चाशता सेव्य: सहस्रकै: ॥२७४॥

यहां पांचवे प्रतर में अंकावतंसकादि विमानों की मध्य में ईशान देवलोक के समान लांतक वतंसक नामक का विमान है वहां लांतक नामक पुण्यशाली इन्द्र महाराजा विराजमान होता है और उसकी पांच हजार सामानिक देवताओं द्वारा सेवा होती है. । (२७३-२७४)

द्वाभ्यां देव सहस्राभ्यां, सेव्योऽभ्यन्तरपर्षदि. ।
मध्यमायां चतुर्भिस्तै: षड्भिश्च बाह्यपर्षदि ॥२७५॥ युग्मं ॥

अभ्यंतर पर्षदा के दो हजार मध्यम पर्षदा के चार हजार और बाह्य पर्षदा के छ: हजार देवों से सेवा होती है । (२७५)

सप्तषट् पञ्चभिं पल्योपमैः समधिका स्थितिः ।
द्वादशैवाम्बुनिधयस्तिसृणां पर्षदां क्रमात् ।।२७६।।

तीनों पर्षदा के देवों की स्थिति क्रमशः १२ सागरोपम/७ पल्योपम, १२ सागरोपम+ ६ पल्योपम और १२ सागरोपम + ५ पल्योपम का है । (२७६)

आत्म रक्षक देवानां, पञ्चाशता सहस्रकैः ।
एकैकस्यां दिशि सेव्यो, दण्डाद्यायुधपाणिभिः ।।२७७।।

प्राग्वदन्यैरपि मन्त्रित्रायस्त्रिंशकवाहनैः ।
सैन्यैः सैन्याधिपैर्लोकपालैः पालितशासनः ।।२७८।।

जिनार्चनादिकं धर्मं, कुर्वाणः परमार्हतः ।
दिव्य नाटयदत्तचेताश्चतुर्दशाब्धि जीवितः ।।२७९।।

सातिरेकानष्ट जम्बूद्वीपान् पूरयितं क्षमः ।
रूपैर्विकुर्वितैस्तिर्यगसंख्यद्वीपतोयधीन् ।।२८०।।

सविमान सहस्राणां, पञ्चाशतोऽप्यधीश्वरः ।
साम्राज्यं शास्ति देवानां, लान्तक स्वर्ग वासिनाम् ।।२८१।। *पञ्चभिकुलकं ।।*

दंड-आदि आयुध के हाथ में धारण करने वाले प्रत्येक दिशा में पचास-पचास हजार आत्मरक्षक देवता इस इन्द्र की सेवा करते हैं । (२७७) पूर्व में कहे अनुसार मन्त्री, त्रायस्त्रिंश, वाहन, सैन्य, सेनाधिपति लोकपाल आदि के द्वारा अपने शासन का पालन करने में आता है । (२७८) परमार्हत् इन्द्र महाराज श्री जिनेश्वर परमात्मा की पूजा आदि करते दिव्य नाटक को देखते चौदह सागरोपम का आयुष्य धारण करते हैं । (२७९) इन्द्र महाराज, अपने रचित रूपों से आठ जम्बूद्वीप से कुछ अधिक क्षेत्र को भरने में समर्थ है और तिर्यच असंख्य द्वीप समुद्र को भरने में समर्थ है (२८०) पचास हजार विमान के अधीश्वर लान्तकेन्द्र लान्तक स्वर्गवासी देवों का साम्राज्य करते हैं । (२८१)

अस्य यान विमानं च, भवेत्कामगमाभिधम् ।
देवः कामगमाभिख्यो, नियुक्तस्तद्विकुर्वणे ।।२८२।।

लान्तक इन्द्रका यान-विमान कामगम नाम का है और उसकी रचना करने वाला अधिकारी देव भी कामगम नाम का होता है । (२८२)

वैमानिकाः किल्विषिका स्त्रिधा भवन्ति तद्यथा ।
त्रयोदशाब्धित्रयम्भोधित्रिपल्योपम जीविनः ॥२८३॥

अब किल्बिषिक देवों का वर्णन करने में आता है : - वैमानिक देवों में तीन प्रकार के किल्विषक देव होते हैं वे १३ सागरोपम के आयुष्य वाले तीन सागरोपम वाले और तीन पल्योपम के आयुष्य वाले होते हैं । (२८३)

तत्र च - वसन्ति लान्तकस्याधस्त्रयोदशाब्धि जीविनः ।
अधः सनत्कुमारस्य, त्र्यम्भोधि जीविनः पुनः ॥२८४॥
त्रिपल्यस्थितित यस्ते च, सौधर्मेशानयोरथः ।
स्थानमेवं किल्विषिकसुराणांत्रिविधं स्मृतम् ॥२८५॥

उसमें १३ सागरोपम के आयुष्य वाले किल्विषिक देव लांतक देवलोक के नीचे निवास करते हैं । तीन सागरोपम के आयुष्य वाले सनत्कुमार देवलोक के नीचे रहते हैं और तीन पल्योपम के आयुष्य वाले सौधर्मेशान देवलोक के नीचे रहते हैं । इस तरह किल्विषिक देवों के तीन स्थान रहने के हैं । (२८४-२८५)

नन्वत्राधः शब्देन किमभिधीयते? अधस्तनप्रस्तरं तस्मादप्यधोदेशोवा? अन्यश्च द्वात्रिंशल्लक्ष विमान मध्ये साधारण देवी नामिवैतेषां कति चिद्विमानानि सन्ति । विमानैक देशे वा विमानाद्‌वहिर्वातिष्ठन्ति ते? इति ।

अत्रोच्यते - अत्राधः शब्द स्तस्थानवाचको ज्ञेयो यतोऽत्राधः शब्दः प्रथम प्रतरार्थो न घटते, तृतीय षष्ठ कल्पसत्वकिल्विषिकामराणां, तत्प्रथमप्रस्तटयोस्त्रिसागरोपम त्रयोदश सागरोपमस्थित्योर सम्भवात्, तथा तद्विमानानां संख्याः शास्त्रे नोपलभ्यते, तथा देवलोक गतद्वात्रिशल्लक्ष विमानसंख्यामध्ये तद्विमानागणनं न संभाव्यते इति तत्वं सर्वविद्वेद्यमिति वृद्धाः ॥

प्रश्नः - यहां 'अधः' शब्द से क्या कहना चाहता है ? नीचे का अन्तिम प्रतर अथवा प्रतर के नीचे के प्रदेश ? और बत्तीस लाख विमान में साधारण देवियों के विमानों के समान इनके अलग विमान हैं । विमान के एक प्रदेश में रहते हैं? अथवा विमानों के बाहर रहते हैं ?

उत्तर- यहां 'अध:' शब्द से स्थान समझना, क्योंकि अध: शब्द प्रथम प्रतर के अर्थ में भी नहीं घटता, तीसरे और छठे देवलोक के किल्विषिक देवों के प्रथम प्रतर में तीन सागरोपम और तेरह सागरोपम की स्थिति घटती नहीं है, उसके विमानों की संख्या शास्त्र में नहीं आती तथा देवलोक में रहे बत्तीस लाख विमानों के अन्दर उनके विमानों की गणना सम्भव नहीं है तत्वतो केवली गम्य है, इस तरह वृद्ध महापुरुष कहते हैं ।'

अभी च चण्डालप्राया, निन्द्यकर्माधिकारिण: ।
अस्पृश्यत्वादन्यदेवैर्धिक्कृतास्तर्जनादिभि: ।।२८६।।

ये किल्विषिक निंद्यकर्म के अधिकारी होने के कारण चंडाल समान है अस्पृश्य होने से अन्य देव इनको तर्जना आदि से धिक्कार देते हैं । (२८६)

देवलोके विमानेषु, सुधाभुक् पर्षदादिषु ।
कौतुकादि संगतेषु, देवानांनिकरेषु च ।।२८७।।

अष्टाह्निकाद्युत्सवेषु, जिन जन्मोत्सवादिषु ।
अ प्राप्तनुवन्त: स्थानं ते, स्वं शोचन्ति विषादिन: ।।२८८।।

देवलोक के विमान के विषय में, जिनकी पर्षदा में कौतुक से एकत्रित हुए देव के समूह में, अष्टाह्निकादि महोत्सव में, जिन जन्म महोत्सवादि के अन्दर स्थान नहीं प्राप्त करने से उदास बने हुए वे किल्विषिक देव अपने आप की निन्दा करते हैं । (ऐसे शुभ श्रेष्ठ अवसर हमें नहीं मिलते हैं) । (२८७-२८८)

आचार्योपाध्यायगच्छ संघ प्रतीपवर्त्तिन: ।
येऽवर्णवादिनस्तेषामयश: कारिणोऽपि च ।।२८९।।

असद् भावोद्भावनाभिर्मिथ्यात्वाभिनिवेशकै: ।।
व्युद्ग्राहयन्त: स्वात्मानं, परं तदुभयं तथा ।।२९०।।

प्रतिपाल्यापि चारित्रपर्यायं वत्सरान् बहून ।
तेऽनालोच्याप्रतिक्रम्य, तत्कर्माशर्मकारणम् ।।२४१।।

त्रयाणां किल्विषिकाणां, मध्ये भवन्ति कुत्रचित् ।
तादृशव्रतपर्यायापक्षेया, स्थितिशालिन: ।।२८२।।

आचार्य, उपाध्याय, गच्छ, और संघ के विरोधी अवर्णवादी उनके अपयश को करने वाले उनके प्रति असद्भाव उत्पन्न करने के कारण मिथ्यात्व के अभिनिवेष से आत्मा को, पर को और उभय को व्युदग्राहित करते जीव बहुत वर्ष चारित्र पालकर भी दु:ख के कारणभूत उस कर्म की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना मरकर के तीन किल्विषिक के मध्य में इस प्रकार के व्रत और पर्याय के सापेक्ष आयुष्य वाले देव बनते हैं । (२८६-२९२)

एभ्यश्चयुत्वा देवनरतिर्यकग्नारक जन्मसु ।
चतुर: पन्चा वा वारान्, भ्रान्त्वा सिद्धयन्ति केचन ।।२९३।।

केचित्पुन:रर्हदादि निबिडाशातनाकृत: ।
कृतानन्तभवाभीमं, भ्राम्यन्ति भवसागरम् ।।२९४।।

वहां से च्यवन कर देव मनुष्य तिर्यंच अथवा नरक योनि में चार पांच बार भ्रमणकर कोई मोक्ष में जाता है, जबकि कोई तो श्री अरिहंत भगवान की अत्यंत आशातना करके अनन्त जन्मों तक भयंकर संसार सागर में परिभ्रमण करता रहता है । (२९३-२९४)

तथाहु: "देव किव्विषिया णं यंते ! ताओ देव लोगाओ" - इत्यादि

शास्त्र में कहा है कि - हे भगवान ! उस देवलोक से किल्विषिक देव च्यवन कर कहां जाते हैं इत्यादि वह वर्णन पूर्व में आ गया है ।

जामेयोऽपिच जामाता, यथा वीरजगद्गुरो: ।
जमालि: किल्विषिके षूत्पन्नोलान्तक वासिषु: ।।२९५।।

जगतगुरु श्री महावीर परमात्मा का भानेज तथा दामाद जमाली लांतक देवलोक के किल्विषक में उत्पन्न हुआ है। (२९५)

स हि क्षत्रियकुण्डस्थ: क्षत्रियस्ताण्डवादिषु ।
मग्न: श्रुत्वा महावीरमागतं वन्दितुं गता: ।।२९६।।

क्षत्रिय कुंड के रहने वाला क्षत्रिय जामाली नाटक आदि देखने में मग्न रहता था, उस समय परमात्मा श्री महावीर प्रभु का आगमन सुनकर वह वंदन के लिए गया । (२९६)

श्रुत्वोपदेशं संविग्नोऽनुज्ञाप्य पितरौ व्रतम् ।

जग्राह पञ्चभिः पुंसा, शतैः सह महामहैः ॥२९७॥

वीर परमात्मा का उपदेश सुनकर वैराग्ययुक्त बनकर माता-पिता की आज्ञा लेकर पांच सौ पुरुषों के साथ महा महोत्सव पूर्वक उसने दीक्षा स्वीकार की । (२९७)

अधीतैकादशाङ्गीकस्तयैवार्हदनुज्ञया: ।

सेव्य: साधुपंञ्चशत्या: चकारानेकधातप ॥२९८॥

पांच सौ साधुओं से युक्त वह जमाली ग्यारह अंग (शास्त्र) पढ़कर परमात्मा की अनुज्ञापूर्वक अनेक प्रकार से तपस्या करता था । (२९८)

पप्रच्छ चैकदाऽर्हन्तं, विजिहीर्षु पृथग्जिनात् ।

तूष्णीं तस्थौ प्रभुरपि, जानंस्तद्भविवैशसम् ॥२९९॥

एक दिन उस जमाली ने श्री जिनेश्वर भगवान से अलग विचरणे की इच्छा होने से भगवान के पास अनुज्ञा मांगी उस समय भगवान ने उसका विपरीत भाव देखकर मौन धारण कर लिया ।

अननुज्ञात एवैष, उपेक्ष्य जगदीश्वरम् ।

विहरन् सहितः शिष्यैः, श्रावस्तीं नगरीं ययौ ॥३००॥

भगवान की अनुज्ञा नहीं होने पर भी उपेक्षा करके वह अपने शिष्यों के साथ में विचरण करते श्रावस्ती नगरी में गया । (३००)

तत्र तस्यान्यदा प्रान्ताद्यशनेन ज्वरोऽभवत् ।

शिष्यान् शिशयिषुः संस्तारकक्लृप्त्यै समादिशत् ॥३०१॥

वहां एक दिन उसको रूखा सूखा भोजन करने के कारण बुखार आ गया, और उस समय सोने की इच्छा से उसने शिष्यों को संथारा करने के लिए आदेश दिया । (३०१)

तमास्तरन्ति ते यावत्तावदेषोऽतिपीडितः ।

ऊचे संस्तारको हन्त, कृतोऽथ क्रियतेऽथवा? ॥३०२॥

द्रागेष क्रियते स्वामिन् ! श्रुत्वेति शिष्य भाषितम् ।
मिथ्याविपर्यस्तमतिरिति चेतस्यचिन्तयत् ॥३०३॥

प्रत्यक्षं क्रियमाणोऽयमकृतो यत्र भुज्यते ।
क्रियमाणं कृतमिति, तत्किमहान्तिमो जिनः ॥३०४॥

ध्यात्वेति सर्वानाहूय, शिष्यानेषोऽत्रब्रवीदिति ।
कृतमेण कृतं वस्तु, क्रियमाणं न तत्तथा ॥३०५॥

क्रियमाणं कृत किंचिन्न चेदाद्यक्षणादिषु ।
सर्वमन्त्यक्षणे तर्हि, तत्कर्त्तु शक्यते कथम् ? ॥३०६॥

देशतः कृतमेवेति, क्रियमाणं क्षणे क्षणे ।
जीर्यमाणं जीर्णमेवं, चलच्चलितमेव च ॥३०७॥

शिष्य जब संथारा कर रहे थे उस समय अधिक पीड़ा के कारण ज़माली ने शिष्यों को पूछा - संथारा तैयार हो गया या होता है ? किया या करवाया ? तब शिष्यों ने कहा - 'हे गुरुदेव ! संथारा अभी ही किया है । इस तरह से शिष्य कथित सुनकर मिथ्यात्व के कारण विपरीत बुद्धि से उसने विचार किया कि प्रत्यक्ष रुप में किया जाता (होता) है यह संथारा (अकृत) है इसमें उसका उपयोग नहीं किया जाता है फिर भी किया जाता है । और वह करना इस तरह से श्री अन्तिम जिनेश्वर क्यों कहते होगे? इस तरह चिन्तन कर सभी शिष्यों को बुलाकर उनको कहा - सम्पूर्ण रुप में की हुई वस्तु को ही की हुई कहना चाहिए । करते होते वस्तु को उस तरह नहीं करना चाहिए । उस समय उनके शिष्यों ने सामने प्रश्न किया कि - प्रथमादि क्षणों में होती क्रिया यदि थोड़ी भी देश से की हुई नहीं कहे तो अन्तिम क्षण में पूर्ण किस तरह से कह सकते हैं? सारा हो गया इस तरह किस तरह कह सकते हैं? क्षण-क्षण में होता देश से होता ही है पूर्ण होते वस्तुत जैसे जीर्ण कहलाती है । चलती हुई वस्तु को जिस तरह चलित कहलाता है उसी तरह कार्य प्रारम्भ करने से, वह कार्य हुआ ऐसा व्यवहार से कहा जाता है । (३०२-३०७)

इत्यादि युक्तिभिः शिष्यै बोधि तोऽपि कदाग्रही ।
कैश्चिद्धर्मार्थिभिस्त्यक्तः, कैश्चित्स एव चादृतः ॥३०८॥

इत्यादि युक्तियों से शिष्यों ने समझाया फिर भी जमाली कदाग्रही होने के कारण उसन अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा, इससे कई धर्मार्थी शिष्यों ने उसे छोड़ दिया और कई शिष्यों ने उसका आदर-स्वीकार किया । (३०८)

यैस्त्यक्तस्ते महावीरं, चम्पायां पुरी संस्थितम् ।
अभ्युपेत्य गुरुकृत्योद्युक्ताः स्वार्थमसाधयन् ॥३०९॥

जिन्होंने छोड़ दिया वे सभी ने चंपानगरी में विराजमान श्री महावीर स्वामी के पास में आकर मोक्ष मार्ग में उद्यमशील होकर स्वार्थ कल्याण की साधना की । (३०९)

क्रमाद्विमुक्तो रोगेण द्रव्यलोन तु यावतः ।
जमालिरपि चम्पायामुपवीरमुपागतः ॥३१०॥

अनुक्रम से जमाली का द्रव्यरोग शान्त हो गया, परन्तु भाव रोग शान्त न हुआ उसके बाद जमाली भी चम्पानगरी में श्री वीर परमात्मा के पास में आया । (३१०)

कदाग्रहग्रहग्रस्त प्रशस्तधिषणाबलः ।
इत्याललाप भगवन् ! भवच्छिष्याः परे यथा ॥३११॥

छद्मस्था न तथैवाहं किंतु जातोऽस्मि केवली ।
इति ब्रुवाणं भगवानिन्द्रभूतिस्तमब्रवीत् ॥३१२॥

ज्ञानं केवलिनः शक्यं, नावरीतुं पटादिभिः ।
यदि त्वं केवली तर्हि प्रश्नयोर्मे कुरुत्तरम् ॥३१३॥

कदाग्रह रूपीग्रह से उसकी निर्मल बुद्धि मलीन हो गई थी अतः जमाली ने परमात्मा को कहा - भगवान ! तुम्हारे अन्य शिष्य छद्मस्थ है वैसा मैं नहीं हूँ परन्तु मैं केवली बना हूँ । इस तरह बोलते जमाली को श्री इन्द्र भूति भगवान ने कहा कि - केवलज्ञानी का ज्ञान तो पर आदि से आवरण रहित होता है यदि तुम्हें केवल ज्ञान हो तो मेरे दो प्रश्न का उत्तर दो । (३११-३१३)

जमाले ! नन्वसौ लोकः शाश्वतोऽशाश्वतोऽथवा ।
जीवोऽप्यशाश्वतः किं वा, शाश्वतस्तद्वदद्रुतम् ॥३१४॥

हे जमालि ! यह लोक शाश्वत है अथवा अशाश्वत है ? जीव भी शाश्वत है अथवा अशाश्वत है ? इसका उत्तर जल्दी दो । (३१४)

जगद्गुरु प्रत्यनीककतया प्रश्नमपीदृशम् ।
सोऽक्षमः प्रत्यवस्थातुं, बभूव मलिनाननः ॥३१५॥

भगवान के प्रत्यनिक होने के कारण ऐसे सामान्य भी प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ बनने से वह श्याम मुखवाला हो गया । (३१५)

ततः स वीरनाथेन, प्रोक्तः किं मुह्यसीह भोः ।
शाश्वताशाश्वतौ ह्येतौ, द्रव्यपर्यायभेदतः ॥३१६॥

उस समय श्री महावीर प्रभु ने कहा – हे जमाली ! तू किसलिये मुरझा रहा है ? यह जगत और जीव दोनों पदार्थ द्रव्य और पर्याय के भेद से शाश्वत और अशाश्वत होता है । (३१६)

छद्मस्थाः सन्ति मे शिष्या, ईदृक्प्रश्नोत्तरे क्षमाः ।
अनेके न तु ते त्वद्वदसत्सार्वज्ञ्यशंसिनः ॥३१७॥

मेरे अनेक छद्मस्थ शिष्य हैं परन्तु इस प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ है फिर भी तेरे समान अपने आप को झूठ रुप में सर्वज्ञ नही कहते हैं । (३१७)

अश्रद्धधत्तजिनोक्तं स्वैरं पुनरपि भ्रमन् ।
व्युद्ग्राह्यंश्च स्वपरं, कुर्वंस्तपांस्यनेकधा ॥३१८॥

अन्तेऽर्द्धमासिकं कृत्वाऽनशनं तच्च पातकम् ।
अनालोच्याप्रतिक्रम्य, मृत्वा किल्विषिकोऽभवत् ॥३१९॥

ततश्च्युत्वा च विबुधतिर्यग्मनुजजन्मसु ।
उत्पद्य पञ्चश पञ्चदशे जन्मनि सेत्स्यति ॥३२०॥

इस तरह से युक्ति पूर्वक भी भगवान की कही बात ऊपर श्रद्धा नहीं करते इच्छानुसार भ्रमण करते स्व, पर कों व्युदग्राहित करते अनेक प्रकार का तप करते अन्तिम समय में अर्ध महीने का अनशन करके उस पाप की आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना मरकर किल्विषिक देव हुआ, वहां से च्यवन कर देव तिर्यंच और मनुष्य के जन्मों में पांच-पांच बार जन्म लेकर वह पन्द्रवें जन्म में सिद्धगति प्राप्त करेगा। (३१८-३२०)

तथाहु: - "गो० ! चत्तारि पञ्चतिरिक् ख जोणियमणुस्सदेव भवग्गहणाइं संसारं अणु परियट्टिता ततो पच्छा सिज्झिहितिजावअंतं काहिति" भगवती सूत्रे श० ९ उ० ३॥

श्री भगवती सूत्र के अन्दर नौवे शतक तेतीस उद्देश में कहा है कि - हे गोतम ! चार पाँच तिर्यंच, मनुष्य तथा देव जन को स्वीकार रूप संसार में परिभ्रमण कर उसके बाद सिद्धि प्राप्त करेगा । भव-संसार का अंत करेगा ।

ग्रन्थान्तरे च यद्यस्यानन्ता अपिभवाः श्रुताः ।
तदा तदनुसारेण, तथाज्ञेया विवेकिभिः ॥३२१॥

यद्यपि - ग्रन्थान्तर में जमाली के अनंत संसार भ्रमण भी सुने जाते हैं तब उनके अनुसार विवेकी पुरुष को समझ लेना । (३२१)

जिनं विनाऽन्यः कस्तत्त्वं, निश्चेतुं, निश्चेतुं क्षमतेऽपरः ।
ततः प्रमाणमुभयं, श्री वीराज्ञाऽनुसारिणाम् ॥३२२॥

श्री जिनेश्वर भगवन्त बिना अन्य कौन तत्त्व का निश्चय कर सकते हैं, इसलिए श्री वीर परमात्मा की आज्ञानुसार जीव के लिए दोनो वस्तु प्रमाण है । (३२२)

सत्यप्येवं पञ्चमाङ्गवचोविलुप्य ये जडाः ।
एकान्तेन भवानस्यानन्तान्निश्चिन्वतेऽधुना ॥३२३॥
कदाग्रहतमश्छन्ननयनास्ते मुधा स्वयम् ।
भवैरनन्तैर्युज्यन्ते, परानन्तभवाग्रहात् ॥३२४॥

इस तरह होने पर भी जो जड़ पुरुष एकान्त में श्री भगवती सूत्र की बातों को उड़ाकर अभी जमाली के अनन्त जन्मों को निश्चय करता है, वह कदाग्रह रूपी अंधकार से ढकी आंख वाला निष्फल विचार अन्य-अन्य को अनंत संसार-संसार का रास्ता पकड़वा कर स्वयं अनंत सागर से जुड़ जाता है । (३२३-३२४)

एवं च "अनन्ता संख्य संख्येयानुत्सूत्र भाषिणोऽपिहि ।
परिणाम विशेषेण, भवान् भ्राम्यन्ति संसृतौ ॥३२५॥

और भी कहा है कि - परिणाम विशेष उत्सूत्र भाषी जीव इस संसार में अनंत असंख्यात और संख्यात जन्म में परिभ्रमण करता है । (३२५)

तथोक्तं महा निशीथ द्वितीयाध्ययने - "जेणं तित्थगरादीणं महतीं आसायणं कुज्जा से णं अज्झ वसायंपडुच्च जावणं अणंत संसारियत्तणं लभेज्जा," यावच्छब्द मर्यादाया चात्र संख्याता असंख्याता अपि भवा लभ्यन्त इति ध्येयं ।

श्री महानिशीथ के द्वितीय अध्ययन में कहा है कि - जो तीर्थङ्कर आदि की महान् आशातना करता है, उस अध्यावसाय अनुसार अनंत संसार तक भी भ्रमण करता है । यहां 'यावत्' मर्यादा के अर्थ में होने से यावत् शब्द से संख्यात-असंख्यात् जन्म भी घट सकते हैं ।

उत्सूत्रभाषिणां ये चानन्तामेव कदाग्रहात् ।
भवानूचुरुपेक्ष्यं तत्तेषां वातूलचेष्टितम ॥३२६॥

जो लोग कदाग्रह से उत्सूत्र भाषी के अनंत संसार ही कहते हैं वह उनका पागलपन है और वह उपेक्षा करने जैसा है । (३२६)

अत: परं किलिबषिका जातीयानामसंभव: ।
यथाऽऽभियोगिकादीनामच्युतस्वर्गत: परम् ॥३२७॥

इस देवलोक से आगे किल्बिषिक देव नहीं होते हैं । जिस तरह से अच्युत देवलोक से आगे आभियोगिक देव नहीं होते उसी तरह वहां भी वे नहीं होते । (३२६)

अथोर्ध्वं लान्तकस्वर्गात्समपक्षं समानदिक् ।
योजनानामसंख्येयकोटाकोटिव्यतिक्रमे ॥३२८॥

अस्ति स्वर्गो महाशुक्र:, संपूर्ण चन्द्र संस्थित: ।
चत्वार: प्रतरास्तत्र, प्रतिप्रतरमिन्द्रकम् ॥३२९॥

अब महाशुक्र देव लोक का वर्णन करते हैं - लान्तक स्वर्ग से बराबर ऊपर समान दिशा में असंख्यक कोटा कोटि योजन जाने के बाद सम्पूर्ण चन्द्राकार से महाशुक्र नामक देवलोक है और उसमें चार प्रतर है । प्रत्येक प्रतर में एक-एक इन्द्रक विमान होता है । (३२८-३२९)

आभङ्करं गृद्धिसंज्ञं केतुश्च गरुलाभिधम् ।
चतस्र: पङ्क्तयस्त्वेभ्य:, प्राग्वत्पुष्पावकीर्णका: ॥३३०॥

उन इन्द्रक विमानों के नाम क्रमशः १-आयंकर, २-वृद्धि, ३-केतु और ४-गरुल है । उनकी चार-चार पंक्ति निकलती है और पूर्व के समान अन्य पुष्पा वकीर्णक विमान है । (३३०)

षड्विशंति पञ्च चतुरस्त्रधिक विंशतिः क्रमात् ।
प्रतरेषु चतुर्ष्वेषु प्रतिपङ्क्ति विमानकाः ॥३३१॥

प्रत्येक प्रतर में चार दिशा के क्रमशः छब्बीस, पच्चीस, चौबीस और तेईस विमान प्रत्येक पंक्ति में होते हैं । (३३१)

तत्राद्यप्रतरे पङ्क्तौ पङ्क्तावष्टैव वृत्तका: ।
नव च त्रिचतुःकोणाः, सर्वे चतुर्युतं शतम् ॥३३२॥

पहले प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में आठ गोल विमान तथा त्रिकोन और चतुष्कोन नौ, नौ विमान होते हैं, कुल मिलाकर एक सौ चार विमान होते हैं । (३३२)

द्वितीय प्रतरे त्र्यस्त्रा नवाष्टाष्टापरे द्विधाः ।
सर्वे शतं तृतीय च, प्रतरेऽष्टाष्ट ते त्रिधा ॥३३३॥

दूसरे प्रतर में त्रिकोन विमान नौ हैं, गोल और चतुष्कोन विमान आठ-आठ हैं, कुल मिलाकर एक सौ विमान होते हैं । तीसरे प्रतर में तीनों प्रकार के आठ-आठ विमान हैं, कुल-छियानवे विमान होते हैं । (३३३)

सर्वे च ते षण्णवतिश्चतुर्थप्रतरे पुनः ।
अष्टौत्र्यस्त्राश्चतुरस्त्रा, वृत्ताः सप्त विमानकाः ॥३३४॥

सर्वेऽत्र द्वि नवतिः पाङ्क्तेयाः परिकीर्त्तिताः ।
चतुरिन्द्रकयोगेऽत्र, सर्वेस्युः पङ्क्ति वृतकाः ॥३३५॥

अष्टाविशं शतं पङ्क्तित्र्यस्त्राः षट्त्रिशकं शतम् ।
द्वात्रिशं च शतं पङ्क्तिचतुरस्त्राः प्रकीर्तिताः ॥३३६॥

चौथे प्रतर में त्रिकोन और चोरस विमान आठ-आठ हैं और गोलाकार विमान सात है कुल मिलाकर विमान बयानवें होते हैं । चार प्रतर के मिलाकर पंक्तिगत गोल विमान इन्द्रक विमान मिलाकर एक सौ अट्ठाईस होते हैं । त्रिकोन विमान एक सौ छब्बीस होते हैं और चोरस विमान एक सौ बत्तीस कहे हैं । (३३४-३३६)

एवं पङ्क्ति विमानानां महाशुक्रे शतत्रयम् ।
षण्णवत्यासमधिकं शेषाः पुष्पावकीर्णकाः ॥३३६॥

सहस्त्राण्येकोनचत्वारिंशदेव च षट् शती ।
चतुर्युतैव सर्वे च, चत्वारिंशत्सहस्त्र काः ॥३३८॥

इस तरह से महाशुक्र देवलोक में पंक्तिगत विमान तीन सौ छियानवे होते हैं और पुष्पा वकीर्णक विमान उनतालीस हजार छः सौ चार (३६६०४) है और कुल मिलाकर चालीस हजार होते हैं । (३३७-३३८)

आधारतो लान्तकवद्, द्विधाऽमी वर्णतः पुनः ।
शुक्लाः पीताश्चपूर्वेभ्यो वर्णाद्युत्कर्षशालिनः ॥३३९॥

देवलोक के नीचे आधारभूत घनवात आदि लान्तक देवलोक के समान समझना । यहां के देव शुक्ल और पीले इस तरह दो वर्ण वाले होते हैं और पूर्व के देवों से श्रेष्ठ वर्णवाले होते हैं । (३३९)

पृथ्वीपिण्डः शतानीह, चतुर्विंशतिरीरितः ।
योजनानां शतान्यष्टौ, प्रासादाः स्युः समुच्छ्रिताः ॥३४०॥

इस देवलोक का पृथ्वी पिंड चौबीस सौ योजन का है और प्रासाद आठ सौ योजना ऊँचा होता है । (३४०)

प्रथमप्रतरे चात्र, देवानां परमास्थितिः ।
पादोनानि पञ्चदश, स्यु सागरोपमाण्यथ ॥३४१॥

द्वितीयप्रतरे पञ्चदश सार्द्धानि तान्यथ ।
तृतीय च सपादानि, षोडशैतानि निश्चितम् ॥३४२॥

यहां प्रथम प्रतर में देवों की उत्कृष्ट स्थिति पोने पंद्रह सागरोपम की है, दूसरे प्रतर के देवों की उत्कृष्ट स्थिति साढ़े पन्द्रह सागरोपम की है और तीसरे प्रतर के देवों की उत्कृष्ट स्थिति सवा सोलह सागरोपम की है । (३४१-३४२)

चतुर्थे च सप्तदश, वार्द्धयः परमास्थितिः ।
सर्वेष्वपि जघन्या तु, चतुर्दश पयोधयः ॥३४३॥

चौथे प्रतर के देवों की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागरोपम की कही है । चारों प्रतर में जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम कही है । (३४३)

कराः पञ्च देहमत्र चतुर्दशाविध जीविनाम् ।
कराश्चत्वार स्त्रयोऽंशा, पञ्चदशाब्धिजीविनाम् ॥३४४॥

यहां रहे चौदह सागरोपम के आयुष्य वाले देवताओं के देह की ऊँचाई पाँच हाथ होती है और पन्द्रह सागरोपम के आयुष्य वाले देवों की देह की ऊँचाई चार हाथ और तीन अंश होती है । (३४४)

षोडशाब्ध्यायुषां हस्तश्चत्वारोऽंशद्वयान्विताः ।
एकांशाढयास्ते तु सप्तदशसागरजीविनाम् ॥३४५॥

सोलह सागरोपम के आयुष्य वाले देवों के देह की ऊँचाई चार हाथ और दो अंश होती है और सतरह सागरोपम के आयुष्य वाले देवों के देह की ऊँचाई चार हाथ और एक अंश होती है । (३४५)

एकादश विभक्तैककरस्यांशा अमी इह ।
अहारोच्छ्वास कालस्तु, प्राग्वत्सागरसंख्यया ॥३४६॥

ग्यारह विभाग के विभक्त हुए हाथ के यह अंश समझना, आहार और उच्छ्वास का काल पूर्व के समान सागरोपम की संख्या के अनुसार समझ लेना । (३४६)

कामभोगाभिलाषे तु, तेषां संकेतिता इव ।
सौधर्म स्वर्ग देव्योऽत्रायान्ति स्वार्हा विचिन्तिताः ॥३४७॥

इन देवताओं को कामभोग की अभिलाषा होती है उस समय उनकी संकेतिता व्यक्ति के समान सौधर्म देवलोक की अपने योग्य देवियाँ चिन्तन करने मात्र से वहां आती हैं । (३४७)

अथासां दिव्य सुदृशां, शृङ्गाररसकोमलम् ।
गीतं स्फीतं च साकूतं, स्मितं ललित कूजितम् ॥३४८॥

विविधान्योक्ति वक्रोक्ति व्यङ्ग्यवल्गुवचोभरम् ।
हृद्यग द्यपद्यनव्यभव्य काव्यादिपद्धतिम् ॥३४९॥

कङ्कणानां रणत्कारं, हारकाञ्चीकलध्वनिम् ।
मणि मञ्जीरझंकारं, किङ्किणी निष्क्वणोल्वणम् ॥३५०॥

कामग्रहार्त्तिशमनमन्त्राक्षरमिवाद्‌भुतम् ।
शब्दं शृण्वन्त एवामी, तृप्यन्ति सुरतादिव ॥३५१॥

उस समय काम वासना के रुप ग्रह की पीड़ा की शान्ति के लिए मानो अद्‌भुत मंत्राक्षर न हो इस तरह देवांगानाओं का अद्‌भुत शृंगार रस से कोमल और विशाल सुन्दर गति अभिप्राय सहित का स्मित, कामगर्भित आवाज, विविध प्रकार की अन्योक्ति, वक्रोक्ति, व्यंगयोक्ति, सुन्दर वचन के समूह, हृदयगम गंध पद्म नये काव्यों की पद्धतियाँकिंकन्या के रणत्कार, हार और करधनी की मधुर ध्वनि, मणि के झांझर की झंकार और घुंघरूओं की आवाज सुनते ही संभोग के समान तृप्त हो जाता है । (३४८-३५१)

देव्योऽपिता दूरतोऽपि, वैक्रियैः शुक्रपुद्गलैः ।
तृप्यन्त्यङ्गे परिणतैस्तादृग्दिव्यप्रभावतः ॥३५२॥

इस प्रकार से दिव्य प्रभाव से अपने शरीर में परिणाम हुए वैक्रिय शुक्र पुद्‌गलों से दूर रही देवियाँ भी तृप्त होती हैं । (३५२)

अर्द्धनाराचावसानचतुःसंहननाञ्चिताः ।
गर्भजा नरतिर्यञ्चो, लभन्तेऽत्रामृताशिताम् ॥३५३॥

अर्ध नाराच तक के चार संघयण वाले गर्भज मनुष्य और तिर्यंच यहाँ देवरूप में उत्पन्न होते हैं। (३५३)

अस्माच्च्युत्वा नृतिरश्चोरेव यान्ति सुधाभुजः ।
च्यवमानोत्पद्यमानसंख्या त्वत्रापि पूर्ववत् ॥३५४॥

यहाँ से च्यवन कर देवता मनुष्य और तिर्यंच में ही उत्पन्न होते हैं च्यवन और उत्पत्ति की संख्या यहाँ भी पूर्व के समान समझ लेना । (३५४)

अत्रोत्पत्ति च्यवनयोर्विरहः परमो भवेत् ।
अशीतिं दिवसानेकं, समयं च जघन्यतः ॥३५५॥

यहाँ उत्पत्ति और च्यवन का विरह उत्कृष्ट से ८० दिन और जघन्य से एक समय का होता है । (३५५)

पश्यन्ति देवा अत्रत्या, अवधिज्ञानचक्षुषा ।
पङ्कप्रभायास्तुर्यायाः, पृथ्व्या अधस्तलावधि ॥३५६॥

यहाँ के देव अवधिज्ञान रूपी चक्षु से पंकप्रभा नामक चौथी पृथ्वी के नीचे विभाग तक देख सकते हैं। (३५६)

अत्रत्यानां च देवानां दिव्यां देहद्युति ननु ।
सोढुं शक्नोति सौधर्माधिपोऽपि न सुरेश्वरः ॥३५७॥

सौधर्मेन्द्र भी यहाँ के देवों के देह की दिव्यकान्ति को सहन करने के लिए समर्थ नहीं है । (३५७)

श्रुयते हि पुरा गङ्गदत्तमत्रत्यनिर्जरम् ।
आगच्छन्तं परिज्ञाय, नन्तुं वीरजिनेश्वरम् ॥३५८॥

पूर्वागतो वज्रपाणिस्तत्तेजः क्षन्तुमक्षमः ।
प्रश्नानापृच्छय संक्षेपात् संभ्रान्तः प्रणमन् ययौ ॥३५९॥

शास्त्र में सुना जाता है कि यहाँ के गंगदत्त नामक देव को जो श्री वीर जिनेश्वर को नमस्कार करने आ रहा है । ऐसा जानकर पहले आए सौ धर्मेन्द्र उसके तेज को सहन करने में असमर्थ बन गया था । फिर संक्षेप में प्रश्न पूछकर और नमस्कार करके वापिस चला गया । (३५८-३५९)

"एतच्चार्थ तो भगवती सूत्रे षोडशशतकपञ्चमोद्देशके ॥"

(अर्थ से यह बात श्री भगवती सूत्र के सोलहवें शतक के पाँचवें उद्देश में कहा गया है ।)

चतुर्थे प्रतरेऽत्रापि, महाशुक्रावतंसकः ।
सौधर्मवदशोकाद्यवतंसक चतुष्कयुक् ॥३६०॥

इस देवलोक के चौथे प्रतर में सौधर्म देवलोक के समान महाशुक्रावतंसक नाम का मुख्य विमान है और उसके आसपास अशोकावतंसकादि चार विमान है । (३६०)

उत्पद्यते चात्र महाशुक्रनामा सुरेश्वर: ।
प्राग्वत्कृत्वाऽर्हदाद्यर्चामलंकुर्यान्महासनम् ॥३६१॥

और उस विमान में महाशुक्र नामक इन्द्र उत्पन्न होता है । पूर्व के इन्द्रों के समान श्री अरिहंत परमात्मा की पूजा करके आसन को अलंकृत करता है । (३६१)

एक देव सहस्रेण सेव्योऽभ्यन्तरपर्षदाम् ।
पञ्चपल्याधिकापार्द्ध षोडशाम्भोधिजीविनाम् ॥३६२॥

सहस्रद्वितयेनैष सेवितो मध्यपर्षदाम् ।
चतु: पल्याधिक सार्द्ध पञ्चदशार्णवायुषाम् ॥३६३॥

चतु: सहस्त्रया देवानां, सेवितो बाह्य पर्षदाम् ।
त्रिपल्योपम युक्सार्द्धपञ्च दशार्णवायुषाम् ॥३६४॥

सामानिकानां चत्वारिंशता सेव्य: सहस्र कै: ।
चतुर्दिशं च प्रत्येकं तावद्भिरङ्ग रक्षकै: ॥३६५॥

त्रायस्त्रिंशैलोकपालैरनीकानीकनायकै: ।
अन्यैरपि महाशुक्र वासिभि: सेवित: सुरै: ॥३६६॥

जम्बूद्वीपान् पूरयितु क्षम: षोडश सर्वत: ।
रूपैर्विकुर्वितैस्तिर्यगसंख्यद्वीपतोयधीन् ॥३६७॥

सद्विमानसहस्राणां, चत्वारिंशत् ईश्वर: ।
महाशुक्रं शास्ति सप्तदश पाथोनिधि स्थिति: ॥३६८॥*सप्तभि: कुलकम् ।*

महा शुकेन्द्र साढे पंद्रह सागरोपम + ५ पल्योतम की स्थिति धारण करते अभ्यन्तर पर्षदा के हजार देव, साढे पंद्रह सागरोपम + चार पल्योपम स्थिति धारण करते मध्यम पर्षदा के दो हजार देव, साढ़े पंद्रह सागरोपम + तीन पल्योपम की स्थिति धारण करते बाह्य पर्षदा के चार हजार देव, चालीस हजार सामानिक देव और चारों तरफ चालीस-चालीस हजार आत्मरक्षक देवता त्रायस्त्रिंश लोकपाल, सेना, सेनाधिपति और अन्य भी महाशुक्रवासी देवताओं द्वारा सेवा होती है और यह इन्द्र अपने रचित रूप से सोलह जम्बू द्वीप और तिर्च्छे असंख्य द्वीप समुद्र को भरने के

लिए समर्थ है । सत्तरह सागरोपम के पूर्ण आयुष्य धारण करने वाला यह इन्द्र महाराज चालीस हजार विमान ऊपर शासन करने वाला होता है । (३६२-३६८)

अस्य यान विमानं च, भवेत्प्रीतिमनोऽभिधम् ।
देवः प्रीतिमनाः ख्यातो भियुक्तस्तद्विकुर्वणे ॥३६६॥

उनके बाहर जाने का विमान प्रीतिमनास नाम का है और उसकी रचना करने में प्रीतिमना नाम का देव नियुक्त है । (३६६)

महाशुक्राद्थास्त्यूर्ध्व, सहस्रारः सुरालयः ।
योजनानामसंख्येयकोटाकोटिव्यतिक्रमे ॥३७०॥

अब सहस्रार देवलोक का वर्णन करने में आता है । महाशुक्र देवलोक में बराबर ऊपर असंख्य कोटा कोटि योजन जाने के बाद सहस्रार नामक देवलोक है। (३७०)

चत्वारः प्रतरास्तत्र, प्रत्येकमिन्द्रकाङ्किताः ।
ब्रह्म ब्रह्महितं ब्रह्मोत्तरं च लान्तकं क्रमात् ॥३७१॥

उस देवलोक के चार प्रतर हैं प्रत्येक प्रतर में इन्द्रक विमान हैं, उनके नाम अनुक्रम से ब्रह्म, ब्रह्महित, ब्रह्मोत्तर और लांतक है । (३७१)

चतस्रः पङ्क्तयश्चैभ्यः, प्राग्वत्पुष्पावकीर्णकाः ।
द्वाविंशतिस्तथा चैकविशंतिर्विंशतिःक्रमात् ॥३७२॥
एकोनविंशतिश्चेति, प्रतरेषु चतुर्ष्वपि ।
एकैक पङ्क्तौ संख्यैयं, विमानानां भवेदिह ॥३७३॥

पहले के समान यहाँ पर भी प्रत्येक प्रतर में चार-चार पंक्तियाँ हैं और पुष्पा वकीर्णक विमान है, प्रत्येक पंक्ति की चार दिशा में प्रथम प्रतर में २२ विमान है दूसरी प्रतर में २१ विमान, तीसरी प्रतर में २० विमान और चौथे प्रतर में १६ विमान है । इस तरह से एक-एक पंक्ति में विमान की संख्या जानना । (३७२-३७३)

तत्राद्यप्रतरे त्र्यस्त्रा, अष्टान्ये सप्त सप्त च ।
प्रति पङ्क्त्यथ सर्वेऽत्राष्टाशीतिः पङ्क्ति वर्तिनः ॥३७४॥

उसमें पहले प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में त्रिकोन विमान आठ दूसरे सात-सात विमान है और कुल मिलाकर अट्ठासी विमान होते हैं । (३७४)

द्वितीय प्रतरे सप्त सप्तैते त्रिविधा अपि ।
सर्वे चतुरशीतिश्च, तृतीयप्रतरे पुनः ॥३७५॥

दूसरे प्रतर के अन्दर तीन प्रकार के विमान सात-सात हैं और कुल मिलाकर चौरासी (८४) विमान होते हैं । (३७५)

वृत्ताः षट् सप्त सप्तान्येऽशीतिश्च सर्वसंख्यया ।
तुर्ये त्र्यस्त्राः सप्त षट् षट्, परे षट् सप्ततिः समे ॥३७६॥

तीसरे प्रतर में गोल विमान छः हैं और दूसरे में सात-सात हैं । कुल अस्सी विमान है, चौथे प्रतर में त्रिकोन विमान सात और दूसरे विमान छः-छः हैं। कुल मिलाकर ७६ विमान होते हैं । (३७६).

चतुर्णामिन्द्रकाणां च योगेऽत्र पङ्क्ति वृत्तकाः ।
अष्टोत्तरशतं पङ्क्तित्र्यस्त्राश्च षोडशं शतम् ॥३७७॥

अष्टोत्तरशतं पङ्क्ति चतुरस्त्रास्ततोऽत्र च ।
द्वात्रिंशदधिकं पङ्क्तिविमानानां शतत्रयम् ॥३७८॥

चार इन्द्रक विमान मिलाकर पंक्तिगत गोल विमान एक सौ आठ हैं, त्रिकोण विमान एक सौ सोलह हैं, चोरस विमान एक सौ आठ हैं और कुल मिलाकर पंक्तिगत विमान तीन सौ बत्तीस होते हैं । (३७७-३७८)

षट्शताभ्यधिकाः पञ्च सहस्त्राः साष्टषष्टयः ।
पुष्पावकीर्णका अत्र, सर्वे ते षट् सहस्त्रका ॥३७९॥

पांच हजार छः सौ अड़सठ (५६६८) विमान पुष्पा वकीर्णक होते हैं और इस देवलोक के कुल विमान छः हजार होते हैं । (३७९)

आधारवर्णोश्चत्वादि, स्यादेषां शुक्रनाकवत् ।
उत्पद्यन्त एषु देवतया प्राग्वन्महाशयाः ॥३८०॥

इस विमान के अन्दर आधार वर्ण ऊँचाई आदि शुक्र देवलोक के विमानों

के समान समझ लेना । इस विमान में पूर्व के समान महापुण्यशाली आत्मा देव रूप में उत्पन्न होता है । (३८०)

सपादा वार्द्धयः सप्त दशाऽऽद्ये प्रतरे स्थितिः ।
द्वितीय त्वब्दयः सप्तदश सार्द्धाः परा स्थितिः ॥३८१॥

अष्टादश च पादोनास्तृतीये परमा स्थितिः ।
तुर्येऽअष्टादश संपूर्णाः सागराः स्यात्परा स्थितिः ॥३८२॥

इस देवलोक के अन्दर प्रथम प्रतर के देवलोक का आयुष्य सवा सत्तरह सागरोपम का होता है, दूसरे प्रतर के देवों का आयुष्य साढ़े सतरह सागरोपम का है, तीसरे प्रतर के देवों का आयुष्य पोने अठारह सागरोपम का है और चौथे प्रतर के देवों का आयुष्य अठारह सागरोपम का होता है । (३८१-३८२)

सर्वत्रापि जघन्या तु भवेत्सप्तदशाब्धयः ।
अथ स्थित्यनुसारेण, देहमानं निरूप्यते ॥३८३॥

चार प्रतर के अन्दर जघन्य आयुष्य सत्तरह सागरोपम होता है अब स्थिति के अनुसार देहमान कहते हैं । (३८३)

चत्वारोऽत्र करा देह, उत्कृष्ट स्थिति शालिनाम् ।
त एवैकादशैकांशयुजो, जघन्य जीविनाम् ॥३८४॥

उत्कृष्ट आयुष्य वाले देव के शरीर की ऊँचाई चार हाथ की होती है और जघन्य आयुष्य वाले के शरीर की ऊँचाई चार हाथ नौ अंश है । (३८४)

अष्टादशभिरब्दानां सहस्रैः परमायुषः ।
जघन्यस्थितयः सप्तदशभिर्भोजनार्थिनः ॥३८५॥

उत्कृष्ट आयुष्य वाले देवों के अठारह हजार वर्ष के अन्तर में और जघन्य आयुष्य वाले देवों के सत्तरह हजार वर्ष अंतर में भोजन की इच्छा होती है । (३८५)

उच्छ्वसन्तीह नवभिर्मासैः परमजीविनः ।
हीनायुषोऽष्टभिः सार्द्धैः, परे तदनुसारतः ॥३८६॥

उत्कृष्ट आयुष्य वाले देव नौ महीने के अंतर में श्वासोश्वास लेते हैं और जघन्य आयुष्य वाले देव साढ़े आठ महीने के अन्तर में श्वासोश्वास लेते हैं, अन्य देवों का उसके अनुसार समझ लेना । (३८६)

भोगो गत्यागती संख्योत्पादच्यवनगोचरा ।
अवधिज्ञान विषयः, सर्वमत्रापि शुक्रवत् ॥३८७॥

विषय का भोग अर्थात मन से ही विषय का सेवन, गति अगति, उत्पत्ति और च्यवन की संख्या, अवधिज्ञान का विषय आदि शुक्र देवलोक के समान समझ लें । (३८७)

अत्रोत्पादच्यवनयोर्गरीयान् विरहो भवेत् ।
शतं दिनानामल्पीयान्, स पुनः समयो मतः ॥३८८॥

यहाँ उत्पत्ति और च्यवनका बिरह उत्कृष्ट सौ दिन का होता है और जघन्य रूप में एक समय का होता है । (३८८)

चतुर्थ प्रतरेऽत्रापि, सहस्त्रारावतंसकः ।
अङ्कावतंसकादीनां, चतुर्णां मध्यतः स्थितिः ॥३८९॥

यहाँ भी चौथे प्रतर में अंकावतंसकादि चार विमान के मध्य में सहस्त्रा रावतंक नाम का विमान होता है । (३८९)

सहस्त्रारस्तत्र देवराजो राजेव राजते ।
प्राग्वत्कृतजिनाद्यर्चो, महासिंहासने स्थितः ॥३९०॥

वहां सहस्त्रा नाम का इन्द्र राजा के समान शोभायमान होता है और पूर्व के इन्द्रों के समान श्री अरिहंत परमात्मा की पूजादि करके यहां सिंहासन ऊपर बैठता है । (३९०)

पञ्चभिर्निर्जरशतैः सेव्योऽभ्यन्तरपर्षदि ।
सप्तपल्यधिकार्धाष्टादशाभ्योधिजीविभिः ॥३९१॥

उस इन्द्र की अभ्यन्तर पर्षदा के पाँच सौ देवता सेवा करते हैं, उनका आयुष्य साढ़े सतरह सागरोपम और सात पल्योपम का होता है । (३९१)

एकदेवसहस्रेण सेवितोमध्यपर्षदि ।
स्र्न्द्र् पल्यसार्द्धसप्तदशतोयधिजीविना ॥३६२॥

मध्यम पर्षदा के एक हजार देवता सेवा करते हैं उनका आयुष्य साढ़े सत्तरह सागरोपम और छ: पल्योपम का होता है । (३६२)

दि सहस्रया च देवानां, सेवितो बाह्य पर्षदाम् ।
पञ्चपल्ययुतापार्द्धाष्टा दशार्णवर्ज्जीविनाम् ॥३६३॥

और बाह्य पर्षदा के दो हजार देवता सेवा करते हैं, उनका आयुष्य साढ़े सत्तरह सागरोपम और पाँच पल्योपम का होता है। (३६३)।

सामानिकामरैः सेव्यः, सहस्रैस्त्रिंशता सदा ।
सहस्रैस्त्रिशतैकैक दिश्यात्मरक्षकैः सुरैः ॥३६४॥

इस इन्द्र महाराज की सेवा में तीस हजार सामनिक देवता होते हैं और एक-एक दिशा में तीस-तीस हजार आत्मरक्षक देवता होते हैं । (३६४)

प्राग्वत्त्राय स्त्रिंशलोकपालसैन्यतदीश्वरैः ।
देवैरन्यैप्युपास्यः सहस्रारनिवासिभिः ॥३६५॥

पूर्व इन्द्रों के समान इस इन्द्र की त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, सैन्य सैन्याधिपति तथा सहस्रार निवासी अन्य देवों से सेवा होती है । (३६५)

सातिरेकान् षोडशैष जम्बूद्वीपान् विकुर्वितैः ।
रूपैर्भर्त्तु क्षमस्तिर्यगसंख्यान् द्वीपवारिधीन् ॥३६६॥

यह इन्द्र अपने रचित रूप से सोलह जम्बूद्वीप से कुछ अधिक और तिरछे असंख्य द्वीप समुद्रों को भरने में समर्थ होता है । (३६६)

सविमान सहस्राणां, षण्णामैश्वर्यमन्वहम् ।
भुंक्ते भाग्योजसां भूमिरिष्टादशाब्धिजीवितः ॥३६७॥ *सप्तभि कुलकं॥*

अठारह सागरोपम के आयुष्य वाले और अति भाग्यवान् तथा तेजस्वी इस इन्द्र महाराजा का छः हजार विमानों का ऐश्वर्य भोगता है । (३६७)

अस्य यानविमानं च, विदितं विमलाभिधम् ।
देवश्च विमलाभिख्यो, नियुक्तस्तद्विकुर्वणे ॥३६८॥

इस सहस्त्रारेन्द्र को बाहर जाने का विमान 'विमल' नाम का है और उसको बनाने के लिए विमल नाम का देव अधिकृत है । (३९८)

उर्ध्वं चाघ सहस्त्रारादसंख्ययोजनोत्तरौ ।
आनतप्राणतौ स्वर्गौ, दक्षिणोत्तरयोः स्थितौ ॥३९९॥

अब आनत और प्राणत देवलोक का वर्णन करते हैं – सहस्त्रार देवलोक के ऊपर असंख्य योजन जाने के बाद दक्षिण और उत्तर दिशा में आनत और प्राणत नामक दो देवलोक होते हैं । (३९९)

अनयोः कवलयस्थयोरर्द्धार्द्धदचन्द्रवत् ।
चत्वारः प्रतरास्तत्र, प्रति प्रतरामिन्द्रकम् ॥४००॥

एक वलय में रहे दोनों देवलोक अर्ध, अर्ध चन्द्राकार रुप में है उसमें चार प्ररत होते हैं और प्रत्येक प्रतर में इन्द्रक विमान होते हैं । (४००)

महाशुक्र सहस्त्रारमानतं प्राणंतं क्रमात् ।
एभ्यश्च पङ्क्तेयः प्राग्वत्पुष्पावकीर्णकास्तथा ॥४०१॥

और उनके नाम अनुक्रम से महाशुक्र सहस्त्रार आनत और प्राणत है । इस इन्द्रक विमान के चारों दिशा में पंक्तिगत विमान एवं विदिशा में पुष्पावकीर्णक विमान होते हैं । (४०१)

अष्टादश सप्तदश, षट्पञ्चाभ्यधिका दश ।
विमानान्येकैकपङ्क्ति, प्रतरेषु चतुर्ष्विह ॥४०२॥

चारों प्रतर के अन्दर प्रत्येक पंक्ति में क्रमशः अठारह, सत्तरह, सोलह और पंद्रह विमान होते हैं । (४०२)

प्रथम प्रतरे तत्र, प्रतिपङ्क्ति विमानकाः ।
वृत्तत्रयस्त्रचतुरस्त्राः, षट् षट् द्वासप्ततिः समे ॥४०३॥

प्रथम प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में त्रिकोन, गोल और चोरस विमान छः, छः है कुल मिलाकर बहत्तर विमान होते हैं । (४०३)

द्वितीय प्रतरे वृत्ताः पञ्च षट् षट् परे द्विधा ।
सर्वेष्टषष्टिः पङ्क्तियास्तृतीयप्रतरे पुनः ॥४०४॥

दूसरे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में गोल विमान पाँच और दूसरे छः-छः होते हैं और कुल मिलाकर पंक्तिगत विमान अड़सठ होते हैं । (४०४)

त्र्यस्त्राः षट् पञ्च पञ्चान्ये चतुः षष्टिः समेऽप्यमी ।
तुर्ये त्रैधाः पञ्च पञ्च, षष्टिश्च सर्वसंख्यया: ॥४०५॥

तीसरे प्रतर की प्रत्येक पंक्ति में त्रिकोन विमान छः है और दूसरे पाँच-पाँच है कुल मिलाकर चौसठ विमान होते हैं । और चौथे प्रतर में तीनों के विमान पाँच-पाँच होते हैं कुल मिलाकर साठ विमान होते हैं । (४०५)

चतुर्भिरिन्द्रकैर्युक्ताः, सर्वेऽत्र पंक्तिवृत्तकाः ।
अष्टाशीतिर्द्विनवतिः, पङ्क्तित्र्यस्त्रा इहोदिताः ॥४०६॥

अष्टाशीतिः पङ्क्तिचतुरस्त्राः सर्वे च पङ्क्तिगाः।
द्वे शते अष्टषष्टिश्च, शेषाः पुष्पावकीर्णकाः ॥४०७॥

इन्द्रक विमान सहित पंक्तिगत गोलाकार विमानों की कुल संख्या अट्ठायासी है और त्रिकोन विमान की संख्या ब्यानवे है जबकि पंक्तिगत चोरस विमानों की कुल संख्या अट्ठायासी है । पंक्तिगत कुल मिलाकर विमान दो सौ अड़सठ (२६८) होते हैं और शेष पुष्पावकीर्णक विमान होते हैं । (४०६-४०७)

शतंद्वात्रिंशदधिकं, विमानाः सर्वसंख्यया ।
स्वर्गद्वये समुदिते, स्युश्चत्वारि शतानि ते ॥४०८॥

पुष्पावकीर्णक विमान एक सौ बत्तीस होते हैं, दोनों स्वर्ग के कुल मिलाकर चार सौ विमान होते हैं । (४०८)

आभाव्यत्वविभागस्तु, विमानानामिहास्ति न।
यतोऽनयोरेक एव, द्वयोरपि सुरेश्वरः ॥४०९॥

इन दोनों देवलोक के विमानों का विभाग अलग-अलग नही है क्योंकि दोनों देवलोक का इन्द्र एक ही होता है । (४०९)

विहायसि निरालम्बा, निराधाराः स्थिताः अमी ।
जगतस्वभावत्ः शुक्रवर्णाश्च रूचिरप्रभाः ॥४१०॥

जगत स्वभाव से ही ये विमान आकाश के अन्दर आलंबन रहित और आधार रहित रहते हैं और इन विमानों का वर्ण शुक्ल है प्रभा भी अत्यन्त देदीप्यमान है । (४१०)

योजनानां नव शतान्येषु प्रासादतुङ्गता ।
पृथ्वीपिण्डः शतान्यत्रः, त्रयोविशंतिरीरितः ॥४११॥

इस विमानों का पृथ्वीपिण्ड तेईस सौ योजन है और प्रासाद की ऊँचाई नौ सौ योजन होती है । (४११)

एषां पूर्वेदितानां च, विमानानां शिरोऽग्रग: ।
ध्वजस्तत्तद्वर्ण एव, स्यान्मरुच्चन्चलाञ्चलः ॥४१२॥

ये विमान और पूर्व कहे विमानो के शिखर ऊपर पवन से चंचल बनी हुई ध्वज भी विमान समान वर्ण वाली होती है । (४१२)

अथ सर्वे शुक्लवर्णा, एवैतेऽनुत्तरावधि ।
किन्तूत्तरोत्तरोत्कृष्टवर्णा नभः प्रतिष्ठिता; ॥४१३॥

अब अनुतर देवलोक तक सभी ही विमान शुक्ल वर्ण वाले ही होते हैं परन्तु वर्ण में उत्तरोत्तर उत्कृष्टता वाले होते हैं और आकाश में रहते हैं । (४१०)

उत्पन्नाः प्राग्वदेतेषु, देवाः सेवाकृतोऽर्हताम् ।
सुखानि भुञ्जते प्राज्यपुण्यप्राग्भारभारिणः ॥४१४॥

पहले के समान इस देवलोक में भी श्री अरिहंत भगवानों की सेवा करने वाले आत्मा देव रुप में उत्पन्न होते हैं और विशिष्ट पुण्य के समूह से शोभायमान वे सुख भोगते हैं । (४१४)

तत्र दक्षिणदिग्वर्त्तिन्यानतस्वर्गसंगते ।
प्रथम प्रतरेऽमीषां, स्थितिरूत्कर्षतो भवेत् ॥४१५॥

अष्टादश सपादा वै, द्वितीय प्रतरेऽब्धय: ।
सार्द्धा अष्टादश पादन्यूना एकोनविंशतिः ॥४१६॥

तृतीय प्रतरे ते स्युस्तुर्ये चैकोनविंशतिः ।
सर्वत्रापि जघन्या तु, स्युरष्टादश वार्द्धयः ॥४१७॥

उसमें दक्षिण दिशा में रहे आनत स्वर्ग सम्बन्धी प्रथम प्रतर में इन देवों का आयुष्य उत्कृष्ट से सवा अठारह सागरोपम है, दूसरे प्रतर में साढ़े अठारह सागरोपम है, तीसरे प्रतर में पौने उन्नीस सागरोपम है और चौथे प्रतर में उन्नीस सागरोपम का होता है और सर्वत्र जघन्य आयुष्य तो अठारह सागरोपम का होता है । (४१५-४१७)

प्राणत स्वर्ग संबन्धिन्यथोतरदिशि स्थिते ।
प्रथम प्रतरे ज्येष्ठा, स्थितिः भवति नाकिनाम् ॥४१८॥

एकोनविंशतिस्तोयधयस्तुर्यलवाधिकाः।
एकोनविंशतिः सार्द्धा, द्वितीय प्रतरेऽब्धयः ॥४१९॥

तृतीय प्रतरेऽब्धीनां पादोनां विंशतिः स्थितिः ।
तुर्ये च प्रतरे ज्येष्ठा, स्थितिर्विंशतिरब्धयः ॥४२०॥

अब उत्तर दिशा में रहे प्राणत स्वर्ग सम्बन्धी प्रथम प्रतर में रहे देवताओं की उत्कृष्ट आयुष्य की स्थिति सवा उन्नीस सागरोपम है, दूसरे प्रतर में रहे देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति साढ़े उन्नीस सागरोपम होती है, तीसरे प्रतर में रहे देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति पौने बीस सागरोपम और चौथे प्रतर में रहे देवताओं की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम की होती है । (४१९-४२०)

सर्वत्रापि जघन्या तु, स्थितिरेकोनविंशतिः ।
पयोधयो देहमानमथ स्थित्यनुसारतः ॥४२१॥

चारों प्रतर के देवों की जघन्य स्थिति उन्नीस सागरोपम की होती है । इन देवों का देहमान स्थिति अनुसार है । (४२१)

कराश्चत्वार एवाङ्गमष्टादशाब्धिजीविनाम् ।
ते त्रयोऽशास्त्रयश्चैकोनविंशत्यब्धिजीविनाम् ॥४२२॥

अठारह सागरो के आयुष्य वाले देवों का देहमान चार हाथ होता है और उन्नीस सागरोपम के आयुष्य वाले देवों का देहमान तीन हाथ + तीन अंश है । (४२२)

विंशत्यब्धिस्थितीनां तु देहमानं करास्त्रयः ।
द्विभागाढया मध्यमीयायुषां तदनुसारतः ॥४२३॥

बीस सागरोपम के आयुष्य वाले देवों का देहमान तीन हाथ + २ अंश है और मध्यम् आयुष्य वाले देवों का देहमान उसके अनुसार समझ लेना चाहिये । (४२३)

अष्टादशभिरेकोन विंशत्याऽब्दसहस्रकैः ।
विंशत्या च यथायोगममी आहारकाङ्क्षिणः ॥४२४॥

यहाँ के देवों के अनुक्रम से अठारह हजार, उन्नीस हजार और बीस हजार वर्ष में आहार की इच्छा होती है । (४२४)

नवभिः सार्द्धनवभिर्मासैदशभिरेव च ।
उच्छ्वसन्ति यथायोगं स्वस्वस्थित्युनुसारतः ॥४२५॥

अपने-अपने आयुष्यनुसार नौ, साढ़े नौ और दस महीने में श्वासोश्वास लेते हैं । (४२५)

रिरंसवस्त्वमी देवाः सौधर्म स्वर्गवासिनीः ।
विचिन्तयन्ति चित्तेनानतस्वर्ग निवासिनः ॥४२६॥

आनत स्वर्ग के देवों को भोग की ज़ब इच्छा होती है, उस समय चित्त से सौ धर्मवासी देवियों का चिन्तन करते हैं । (४२६)

प्राणत स्वर्गदेवास्तु, विचिन्तयन्ति चेतसाः ।
रिरंसया स्वभोगार्हा, ईशानस्वर्गवासिनीः ॥४२७॥

प्राणत देवलोक के देव भोग की इच्छा से अपने योग्य ईशान देवलोक वासी देवियों का चित्त से विचार करते हैं । (४२७)

देव्योऽपि ताः कृतस्फार शृंङ्गारा मदनोद्धराः ।
विदेशस्थाः स्त्रिय इव कान्तमभ्येतुमक्षमाः ॥४२८॥

स्वस्थानस्था एव चित्तास्युच्चावचानि बिभ्रति ।
देवाअपि तथावस्थास्ताः संकल्प स्वचेतसा ॥४२९॥

उच्चावचानि चेतांसि, कुर्वन्तो दूरतोऽपि हि ।
सुरतादिव तृप्यन्ति, मन्दपुंवेद वेदनाः ॥४३०॥

उस समय वे देवियाँ भी सुन्दर आकर्षणदार शृंगार सज्जकर कामविधुर बनकर, दूर देश में रही अपने पति के पास में जाने के लिए असमर्थ पत्नी के समान अपने स्थानं में ही रहकर चित्त को ऊँचे-नीचे विचार करती है अर्थात काम से आकुल-व्याकुल करती है । उस समय देव भी उस ही अवस्था में रहकर चित्त से उन देवियों का संकल्प करके चित्त को ऊँचे-नीचे विकार करते दूर रहने पर भी मंद पुरुष वेद की वेदना वाले इतने में ही भोग के समान ही वे शान्त हो जाते हैं । उससे तृप्त हो जाते हैं । (४२८-४३०)

देव्योऽपि तास्तथा दूरादपि दिव्यानुभावतः ।

सर्वाङ्गेषु परिणतैस्तुष्यन्ति शुक्रपुद्गलैः ॥४३१॥

वे देवियाँ भी दूर से ही दिव्य प्रभाव से सर्व अंग में परिणत हुए शुक्र पुद्गलो से तृप्त-शान्त हो जाती हैं । (४३१)

यत ऊर्ध्वं सहस्रारान्न देवीनां गतागते ।

तत्रस्था एव तेनैते, भजन्ते भोगवैभवम् ॥४३२॥

क्योंकि सहस्रार देवलोक से ऊपर देवियों का गमनागमन-जाना आना नहीं होता, इससे वहां रहे ही भोग के वैभव का इसी तरह से अनुभव करते हैं । (४३२)

यश्च तासां सान्तराणासंख्यैरपि योजनैः ।

शुक्रसंचारोऽनुभावात्, स ह्यचिन्त्यः सुधाभुजाम् ॥४३३॥

असंख्य योजन दूर रही उन देवियों का देव द्वारा इसी तरह का शुक्र संचार उन देवों के प्रभाव से होता है, और देवों का प्रभाव अचिंत्य होता है । (४३३)

तथा च मूल संग्रहणी टीकाया हरिभद्र सूरिः-"देव्यः स्वल्व परि गृहीताः सहस्रारं यावद्गच्छन्ति," तथा च भगवानार्यश्यामोऽपि प्रज्ञा पनायामाह - "तत्थ णं जे ते मण परियारगा देवा तेसिं इच्छामणे समुप्पज्जइ, इच्छामो णं अच्छराहि सद्धिं मणपरियारणं करेत्तए, तओ णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव ताजो अच्छराओ तत्थ गयाओचेव समाणीओ अणुताइ उच्चावयाइं मणाइ पहारेमाणीओ चिट्ठंति, तओ णं ते देवा ताहिं अच्छराहिंसद्धिं

मण परियारणं करेंति आरेण अच्चुयाओ गमणा गमणं तु देव देवीणं मित्यादि पूर्व संग्रहणी गतप्रक्षेपगाथायास्तुसंवादो नदृश्यते" इति लघु संग्रणी वृत्तौ॥

मूल संग्रहणी की टीका में श्री हरिभद्र सूरि महाराज ने कहा है - अपरिगृहिता देवियाँ सहस्त्रार देवलोक तक जा सकती है तथा आचार्य भगवान श्री आर्य श्याम सूरि जी ने भी प्रज्ञापना सूत्र में कहा है कि - उसमें जों मन परिचारक देव होते हैं उनके मन में इच्छा उत्पन्न होती है कि 'मैं मन से अप्सरा के साथ में भोग करूं ।' उस समय उन देवों द्वारा मन से संकल्प की हुई वे देवियाँ वहीं उस देवलोक में जाकर जल्दी अपने मन में ऊँचे नीचे भावों को करती है अर्थात अनुपम काम विचारों द्वारा मन को आकुलित बना देती है । उस समय वह देव अप्सरा के साथ में मन द्वारा भोग का सेवन करता है ।

इस तरह से प्रज्ञापना के इस पाठ की नवीनता- विशेषता यह है कि उसमें सहस्त्रार देवलोक से ऊपर भी देवियों का गमनागमन स्वीकार किया है, परन्तु वहां जाकर भी देवियां मानसिक कामसुख ही अनुभव करती हैं ।

अच्युत देवलोक से आगे देव देवियों का गमन नहीं होता है, इस तरह से पूर्व संग्रहणी गत प्रक्षेपगाथा के प्रति पादन का मेल नही मिलता है । इस तरह से लघु संग्रहणी की वृत्ति में कहा है ।

प्रज्ञप्ता सर्वतः स्तोका, देवा अप्रविचारकाः ।
स्युः संख्येय गुणास्तेभ्यश्चेतः सुरतसेविनः ॥४३४॥

तेभ्यः क्रमाच्छब्दरूपस्पर्श संभोगसेविनः ।
यथोत्तरमसंख्येयगुणा उक्ता जिनेश्वरैः ॥४३५॥

भोग की इच्छा-मैथुन वासना बिना के देवता सबसे कम अल्प होते हैं । उससे संख्यात गुण देव चित्त से भोग करने वाले होते हैं, उससे शब्द, रूप स्पर्श से संभोग सेवन करने वाले देव क्रमशः असंख्यात गुणा होते हैं, इस तरह श्री जिनेश्वर भगवन्त ने फरमाया है । (४३४-४३५)

आद्यैस्त्रिभिः संहनैरुपेता गर्भजा नराः ।
उत्पद्यन्त एषमीभ्यश्च्युत्वाऽप्यनन्तरे भवे ॥४३६॥

गर्भजेषु नरेष्वेवोत्पद्यन्ते नापरेष्वथ ।
अनुत्तरान्तदेवानामेवं ज्ञेये गतागती ॥४३७॥

आद्य तीन संहनन वाले गर्भज मनुष्य ही इस देवलोक में उत्पन्न होते है तथा यहां से च्यवन कर फिर अगले जन्म में भी गर्भज मनुष्य जन्म में उत्पन्न होते हैं दूसरे में जन्म नही लेते। अनुत्तर तक के देवों की इसी तरह से गति अगति होती है । (४३६-४३७)

एकेन समयेनामी, च्यवन्त उद्भवन्ति च ।
संख्येया एव नासंख्याः संख्येयत्वान्नृणामिह ॥४३८॥

इस देवलोक में एक समय में संख्याता ही देवता उत्पन्न होते हैं और च्यवन करते हैं । असंख्यता नहीं करते, क्योंकि मनुष्य संख्यता ही होते हैं । (४३८)

अत्रोपत्ति च्यवनयोर्विरहः परमोभवेत् ।
वर्षादर्वागेवमासाः, संख्येयाः प्राणतेऽपि ते ॥४३९॥

अब्दादर्वागेव किंत्वानतव्यपेक्षयाधिकाः ।
अग्रेऽप्येवं भावनीयं, बुधैर्वर्षशतादिषु ॥४४०॥

सम्पूर्णमभविष्यच्चेद्वर्षवर्षशतादिकम् ।
तत्तदेवाकथयिष्यन् सिद्धान्ते गणधारिणः ॥४४१॥

यहां आनत देवलोक में उतपत्ति और च्यवन का विरहकाल संख्याता महीने का है परन्तु वह वर्ष के अन्दर समझना चाहिये । प्राणत स्वर्ग में भी इस तरह ही संख्याता महीने है, परन्तु आनत देवलोक से कुछ अधिक जानना । इस प्रकार से देवलोक में सौ वर्ष आदि का जो अंतर है वह इस तरह से समझ लेना, यदि सम्पूर्ण सौ वर्ष - सौ वर्ष आदि होता तो गणधर भगवन्त ने इस तरह से ही सिद्धान्त में कहा होता । परन्तु ऐसा नही मिलता । (४३९-४४१)

संख्येयानेव मासादीन् वर्षादेरविवक्षया ।
केचिन्मन्यन्तेऽविशेषाद्वर्षादेरधिकानापि ॥४४२॥

बहुत महापुरुष वर्ष आदि की विवक्षा बिना संख्यात महीना मानते हैं और कुछ वर्ष से अधिक संख्यात महीनों को मानते हैं । (४४२)

तथाहु: संग्रहणीवृत्तौ - "विशेष व्याख्या चैवा हारिभद्र मूल टीकानुसाररतः केचित्त सामान्ययेन व्याचक्षते ।"

श्री संग्रहणी की वृत्ति में कहा है कि – यह विशेष व्याख्या श्री हरिभद्र सूरी जी महाराज की मूल टीकानुसार से कुछ तो सामान्य से कहते हैं ।

पञ्चमीं पृथिवीं यावत्पश्यन्त्यवधि चक्षुषा।
आनता:प्राणताश्चैनामेवानल्पाच्छपर्यवाम् ॥४४३॥

इस आनत के देव अवधि लोचन द्वारा नीचे पांचवी नरक पृथ्वी तक देख सकते है और प्राणत के देव प्राण के देय पोचवी पृथ्वी तक ही देख सकते है परन्तु बहुत और स्वच्छ पर्याय युक्त देख सकते हैं । (४४३)

आरणाच्युतदेवा अप्येनामेवातिनिर्मलाम् ।
बहुपर्यायां च तत्राप्यारणेभ्यः परेऽधिकाम् ॥४४४॥

आरण और अच्युत के देव भी यहां तक ही देख सकते हैं । परन्तु अति निर्मल और पर्याय युक्त देख सकते हैं और आरण से भी अच्युतवाले देव विशेष व्यवस्थित निर्मल-बहुत पर्याय संपन्न देख सकते हैं । (४४४)

अथात्र प्रतरे तुर्ये, स्यात्प्राणतावंतसकः ।
सौधर्मवदशोकाद्यवतंसकचतुष्कयुक् ॥४४५॥

सौधर्म देवलोक के समान यहां भी प्राणत स्वर्ग में अशोकावतंसक आदि चार विमानों से युक्त प्राणतावतंसक विमान चौथे प्रतर में है । (४४५)

प्राणतः स्वः पतिस्तत्रोत्पन्नोऽत्यन्तपराक्रमः ।
कृत्वाऽर्हत्प्रतिमाद्यर्चा, सिंहासने निषीदतिः ॥४४६॥

अत्यन्त पराक्रमी प्राणत नामक इन्द्र यहां उत्पन्न होकर श्री अरिहंत परमात्मा की पूजा करके सिंहासन पर विराजमान होता है । (४४६)

शतैरर्द्ध तृतीयैः स, सेव्योऽभ्यन्तरपर्षदाम् ।
पञ्चपल्याधिकैकोनविंशत्यम्भोधिजीविनाम् ॥४४७॥

पञ्चभिश्च देवशतैर्जुष्टो मध्यमपर्षदाम् ।
चतु:पल्याधिकैकोनविंशत्यर्णवजीविभिः ॥४४८॥

एकदेवसहस्रेण, सेवितो बाह्यपर्षदि ।
स त्रिपल्योपमैकोनविंशत्यर्णवजीविना ॥४४९॥

सामनिकानां विंशत्या, सहस्रैः परितो वृतः ।
एकैकस्यां दिशि वृतस्तावद्भिरङ्गरक्षकैः ॥४५०॥

त्रायस्त्रिंशैर्लोकपालैः, सैन्यैः सैन्याधिकारिभिः ।
आनतप्राणतस्वर्गवासिभिश्चापरैरपि ॥४५१॥

अनेकैर्देवनिकरैः, समाराधित शासनः ।
द्वयोस्ताविषयोरीष्टे, स विंशत्यब्धि जीवितः ॥४५२॥ *षड्भि कुलकं॥*

उन्नीस सागरोपम + पांच पल्योपम के आयुष्य वाले अढाई सौ (२५०) अभ्यन्तर पर्षदा के देव, उन्नीस सागरोपम + चार पल्योपम के आयुष्य वाले पांच सौ मध्यम पर्षदा के देव, और उन्नीस सागरोपम + तीन पल्योपम के आयुष्य वाले एक हजार बाह्य पर्षदा के देवों से यह इन्द्र महाराज की सेवा होती है । बीस हजार सामानिक देवों तथा चार दिशा में बीस-बीस हजार अंग रक्षक देवों से यह इन्द्र महाराज घिरा हुआ रहता है । त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, सैन्य सेनापति और आनत-प्राणत देवलोक में रहने वाले अन्य भी बहुत देवों का समूह, इस इन्द्र महाराज के अनुशासन की आराधना करते हैं बीस सागरोपम के आयुष्य वाला यह इन्द्र महाराज दोनों देवलोक का शासन चलाते हैं । (४४७-४५२)

अस्य यानविमानं च, वरनाम्ना प्रकीर्तितम् ।
वराभिधानो देवश्च, नियुक्तस्तद्विकुर्वणे ॥४५३॥

इस इन्द्र महाराज को बाहर जाने के लिए यान विमान (वर) नाम का होता है और उसकी रचना करने वाले देव का नाम भी 'वर' होता है । (४५३)

द्वात्रिंशदेष यंपूर्णान्, जम्बू द्वीपान् विकुर्वितैः ।
रूपैर्भर्त्तुं क्षमस्तिर्यगसंख्यान् द्वीपवारिधीन् ॥४५४॥

यह इन्द्र महाराज अपने बनाये रूप से बत्तीस (३२) जम्बू द्वीप को तिर्च्छा से असंख्य द्वीप समुद्रों को भरने में समर्थ है । (४५४)

अथानतप्राणतयोरूर्ध्वं दूरमतिक्रमे ।
असंख्येययोजनानामुभौस्वर्गौ प्रतिष्ठितौ ॥४५५॥

आरणाच्युत नामानौ, सधामानौ मणीमयैः ।
विमानैर्योगविद ध्यानैरिवानन्दमहोमयैः ॥४५६॥युग्मम्॥

अब आरण और अच्युत देवलोक का वर्णन करते हैं - आनत और प्राणत देवलोक के ऊपर असंख्य योजन जाने के बाद आरण और अच्युत नामक दो देवलोक रहे हैं, आनंद और तेज युक्त ध्यान से जैसे योगी शोभता है वैसे मणिमय विमान से तेजोमय ये दोनो देवलोक शोभायमान है । (४५५-४५६)

चत्वारः प्रतराः प्राग्वद्, द्वयोः साधारणा इह ।
प्रतिप्रतरमेकैकं, मध्य भागे तथेन्द्रकम् ॥४५७॥

पूर्ववत् दोनों देवलोक के सामान्य अर्थात दोनों देवलोक के बीच में चार प्रत्तर है। प्रत्येक प्रत्तर के मध्यभाग में एंक-एक इन्द्रक विमान होता है।(४५७)

पुष्पसंज्ञमलङ्कारं, चारणं चाच्युतं क्रमात्।
एभ्यश्चतुर्दिशं प्राग्वच्चङ्क्तयश्च प्रकीर्णकाः ॥४५८॥

इन्द्रक विमानों का क्रमशः नाम १-पुष्प,२-अलंकार,३-आरण ४-अच्युत है एवं चार दिशा में पूर्व के समान पक्तिंगत और प्रकीर्णक विमान है। (४५८)

चतुस्त्रिद्व्येकसंयुक्ता, दशैतेषु क्रमादिह।
प्रतिपङ्क्ति विमानोनि, प्रतरेषु चतुर्ष्वपि ।।४५६॥

चारों प्रतर के अन्दर प्रत्येक पंक्ति में क्रमशः, चौदह, तेरह बारह और ग्यारह विमान होते हैं। (४५६)

अथाद्यप्रतरे पंक्तौ, पंक्तौ वृत्ता विमानकाः ।
चत्वारोऽन्ये पञ्च पञ्च षट्पञ्चाशत्यमेऽप्यमी ॥४६०॥

अब प्रथम प्रतर के पक्तिं में गोलविमान चार है और त्रिकोन चुतष्कोण विमान पांच-पांच है कुल मिलाकर छप्पन विमान होते है। (४६०)

द्वितीयप्रतरे त्र्यस्राः, पञ्चान्ये द्विविधा अपि।
चत्वारश्चत्वार एव, द्विपञ्चाशत्समेऽप्यमी॥४६१॥

दूसरे प्रतर में त्रिकोन विमान पांच है और शेष दोनों प्रतर के चार-चार विमान हैं कुल विमान बावन होते हैं। (४६१)

चत्वारश्चत्वार एव तृतीये त्रिविधा अपि ।
अष्टचत्वारिंशदेवं, पांक्तेयाः सर्वसंख्यया ॥४६२॥

तीसरे प्रतर में तीन प्रतर में तीन प्रकार के विमान चार-चार है । पंक्तिगत कुल मिला कर विमान अड़तालीस होते हैं। (४६२)

चतुर्थ प्रतरे वृत्तास्त्रयोऽन्ये द्विविधा अपि ।
चत्वारःस्युश्चतुश्चवारिंशच्च सर्वसंख्यया ॥४६३॥

चौथे प्रतर में गोल विमान तीन है और शेष दोनों प्रकार के विमान चार-चार है कुल मिला कर चवालीस (४४) होते है। (४६३)

सर्वेऽत्रपङ्क्तिवृत्ताश्च,चतुर्भिरिन्द्रकैः सह ।
चतुःषष्टिस्तथा पङ्क्तित्रिकोणाश्चद्विसप्ततिः ॥४६४॥

अष्टषष्टिः पङ्क्ति चतुः कोणाः सर्वेशतद्वयम् ।
चतुर्युतं षण्णवतिश्चेह पुष्पावकीर्णकाः॥४६५॥

एवं शतानि त्रीण्यत्र, विमानाः सर्वसंख्यया ।
एष्वानत प्राणतवद्वर्णाधारोच्चतादिकम् ॥४६६॥

चारों प्रतर में पंक्तिगत विमानो में इन्द्रक विमान के साथ में गोल विमान चौसठ है और पंक्तिगत कुल विमान दो सौ चार होते हैं और पुष्पा वकीर्णक विमान छियानवे हैं। इन दोनों देवलोक के कुल विमान तीन सौ है। इन देव लोक के विमान के वर्ण आधार, ऊंचाई आदि आनत, प्राणत स्वर्ग के समान समझना । (४६४-४६६)

अत्र दक्षिण दिग्भागे, आरणस्वर्ग वर्त्तिषु ।
नाकिनां स्थितिरूत्कर्षात्प्रतरेषुचतुष्वपि ॥४६७॥

सपादविंशतिः सार्द्धविंशतिश्च यथाक्रमम् ।
पादोनैकविंशतिश्रच, वार्द्धोना चैकविंशति ॥४६८॥

दक्षिण दिशा में रहने वाले आरण देवलोक सम्बन्धी चार प्रतर के देवों की उत्कृष्ट स्थिति सवा बीस सागसेपम साढ़े बीस, सागरोपम, पौने इक्कीस, सागरोपम और पूर्ण इक्कीस सागरोपम अनुक्रम से होती है। (४६६ -४६८)

अथाच्युतस्वर्ग संबन्धिषूदग्भागवर्त्तिषु ।
प्रतरेषु चतुर्ष्वेषुत्कृष्टा सुधाभुजां स्थितिः ॥४६९॥

सपादैकविंशत्तिश्च, सौर्द्धकविशतिः क्रमात् ।
पादोनद्वाविंशतिश्च, द्वाविंशतिश्चचःक्रमात् ॥४७०॥

उत्तर दिशा में रहने वाले अच्युत देवलोक सम्बन्धी चार प्रतर के देवों की उत्कृप्ट स्थिति सवा इक्कीस, साढ़े इक्कीस, पौने बाईस और पूर्ण बाईस सागरोपम का उपयुक्त अनुक्रम से होता है। (४६९-४७०)

सर्वत्राप्यारणे वारानिधयो विंशतिर्लघुः ।
अच्युते सागरा एकविंशतिःसा निरूपिता ॥४७१॥

आरण देवलोक के चार प्रतर के देवोकी जघन्य स्थिति वीस सागरोपम की और अच्युत देवलोक के आयुष्य वाले देव लोक के चार प्रतर के देवों की जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपम की है। (४७१)

द्वाभ्यामेकादशांशाभ्यां युक्ता इहकरास्त्रयः।
देहप्रमाणंदेवानां विंशत्यम्भोधिजीविनाम् ॥४७२॥

त एव सैकांशा एक विंशत्युद धिजीविनाम् ।
त्रयः कराश्च संपूर्णा, द्वाविशत्यर्णवायुषाम् ॥४७३॥

यहां बीस सागरोपम के आयुष्प वाले देवो का देहमान ३ $\frac{२}{१२}$ हाथ का है इक्कीस सागरोपम के आयुष्प वाले देवों का देहमान ३ $\frac{१}{११}$ हाथ होता है बाईस सागरोपम आयुष्य वाले देवो का देहमान ३ हाथ का होता है । (४७२-४७३)

विंशत्या चैकविंशल्या, द्वाविंशत्या सहस्त्रकैः।
स्वस्वस्थित्यनुसारेण,वर्षैराहारकाङ्क्षिणः ॥४७४॥

अपनी-अपनी स्थिति अनुसार से बीस इक्कीस और बाईस हजार वर्षों में यहां के देव आहार की इच्छा वाले होते है। (४७४)

दशभिः सार्द्धदशभिरेकादशभिरेव च ।
मासैरमी उच्छवसन्ति, स्थितिसागरसंख्यया ॥४७५॥

ये देव अपनी-अपनी स्थिति अनुसार से दस, साढ़े दस और ग्यारह महीने में श्र्वासोच्छवास लेते हैं । (४७५)

च्युतावुत्पत्तौ च, संख्या, भोगो गत्यागती इह।
अवधिज्ञान सीमा च सर्व प्राणतनाकवत् ॥४७६॥

किंत्वाद्याभ्यामेव सहंननाभ्यां सत्त्वशालिनः ।
आराधितार्हताचारा,उत्पद्यन्तेऽत्र सद्‌गुणाः ॥४७७॥

च्यवन उत्पत्ति की संख्या, योग गमनागमन, अवधि ज्ञान की मर्यादा आदि प्रणत देवलोक के समान है। परन्तु यहां आद्या दो संहनन वाले, सत्वशाली श्री जैन शासन के आचार की सुन्दर आराधना करने वाले और गुणीजन (गुणों से युक्त जीव) उत्पन्न होते हैं । (४७६-४७७)

च्युत्युत्पत्ति वियोगोऽत्र, संख्येया वत्ससगुरूः ।
आरणेऽब्दशतादर्वाक्,त एव चाच्युतेऽधिकाः ॥४७८॥

च्यवन और उत्पत्ति का विरह संख्यात वर्ष का है आरण देवलोक में सौ वर्ष अन्दर और अच्युत देवलाक में उससे कुछ अधिक होता है। (४७८)

अत्रापि प्रतरे तुर्येऽच्युतेऽच्युतावसंसकः ।
ईशानवद् भवेदंकाद्यवतंसकमध्यगः ॥४७९॥

इस देवलोक में भी चौथा अच्युत नाम के प्रतर में ईशान देवलोक के समान अकांवतंसक आदि चार विमान के बीच में अच्युता वतंसक नामक विमान होता है। (४७९)

तत्राच्युत स्वर्गपतिर्वरीवर्त्ति महामतिः ।
योऽसौ दाशरथेरासीत्प्रेयसी पूर्वजन्मनि ॥४८०॥

वहां अच्युत स्वर्ग का महाबुद्धिमान इन्द्र शोभायमान होता है कि जो पूर्व जन्म में दशरथ पुत्र रामचन्द्र जी की पत्नि सीता का जीव है । (४८०)

शुद्धाऽशुद्धेति को वेद, स्थिता रावणमन्दिरे ।
किमाहृताऽपरीक्ष्येति, लोकापवाद भीरूणा ॥४८१॥

रामेण सा सुशीलापि सगर्भातत्त्यजे बने ।
सतांलोका पवादो हि, मरणादपि दुस्सहः ॥४८२॥*युग्मं॥*

जो सीता रावण के घर में रहकर भी वह शुद्ध है अथवा अशुद्ध है, वह कौन जानता है ? उसकी परीक्षा किए बिना राम ने कैसे स्वीकार कर ली है ? इस तरह से लोकापवाद से भयभीत हुए राम ने सुशीला और गर्भवती सीता को वन में छोड़ दिया था । सत् पुरुषों को लोक परवाह मृत्यु से भी अधिक दुःखद होता है । (४८१-४८२)

चिन्तयन्ती सती साऽथ, विपाकं पूर्व कर्मणाम् ।
भयोद्भ्रान्ता परिश्रान्ता, वभ्रामेततसतो बने ॥४८३॥

सती शिरोमणि सीता पूर्वकर्म के विपाक का चिन्तन करती भयभीत और थकी हुई इधर-उधर वन में परिभ्रमण करने लगी । (४८३)

पुण्डरीक पुराधीशः, पुण्डरीकोल्ल संद्यशाः ।
गजवाहनराजस्य, बंधूदेव्याश्च नन्दनः ॥४८४॥

महार्हतो महासत्त्वः, परनारीसहोदरः ।
धार्मिको नृपतिर्वज्रजङ्घस्तत्र समागतः ॥४८५॥

उसके बाद पुंडरीकपुर का अधीश कमल के समान निर्मल यश वाला गज वाहन राजा और बन्धु देवी का पुत्र महान श्रावक, महान सत्वशाली परनारी के लिए सहोदर (भाई) और महाधार्मिक वज्र जंघ राजा वहां आया । (४८४-४८५)

स्वीकृत्य भगिनीत्वेन, तां निनाय स्वमन्दिरम् ।
तत्र भ्रातृर्गृह इव, वसति स्म निराकुला ॥४८६॥

सीता को बहन रूप में स्वीकार करके अपने राजमहल में ले गया और वहां भाई के घर के समान निराकुल रुप में सीता रही थी । (४८६)

क्रमात्तन्नारदात् श्रुत्वा, भामण्डलमहीपतिः ।
पुण्डरीकपुरे सीतां, समुपेयाय सत्वरः ॥४८७॥

अनुक्रम से नारद से भामंडल राजा ने यह बात सुनी और तुरन्त वहां पुंडरीकपुर में सीता से आकर मिला । (४८७)

ततश्च जानकी तत्र सुषुवे दोष्मिणौ सुवौ ।
नामतोऽनङ्गलवणं, मदनाङ्कुशमप्यथ ॥४८८॥

उसके बाद जानकी ने पराक्रमी दो पुत्रों को जन्म दिया । उनका नाम १ - अनंग लवण और २ -मदनांकुश रखा गया । (४८८)

पितुः स्वरुपमप्राष्टां, मातरं तौ महाशयौ ।
जातपूर्वं व्यतिकरमवोचत् साऽपि साश्रुदृक् ॥४८९॥

महान आशयवाले उन दोनों पुत्रों ने माता से पिता का स्वरूप पूछा । तब सीता ने भी आँख में आंसू लाते हुए वृत्तान्त को कहा । (४८९)

ततो निरागसो मातुस्त्यागात्पितरि सक्रुधौ ।
युद्धाय धीरौ पितरमभ्यषेणयतां द्रुतम ॥४९०॥

उस समय निर्दोष माता का त्याग करने से पिता ऊपर क्रोध चढ़े धीर दोनों पुत्रों ने युद्ध के लिये पिता को आमंत्रण दिया । (४९०)

उत्पन्नः कोऽपि वैरीति विषण्णौ रामलक्ष्मणौ ।
चतुरङ्गचमूचक्रैः सन्नह्येते स्म सायुधौ ॥४९१॥

कोई वैरी उत्पन्न हुआ है, इस तरह जानकर विषाद हुए राम लक्ष्मण चतुरंग सेना के साथ आयुध सहित युद्ध करने के लिए तैयार हुए । (४९१)

ततस्तौ बलिनौ तीक्ष्णैर्निर्जित्य रणकर्मभिः ।
नारदावेदितो तातं, पितृव्यं च प्रणेमतुः ॥४९२॥

पुत्रो तावप्युपालक्ष्य, तुष्टौ पुष्टौजसावुभौ
भुजोपपीडमालिङ्ग्य भेजाते परमां मुदम् ॥४९३॥

बलवान उन पुत्रों ने तीक्ष्ण-तीव्र युद्ध से राम लक्ष्मण को जीत लिया परन्तु नारद मुनि के कहने से पिता और चाचा को नमस्कार किया तब उन दोनों राम लक्ष्मण ने भी पुष्ठ बलिष्ठ, ये अपने पुत्र हैं, इस तरह जानकर खुश होकर भुजा से आलिंगन कर के अत्यन्त आनंद प्राप्त किया । (४९२-४९३)

भवतोर्जननी क्वेति, पृष्टौ ताभ्यां च दर्शिता ।
गृहायाहूयमाना च सती दिव्यमयाचत् ॥४६४॥

तुम्हारी माता कहां है ? इस तरह राम लक्ष्मण के पूछने पर उन्होंने अपनी माता को बताया, उस समय सीता जी को घर में आने के लिए आमंत्रण दिया तब सती को न देखने की याचना की । (४६४)

ततः स खातिकां रामोऽङ्गार पूर्णामरीरचत ।
पुरुष द्वयदघ्नी चायतां हस्तशतत्रयीम् ॥४६५॥
पश्यत्सु सर्वलोकेषु, सुरासुरनरादिषु ।
चमत्कारात्पुलकितेष्वित्यूचे सा कृताञ्जली ॥४६६॥

उस समय में रामचन्द्र जी ने अंगारों (आग) से भरी खाई बनाकर, जो पुरुष जितनी गहरी तथा तीन सौ हाथ लम्बी थी, उस समय में चमत्कार से राम खड़े हो जाते हैं, जिससे देव, असुर और मनुष्य आदि सब लोग के समक्ष हाथ जोड़कर वह सीता कहती है । (४६५-४६६)

हहो भ्रातर्वृहद्भानो ! जागरूको भवान् भुवि ।
पाणिग्रहणकालेऽपिं त्वमेव प्रतिभूरभूः ॥४६७॥

हे भाई ! सूर्य ! तुम पृथ्वी ऊपर हमेशा जागृत हो और मेरे विवाह के समय में भी तुम्हें ही साक्षी बनाया था । (४६७)

जाग्रत्या वा स्वपत्या वा, मनोवाक्काय गोचरः ।
कदापि पतिभावो में राघवादपरे यदि ॥४६८॥
तदा देहमिदं दुष्टं, दह निर्वह कौशलम् ।
न पाप्मने ते स्त्रीहत्या दुष्टनिग्रहकारिणः ॥४६९॥

जागृत अथवा सोये हुए मन, वचन और काया के विषय में राम के बिना अन्य किसी को भी पति रूप में मैंने चिन्तन किया हो तो इस दुष्ट देह को जला डालना और अपनी कुशलता का निर्वाह करना, दुष्ट के निग्रह करने वाले तुझे स्त्री हत्या का पातक नहीं लगेगा । (४६८-४६९)

त्रिधा चं यदि शुद्धाऽहं, तर्हिदर्शय कौतुकम् ।
लाकानेतान् जलीभूय भूयस्तरङ्गरङ्गितैः ॥५००॥

और यदि मैं मनवचन काया से शुद्ध हूँ तो अनेक तरंगो से कल्लोल वाला जल बनकर इन सब लोगों को चमत्कार दिखा दो । (५००)

अत्रान्तरे च वैताढयस्योत्तरश्रेणिवर्त्तिनः ।
हरिविक्रमभूभर्त्तुर्नन्दनो जयभूषणः ॥५०१॥

ऊढाप्टशत भार्यः स्वकान्तां किरण मण्डलाम् ।
सुप्तां हेमशिखाख्येन, समं मातुलसूनुना ॥५०२॥

दृष्टा निर्वासयामास दीक्षा च स्वयंमाददे ।
विपद्य समभूत् सापि, विद्युदंष्ट्रेति राक्षसी ॥५०३॥

जयभूषणसाधोश्च, तदाऽयोध्यापुराद्बहिः ।
तयाकृतोपसर्गस्योत्पेदे, केवलमुज्ज्वलम् ॥५०४॥

आजग्मुस्तत्र शक्राद्यास्तदुत्सवविधित्सया ।
आयान्तो ददृशुस्तं च, सीताव्यतिकरं पथि ॥५०५॥

ततस्तस्या महासत्याः, साहाय्यायादिशद्धरिः ।
पदात्यनिकेशं साधोः, समीपे च स्वयं ययौ ॥५०६॥

इतने में वैताढय की उत्तर श्रेणी में रहने वाला हरि विक्रम राजा का पुत्र जयभूषणं था उसने आठ सौ स्त्रियों से विवाह किया था । उसने अपनी किरण मंडला नाम की पत्नि को मामा के पुत्र हेमशिख के साथ में सोये देखकर निकाल दी थी और स्वयं ने दीक्षा ली थी और वह स्त्री मरकर विधु दृष्टा नाम की राक्षसी बनी थी । उस समय जयभूषण मुनि अयोध्या नगरी के बाहर थे तब उसने मुनि को उपसर्ग किया था । वह सहन करते हुए शुभ परिणाम से मुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था । उस समय शक्र आदि देव केवलज्ञान महोत्सव करने के लिए आ रहे थे, उस समय उन्होंने रास्ते में सीता का यह दृश्य देखा, इससे इन्द्र महाराज ने अपने पदानि सैन्याधिपति हरिणैगमेषीदेव को महासमी सीता की सहायता करने का आदेश किया और स्वयं उस महात्मा के पास में गया । (५०१-५०६)

ततस्तस्यां खातिकायां, सा सीता निर्भयाऽविशत्।

अभूच्च सुरसाहाय्यात्क्षणादच्युदकैर्भृता ॥५०७॥

इधर उस समय में उस खाई, खड्डे में सीता ने निर्भयता पूर्वक प्रवेश किया और देव की सहायता से वह खाई क्षण भर में पानी से भर गई । (५०७)

तदुच्छलज्जलं तस्या, उद्वेलस्येव तोयधेः ।

उत्प्लावयामासमञ्चांस्तुङ्गान् द्रष्टृजनाश्रितान् ॥५०८॥

उसके बाद उछलते पानी को उछलते तरंगो के समान देखने के लिए आए लोक के मांचडे को खींचने लगे । (५०८)

उत्पतन्त्यम्बरे विद्याधरा भीतास्ततो जलात् ।

चुक्रशुर्भूचराश्चैवं पाहि सीते ! महासति ॥५०९॥

उस समय उस उछलते जल से भयभीत बने विद्याधर आकाश में उड़ गये, भूचर मनुष्य भग से चिल्लाते हुए कहने लगे कि हे महासती सीताजी ! हमारा रक्षण करो । (५०९)

स्वस्थं चक्रे तदुदकं ततः संस्पृश्य पाणिना ।

अचिन्त्याच्छील माहात्म्याल्लोके किं न जायते ॥५१०॥

उसके बाद सीता ने पानी को हाथ से स्पर्श करके शांत किया । अचिंत्य शील के माहात्म्य से जगत में क्या-क्या नही होता है ? (५१०)

तदाऽस्याः शील लीलाभिरनलं सलिली कृतम् ।

निरीक्ष्य देवा ननृतुर्ववृषुः कुसुमादि च ॥५११॥

उस समय सीताजी के शील के माहात्म्य से अग्नि को पानी बना देखकर देवता नाचने लगे और पुष्प की वृष्टि करने लगे । (५११)

जहृषुः स्वजनाः सर्वे पौरा जयजयारवैः ।

तुष्टु वुस्तां सतीं दिव्यो, नव्योऽजनि महोत्सवः ॥५१२॥

सभी स्वजन खुश हुए नगर के लोग जय जयकार करते सति की स्तुति करने लगे । इस तरह दिव्य नया महोत्सव हुआ । (५१२)

इत्युन्मृष्टकलङ्कां तां कान्तां नीत्याऽऽत्मना सह ।
जगाम सपरीवारो, रामः केवलिनोऽन्तिके ॥५१३॥

इस तरह से उसका कलंक साफ हो गया, इससे अपनी पत्नि सीता को साथ में लेकर परिवार सहित रामचन्द जी केवल ज्ञानी महात्मा के पास में गये । (५१३)

पप्रच्छ देशनान्ते च रामः भूर्व भवान्निजा ।
ताश्चाचख्यौ यथाभृतान् केवली जयभूषणः ॥५१४॥

उपदेश पूर्ण होने के बाद श्री रामचन्द्र जी ने अपना पूर्व जन्म पूछा और श्री जयभूषण केवली भगवन्त ने जिस तरह से पूर्वजन्म था उस तरह कहा । (५१४)

सीताऽपिप्राप्तवैराग्या, संसारासारवेक्षिणी ।
दीक्षांपार्श्वेमुनेरस्य, जग्राहोत्साहतोस्यात् ॥५१५॥

संसार की असारता को देखकर सीता ने भी वैराग्य प्राप्त करके इस मुनि के पास तुरन्त ही उत्साह पूर्व दीक्षा स्वीकार की । (५१५)

षष्टिं वर्षाणि चारित्रमाराध्य विमलाशयात् ।
त्रयस्त्रिंशदहोरात्रि विहितानशंना ततः ॥५१६॥

मृत्वा समाधिना स्वर्गेऽच्युते लेभेऽच्युतेन्द्रताम् ।
सोऽथ प्राग्वज्जिनाद्यर्चा, कृत्वा सदसि तिंष्ठती ॥५१७॥

साठ वर्ष तक निर्मल भावना पूर्वक चारित्र की आराधना करके तेतीस दिन का अनशन करके समाधिपूर्वक मर कर वह सीता साध्वी जी अच्युत देवलोक में अच्युतेन्द्र रुप में उत्पन्न हुई और वह अच्युतेन्द्र पूर्व के समान अरिहंत प्रभु की पूजा करके सभा में विराजमान होती है । (५१६-५१७)

शतेन पञ्चविंशेन, सेव्यौऽभ्यन्तरपर्षदि ।
एक विंशत्यब्धिसप्तपल्यस्थितिकनाकिनाम् ॥५१८॥

सार्द्धद्विशत्या देवानां, मध्यपर्षदि सेवितः ।
षट्पल्योपमयुक्तैकविंशत्युदधिजीविनाम् ॥५१९॥

सेव्यः पर्षदि बाह्यायां पञ्चभिर्नाकिनां शतैः ।
एक विंशत्यब्धिपञ्चपल्योपममितायुषाम् ॥५२०॥

इस इन्द्र महाराज को इक्कीस सागरोपम + सात पल्योपम के आयुष्य वाले, अभ्यन्तर पर्षदा के सवा सौ देवता होते हैं । इक्कीस सागरोपम + छः पल्योपम के आयुष्य के मध्य पर्षदा के दो सौ पचास देवता होते हैं और इक्कीस सागरोपम और पाँच पल्योपम आयुष्य वाले पर्षदा के पाँच सौ देवता होते हैं । (५१८-५२०)

सामानिकानां दशभिः सहस्त्रैः सेवितक्रमः ।
एकैकदिशि तावद्भिस्तावद्भिश्चात्मरक्षकैः ॥५२१॥

इस इन्द्र महाराज के दस हजार सामानिक देवता होते हैं और चार दिशा में दस-दस हजार आत्म रक्षक देवता सेवा करते हैं । (५२१)

सैन्यैः सैन्याधिपैस्त्रायस्त्रिंशकैर्लोक पालकैः ।
सैव्य परैरपि सुरैरारणाच्युतवासिभिः ॥५२२॥

सैन्य, सेनाधिपति त्रायस्त्रिंश लोकपाल और अन्य आरण और अच्युतवासी देवताओं से इस इन्द्र महाराज की सेवा होती है । (५२२)

द्वात्रिंशत्याधिकान् शक्तो, जम्बू द्वीपान् विकुर्वितैः ।
रूपैः पूरयितुं तिर्यक् चासंख्यद्वीपवारिधीन् ॥५२३॥

अपने द्वारा रचे रूप से बत्तीस जम्बू द्वीप से भी कुछ अधिक और तिरछा असंख्य द्वीप समुद्र को भरने में यह इन्द्र समर्थ है । (५२३)

भुंक्ते साम्राज्यमुभयोरारणाच्युत नाकयोः ।
विमानत्रिशतीनेता, द्वाविंशत्युदधिस्थितिः ॥५२४॥सप्तभि कुलकं॥

आरण और अच्युता दोनों देवलोक का साम्राज्य भोग करते और बाईस सागरोपम का आयुष्य धारण करते इस इन्द्र महाराज के अधिकार में तीन सौ विमान होते हैं । (५२४)

अस्य यानविमानं स्यात्सर्वतोभद्रसंज्ञकम् ।
सर्वतोभद्रदेवश्च नियुक्तस्तद्विकुर्वणे ॥५२५॥

इस इन्द्र महाराज को बाहर जाने का विमान (सर्वतोभद्र) नाम का है और सर्वतो भद्र नाम का देव इसकी रचना करने का अधिकारी होता है । (५२५)

स्थानाङ्ग पञ्चमस्थाने तु आनत प्राणतयोरारणाच्युतयोश्च प्रत्येकमिन्द्रा निवक्षिता दृश्यंते तथा च तत्सूत्रं - 'जहां सक्कस्स तहा सत्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव आरणस्स, जहा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव अच्चुयस्स' एतद् वृत्तावपि देवेन्द्रस्तवाभिधान प्रकीर्णक इव द्वादशानामिद्राणां विवक्षणादारणस्ये त्याद्युक्तमिति संभाव्यते, प्रज्ञापना जीवाभिगम सूत्रा दौ तु दशैव वैमानिकेन्द्रा उक्ता इति प्रतीतमेव ।

श्री स्थानांग सूत्र के पांचवे स्थान में आनत-प्राणत आरण और अच्युत ये चारों देवलोक के अलग-अलग इन्द्र विवंक्षित दिखते हैं । उसका सूत्र इस तरह है - जैसे शक्र महाराज का वर्णन है उस तरह दक्षिण दिशा के सर्व इन्द्रों को जानना यावत् आरण तक जिस तरह से जैसें ईशानेन्द्र का वर्णन है वैसे सभी उत्तर दिशा के इन्द्रों को जानना यावत् अच्युतेन्द्र तक और इसकी टीका में भी देवेन्द्र स्तव नामक प्रकरण के समान जैसे बारह इन्द्रों की विवक्षा की है इससे 'अरध के इन्द्र का' .... इत्यादि कहना संभव हो सकता है अन्य चार देवलोक में दो इन्द्र होते हैं । अतः आरण ...... इत्यादि कहना घट नहीं सकता है । पज्ञापना सूत्र तथा जीवाभिगम सूत्र आदि में तों दस ही वैमानिक इन्द्र कहे हैं जो प्रतीत ही होते हैं ।

अच्युतस्वर्गपर्यन्तमेषु वैमानिकेष्विति ।
यथासंभवमिन्द्राद्या, भवन्ति दशधा सुराः ॥५२६॥

अच्युंत स्वर्ग तक के ये वैमानिक देवलोक में संभव अनुसार इन्द्रादि दस प्रकार के देव होते हैं । (५२६)

तथाहि - इन्द्राः सामनिकास्त्रायस्त्रिंशास्त्रिविधर्पाषदाः ।
आत्मरक्षालोकपाला, आनीकाश्च प्रकीर्णकाः ॥५२७॥
अभियोग्याः किल्बिषिका, एवं व्यवस्थयाऽन्विताः ।
अतः एव च कल्पोपपन्ना वैमानिका अमी ॥५२८॥

वह इस तरह से :- १-इन्द्र, २-सामानिक, ३-त्रायस्त्रिंश, ४-तीन प्रकार की पर्षदा, ५-आत्म रक्षक देव, ६-लोकपाल, ७-सैन्य, ८-प्रकीर्णक, ९- अभियोगिक और १०-किल्बिषिक इस तरह की व्यवस्था से युक्त होने से ये विमानिक देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं । (५२७-५२८)

एवं च भवनाधीशेष्वप्येते दशधा सुराः ।
भवन्त्यष्टविधा एव ज्योतिष्कव्यन्तरेषु ॥५२९॥

जगत्स्वाभाव्यतस्तत्र, द्वौ भेदो भवतो न यत् ।
त्रायस्त्रिंशा लोकपाला, अच्युतात्परत पुनः ॥५३०॥

ग्रैवेयकानुत्तरेषु स्युः सर्वेऽप्यहमिन्द्रकाः ।
देवा एक विधा एव कल्पातीता अभी ततः ॥५३१॥

भवनपति के अन्दर में भी इस तरह से दस प्रकार के देव होते है ज़ब-जब कि ज्योतिष और व्यतंर में आठ प्रकार के देव होते हैं । जगत के स्वभाव से ही त्रायस्त्रिंश और लोकपाल ये दो भेद व्यन्तर ज्योतिषी में नही होते अच्युत से आगे ग्रैवेयक और अनुत्तर में सब देव अहमिन्द्र होते हैं सभी देव एक प्रकार के ही होते हैं और वे कल्पातीत कहलाते हैं । वहां स्वामी सेवक भाव का आचार नहीं होता, इसलिये वे कल्पातीत कहलाते हैं । (५२९-५३१)

आरणाच्युतनाकाभ्यां, दूरमूर्ध्वं व्यतिक्रमे ।
नवग्रैवेयकाभिख्याः प्रतरा दधति श्रियम ॥५३२॥

अब नौ ग्रैवेयक का वर्णन करते हैं :- आरण और अच्युत देवलोक से बहुत ऊँचे जाने के बाद ग्रैवेयक नाम के नौ प्रतर शोभायमान है । (५३२)

अधस्तनं मध्यमं च, तथो परितनं त्रिकम् ।
त्रिधाऽमी रत्न रूगूरम्या संपूर्णचन्द्र संस्थिताः ॥५३३॥

अधस्तनत्रिक, मध्यमत्रिक और उपस्तिनत्रिक इस तरह से तीन प्रकार के होते है, तीनों प्रकार के ग्रैवेक सम्पूर्ण चन्द्राकार रत्न समान तेजस्वी होते हैं । (५३३)

अनुत्तरमुखस्यास्य, लोकस्य पुरुषाकृतेः ।
दधते कण्ठपीठेऽमी, मणी ग्रैवेयकश्रियम् ॥५३४॥

अनुत्तर देवलोक है वह मुख समान है, वह पुरुषाकृति वाले लोक के कंठ विभाग में है, ये नौ ग्रैवेयक मणि के कंठपीठ समान शोभते हैं। (५३४)

प्रतरेषुनवस्वेषु क्रमादिकैकमिन्द्रकं ।
सुदर्शनं सुप्रबुद्ध मनोरमं ततः परम् ॥५३५॥

विमानं सर्वतोभद्रं, विशालं सुमनोऽभिधम् ।
ततः सौमनसं प्रीतिकरमादित्य संज्ञकम् ॥५३६॥

नौ प्रतर में क्रमशः एक-एक इन्द्रक विमान होता है । उनके नाम - १-सुदर्शन, २-सुप्रबुध, ३-मनोरथ उसके बाद दूसरे त्रिक में १-सर्वतोभद्र, २-विशाल, ३-सुमन है और फिर तीसरे त्रिक में १-सौमनस, २-प्रीतिकर, ३-आदित्य नाम है । कुल नौ हैं । (५३५-५३६)

एभ्यश्च पङ्क्त्यो दिक्षु, विमानानां विनिर्गताः ।
पङ्क्तौ पङ्क्तौ दस, नव विमानान्यष्ट सप्त षड् ॥५३७॥

पञ्च चत्वारि च त्रीर्णि, द्वे चैतेषु यथाक्रमम ।
आद्यग्रैवेयके तत्र, प्रतिपङ्क्ति विमानकाः ॥५३८॥

उस इन्द्रक विमान की चारों दिशा में विमानों की पंक्ति निकलती है, प्रत्येक पंक्ति में क्रमशः, दस, नौ, आठ, सात, छः, पाँच, चार, तीन और दो विमान होते हैं । (५३७-५३८)

त्रयस्त्राश्चत्वारो द्विधाऽन्ये, त्रयस्त्रयः समेत्वमी ।
चत्वारिंशत्पङ्क्ति गता, द्वितीयप्रतरे पुनः ॥५३९॥

त्रयस्त्रयस्त्रिधाऽप्येते, षट्त्रिंशत्पङ्क्तिगा समे ।
तृतीयप्रतरे वृत्तौ, द्वौ द्विधाऽन्यै त्रयस्त्रयः ॥५४०॥

द्वात्रिंशत्यपङ्क्तिगाः सर्वे, चतुर्थप्रतरे पुनः ।
त्र्यस्त्रास्त्रयः परौ द्वौ द्वौ सर्वेऽष्टा विंशत्तिर्मताः ॥५४१॥

प्रथम ग्रैवेयक की प्रत्येक पंक्ति में त्रिकोन विमान चार हैं और गोल चोरस विमान तीन-तीन हैं । कुल पंक्तिगत विमान चालीस होते हैं । दूसरे ग्रैवेयक के प्रतर में तीन प्रकार के विमान तीन-तीन हैं और कुल पंक्तिगत विमान छत्तीस होते हैं । तीसरे ग्रैवेयक के प्रतर में गोल विमान दो हैं और चोरस-त्रिकोन विमान तीन-तीन हैं और कुल मिलाकर विमान बत्तीस होते हैं । चौथे ग्रैवेयक के प्रतर में त्रिकोन विमान तीन हैं और गोल-चोरस विमान दो-दो हैं । कुल पंक्तिगत विमान अट्ठाईस होते हैं । (५३९-५४१)

ग्रैवेयेके पञ्चमे च, त्रेधाप्येते द्वयं द्वयम् ।
सर्वे चतुर्विशन्तिश्च, षष्ठे ग्रैवेयके ततः ॥५४२॥

द्वौ द्वौ स्तस्त्रि चतुः कोणावेको वृतः समे पुनः ।
विंशतिः पङ्क्तिगा ग्रैवेयके ततश्च सप्तमे ॥५४३॥

एकोवृत्तश्चतुः कोण, एकोऽथ त्रयस्त्रयोर्द्वयम् ।
षोडशैवमष्टमे च, त्रिधाप्येकैक इष्यते ॥५४४॥

सर्वे द्वादश नवमग्रैवेयके च पङ्क्तिषु ।
केवलं त्रि चतुःकोणावेकैकावष्ट तेऽखिलाः ॥५४५॥

पाँच ग्रैवेयक के प्रतर में तीन प्रकार के विमान दो-दो हैं । कुल मिलाकर पंक्तिगत विमान चौबीस होते हैं । छठे ग्रैवेयक प्रतर में चोरस और त्रिकोन विमान दो-दो हैं और गोल विमान एक ही है । कुल पंक्तिगत विमान बीस होते हैं । सातवें ग्रैवेयक प्रतर में गोल और चोरस विमान एक हैं और त्रिकोन विमान दो है । कुल पंक्तिगत विमान सोलह होते हैं । आठवें ग्रैवेयक में तीनों प्रकार के विमान एक-एक हैं और कुल बारह विमान होते हैं । और नौवे ग्रैवेयक में त्रिकोन और चोरस केवल एक है । कुल मिलाकर पंक्तिगत विमान आठ विमान होते हैं । (५४२-५४५)

अधस्तनत्रिके चैवं, संयुक्ता स्त्रिभिरिन्द्रकैः ।
पञ्चत्रिंशत्पङ्क्ति वृत्ता, विमाना वर्णिता जिनैः ॥५४६॥

चत्वारिंशच्च षट्त्रिंशत्यपङ्क्ति त्रिचतुरस्त्रकाः ।
एवं पंक्तियाश्च सर्वे शतमेकादशोत्तरम् ॥५४७॥

श्री जिनेश्वर भगवन्तो ने नीचे के त्रिक के इन्द्रक विमान सहित पंक्तिगत गोल विमान पैत्तीस कहे हैं, त्रिकोन विमान चालीस और चोरस विमान छत्तीस कहे हैं, इस तरह सब मिलाकर पंक्तिगत विमान कुल एक सौ ग्यारह विमान होते हैं । (५४६-५४७)

तथापि - एक चत्वारिंशदाद्ये, सप्तत्रिंशद् द्वितीययके ।
ग्रैवेयके तृतीय च त्रयस्त्रिंशत् समे स्मृताः ॥५४८॥

उसमें भी प्रथम ग्रैवेयक में इकतालीस, दूसरे में सैंतीस तीसरे में तेतीस विमान का विधान कहा है । (५४८)

पुष्पावकीर्णकाभावादाद्यग्रैवेयकत्रिके ।
सर्व संख्यापि पाईन्क्तय संख्या या नाति रिच्यते ॥५४६॥

ग्रैवेयक के आद्यत्रिक में पुष्पा वकीर्णक विमान नहीं होने के कारण पंक्तिगत संख्या में अन्य संख्या नहीं बढ़ती है । (५४६)

स्युस्त्रयोविंशतिर्वृत्ताः सेन्द्रका मध्यमत्रिके ।
त्र्यस्त्रा अष्टा विंशतिश्च, चतुरस्त्रा जिनैर्मिताः ॥५५०॥

द्वात्रिंशत्पुष्पावकीर्णाः सप्तोत्तरं शतं समे ।
तृतीय च त्रिके वृत्ता, एकादश सहेन्द्रकाः ॥५५१॥

त्र्यस्त्राश्च चतुरस्त्राश्च षोडश द्वादश क्रमात् ।
पुष्पावकीर्णका एक षष्टिः शतं च मीलिताः ॥५५२॥

ग्रैवेयक के मध्यम त्रिक में इन्द्रक विमान सहित गोल विमान तेइस हैं, त्रिकोन विमान अठ्ठाईस हैं, चोरस विमान चौबीस हैं और पुष्पावकीर्णक विमान बत्तीस हैं, कुल मिलाकर विमान् एक सौ सात होते हैं । ग्रैवेयक के तृतीय त्रिकमां इन्द्रक विमान सहित गोल विमान ग्यारह हैं, त्रिकोन विमान सोलह हैं, चोरस विमान बारह हैं और पुष्पा वकीर्णक विमान इक्संठ है, कुल एक सौ विमान है । (५५१-५५२)

गैवेयकेषु नवसु विमानाः सर्व संख्यथा ।
अष्टादशाढया त्रिशती, वृत्ताश्चैकोनसप्ततिः ॥५५३॥

त्रयश्राश्चतुरशीतिश्च, चतुरस्त्रा द्विसप्ततिः ।
सर्वाग्रेण त्रिनवतिश्चैषु पुष्पावकीर्णकाः ॥५५४॥

नौ ग्रैवेयक में कुल विमान अठारह है उसमें उनहत्तर गोल विमान, चौरासी त्रिकोन विमान, बहत्तर चोरस विमान और ब्यानवे पुष्पा वकीर्णक विमान होते हैं । (५५३-५५४)

द्वाविशतिर्यो जनानां शतानि पीठपुष्टता ।
प्रासादश्च शता शतान्यत्रोच्चाः कम्र केतवः ॥५५५॥

यहां के विमान की पृथ्वी की मोटाई बाईस सौ योजन है और प्रासाद एक हजार ऊँचा है और ऊपर सुन्दर ध्वजायें होती हैं । (५५५)

एषु देवतयोत्पन्ना, जीवाः सुकृतशालिनः ।
सुखानि भुञ्जते मञ्जुतेजसः सततोत्सवाः ॥५५६॥

यहाँ पुण्यशाली और अत्यन्त तेजस्वी जीव देव रुप में उत्पन्न होता है और लगातार उत्सव पूर्वक सुख को भोगता है । (५५६)

सर्वेऽहमिन्द्रा अप्रेष्या, अनीशाः अपुरोहिताः ।
तुल्यानुभावास्तुल्याभाबलरुपयशः सुखाः ॥५५७॥

यहाँ रहे सर्व देव अहमिन्द्र है, उनके कोई नौकर नही, है और अपने कोई स्वामी नहीं है और पुरोहित भी नहीं है तथा तेज प्रभाव बल-यश और सुख सबका समान होता है । (५५७)

स्वाभाविकागां एवामी अकृतोत्तरवैक्रियाः ।
वस्त्रालङ्कार रहिताः प्रकृतिस्था विभूषया ॥५५८॥

यह देव स्वाभाविक शरीर वाला उत्तर वैक्रिय को नहीं करने वाले वस्त्रालंकार रहित प्रकृति से शोभावाले होते हैं । (५५८)

तथाहुः - "गेवेज्जग देवाणं भंते ! सरीरा केरिसा विभूभाए पण्णत्ता ? गो० ? गेविज्जगदे वाणं ऐं भवधारणिज्जे सरीरे, ते णं आभारण वंसण रहियापगतिव्था विभूसाएपण्णत्ता" इति जीवाभिगमे ।

श्री जीवाभिगम में कहा है कि हे भगवन्त ! ग्रैवेयक देव शरीर शोभायमान कैसे होते है ? - हे गौतम ! ग्रैवेयक देवों के एक भव धारणीय शरीर वाले होते हैं और आभूषण, वस्त्र से रहित होते हैं, फिर भी सहज स्वभाव से शोभायमान होते हैं ।

यथाजाता अपि सदा, दर्शनीया मनोरमाः ।
प्रसृत्वरैर्द्युतिभरै द्योर्तयन्तो दिशो दश ॥५५९॥

यास्तु संति तत्र चैत्ये, प्रतिमाः श्रीमदर्हताम् ।
भावतस्ताः पूज्यन्ति, साधुवद् द्रव्यतस्तु न ॥५६०॥

फैलते तेज दस दिशाओं को प्रकाशित करने वाले इस ग्रेवेयक के देव वस्त्र रहित होने पर भी दर्शनीय और मनोरम है । ग्रैवेयकवासी देव वहां चैत्य के अन्दर

श्री अरिहन्त परमात्मा की प्रतिमा होती है उसकी साधु के समान भाव से पूजा करते हैं, द्रव्य से पूजा नहीं करते । (५५६-५६०)

गीतवादित्रनाटयादिविनोदो नात्र कर्हिचित् ।
गमनागमनं कल्याण कादिष्विपि न क्कचित् ॥५६१॥

यहां किसी भी स्थान – किसी भी ग्रैवेयक में गीत बाजे नाटकादि विनोद नही होता तथा श्री अरिहंत के कल्याणक में भी कभी गमनागमन नहीं होता है। (५६१)

तथोक्तं तत्त्वार्थ वृत्तो – 'गैवेयकादयस्तु यथावस्थिता एवं कायवाङ्मनोभिरभ्यु त्थानाञ्जलि प्रणिपात तथा गुण वचनैकाग्रय भावना भिर्भगवतोऽर्हतो नमस्यन्ती' ति ।

श्री तत्वार्थ सूत्र की टीका में कहा है कि यथावस्थित गरैवेयक के देव अभ्युत्थान अंजली और प्रतिपात से काया द्वारा गुणकारी वचनों के आलाप से वचन द्वारा और एकाग्र भावना पूर्वक मन द्वारा श्री अरिहंत परमात्मा को नमस्कार करते हैं । इत्यादि –

सुरते तु कदाप्येषां, मनोऽपि न भवेन्मनाक् ।
निर्मोहानाभिवर्षीणां सदाप्यविकृतात्मनाम् ॥५६२॥

निर्मोही ऋषियों के समान सदा अविकारी ग्रैवेयक के देवों को भोगने की इच्छा सहज भी मन नहीं होती है । (५६२)

न चैवं गीतसंगीतसुरतास्वादवर्जितम् ।
किमेतेषां सुखं नाम, स्पृहणीयं यदङ्गिनाम् ॥५६३॥

यहां प्रश्न करते हैं कि – इस ग्रैवेयक के देवों को गीत, संगीत और भोग के आस्वाद रहित का सुख किस तरह कहलाता है जो अन्य प्राणियों को इच्छित है। (५६३)

अत्रोच्यतेऽत्यन्तमन्दपुंवेदोदयिनो ह्यमी ।
तत्प्राक्तनेभ्यः सर्वेभ्योऽनन्तध्नसुखशालिनः ॥५६४॥

तथाहि काय से विभ्योऽनन्त ध्नसुख शालिनः ।
स्युः स्पर्श सेविन स्तेभ्यस्तथैव रूपसेवितः ॥५६५॥

शद्वोपभोगिनस्तेभ्यस्तेभ्यश्चित्तोपभोगिनः ।
तेभ्योऽनन्त गुण सुखा, रतेच्छावर्जिताः सुराः ॥५६६॥

इसका उत्तर देते हैं - अत्यन्त मंद पुरुष वेद के उदय वाले ये देव होते हैं । इससे पूर्व बारह देवलोक के देवों से अनंतगुणा सुखी होते हैं । वह इस तरह से समझना, काया से भोग करने वाले देवों से स्पर्श से भोग करने वाले देव अनंत गुण सुखी होते हैं, उससे रूप भी देखकर सेवन करने वाले, उसके शब्द द्वारा सेवन करने वाले उससे चित्त के द्वारा सेवन करने वाले उससे भोग की इच्छा बिना के देव अनंत गुणा सुखी होते हैं । (५६४-५६६)

यच्चैषां तनुमोहानां, सुखं संतुष्टचेतसाम् ।
वीतरागाणामिवोचैस्तदन्येषां कुतो भवेत् ॥५६७॥

श्री वीतराग परमात्मा के समान अत्यन्त पतले मोह वाले और संतुष्ट चित्त वाले इन देवों को जो सुख है, वह दूसरों को कहां से हो सकता है ? (५६७)

मोहानुदयजं सौख्य, स्वाभाविकमति स्थिरम् ।
सोपाधिकं वैषयिकं, वस्तुतो दुःखमेव तत् ॥५६८॥

मोह के उदय बिना का जो सुख होता है, वह स्वाभाविक और स्थिर होता है जबकि विषय का सुख तो उपाधि वाला है और वस्तुतः में दुःखरुप है । (५६८)

भोज्याङ्गनादयो येऽत्र गीयन्ते सुखहेतवः ।
रोचन्ते न त एव क्षुत्कामाद्यर्त्ति विनाऽङ्गिनाम् ॥५६९॥

भोजन और स्त्री आदि जो सुख का हेतु कहलाता है, वही वैषयिक सुख भी बिना भूख के और बिना काम के जीवों को रूचिकर नहीं होता है । (५६९)

ततो दुःख प्रतिकार रूपा, एते मतिभ्रभात् ।
सुखत्वेन मता लोकैर्हन्त मोहविडम्बितैः ॥५७०॥

इससे मोह द्वारा विडम्बित हुए लोको से मति भ्रम द्वारा केवल दुःख के प्रतिकार रूप गिना जाता है उस विषय में भी सुख रूप में माना जाता है ! कैसी खेद की बात है । (५७०)

उक्तं च "तृषा शुष्यत्यास्ये पिवति सलिलं स्वादु सुरभि,
क्षुधार्त्तः सन् शालीन् कवलयति मांस्पाकवलितान् ।"

प्रदीप्ते कामाग्नौ दहति तनुमाश्लिष्यति वधूं ।
प्रतीकारो व्याधौः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥५७१॥

कहा भी है कि – सुख में तृषा से शोष पड़ता है, तब ही मधुर और सुगन्धी जल मनुष्य पीता है, उसी समय अच्छा लगता है । भूख से पीड़ित व्यक्ति ही अच्छे संस्कार किए चावल आदि भोजन बनाता है और खाता है ..... प्रदीप्त हुई कामाग्नि जब जल रही हो, या जला रही हो उस समय ही मनुष्य पत्नी का आलिंगन करता है । इसी तरह से जो व्याधि–पीड़ा का प्रतिकार करता है । उसे भी लोक विपर्यास से सुख रूप में मानता है । (५७१)

नन्वेवं यदि निर्वाणमदनज्वलनाः स्वतः ।
कथं ब्रह्मव्रतं नैते, स्वीकुर्वन्ति महाधिय ॥५७२॥

प्रश्न करते हैं – यदि इन देवों को कामज्वर स्वतः स्वभाविक रूप में ही शान्त हो गया है तो फिर बुद्धिशाली देव ब्रह्मचर्य व्रत को क्यों स्वीकार नहीं करते? (५७२)

अत्रोच्यते देवभवस्वभावेन कदापि हि ।
एषां विरत्यभिप्रायो, नाल्पीयानपि संभवेत् ॥५७३॥

उत्तर – देव भव के स्वभाव से इन देवों को कभी भी विरति का थोड़ा भी परिणाम उत्पन्न नहीं होता है । (५७३)

भवस्वभावे चित्रथं चाचिन्त्यं पशवोऽपि यत् ।
भवन्ति देशविरतास्त्रिज्ञाना अप्यमी तु न ॥५७४॥

संसार के स्वभाव की विचित्रता कैसी अचिंत्य है कि पशु भी देश विरति प्राप्त कर सकता है, जबकि तीन ज्ञान धारण करने वाले देव विरति के परिणाम को नहीं प्राप्त कर सकते हैं । (५७४)

आद्येग्रैवेयकेऽमीषां स्थितिरूत्कर्ष तोऽप्ययः ।
स्युस्त्रयोविंशतिर्लध्वी द्वाविंशतिः पयोधयः ॥५७५॥

पहले ग्रैवेयक के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य तेईस सागरोपम का है और जघन्य आयुष्य बाईस सागरोपम का होता हे । (५७५)

कनिष्ठायाः समधिकमारभ्य समयादिकम् ।
यावज्ज्येष्ठां समयोनां, सर्वत्र मध्यमा स्थितिः ॥५७६॥

जघन्य आयुष्य से एक समय अधिक से लेकर उत्कृष्ट आयुष्य में एक न्यून तक मध्यम स्थिति गिनी जाती है । (५७६)

द्वौ करावष्टभिर्भागैर्युक्तावेकादशोद्भवैः ।
देहोज्येष्ठायुषां हीनस्थितीनां तु करास्त्रयः ॥५७७॥

उत्कृष्ट स्थिति वाले देवों का देहमान २ $\frac{८}{११}$ हाथ का होता है और जघन्य स्थिति वाले का देहमान तीन हाथ का होता है । (५७७)

ग्रैवेयके द्वितीये तु चतुर्विंशतिरब्धयः ।
ज्येष्ठा स्थितिः कनिष्ठा तुत्रयोविंशतिरब्धयः ॥५७८॥

द्वौ करौ सप्तभिभागैर्युक्तावेकादशोत्थितैः ।
वपुर्ज्येष्ठायुषां ह्रस्वायुषामष्टलवाहधकौ ॥५७९॥

दूसरे ग्रैवेयक के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य चौबीस सागरोपम होता है और जघन्य आयुष्य २३ सागरोपम का है यहां उत्कृष्ट आयुष्य वाले देवों का देहमान २ $\frac{७}{११}$ होता है और जघन्य आयुष्य वाले देवों का देहमान २ $\frac{८}{११}$ हाथ होता है । (५७८ -५७९)

ग्रैवेयके तृतीये च वार्द्धयः पञ्चविंशतिः ।
गुर्वीस्थितिर्जघन्या तु चतुर्विंशतिरेव ते ॥५८०॥

ज्येष्ठ स्थितीनामत्राङ्ग, द्वौकरौ षड्लवाधिकौ ।
तत्कनिष्ठस्थितीनां तु, सप्तांशाढयं कर द्वयम् ॥५८१॥

तीसरे ग्रैवेयक के देवों की उत्कृष्ट स्थिति २५ सागरोपम है और जघन्य स्थिति २४ सागरोपम होती है । यहां के उत्कृष्ट स्थिति वाले देवों का देहमान २ $\frac{६}{११}$ हाथ का है और जघन्य स्थिति वाले देवों का शरीर २ $\frac{७}{११}$हाथ होता है । (५८०-५८१)

ग्रेवेयके तुरीये च षड्विंशतिः पयोधयः ।
आयुर्ज्येष्ठं कमिष्ठं तु, पञ्च विंशतिरब्धयः ॥५८२॥

ज्येष्ठ स्थितीनां द्वौ हस्तौ, देहः पञ्च लवाधिकौ ।
षड् भागास्यधिकौ तौ च, तनुर्जघन्य जीविनाम् ॥५८३॥

चौथे ग्रैवेयक के देवों की उत्कृष्ट स्थिति २६ सागरोपम और जघन्य स्थिति २५ सागरोपम है । उत्कृष्ट स्थिति वाले देवों का देहमान २ $\frac{६}{११}$ हाथ का है और जघन्य स्थिति वाले देवों का देहमान २ $\frac{६}{११}$ हाथ होता है । (५८२-५८३)

ग्रैवेयके पञ्चमेऽथ, वार्द्धयः सप्तविंशतिः ।
स्थितिर्ज्येष्ठा कनिष्ठा तु, षड्विंशतिपयोधयः ।।५८४।।

चतुर्लवाधिकौ हस्तौ, द्वावत्राङ्ग परायुषाम् ।
तौ जघन्यायुषां पञ्चभागयुक्तौ प्रकीर्तितौ ।।५८५।।

पांचवें ग्रैवेयक के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य २६ सागरोपम का है और जघन्य २६ सागरोपम का है, उत्कृष्ट आयुष्य वाले देवों का शरीर मान २ $\frac{४}{११}$ हाथ है तथा जघन्य आयुष्य वाले देवों का देहमान २ $\frac{५}{११}$ हाथ का होता है । (५८५)

अष्टा विंशतिरुत्कृष्टा, षष्टे ग्रैवेयकेऽब्धयः ।
स्थितिरत्र जघन्या तु सप्तविंशतिब्धयः ।।५८६।।

ज्येष्ठस्थितीनामत्राङ्ग द्वौ करौ त्रिलवाधिकौ ।
तौ कनिष्ठ स्थितीनां तु भागैश्चतुर्भिरन्वितौ ।।५८७।।

छठे ग्रैवेयक के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य २८ सागरोपम का है और जघन्य आयुष्य २७ सागरोपम है, उत्कृष्ट आयुष्य वाले देवों का शरीरमान २ $\frac{३}{११}$ हाथ है तथा जघन्य आयुष्य वाले देवों का आयुष्यमान २ $\frac{४}{११}$ हाथ का होता है । (५८६-५८७)

ग्रैवेयके सप्तमे स्युरेकोनत्रिंशदर्णवाः ।
स्थितिर्गरिष्ठा लध्वी तु साष्टाविंशतिरब्धयः ।।५८८।।

द्वौ द्विभागाधिकौ हस्तौ, वपुर्ज्येष्ठायुषामिह ।
लध्वायुषां तु तावेव, विभागाभ्यधिकौ तनुः ।।५८९।।

सातवें ग्रैवेयक के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य २९ सागरोपम है और जघन्य आयुष्य २८ सागरोपम है, उत्कृष्ट आयुष्य वाले देवों का शरीर मान २ $\frac{२}{११}$ हाथ है तथा जघन्य आयुष्य वाले देवों का शरीरमान २ $\frac{३}{११}$ हाथ प्रमाण होता है। (५८८-५८९)

त्रिशदम्भोधयो ज्येष्ठा, ग्रैवेयकेऽष्टमे स्थितिः ।
एकोनत्रिंशदेते च स्थितिरत्रलधीयसी ॥५६०॥

द्वौ करावेकभागाढयौ, देहो ज्येष्ठायुषामिह ।
तावेव द्वौ सद्वि भागौ स्यान्जघन्युषां तनुः ॥५६१॥

आठवें ग्रैवेयक के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य ३० सागरोपम है और जघन्य आयुष्य २६ सागरोपम है, उत्कृष्ट आयुष्य वाले देवों का शरीरमान २ $\frac{1}{11}$ हाथ है तथा जघन्य आयुष्य वाले देवों का शरीरमान २ $\frac{2}{11}$हाथ होता है ।(५६०-५६१)

ग्रैवेयकऽथ नवम एकत्रिंशत्पयोधयः ।
स्थितिर्गुर्वी लधिष्ठा तु, त्रिंशदम्भोधिसंमिता ॥५६२॥

हस्तौ द्वावेव संपूर्णौ, वपुरुत्कुष्टजीविनाम् ।
द्वौ करावेकभागाढयौ, तनुर्जघन्यजीविनाम् ॥५६३॥

नौवें ग्रैवेयक के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य ३१ सागरोपम है और जघन्य आयुष्य ३० सागरोपम है, उत्कृष्ट आयुष्य वाले देवों का शरीरमान २ हाथ का है और जघन्य आयुष्य वाले देवों का शरीरमान २ $\frac{1}{11}$हाथ का होता है । (५६२-५६३)

स्वस्वस्थित्यम्भोनिधीनां, संख्ययाऽद्भसहस्त्रकैः।
आहारकाङ्क्षिणाः पक्षैस्तावद्भिरुच्छवसन्ति च ॥५६४॥

यहां के देवों को अपने-अपने आयुष्य के सागरोपम की संख्या प्रमाण हजार वर्ष आहार की इच्छा होती और उतने ही पक्ष से श्वासोश्वास लेते हैं । (५६४)

आद्यसंहननाः साधुक्रियानुष्ठानशालिनः ।
आयान्त्येषु नराएव, यान्ति च्युत्वाऽपि नृष्वमी ॥५६५॥

इन ग्रैवेयक में प्रथम संघयण वाले और चारित्रधारी मनुष्य ही आते हैं और च्यवन कर मनुष्य गति में ही जन्म लेते हैं । (५६५)

मिथ्यात्वि नो येऽप्य भव्या, उत्पद्यन्तेऽत्र देहिनः ।
जैन साधु क्रियां तेऽपि समाराध्यैव नान्यथा ॥५६६॥

मिथ्यात्वी और अभव्य जीव भी यदि यहां उत्पन्न होते हैं, वह जैन साधु की क्रिया की आराधना करके ही उत्पन्न होते हैं उसके बिना उत्पन्न नहीं होते । (५६६)

समये च्यवनोत्पत्ति संख्या चात्र यथाऽच्युते ।
च्यवनोत्पत्तिविरहः, परमस्तु भवेदिह ॥५९७॥

संख्येया वत्सारशता आद्य ग्रैवयकत्रिके ।
अर्वाग्वर्ष सहस्रात्तेमध्यमीयत्रिके पुनः ॥५९८॥

लक्षाद्र्वाग्वत्सराणां, स्युः संख्येयाः सहस्रकाः ।
कोटेरर्वाग्वर्षलक्षाः संख्येयाश्चरमत्रिके ॥५९९॥

एक समय में च्यवन और उतपत्ति की संख्या यहां अच्युत देवलोक के अनुसार है । च्यवन और उत्पत्ति का उत्कृष्ट विरह आद्य ग्रैवेयक त्रिक में संख्यात सौ वर्ष का है परन्तु हज़ार वर्ष के पहले होता है, मध्वम त्रिक में संख्यात् हजार वर्ष भी लाख वर्ष के अन्दर है और चरमत्रिक में संख्यात् लाख वर्ष और करोड वर्ष के अन्दर होता है। (५९७-५९९).

आद्यषड्ग्रैवेयकस्थाः, पश्यन्त्यवधिचक्षुषा ।
षष्ठयास्तमोऽभिधानायाः पृथ्व्या अधस्तलावधि ॥६००॥

प्रारम्भ के छः ग्रेवेयक तक के देव अवधिज्ञान से छठी पृथ्वी के नीचे तक देख सकते हैं । (६००)

अधस्तनापेक्षया च पश्यत्यूर्ध्वोर्ध्वगाः सुराः ।
विशिष्टबहुपर्यायोपेतामेतां यथोत्तरम् ॥६०१॥

नीचे के ग्रैवेयक की उपेक्षा से ऊपर के ग्रैवेयक की अपेक्षा से ऊपर के ग्रैवेयक के देव विशिष्ट रुप में तथा बहुत पर्याय से युक्त पृथ्वी को देख सकते हैं। (६०१)

तृतीयत्रिकगाः पश्यन्त्यधो माघवतिक्षितेः ।
अवधिज्ञानमेतेषां, पुष्पचङ्गेरिकाकृति ॥६०२॥

तीसरे त्रिकवासी ग्रैवेयक देव अवधि ज्ञानी से नीचे माघवती पृथ्वी तक देख सकते हैं इन देवों के अवधि ज्ञान की आकृति पुष्प चंगेरी के समान होती है । (६०२)

अथोर्ध्वनवमग्रैवेयकादूरमतिक्रमे ।
स्याद्योजनैरसंख्येयैः प्रतरोनुत्तराभिधः ॥६०३॥

अब अनुत्तर विमानो का वर्णन करते हैं – नौ ग्रैवेयक से असंख्य योजन ऊँचे अनुत्तर नाम के प्रतर होते हैं । (६०३)

नास्त्यस्मादुत्तरः कोऽपि, प्रधानमथवाऽधिकः ।
ततोऽयम द्वितीयत्वाद्विख्यातोऽनुत्तराख्यया ॥६०४॥

इस प्रतर के बाद अन्य कोई प्रतर ऊपर नहीं है, इससे अथवा उनसे अधिक कोई नहीं है, इससे अद्वितीय ये प्रतर अनुत्तर नाम से पहिचाने जाते हैं । (६०४)

सिद्धि सिंहासनस्यैष, विभर्त्ति पादपीठताम् ।
चतुर्विमानमध्यस्थरूचिरैकविमानकः ॥६०५॥

यह अनुत्तर नाम का प्रतर सिद्धि (मोक्ष) रूपी सिंहासन के पादपीठ रूप में शोभायमान है, चारों विमान के मध्य में एक सुन्दर विमान है । (६०५)

सर्वोत्कृष्टास्तत्र पञ्च, विमानाः स्युरनुत्तराः ।
तेष्वेकमिन्द्रकं मध्ये चत्वारश्च चतुर्दिशम् ॥६०६॥

वहां सर्वोत्कृष्ट पांच अनुत्तर विमान है । उसमें मध्य के अन्दर एक इन्द्रक विमान है और चारों ओर एक एक विमान है । (६०६)

प्राच्यां तत्रास्ति विजयं, विमानवरमुत्तमम् ।
दक्षिणस्यां वैजयन्तं, प्रतीच्यां च जयन्तकम् ॥६०७॥

उत्तरस्यां दिशि भवेद्विमानमपराजितम् ।
स्वार्थसिद्धिकृन्मध्ये, सर्वार्थ सिद्धिनामकम् ॥६०८॥

इन्द्रक विमान की पूर्व दिशा में श्रेष्ठ विजय नाम का विमान है दक्षिण दिशा में वैजयन्त नाम का, पश्चिम दिशा में जयन्त नाम का और उत्तर दिशा में अपराजित नाम का विमान है और मध्य में सर्व अर्थ को सिद्ध करने वाला स्वार्थ सिद्ध नाम का विमान है । (६०७-६०८)

प्रथमप्रतरे प्रोक्ताः पङ्क्तयोयाश्चतुर्दिशम् ।
द्वाषष्टिकास्ता एकैकहान्याऽत्रैकावशेषिकाः ॥६०९॥

प्रथम प्रतर में (पहले देवलोक के प्रथम प्रतर में) उसके चारों दिशा के अन्दर बासठ-बासठ विमान हैं, वह एक-एक घटते यहां एक ही शेष रहता है । (६०९)

मध्ये वृत्तं त्रिकोणानि दिक्ष्यत्र प्रतरे ततः ।
पङ्क्ति त्रिकोणाश्चत्वारः, पञ्च ते सर्वसंख्यया ॥६१०॥

इस प्रतर के मध्य में गोल विमान है और चार दिशा में त्रिकोन विमान है कुल पंक्तिगत त्रिकोन चार विमान हैं और इस प्रतर की सर्व संख्या पाँच की है । (६१०)

सर्वेऽप्येवमूर्ध्वलोके, पङ्क्ति वृत्त विमानकाः ।
द्वयशीत्याऽभ्यधिकानि स्युः शतानि पञ्चविशंति ॥६११॥

शतानि साष्टाशीतीनि, षड्विंशति स्त्रिकोणकाः ।
षड्विंशति शताः पङ्क्ति चतुरस्राश्चतुर्युताः ॥६१२॥

सर्वोपरि ऊर्ध्वलोक में, पंक्तिगत विमान में वृत्त विमानो की कुल संख्या पच्चीस सौ ब्यासी (२५८२) है त्रिकोन विमानों की कुल संख्या छब्बीस सौ अट्ठयासी (२६८८) है और चोरस विमानो की कुल संख्या छब्बीस सौ चार (२६०४) है । (६११-६१२)

चतुः सप्तत्यभ्यधिकैः शतैरष्टभिरन्विताः ।
सहस्राः सप्तोर्ध्व लोके, सर्वेपङ्क्ति विमानकाः ॥६१३॥

लक्षाश्चतुरशीतिः स्युरेकोननवतिस्तथा ।
सहस्राण्येकोनपञ्चाशं शतं च प्रकीर्णकाः ॥६१४॥

सर्वविमानाश्चतुरशीतिर्लक्षा इहोपरि ।
सहस्राः सप्तनवतिस्त्रयोविंशति संयुताः ॥६१५॥

और ऊर्ध्वलोक के पंक्तिगत समस्त विमानों की कुल संख्या सात हजार आठ सौ चौहत्तर (७८७४) होती है और प्रकीर्णक विमान चौरासी लाख नव्वासी हजार एक सौ उन्चालीस (८४,८९१४९) होते हैं । ऊर्ध्व लोक के सब विमान चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस (४९७०२३) होते हैं । (६१३-६१५)

व्यासायामापरिक्षेपै जम्बूद्वीपेनसंमितम् ।
विमानं सर्वार्थसिद्धमसंख्येयात्मकाः परे ॥६१६॥

स्वार्थसिद्ध नाम के विमान की लम्बाई-चौड़ाई और परिधि से जम्बू द्वीप के समान है शेष के असंख्येय योजन का है । (६१६)

ग्रैवेयकवदत्रापि देवाः सर्वेऽहमिन्द्रकाः ।
सर्वे मिथः समैश्वर्यरुपकान्ति सुखश्रियः ॥६१७॥

ग्रैवेयक के समान यहां के भी सर्व देव अहमिन्द्र है ऐश्वर्य रुप, कान्ति, सुख और शोभा आदि से परस्पर समान होते हैं । (६१७)

येष्वाकाश प्रदेशेषु, शय्यायां प्रथमक्षणे ।
यथोत्पन्नस्तथोत्तानशया एव भवावधि ॥६१८॥

शय्या में जिस आकाश प्रदेश में प्रथम क्षण में जैसे उत्पन्न होते हैं उसी तरह ही जिंदगी तक सदा सोते रहते हैं । (६१८)

सर्व संसारिजीवेभ्यः सर्वोत्कृष्टसुखाश्रयाः।
लीलयैवामितं कालं गमयन्ति निमेषवत् ॥६१९॥

सर्व संसारी जीवो से सर्वोत्कृष्ट सुखी ये देव अपरिमित काल को भी लीला मात्र में आंख के पलकारे के समान व्यतीत करता है । (६१९)

तथाहुर्विशेषावश्यके :-

विजयाइ सूवपाएजत्थो गाढो भवक्खओ जाव ।
खेतेऽवचिट्ठइतहिं दव्वेसु य देहसयणे सुं ॥६२०॥

श्री विशेषावश्यक सूत्र में कहा है कि - विजयादि विमानो का उपघात शय्या में देव जिस आकाश प्रदेश के अवगाही में उत्पन्न होते हैं वहां उस क्षेत्र में उसी ही द्रव्य में उसी ही देह के शयन में अंत तक रहता है । (६२०)

एकत्रिंशद्वारिधयश्चतुर्षु विजयादिषु ।
स्थितिर्जघन्योत्कृष्टा तु, त्रयस्त्रिंशत्पयोधयः ॥६२१॥

विजयादि चार विमानों में जघन्य स्थिति एकतीस सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की होती है । (६२१)

इति प्रज्ञापनाभिप्रायः समवायाङ्गे तु -"विजयवेजयंत जयंत अपराजियाणं भंत्ते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई प० ? गोयम ! जहठ बत्तीसं सागरो उक्को तेत्तीस सागरो०"।

यह अभिप्राय प्रज्ञापना सूत्र का है । श्री समवायांग सूत्र में तो इस तरह कहा है - प्रश्न - "हे भदंत! विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित विमानो के देवताओं की स्थिति कैसी होती है ? तब भगवान उत्तर देते हैं - हे गौतम ! जघन्य से बत्तीस सागरोपम और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम होता है ।"

स्थितिः सर्वार्थ सिद्धे तु स्यादुत्कृष्टैव नाकिनाम् ।
त्रयस्त्रिंशदम्बुधयो जघन्या त्वत्र नास्ति सा ॥६२२॥

स्वार्थ सिद्ध देवों की तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति ही होती है, परन्तु जघन्य स्थिति उनकी नहीं होती है । (६२२)

प्रतिशय्यं विमानेऽस्मिन्नस्ति चन्द्रोदयो महान् ।
मुक्ता फलमय स्फूर्जत शरत्चन्द्रात पोज्जवलाः ॥६२३॥

इन विमान के प्रत्येक शय्या में मोतियों से युक्त देदीप्यमान, शरद ऋतु के चन्द्र के आतप समान उज्जवल चदरंवा होता है । (६२२)

तत्र मध्ये चतुः यष्टिमणप्रमाणमौक्तिकम ।
द्वात्रिंशन्मणमानानि, चत्वारि परितस्त्वदः ॥६२४॥

अष्टौ तत्परितो मुक्ताः, स्यु षोडशमणैर्मिताः ।
स्युः षोडशैताः परितो, मुक्ता अष्टमणोन्मिताः ॥६२५॥

द्वात्रिंशदेताः परितस्ताश्चतुर्मणसंमिताः ।
ततः परं चतुःषष्टिर्मण द्वय मितास्ततः ॥६२६॥

अष्टाविंशं शतं मुक्ता, एकैकमणसंमिताः ।
यथोत्तरमथावेष्ट्य, स्थिताः पङ्क्त या मनोज्ञया ॥६२७॥

प्रत्येक चंदरवे के मध्यम चौसठ मन जितना एक मोती होता है । उसके चारों तरफ बत्तीस मन के चार मोती होते हैं । उसके आस पास सोलह मन के आठ मोती होते हैं , उसके आस पास आठ मन के सोलह मोती होते हैं, उसके आस पास चार मन के बतीस मोती होते हैं, उसके आस पास दो मन के चौसठ मोती होते हैं और उसके आस पास एक मन के एक सौ अट्ठाईस मोती होते हैं । ये सभी मोती एक के बाद एक सुन्दर पंक्तिबद्ध रुप में स्थित होते हैं । (६२४-६२६)

मौक्तिकानामथैतेषां तरुत्तरङ्गितैः ।
परस्परेणास्फलतां, जायते मधुर ध्वनिः ॥६२८॥

सर्वातिशायिमाधुर्य, तं च श्रोत्रमनोरमम् ।
चक्रिदेवेन्द्र गन्धर्वादप्यनन्तगुणाधिकम् ॥६२९॥

ध्वनितं शृण्वतां तेषां, देवानां लीन चेतसाम् ।
अप्यब्धयस्त्रयस्त्रिंशदतियान्ति निमेषवत् ॥६३०॥ *त्रिभिर्विशेषकम् ॥*

पवन के तरंग से परस्पर टकराते इन मोतियों में से मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है, वह मधुर ध्वनि शक्री, देवेन्द्र और गन्धर्व आदि के संगीत से भी अनंतगुणा अधिक होती है । सर्वातिशायी माधुर्य से युक्त होता है और कान को अत्यन्त मनोरम होता है । इस मधुर ध्वनि को सुनने में लीन चित्त वाले उन देवों का तेतीस सागरोपम की आंख के पलकारे के समान समय व्यतीत हो जाता है । (६२८-६३०)

विजयादि विमानेषु चतुर्षु नाकिनां वपुः ।
एक त्रिंशदभ्युनिधि स्थितिकांना करद्वयम ॥६३१॥

वपुर्द्वात्रिंशदम्भोधिस्थितीनां तु भवेदिह ।
एकेनैकादशांशेन, कर एकः समन्वितः ॥६३२॥

विजयादि विमान में रहे ३१ सागरोपम के आयुष्य वाले देवों का देहमान दो हाथ का होता है, जबकि बत्तीस सागरो के आयुष्य वाले देवों का शरीरमान १ $\frac{६}{१२}$ हाथ का होता है । (६३१-६३२)

एकः करस्त्रयस्त्रिंशदम्भोधिजीविनां तनुः ।
देवाः सर्वार्थ सिद्धे तु, सर्वेऽप्येककरोच्छ्रिताः ॥६३३॥

तेतीस सागरोपम आयुष्य वाले देवों का शरीरमान एक हाथ का है और सर्वार्थ सिद्ध विमान में सर्व देवों का शरीरमान एक हाथ होता है । (६३३)

विजयादि विमानस्थाः स्वस्थित्यम्बुधि संख्यया ।
पक्षैः सहस्त्रैश्चाब्दानामुच्छ्वसन्त्याहरन्ति च ॥६३४॥

विजयादि विमान में रहे देवता अपने-अपने आयुष्य सागरोपम की संख्या अनुसार पक्ष में श्वासो-श्वास लेते हैं और उतने हजार वर्ष में आहार लेते हैं । (६३४)

सर्वार्थे तु त्रयस्त्रिंशन्मितैर्वर्षसहस्रकैः ।
प्सान्ति सार्द्ध षोडशभिर्मासैरेवोच्छ्वसन्ति च ॥६३५॥

सर्वार्थ सिद्ध विमान के देव तेतीस हजार वर्ष आहार करते हैं और साढ़े सोलह महीने के बाद उच्छवास लेते हैं । (६३५)

पशु क्रियाभिलास्तु नैतेषां तत्त्वदर्शिनाम् ।
प्राग्भवाभ्यस्तनवमरसार्द्रीकृतचेतसाम् ॥६३६॥

पूर्व जन्म से अभ्यस्त शांत रस द्वारा उनका चित्त आर्द्र-नरम बना है ऐसे तत्त्वदर्शी देवों को पशुक्रिया की अभिलाषा नही होती है । (६३६)

अति प्रतनु कर्माणो, महाभागाः सुरा अभी ।
इहोत्पन्नाः पृष्ठभक्तक्षेप्यकर्मावशेषतः ॥६३७॥

छट्ठतप (दो उपवास) से खत्म हो सके इतने केवल कर्म शेष रह जाने पर अति पतले कर्म वाले महा भाग्यशाली देव यहां उत्पन्न होते हैं । (६३७)

यदाहुः पञ्चमाङ्गे - "अणुत्तरोववाइया णं देवा णं भंते ! केवइएणं कम्मा वसे सेणं अणुत्तरोववाइयत्तेणं उववण्णा ? गोयम ! जावतियन्नं छट्ठ भतिए समणे निग्गथे कम्मं निज्जरेइ एवतिएणं कम्मावसे सेणं अणुत्तरोववाइ य त्ताए उववण्णा" इति ।

पाँचवें श्री भगवती सूत्र में कहा है कि - हे भगवन्त ! अनुत्तरवासी देव कितने कर्म शेप रहने से अनुत्तर देवलोक में उत्पन्न होते हैं ? तब प्रभु ने कहा - हे गोतम ! छट्ठ का पच्चक्खान से साधु भगवन्त जितने कर्मों की निर्जरा करते हैं उतने कर्म शेष रह जाने से अनुत्तर रूप में उत्पन्न होते हैं ।

शाल्यादिक बलिकानां सप्तानां छेदने भवति यावान् ।
कालस्तावति मनु जायुष्केऽपर्याप्तवत्ति मृत्वा ॥६३८॥

मोक्षार्हाध्यवसाया अपि ये कर्मावशेषतो जाताः ।
लवसप्तमदेवास्ते जयन्ति सर्वार्थसिद्धस्थाः ॥६३९॥

इति भगवती सूत्र शतक १४ उ० ७

श्री भगवती सूत्र के चौदहवें शतक सातवें उद्देश में कहा है कि शालि आदि की सात कवलिका को छेदन करते जितना समय लगता है उतने समय में मनुष्यायुष्य घटने कम होने से मर कर मोक्ष के योग्य – तत्काल मोक्ष जाने वाले श्रेष्ठ अध्यवसाय वाले होने पर भी कर्म अवशेष शेष रह जाने से सर्वार्थ सिद्ध विमान में रहे वे भव सप्तम देव जय प्राप्त करते हैं । (६३८-६३९)

आद्य संहननाश्चैषु, स्वाराद्धो ज्जवलसंयमाः ।
भव्याः स्वल्पभवा एवायान्ति यान्ति च नृष्वमी ॥६४०॥

आद्य सहं मन वाले, स्वयं उज्जवल संयम की आराधना करके अल्पभवी भव्यात्मा ही यहां उत्पन्न होते हैं और ये देव च्यवन कर मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं। (६४०)

कर्मभूमि समुत्पन्ना, मानुष्योऽपि शुभाशयाः ।
सम्यग्दृशः शुक्ललेश्या, जायन्तेऽनुत्तरेष्विह ॥६४१॥

कर्म भूमि में उत्पन्न हुए शुभाशय वाले, सम्यग दृष्टि शुक्ल लेश्या वाले स्त्रियाँ – साध्वी जी भी अनुत्तर में उत्पन्न होती हैं । (६४१)

तथाहुः 'केरिसिया णं भंते' मणुस्सी उक्कोसकालठिइयं आउ यकम्मं बंधति गोयम० कम्मभूमीया वा' इत्यादि प्रज्ञा० त्रयोविंशतित में पदे । मानुषी सप्तम नरक योग्यमायुर्न बध्नाति, अनुत्तर सुरायस्तु वध्नातीत्येत वृत्तो ।'

हे भदंत ! किस प्रकार की स्त्रियाँ उत्कृष्ट काल स्थिति वाला आयुष्य कर्म बंधन करती है ? हे गौतम ! कर्म भूमि में उत्पन्न हुई होती है इत्यादि । यह बात प्रज्ञापना सूत्र के २३ वें पद में कही है और उसकी ही टीका में कहा है – कि मनुष्य स्त्रियाँ सातवीं नरक के योग्य आयुष्य बंधन नहीं करती है परन्तु अनुत्तर देव का आयु का बन्धन कर सकती है ।

जीवाः सर्वार्थसिद्धे तूद्भवन्त्येक भवोद्भवाः ।
च्युत्वा ते भाविनि भवे, सिद्ध्यन्ति नियमादितः ॥६४२॥

विजयादि विमान के लिए ऐसा नियम नही जबकि सर्वार्थ सिद्ध में तो एक जन्म में सिद्ध होने वाले जीव ही उत्पन्न हो तो वहां से च्यवन कर दूसरे जन्म में निश्चय सिद्ध होने वाला होता है । (६४२)

उक्तं च -सव्वट्ठाओ नियमा एगंमि भवंमि सिज्झए जीवो ।

विजयाइविमाणेहिय संखिज्जभवा उ बोद्धव्या ॥६४३॥

चतुर्विंशति भवान्नातिक्रामन्तीतितु वृद्धवाद

कहा है कि सर्वार्थ सिद्ध में से जीव नियमा एक ही जन्म में सिद्ध होते हैं, जबकि विजादि विमान में से संख्याता जन्म भी होता है । (६४३) विजयादि विमानवासी देव भी २४ जन्मों से अधिक जन्म नहीं करता है । इस तरह से श्री वृद्धवाद वालों का कहना है ।

तथा – चतुर्ष्वेषु विमानेषु, द्विरूत्पन्ना हि जन्तवः ।

अनन्तरभवेऽवश्यं, प्रयान्ति परमं पदम् ॥६४४॥

परन्तु विजयादि चार विमान में दो बार उत्पन्न हुए जीव अनंता जन्म में अवश्य सिद्ध होते हैं। (६४४)

तथोक्तं जीवाभिगम वृत्तौ – ''विजयादि चतुर्षु वारद्वयं सर्वार्थ सिद्ध महाविमान एक बारं गमन संभवः तत ऊर्द्ध मनुष्य भवासादनेन मुक्ति प्राप्ते'' रिति ।योग शास्त्र वृत्तौ तु विजयादिषु चतुर्ष्वनुत्तर विमाने षु (द्वि चरमा)इत्युक्त मिति ज्ञेयं तत्त्वार्थ भाष्येऽपि विजयादि ष्वनुत्तरेषु विमानेषु देवा द्वि चरमा भवन्ति, द्वि चरमा भवन्ति, द्वि चरमा इति ततश्च्युता परं द्विर्जानित्वा सिद्धयन्तीति।

एतट्टीकापि – द्वि चरमत्वं स्पष्टयति – ततौ विजयादिभ्यश्च्युताः परमुत्कर्षेण द्विर्जनित्वा मनुष्येषु सिद्धिमधिगच्छंति विजयादिविमानाच्युतो मनुष्यः पुनरपि विजयादिषु देवस्तत युतो मनुषः स सिद्ध यतीति ।'

पञ्चम कर्म ग्रन्थे – 'तिरिनिरयति जो आणं नरभव जुअस्स चउपल्लते सट्ठं ।।' एतद्गाथा सूत्र वृत्यनु सारेण तु विजयादि विमानेषु द्विर्गतोऽपि संसारे कति चिद्भवान् भ्रमति नरक तिर्यग्गति योग्य मपि कर्म वध्नातीति दृश्यते तदत्र तत्त्वं केवलि गम्यं ।

श्री जीवाभिगम सूत्र की वृत्ति में तो कहा है कि – विजयादि चार विमान में दो बार तथा सर्वार्थ सिद्ध विमान में एक बार गमन संभव है, उसके बाद मनुष्य जन्म को प्राप्त कर वह मुक्ति में जाता है ।

योग शास्त्र की वृत्ति में तो कहा है कि - "विजयादि चार अनुत्तर विमान में उत्पन्न होते देव 'द्विचरण' होते हैं ।"

तत्त्वार्थ भाष्य में भी कहा है कि - "विजयादि अनुत्तर विमानों के देव 'द्विचरम' होते हैं। द्विचरम का अर्थ - वहां से च्यवन होकर फिर दो बार जन्म लेकर मोक्ष में जाता है ।"

उसकी टीका में भी द्विचरम का स्पष्टीकरण इस तरह है - वहां से विजयादि विमानों से च्यवन कर उत्कृष्ट से दो बार जन्म लेकर मनुष्यत्व में वह देव सिद्धि को प्राप्त करता है - विजयादि विमान से च्यवन कर मनुष्य होता है, बाद फिर विजयादि में देव होता है उसके बाद मनुष्य होता है और वहां से सिद्धि गति प्राप्त करता है।

पांचवे कर्मग्रन्थ में कहा है कि

तिरिनर यति जो आणं नरभव जु अस्स च उपल्ले सट्ठं ॥

अर्थात इस गाथा की टीका के अनुसार विजयादि विमानो में दो बार गया हुआ भी जीव कई जन्मों में भ्रमण करता है । इतना ही नहीं परन्तु नरक, तिर्यंच गति योग्य भी कर्म बन्धन करता है । इस तरह से कर्म ग्रन्थ में दिखता है इसलिए यहां तत्त्व तो केवली गम्य है ।

सर्वार्थदेवा संख्येया असंख्येयाश्चतुर्षु ते ।
एतेष्वेकक्षणोत्पत्तिच्युतिसंख्याऽच्युतादिवत् ॥६४५॥

सवार्थ सिद्ध विमान में देव संख्याता है और शेष के चार अनुत्तर विमानों में देव असंख्याता है । इस विमान के देवों की उत्पत्ति और च्यवन की संख्या अच्युत के समान समझ लेना । (६४५)

पल्योपमस्यासंख्येयो, भागाः परममन्तरम् ।
सुरोत्पत्तिच्यवनयोर्विजयादिचतुष्टये ॥६४६॥

विजयादि चार विमान में देवताओं के च्यवन और उत्पत्ति का उत्कृष्ट विरह काल पल्योपम का असंख्यातवा भाग होता है । (६४६)

पल्योपमस्यसंख्येयो, भागः परममन्तरम् ।
सर्वार्थ सिद्धे सर्वत्र, जघन्यं समयोऽन्तरम् ॥६४७॥

सर्वार्थ सिद्ध में भी उत्कृष्ट अंतर पल्योपम के असंख्यात वा भाग होता है और जघन्य अंतर सर्वत्र एक समय का होता है । (६४७)

जवनालकापराख्यं कन्याचोलकमुच्छ्रितम् ।
आकारेणानुकुरुते, एतेषामवधिर्यतः ॥६४८॥

इन देवों का अवधिज्ञान जिसका दूसरा नाम जवनालक है और उसका आकार कन्या की चोली समान है । (६४८)

किंचिदूनां लोक नाडी, पश्यन्त्यबंधि चक्षुषा ।
ऊनत्वं तुस्वविमान ध्वजादूर्द्ध वमदर्शनात् ॥६४९॥

ये देव अवधिज्ञान से कुछ न्यून लोकनाडी को देख सकते हैं । अपने विमान की ध्वजा से ऊपर नही जा सकने से उतना कम कहा है । (६४९)

उक्तं च तत्वार्थ वृत्तौ - "अनुत्तर विमान पञ्चक वासिनस्तु समस्तां लोकनाडीं पश्यन्ति लोक मध्य वर्तिनीं न पुन लोंक" मिति ।

श्री तत्वार्थ सूत्र की वृति में कहा है कि - 'अनुत्तरवासी देवता लोक मध्यवर्ति की समस्त लोक नाडी को देखता है, लोक को नही देखता है ।'

अतएवावधिज्ञानाधारपर्यायवत्तया ।
क्षेत्रस्यावस्थानमुक्तं त्रयस्त्रिंशतमम्बुधीन् ॥६५०॥

इससे ही अवधिज्ञान के आधारभूत पर्यायवाला होने के कारण से क्षेत्र का अवस्थान अवधिज्ञाना के क्षेत्र के विषय की समय मर्यादा तेतीस सागरोपम कहा है। (६५०) अर्थात यह देव उत्पन्न हो तब से लेकर लोकनाडी के क्षेत्र को अवधिज्ञान से तेतीस सागरोपम तक देखता है । यह अवधिज्ञान क्षेत्र के विषय के समय मर्यादा कहलाता है । इसी बात को आगे के श्लोक में स्पष्ट कहा है ।

यदेषामुत्पत्तिदेशावगाढानां भवावधि ।
अवधेरप्यवगाढक्षेत्रावस्थितिनिश्चयः ॥६५१॥

क्योंकि यह देव उत्पन्न होता है तब से ही उतने ही प्रदेश को अवगाही कर रहता है, इससे उसके अवधिज्ञान के क्षेत्र के अवस्थान को निश्चय रुप में उतना ही जानना । (६५१)

तथोक्तं विशेषावश्यके : -

खेत्तस्स अवट्ठाणं तेतीसं सागरा उ कालेणं ।
दव्वे भिन्नमुहुत्तो पज्जवलंभे य सत्तट्ठ ॥६५२॥

श्री विशेषावश्यक में कहा है कि - क्षेत्र का अवस्थान काल से तेतीस सागरोपम द्रव्य से भिन्न मुहूर्त्त और पर्याय प्राप्ति में सात-आठ हैं । (६५२) इसका अर्थ स्पष्ट नही है ।

सर्वार्थसिद्धश्रृङ्गाग्राद्गत्वा द्वादशयोजनीम् ।
जात्यार्जुनस्वर्णमयी, भाति सिद्धि शिलाऽमला ॥६५३॥

अब श्री सिद्धशिला का वर्णन करते हैं - सर्वार्थ सिद्ध विमान के शिखर से बारह योजन ऊँचे जाने के बाद जातिमान अर्जुन सुवर्णमय निर्मल सिद्धशिला शोभायमान है । (६५३)

पञ्चचत्वारिंशता सा, मिता योजनलक्षकैः ।
विष्कम्भादायामतश्च परितः परिधिः पुनः ॥६५४॥

एका कोटि योजनानां सहस्त्रैस्त्रिंशताऽन्विता ।
द्वि चत्वारिंशता लक्षैर्योजनानां द्विशत्यपि ॥६५५॥

यह सिद्ध शिला पैंतालीस लाख योजन लम्बी चौडी है और परिधि का एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उन्नचास (१,४२,३०,२४९) योजन प्रमाण होता है । (६५४-६५५)

तथा पञ्चाशदेकोनाः, योजनानां च साधिका ।
बाहल्यं मध्य भागेऽस्या, योजनान्यष्ट कीर्तितम् ॥६५६॥

स मध्य भागो विष्कम्भायामाभ्यामष्ट योजनः ।
ततोऽऽङ् गुल पृथकत्वं च योजने योजने गते ॥६५७॥

बाहल्यं हीयते तेन, पर्यन्तेष्वखिलेष्वपि ।
अङ्गुलासंख्यभागाङ्गी मक्षिकापत्रतस्तनुः ॥६५८॥

इस सिद्ध शिला के मध्य भाग की मोटाई आठ योजन है उसके बाद प्रत्येक योजन-य.. न में मोटाई के अन्दर से अंगुल पृथकत्व कम हो जाता है उसके बाद आखिर छेडे आता है उस समय अंगुल के असंख्यात वे भाग प्रमाण में मक्खी की पंख जितनी मोटाई होती है । (६५६-६५८)

तुषारहारगोक्षीरधाराधवलरोचिष: ।
नामान्यस्याः प्रशस्यायाा, द्वादशाहुजिनेश्वराः ॥६५९॥

हिम-बरफ, मोती की माला और दूध की धारा समान धवल उज्जवल कान्ति वाली, प्रशस्य सिद्ध शिला के श्री जिनेश्वर भगवान ने बारह नाम कहे हैं । (६५९) वह इस प्रकार हैं -

ईष १ त्तथेषत्प्राग्भारा २ तन्वीच ३ तनुतन्विका ४ ।
सिद्धिः ५ सिद्धालयो ६ मुक्ति ७ मुक्तालयो ८ऽपि कथ्यते ॥६६०॥

लोकाग्रं ९ तत्स्तूपिका च १० लोकाग्रप्रतिवाहिनि ११ ।
तथा सर्व प्राण भूतजीव सत्त्व सुखा वहा १२ ॥६६१॥

१-इषत्, २-इषत् प्राग्भारा, ३-तन्वी, ४- तनुतन्विका, ५-सिद्धि, ६-सिद्धालय, ७-मुक्ति, ८-मुक्तालय, ९-लोकाग्र, १०-लोक स्तूपिका, ११- लोकाग्र प्रति वाहिनी और १२-सर्व प्राण भूत जीव सत्त्व सुखा वहा । इस तरह से सिद्धशिला के बारह नाम जानना चाहिए । (६६०-६६१)

उत्तानच्छत्रसंकाशा, घृत पूर्णा करोटि काम् ।
तादृशां तुल्यत्यस्या, लोकान्तो योजने गते ॥६६२॥

अथवा यह सिद्धशिला उल्टे छत्र समान है, घी से भरे कटोरे के समान है और सिद्धशिला से एक योजन जाने के बाद लोकान्त आता है । (६६२)

ऊचुर्द्वादश योजन्याः, केचित्त्सर्वार्थसिद्धितः ।
लोकान्तस्तत्र तत्त्वं तु, ज्ञेयं केवल शालिभिः ॥६६३॥

कोई कहता है कि – सर्वार्थ सिद्धि से बारह योजन जाने के बाद सिद्ध शिला नही परन्तु लोकान्त आता है । इसमें असलियत तत्त्व क्या है वह केवली भगवन्त जाने । (६६३)

योजनं चेतदुत्सेधाङ्गुलमानेन निश्चितम् ।
सिद्धावगाहना यस्मादुत्सेधाङ्गुलसंमिता ॥६६४॥

यह योजन माप उत्सेधांगुल से समझना चाहिए क्योंकि सिद्ध की अवगाहना उत्सेधांगुल से कहा गया है । (६६४)

तथोक्तं - "यच्चेषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या लोकान्तस्य चान्तरं तदुत्सेधाङ्गुल निष्पन्न मित्यनुमीयते, यतस्तस्योपरितन क्रोशस्य षड्भागे सिद्धावगाहना धनुस्त्रिभागयुक्तत्रयस्त्रिंशदधिकशतत्रयमानाऽभिहिता, सा चोच्छ्रया श्रयणत एव युज्यत इति भगवती वृत्तौ ।"

श्री भगवती सूत्र की वृत्ति में कहा है कि - "सिद्ध शिला पृथ्वी से लोकान्त का अन्तर उत्सेधांगुल से होना चाहिए । इस तरह अनुमान होता है क्योंकि उसके ऊपर के कोस के छठे विभाग में सिद्ध की अवगाह के ३३३ $\frac{1}{3}$ के धनुष्य कही है वह ऊँचाई के आधार पर ही उत्सेध के आधार से ही घट सकता है अन्यथा नहीं घटता।"

तद्योजनोपरितनक्रोशषष्ठांशगोचरम् ।
धनुषां सतृतीयांश, त्रयस्त्रिंशंशतत्रयम् ॥६६५॥

अभिव्याप्य स्थिताः सिद्धा, अवेदा वेदनोज्झिताः ।
चिदानन्दमयाः कर्मधर्माभावेन निर्वृताः ॥६६६॥

उस योजन के अन्तिम कोस के छठे अंश में ३३३ धनुष्य व्याप्त है। वेद रहित, वेदना रहित, चिदानंदमय, कर्म रूपी गरमी के अभाव से सदा शान्त सिद्धात्मा रहते हैं । (६६५-६६६)

शेषं सिद्ध स्वरूपं तु, द्रेव्य लोके निरूपितम् ।
तत एव ततो सेयं, ज्ञप्तिस्त्रीसंगमोत्सुकैः ॥६६७॥

शेष रहा श्री सिद्ध भगवन्तो का स्वरूप द्रव्य लोक में कहा है, इससे ज्ञान रूपी स्त्री के संगम करने के इच्छुक जीवो ने वहां से जान लेना चाहिए । (६६७)

देशादमुष्मात्परतोऽस्त्यलोकः, स्वकुक्षिकोणाकलितत्रिलोकः ।
मुक्तैकमुक्ता कणकुम्भगर्भोपमः समन्तादपि रिक्त एव ॥६६८॥ *उपजातिः॥*

इस प्रदेश से आगे आलोक है कि जिसने अपने मध्य विभाग के एक कोने में तीन लोक का समावेश कर दिया है और विशाल कुंभ के अन्दर एक मोती के दाना रखने में आता है और शेष चारों तरफ खाली रहे, इस तरह यह आलोक दिखता है । (६६८)

धर्मोधर्मोद्भिन्नजीवान्यगत्यागत्या, द्यैस्तैस्तैः स्वभावैर्विमुक्ते।

स्याच्चेदस्मिन् ज्ञानचातुर्यमेकं, तद्धत्तेऽसौ शुद्धसिद्धात्मसाम्यम् ॥६६९॥ (*शालिनी*)

धर्म और अधर्म (धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय) से उत्पन्न होते जीव तथा अन्य पुद्गल की गति-अगति आदि है वह स्वभाव से रहित यह आलोक में यदि एक ज्ञान चातुर्य ही हो अर्थात् अनन्त ज्ञान शक्ति यदि हो तो यह आलोक शुद्ध सिद्ध भगवन्त के आत्मा के साथ में समानता धारण कर सकता है । (६६९)

विश्वाश्चर्य कीर्ति कीर्तिविजय श्रीवाचकेन्द्रान्ति

षद्राज श्री तनयोऽतनिष्ट विनयः श्री तेजपालात्मजः।

काव्यं यत्किल तत्र निश्चित जग तत्वप्रदीपोपमे,

सम्पूर्णः खलु सप्तविंशति तमः सर्गो निसर्गोज्जलः ॥६७०॥

विश्व को आश्चर्य चकित करने वाली कीर्ति है । ऐसे श्री उपाध्याय भगवन्त श्री कीर्ति विजय जी महाराज के शिष्य तथा तेजपाल और राज श्री के पुत्र विनय विजय जी उपाध्याय ने निश्चित जगत के तत्व के लिए दीपक समान जो काव्य-लोक प्रकाश नामक महाग्रन्थ बनाया है उसमें कुदरती उज्जवल सत्ताईसवां सर्ग सम्पूर्ण हुआ है। (६७०)

॥ इति महोपाध्याय श्री विनय विजय गणिरचिते

श्री लोक प्रकाशे सप्तविंशति तमः सर्गः समाप्तः ॥

॥ ग्रं० ७२३ ॥

तत्समाप्तौ च समाप्तोऽयं क्षेत्र लोकः ॥ ग्रं० ७२१५ ॥

इस तरह महा उपाध्याय श्री विनय विजय जी विरचित श्री लोक प्रकाश तीसरा भागक्षेत्र लोक का उत्तरार्द्ध युग दृष्टा भारत दिवाकर आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी के समुदाय के उत्तर प्रदेशो द्वारक परम पूज्य आचार्य देव

श्रीमद् विजय प्रकाश चन्द्र सूरीश्वर जी महाराज के शिष्य पन्यास पद्म बिजय ने हिन्दी अनुवाद वीर सम्वत् २५२० विक्रम सम्वत् २०५० आश्विन शुक्ल पूनम आयंबिल ओली समाप्त दिन दिनांक १६-११-१९९४ बुधवार आन्ध्र प्रदेश में सिकन्दराबाद के अन्दर श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर मंदिर के पीछे आराधना भवन में सम्पूर्ण किया ।

✤ क्षेत्र लोक उत्तरार्द्ध सम्पूर्णः ✤

卐 श्रोता वाचकयो शुभं भूयात् 卐